अर्थशास्त्र
(Economics Made Easy)
पर
एक सरल अध्ययन

[उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, पटना, मध्यप्रदेश, सागर, नागपुर, अजमेर व पंजाब आदि बोर्डों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा इण्टर-मीडियेट, हायर सैकिन्ड्री तथा प्री० यूनिवर्सिटी कक्षाओं के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम एवम् परीक्षाओं में आये हुए तथा सम्भावित प्रश्नों के आधार पर अर्थशास्त्र के दोनों प्रश्न पत्रों पर उचित चित्रों सहित सर्वश्रेष्ठ पुस्तक]
(प्रश्नोत्तर रूप में)

लेखक —
ओ० पी० अग्रवाल, एम० ए०, एम० कॉम०
एवं
एस० के० अग्रवाल, एम० कॉम०

नवभारत प्रकाशन केन्द्र
प्रकाशक एवं मुद्रक
खुरजा सिटी।

"द्वितीय संस्करण पर दो शब्द"

इस पुस्तक का द्वितीय सस्करण पाठको के हाथ मे है । प्रथम सस्करण श्री श्रोम प्रकाश अग्रवाल जी (मूल लेखक) ने काफी परिश्रम से लिखा जिसका कि पाठको ने स्वागत अवश्य किया परन्तु उस रूप मे नही जिसमें हम आशा थी । पुस्तक के प्रथम सस्करण मे अनेक दोष थे जिनका उत्तर-दायित्व प्रकाशक पर न होकर लेखक पर ही था ।

मुझे इस पुस्तक के अनेक दोषो से अध्यापको तथा अनेक अच्छे विद्यार्थियो द्वारा अवगत कराया गया । मैं उनका बहुत अधिक आभारी हू । मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि से इस पुस्तक मे सशोधन व परिवर्द्धन करके विभिन्न दोषो को दूर करने का प्रयत्न किया है और पुस्तक को विद्यार्थियो के लाभार्थ बनाने की भरसक चेष्टा की है जिससे कि विद्यार्थीगण को यह पुस्तक खरीद लेने पर किसी अन्य पुस्तक की आवश्यकता न पडेगी । मुझे आशा है कि यह पुस्तक भी पाठ्य पुस्तक का कार्य कर सकेगी ।

पुस्तक म निम्न विशेषताये लाई गई है —

प्रथम तो मैंने प्रत्येक अध्याय पर जितने भी प्रश्न बन सकते हैं, उनको यथा सम्भव देने का प्रयत्न किया है ।

द्वितीय— प्रश्नो को विद्यार्थीगण की आवश्यकतानुसार इस प्रकार से समझाया गया है जिससे कि समझने मे कठिनाई ना हो ।

तृतीय— पुस्तक की भाषा को सरल व सुन्दर बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है जिससे कि विद्यार्थियो को उक्त विषय पर भ्राति न हो ।

चतुर्थ— पुस्तक म मुख्य अर्थशास्त्रीयो की परिभाषायें हिन्दी के साथ २ अग्रेजी म भी आवश्यकतानुसार दी गई है जिससे विद्यार्थीगण परीक्षा में उत्तम अक प्राप्त कर सके ।

पचम— प्रस्तुत पुस्तक मे मैंने प्रत्येक प्रश्न पर अधिक से अधिक पोइन्टस देने का प्रयास किया है । मुझे आशा है कि इससे परीक्षार्थियो को अपार लाभ पहुँचेगा ।

षष्टम— पुस्तक के अन्त मे परीक्षा उपयोगी मुख्य प्रश्नो की तालिका दी गई है जिससे कि महत्वपूर्ण प्रश्नो को आसानी से समझा जा सके ।

मैंने इस पुस्तक को प्रथम संस्करण के दोषों से मुक्त करने का तुच्छ साहस तो किया ही है। साथ ही कुछ नवीनता और विद्यार्थियों की सुगमता के लिए मैंने प्रत्येक प्रश्न के पाइन्टस को संक्षेप में चतुर्भुज में प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के साथ संलग्न कर दिया है। इससे विद्यार्थी को स्मरण करने में सुविधा होगी।

अन्त में मेरे कहने का अभिप्राय है कि मैंने विद्यार्थियों की समस्त सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए इस संस्करण को उत्तम और आकर्षक बनाने का प्रयास किया है। मेरे प्रयास को सफलता प्रदान करना आपके हाथ में है।

मुझे पूर्ण आशा है कि पुस्तक का द्वितीय संस्करण पाठकों को और अधिक पसन्द आयेगा।

दया भवन,
खुरजा

एस० के० अग्रवाल

विषय सूची

उपभोग

उत्पत्ति

राजस्व

विनमय

वितरण

विषय–प्रवेश
(Introduction)

अध्याय १

अर्थशास्त्र की परिभाषा

प्रश्न १—अर्थशास्त्र क्या है ? प्रमुख अर्थशास्त्रियों की परिभाषाओं की आलोचना करते हुये अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिये।

(Define Economics. Explain critically the main definitions of economics in support of your answer.)

उत्तर—

अर्थशास्त्र की परिभाषा के विषय में अर्थशास्त्रियों का अलग अलग मत रहा है और इसी कारण अर्थशास्त्र की एक सर्वमान्य परिभाषा अब तक नहीं बन सकी। वास्तव में अर्थशास्त्र की इतनी अधिक परिभाषायें है कि लार्ड जे० एम० कीन्ज (Lord J. M. Keynes) को यह कहना पड़ा कि **"अर्थशास्त्र ने परिभाषाओं से अपना गला घोंट लिया है'**। कुछ अर्थशास्त्रियों ने तो अर्थशास्त्र की परिभाषा देना आवश्यक ही नहीं समझा। परन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। किसी शास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए उसके क्षेत्र, स्वभाव तथा सीमाएँ जानने के लिए उस शास्त्र की एक उचित परिभाषा देना आवश्यक हो जाता है।

अर्थशास्त्र दो शब्दों का संग्रह है—अर्थ एवं शास्त्र। अर्थ का तात्पर्य धन एवं सम्पत्ति से है तथा शास्त्र से अभिप्राय किसी विषय का क्रम बद्ध ज्ञान है इस प्रकार अर्थशास्त्र **धन सम्बन्धी क्रियाओं का क्रम बद्ध अध्ययन' है।** 'यह धन का शास्त्र है'। धन सम्बधी क्रियाओं को अर्थशास्त्र में 'आर्थिक क्रियाएँ' कहते हैं। मनुष्यों की वे क्रियाएँ जिनको द्रव्य द्वारा नापा जा सके और जो धन प्राप्ति के उद्देश्य से की जावें, आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं। मनुष्य की यही आर्थिक क्रियाएँ अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, प्रत्येक व्यक्ति कुछ आर्थिक क्रियाएँ करता है, फल स्वरूप उत्पादित धन का द्रव्य द्वारा विनिमय किया जाता है। इस द्रव्य को उत्पत्ति में सहायता प्रदान करने वाले साधनों में वितरित कर दिया जाता है, जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। **"मनुष्यों की धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से सम्बन्धित क्रियाओं के अध्ययन करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र है"।**

अर्थशास्त्र प्रत्येक मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता (पशु-पक्षियों की क्रियाएं भी अर्थशास्त्र का विषय नहीं हैं) बल्कि केवल उन्हीं व्यक्तियों की क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनमें निम्न विशेषताएँ होती हैं —

(१) सामाजिक प्राणी :—सामाजिक प्राणी से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो समाज के सदस्य हैं और समाज के नियमों का पालन करते हैं। साधु, सन्यासी या राबिन्सन क्रूसो आदि जो समाज छोड़कर एकान्त निर्जन में जीवन व्यतीत करते हैं, सामाजिक प्राणियों की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते।

(२) सामान्य प्राणी .—असाधारण अथवा असामान्य व्यक्तियों जैसे पागल, कंजूस, शराबी आदि का अध्ययन अर्थशास्त्र नहीं करता, इनकी क्रियाएँ साधारण व्यक्तियों से भिन्न होती हैं। ये व्यक्ति समाज के साधारण व्यक्तियों की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

(३) वास्तविक प्राणी .—इसका तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जिन्हें हम साधारण जीवन में देखते हैं अथवा जैसे हम स्वयं हैं। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने एक 'आर्थिक मनुष्य' (Economic Man) की कल्पना की थी जो सदैव स्वहित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता था। अर्थशास्त्र ऐसे व्यक्तियों का अध्ययन नहीं करता। यह वास्तविक प्राणियों जो केवल स्वार्थ (Self interest) की भावना से ही नहीं बल्कि प्रेम, दया, कर्तव्य, धर्म आदि भावनाओं से भी प्रेरित होकर कार्य करते हैं, का अध्ययन करता है।

अतः अर्थशास्त्र सामाजिक, सामान्य व वास्तविक मनुष्यों की धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय व वितरण से सम्बन्धित क्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन है।

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत —

धन का शास्त्र —प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'धन का शास्त्र' (Science of Wealth) कहकर परिभाषित किया और अपनी परिभाषाओं में धन के अध्ययन पर बल दिया। अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ (Adam Smith) के अनुसार **'अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है'** (Economics is the Science of Wealth) जे० बी० से० (J. B. Say) के मतानुसार **'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का विवेचन करे'** (Economics is the science which treats of wealth) प्रो० वाकर (Prof. Walker) के शब्दों में, **'अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन से सम्बन्धित है'** Economics is that body of knowledge which relates to wealth.) इत्यादि।

इस प्रकार की परिभाषाओं के फलस्वरूप 'अधिकतम धन कमाना' ही अर्थशास्त्र का उद्देश्य और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उपाय बतलाना एक अर्थशास्त्री का कार्य हो गया। अर्थशास्त्रियों का ध्यान 'मनुष्य' से जो प्रमुख है हटकर 'धन' जो गौण है और मनुष्य की भौतिक समृद्धि का केवल साधन मात्र है, पर केन्द्रित हो गया। धन द्वारा मनुष्य कल्याण की कहाँ तक वृद्धि हो सकती है इस बात की उपेक्षा की जाने लगी। कार्लाइल, रस्किन, चार्ल्स डिकिन्स आदि विद्वानों ने इस संकुचित दृष्टिकोण की कड़ी आलोचना की और अर्थशास्त्र को 'रोटी टुकड़े का विज्ञान' (Bread and butter Science) 'दुखदाई विज्ञान' (Dismal Science), और 'कुबेर का शास्त्र' (Gospel of mammon) आदि घृणित नामों द्वारा पुकारा।

मार्शल की परिभाषा—प्राचीन परिभाषाओं के दोष जान लेने पर कुछ विद्वानों का ध्यान उनके सुधार की ओर आकर्षित हुआ, इन्होंने अर्थशास्त्र को इस दूषित वातावरण से निकालकर, परिष्कृत रूप प्रदान किया और स्पष्ट किया कि **'धन मनुष्य के लिये है न कि मनुष्य धन के लिये'**। धन को धन इकट्ठा करने के लिए नहीं बल्कि मानवीय कल्याण की वृद्धि के लिये प्राप्त किया जाता है। धन उद्देश्य नहीं बल्कि भौतिक कल्याण की वृद्धि का एक साधन मात्र है। इन अर्थशास्त्रियों में मार्शल (Marshall) का नाम प्रमुख है। मार्शल के अनुसार **'अर्थशास्त्र एक ओर तो धन का अध्ययन है और दूसरी ओर जो अधिक महत्वपूर्ण है यह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।** (Thus, it is on one side a study of wealth and on the other and more important side, a part of the study of man.)

एक अन्य स्थान पर प्रो० मार्शल कहते हैं कि **"अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यापार में मनुष्य मात्र का अध्ययन है, यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक कार्यों के उस अङ्ग का अध्ययन करता है जो कल्याण की भौतिक आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा उपभोग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है"** (Economics is a study of mankind in the ordinary business of life, it examines that part of individual and social actions which is most closely connected with the attainment and with the use of the material requisites of well-being.)

इस प्रकार प्रो० मार्शल ने पुरानी भाषाओं के दोषों को दूर कर मानव-कल्याण को साध्य (end) बनाकर अर्थशास्त्र में मनुष्य को प्रमुख और धन को गौण स्थान प्रदान किया। अब अर्थशास्त्र का उद्देश्य मानव कल्याण की

वृद्धि के लिये धन प्राप्त करता है। पीगू (Pigou) कैनन (Connon) आदि विद्वानों ने भी प्रो० मार्शल के मत का समर्थन करते हुए अर्थशास्त्र को "**मनुष्य के भौतिक कल्याण का शास्त्र** कहकर परिभाषित किया।"

आलोचना —लन्दन स्कूल आफ इकोनामिक्स के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० रोबिन्स (Prof Robbins) ने प्रो० मार्शल की कड़ी आलोचना की है। रौबिंस के अनुसार मार्शल की परिभाषा से **जीवन के साधारण और असाधारण व्यापार** सम्बन्धी क्रियाओं का अन्तर स्पष्ट नहीं होता है। रौबिंस मानवीय **क्रियाओं के आर्थिक तथा अनार्थिक वर्गीकरण पर** भी आपत्ति प्रगट करता है। मनुष्यों के कुछ प्रयत्न अगर एक समय या स्थान पर आर्थिक है तो ये ही प्रयत्न किसी दूसरे स्थान या समय पर अनार्थिक हो सकते है। एक नौकरानी की अपने मालिक के लिए की गई सेवाएं आर्थिक हैं परन्तु उसकी यही सेवायें अपने घर में या अपने मालिक से विवाह कर लेने के पश्चात, अनार्थिक हो जाती हैं क्योंकि बाद की स्थिति में उसको उसकी सेवाओं के बदले कुछ नहीं मिलता। इसीलिये मानवीय क्रियाओं पर आर्थिक और अनार्थिक का लेबिल लगाना अवैज्ञानिक है। प्रो० मार्शल की परिभाषा '**भौतिकता के भ्रम मे फसी हुई है**' रुपया चाहे भौतिक पदार्थों जैसे कुर्सी खरीदने या अभौतिक पदार्थों जैसे नाच देखने आदि पर किया जाय, दोनो ही अर्थशास्त्र के अध्ययन के विषय हैं। ऐसी स्थिति में भौतिक और अभौतिक में अन्तर करना अनावश्यक है। इसी प्रकार रौबिंस के अनुसार अर्थशास्त्र का '**मानव कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं है** क्योंकि मनुष्य के कुछ आर्थिक प्रयत्न ऐसे होते है जिनसे मानव कल्याण में वृद्धि नहीं होती है। जैसे शराब बनाना व बेचना परन्तु अर्थशास्त्र में इनका अध्ययन किया जाता है दूसरे कल्याण को नापना भी कठिन है। इसके अतिरिक्त प्रो० मार्शल ने असामाजिक प्राणियों को अर्थशास्त्र की परिधि से बाहर निकालकर, इसके क्षेत्र को संकुचित कर दिया है। रौबिंस के अनुसार अर्थशास्त्र प्रत्येक मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन है।

प्रो० रौबिन्स की परिभाषा —प्रो० रौबिंस की परिभाषा निम्न तथ्यों पर आधारित है —

१. आवश्यकतायें —(Needs)—मनुष्य की आवश्यकताएं अनन्त है। एक आवश्यकता की सतुष्टि के पश्चात दूसरी आवश्यकता आ खड़ी होती है। आवश्यकताओं के असीमित होने के कारण ही समाज की आर्थिक क्रिया रूपी मशीन सदैव अबाध गति से चालू रहती है।

२. साधन (Means)—असीमित आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के

लिये मनुष्य के पास साधन और समय सीमित हैं। अगर आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, मनुष्य के पास साधन व समय भी असीमित होते है, तो मनुष्य को कोई आर्थिक क्रिया नही करनी पडती, परन्तु ऐसा नही है, इसीलिए मनुष्य को सोचना पडता है कि वह किन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करे और कितना समय किस आवश्यकता की पूर्ति मे लगावे।

३. वैकल्पिक प्रयोग—सीमित साधनो और समय का कई उपयोगों म प्रयोग हो सकता है। इसीलिए हमारे सम्मुख चुनाव (choice) का प्रश्न उठता है। अगर एक साधन एक ही प्रयोग मे आता तो चुनाव का प्रश्न ही नही उठता।

प्रो० रौबिंस के अनुसार '**अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन सीमित साधनों, जिनको विविध उपयोगों में प्रयोग किया जा सकता है, तथा लक्ष्यों के सम्बन्ध के रूप मे करता है।**' **(Economics is a science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses)** इस परिणाम के अनुसार *अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है, यह व्यवहार किसी भी व्यक्ति का और किसी भी स्थान* पर हो सकता है, परन्तु अर्थशास्त्र सम्पूर्ण मानव व्यवहार का अध्ययन नहीं बल्कि मानव व्यवहार के आर्थिक पहलू (Economic Aspect) का अध्ययन करता है जिसका असीमित उद्देश्यो की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रयोगो वाले सीमित साधनो के उपयोग से जन्म होता है।

दोनों परिभाषाओं मे प्रो० रौबिंस की परिभाषा अधिक वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण और विवेचनात्मक है परन्तु प्रो० मार्शल की परिभाषा व्यवहारिक दृष्टिकोण से उत्तम है। दोनो एक दूसरे की पूरक हैं।

—०—

प्रश्न २—'अर्थशास्त्र धन का शास्त्र है' यह परिभाषा क्यों दोषपूर्ण है ? मार्शल द्वारा इसमे क्या सुधार किया गया है।

('Economics is the science of wealth' Why this definition is defective Explain the improvement made by Marshall)

उत्तर—

अर्थशास्त्र धन का शास्त्र है'—सभी प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने अर्थशास्त्र को 'धन का शास्त्र' या 'सम्पत्ति का शास्त्र' माना है। उनके अनुसार अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय धन ही है, इस मत के सर्वप्रथम समर्थक **एडम स्मिथ (Adam Smith)** थे। उन्होने कहा कि 'अर्थशास्त्र धन या सम्पत्ति

का विज्ञान है।" (Economics is the science of wealth) एडम स्मिथ के अन्य साथी जैसे प्रो० वॉकर, प्रो० जे० बी० से० तथा जे० एस० मिल आदि अर्थशास्त्रियों ने भी इसी मत को माना है। प्रो० वॉकर के शब्दों मे "अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन से सम्बन्धित है।" (Economics is that body of knowledge which relate to wealth) इसी प्रकार जे० बी० से० ने कहा है कि "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन या सम्पत्ति की विवेचना करे।" (Economics is the Science which treats of wealth). इसी मत का समर्थन करते हुए प्रो० जे० एस० मिल ने भी कहा है कि "अर्थशास्त्र मनुष्य से सम्बन्धित धन का विज्ञान है।"

इस प्रकार उपलिखित सभी परिभाषाओं मे धन के अध्ययन पर अधिक महत्व दिया गया है और उस समय 'धन' का अर्थ केवल रुपये पैसे तथा दौलत से था और अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य उन साधनों के बताने से समझा जाता था कि जिससे अधिकतम धन सम्पत्ति एकत्रित हो सके।

दोषपूर्ण परिभाषा —प्राचीन अर्थशास्त्रियों की यह परिभाषा दोषपूर्ण है। इसी कारण इस परिभाषा की अनेक अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की है।

> **एडम स्मिथ की परिभाषा के मुख्य दोष :—**
>
> १ धन या सम्पत्ति के अध्ययन पर अधिक बल।
>
> २ 'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना।
>
> ३ धन का सकुचित अर्थ।

सर्वप्रथम, आलोचकों का कहना है कि इस परिभाषा मे धन या सम्पत्ति के अध्ययन पर अधिक बल डाला है। धन ही को उन्होंने अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु माना है और मनुष्य के अध्ययन को उन्होंने गौण स्थान दिया है। इस प्रकार से यह परिभाषा दोषपूर्ण हो जाती है।

दूसरे प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन के अन्तर्गत आर्थिक मनुष्य" की कल्पना की जिसके कारण से भी इनकी परिभाषाओं की आलोचना हुई। इनके अनुसार 'आर्थिक मनुष्य' हमेशा प्रत्येक कार्य आर्थिक दृष्टि कोण से करता है। अर्थात रुपये, पैसे एकत्र करना तथा लाभ प्राप्ति के लिए ही प्रत्येक कार्य करना और उसके सामने नैतिकता का कोई प्रश्न नहीं होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि विद्वान लोग इस शास्त्र से घृणा करने लगे क्योंकि वे यह समझने लगे कि अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य केवल स्वार्थ भावना को ही प्रोत्साहन देना है।

तीसरे, प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने **धन का संकुचित अर्थ** मे प्रयोग किया जिसके कारण भी इनकी अत्यधिक आलोचना हुई। उनके अर्थशास्त्र मे 'धन' केवल वही हैं जिसे हम स्पर्श कर सकते हैं, देख सकते है तथा जो भौतिक है। जैसे मेज, कुर्सी, अनाज, कपडा आदि। आज 'धन' की यह परिभाषा ठीक नहीं है। इस प्रकार धन' का सकुचित अर्थ लगाना भी इनकी परिभाषाओं की आलोचना का मुख्य कारण बना।

इन सब कमियों के कारण ही **कार्लाइल, रसकिन, विलियम मारिस तथा चार्ल्स डिकिन्स आदि विद्वानों ने अर्थशास्त्र की कडी आलोचना की** और इस शास्त्र को अनेक नामो से पुकारा जैसे कुबेर का शास्त्र (**Gospel of mammon**), दुखदाई विज्ञान (**Dismal Science**), रोटी टुकडे का विज्ञान **Read & Butter Science)** आदि।

मार्शल द्वारा सुधार मार्शल तथा उनके साथियों ने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र *को कार्लाइल, रसकिन आदि विद्वानों की आलोचना से बचाया। उन्होंने* प्राचीन अर्थशास्त्रियों की परिभाषाओं की कमियों को देखा और उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया। इन्होंने 'धन' के स्थान पर 'मनुष्य' के अध्ययन पर अधिक महत्व दिया और बताया कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य मानवीय भौतिक कल्याण की वृद्धि करना है। इस प्रकार 'मनुष्य' साध्य और 'धन' को साधन मान कर अर्थशास्त्र के अध्ययन पर बल दिया। इस प्रकार मार्शल ने यह स्पष्ट कर दिया कि "अर्थशास्त्र धन का शास्त्र" नहीं है वरन यह 'मानवीय भौतिक कल्याण की वृद्धि" का शास्त्र है। इसका मुख्य ध्येय 'मनुष्य' है और उसकी समस्याओं के समाधान मे है। 'धन' तो केवल इस उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन मात्र है। लेकिन 'धन' का अध्ययन भी अर्थशास्त्र मे कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मार्शल की अर्थशास्त्र की परिभाषा अधिक लोकप्रिय है। इनके अनुसार **"अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध मे मानव जाति का अध्ययन है। इसमे भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपभोग से अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयत्नों की छानबीन की जाती है। इस प्रकार यह एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर, जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"** (*Economics is a study of* **mankind in the ordinary business of life, it examines that part of individual and social** ***action*** **which is** ***most closely connected*** **with the attainment and with the use of material requistes of**

well being Thus it is on the one side a study of wealth and on the other and more important side a part of the study of man)

इस परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र मनुष्य के साधारण जीवन के व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है। अर्थात अर्थशास्त्र केवल सामाजिक, सामान्य एवं वास्तविक मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन है। दूसरे अर्थशास्त्र एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर जो इससे अधिक महत्वपूर्ण है वह मनुष्य का अध्ययन है। इस प्रकार से मार्शल ने प्राचीन अर्थशास्त्रियों के 'धन' के अत्यधिक महत्व के दोष में सुधार किया है। मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र का उद्देश्य भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उनके उपभोग से है जिससे मनुष्य के भौतिक सुख में वृद्धि होती है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि 'धन' मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य 'धन' के लिए। इस प्रकार मार्शल ने अर्थशास्त्र को आलोचकों की निन्दा से बचाया और इस शास्त्र का प्रधान उद्देश्य मनुष्य हित बनाया। साथ ही मार्शल ने यह भी कहा कि अर्थशास्त्र में मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयत्नों की छानबीन की जाती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र में मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के कार्यों का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्शल ने अपनी परिभाषा के द्वारा अर्थशास्त्र को प्राचीन अर्थशास्त्रियों के दोषों तथा आलोचकों की निन्दा से बचाया और इस शास्त्र का प्रधान उद्देश्य 'मानव हित' बताया न कि 'धन'। मार्शल की इस विचारधारा को और अर्थशास्त्रियों ने भी माना जैसे पीगू, कैनन, क्लार्क आदि विद्वानों ने अपनी अपनी परिभाषाओं में 'मानवीय भौतिक कल्याण की वृद्धि' पर अधिक बल दिया है।

—o—

प्रश्न ३—मार्शल और रौबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषाएँ दीजिये। उनमें से कौन सी उत्तम है? अपने उत्तर की पुष्टि में कारण भी दीजियेगा।

(State the definitions of Marshall & Robbins Which of them is best Give arguments in favour of your answer)

उत्तर—

मार्शल की परिभाषा—मार्शल ने सर्वप्रथम प्राचीन अर्थशास्त्रियों की परिभाषाओं की कमियों को अपनी परिभाषा में दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने 'धन' के स्थान पर 'मनुष्य' के अध्ययन पर अधिक महत्व दिया और उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि धन मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धन के लिए। उनके अर्थशास्त्र की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

"अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बंध में मानव जाति का अध्ययन है। इसमें भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपभोग से अत्यन्त निकट सम्बंध रखने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयत्नों की छानबीन की जाती है। इस प्रकार यह एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।" (**Economics is a study of mankind in the ordinary business of life it examines that a part of individual & social action which is most closely connected with the attainment & with the use of material requisites of well being . Thus, it is on the one side a study of wealth and on the other and more important side, a part of the study of man**) मार्शल की परिभाषा में निम्न चार बातों पर विशेष महत्त्व दिया गया है।

(१) "अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध मे मानव जाति का अध्ययन है।" मार्शल ने यह स्पष्ट तो नहीं कहा है कि जीवन के साधारण व्यवसाय का क्या अर्थ है। परन्तु फिर भी उसके कहने का आशय यह हो सकता है कि अर्थशास्त्र सामाजिक वास्तविक एवं सामान्य व्यक्तियों की उन आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन है जिनका सम्बन्ध धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय वितरण एवं राजस्व में है। इस प्रकार मार्शल अर्थशास्त्र को सामाजिक शास्त्र का रूप प्रदान करता है।

मार्शल की परिभाषा की विशेषताएं —

१ जीवन के साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध में मानव जाति का अध्ययन।

२ भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपभोग का अध्ययन।

३ व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयत्नों की छानबीन।

४ धन से अधिक मानव के अध्ययन पर महत्व।

(२) अर्थशास्त्र में "भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति और उपभोग" का अध्ययन होता है। मार्शल ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि अर्थशास्त्र मे धन मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धन के लिए। और इस कारण अर्थशास्त्र मे धन का अध्ययन मानव कल्याण की वृद्धि करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य 'मानव हित' है।

(३) **अर्थशास्त्र में "व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयत्नों की छान-बीन" की जाती है।** मार्शल ने अपनी परिभाषा में यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि अर्थशास्त्र मे हम व्यक्ति के व्यक्तिगत तथा साथ २ सामाजिक कार्यों का भी अध्ययन करते हैं जो कि वह समाज का सदस्य होने के रूप में करता है।

(४) **अर्थशास्त्र "एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"** इस वाक्य को कहकर मार्शल ने प्राचीन परिभाषाओं के धन पर अत्यधिक महत्व के दोष को दूर किया। उसने कहा कि अर्थशास्त्र मे 'धन' और 'मनुष्य' दोनों का ही अध्ययन होता है लेकिन 'मनुष्य' का स्थान प्रधान है और 'धन' का गौरव।

रौबिन्स की परिभाषा—प्रो० रौबिन्स ने मार्शल एवं उनके साथियों द्वारा दी गई परिभाषाओं की कड़ी आलोचना की और स्वयं एक नई परिभाषा लिखी जो निम्न प्रकार से है—

"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मानव व्यवहार का अध्ययन सीमित साधनों जिनके वैकल्पिक प्रयोग हो सकते हैं तथा लक्ष्यों के सम्बन्ध के रूप मे करता है।" (**Fconomics is the science that studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alterrative uses**) इस प्रकार प्रो० रौबिन्स के मतानुसार हमारी असीमित आवश्यकताओं और सीमित साधनों के द्वारा जो चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है, अर्थशास्त्र उन्हीं का अध्ययन है। प्रो० रौबिन्स की परिभाषा की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

(१) **अर्थशास्त्र 'विज्ञान' के रूप मे**—प्रो० रौबिन्स ने अर्थशास्त्र को विज्ञान का रूप दिया है कला का नही। इसी कारण प्रो० रौबिन्स अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान के रूप में अध्ययन करना चाहते हैं न कि आदर्श विज्ञान के रूप मे। जब कि मार्शल अर्थशास्त्र को विज्ञान और कला दोनों ही मानता है और अर्थशास्त्र के आदर्श विज्ञान के होने के पक्ष में है।

(२) **अर्थशास्त्र मे 'मानव व्यवहार' का अध्ययन**—प्रो० रौबिन्स ने यह भी कहा कि अर्थशास्त्र में केवल सामाजिक व्यक्तियों की क्रियाओं का ही अध्ययन नहीं होता बल्कि असामाजिक व्यक्तियों की क्रियाओं का भी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के सामने असीमित आवश्यकताओं और सीमित साधनों के फलस्वरूप चुनाव की समस्या आती है। इस कारण प्रो० रौबिन्स अर्थ-

शास्त्र को सामाजिक शास्त्र न मानकर जैसे मार्शल तथा उनके साथियो ने कहा था अर्थशास्त्र को मानव व्यवहार के अध्ययन का शास्त्र मानता है।

प्रो० रौबिन्स की परिभाषा की विशेषताएं—

१ विज्ञान के रूप मे अध्ययन।
२ मानव व्यवहार का अध्ययन।
३ मनुष्य की अनन्त आवश्यकताएँ।
४ आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सीमित साधन।
५ सीमित साधनो का अनेक प्रकार से उपयोग।
६ आवश्यकताओ की तीव्रता के अनुसार सन्तुष्टि।

(३) मनुष्य की आवश्यकतायें अनन्त होती हैं — रौबिन्स ने इस बात को प्रधानता दी कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित होती हैं और एक आवश्यकता की पूर्ति के बाद दूसरी अन्य आवश्यकता का जन्म हो जाता है। मनुष्य के सामने हमेशा अधिकतम आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्येय रहता है।

(४) मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए साधन सीमित हैं — रौबिन्स ने कहा है कि मनुष्य के पास आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए साधन सीमित होते हैं और यदि ये साधन असीमित होते तो हमारे सामने चुनाव का कोई प्रश्न ही नही आता। इन सीमित साधनो का वर्णन करते समय प्रो० रौबिन्स ने धन और समय दोनों के बारे मे कहा है।

(५) इन सीमित साधनो का अनेक प्रकार से उपयोग हो सकता है :—साथ २ प्रो० रौबिन्स ने यह भी स्पष्ट किया कि सीमित साधनो का अनेक प्रकार से उपयोग हो सकता है जिसके कारण से ही हमारे सामने चुनाव का प्रश्न आता है। यदि साधनो का एक ही प्रकार से उपयोग हो सकता होता तो यह आर्थिक समस्या उत्पन्न ही नही होती।

(६) मनुष्य आवश्यकताओ को उनकी तीव्रता के अनुसार संतुष्ट करता है :—मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ अधिक तीव्रता की होती हैं और कुछ कम और वह इसी कारण असीमित आवश्यकताओ मे से तीव्रता के अनुसार उनको सतुष्ट करता है। यदि मनुष्य की सब आवश्यकतायें एक ही तीव्रता की होती तो फिर चुनाव का प्रश्न ही नही उठता। इस प्रकार मनुष्य अपने सीमित साधनो से पहले अधिक तीव्र आवश्यकताओ की सतुष्टि का प्रयत्न करता है और यही समस्या आर्थिक चुनाव की समस्या है जो रौबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र की विषय सामग्री है।

अत प्रो० रौबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र म केवल उन मानव व्यवहारो

का अध्ययन होता है जिनका सम्बन्ध असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सीमित साधनों (धन, समय, शक्ति) के उपयोग से है।

मार्शल और रौबिन्स की परिभाषाओं की तुलना :— यह जानने के लिए कि प्रो० मार्शल तथा प्रो० रौबिन्स द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषाओं में से कौन सी उत्तम है, हमें उनका एक तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए जो निम्न प्रकार है—

मार्शल की परिभाषा	रौबिन्स की परिभाषा
१. मार्शल समस्त क्रियाओं को आर्थिक और अनार्थिक में बाँटता है और यह कहता है कि अर्थशास्त्र में **केवल आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन होता है** जिनको कि द्रव्य के मापदण्ड से मापा जा सकता है।	१. रौबिन्स का कहना है कि अर्थशास्त्र में केवल मनुष्य की क्रियाओं के **आर्थिक पहलू का अध्ययन** होता है जो कि असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सीमित साधनों के उपयोग में होता है।
२. मार्शल अर्थशास्त्र को **सामाजिक शास्त्र** मानता है और कहता है कि इसमें सामाजिक, वास्तविक एवं सामान्य व्यक्तियों की ही आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन होता है।	२. प्रो० रौबिन्स ने कहा है कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान नहीं वरन **मानव विज्ञान** है क्योंकि चुनाव के प्रश्न की समस्या सामाजिक तथा असामाजिक दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के सामने आती है।
३. मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र **विज्ञान और कला दोनों** है। इसका उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति के साथ लाभ प्राप्ति भी है। इस प्रकार यह आदर्श विज्ञान हो जाता है।	३. प्रो० रौबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र केवल **वास्तविक विज्ञान** है। इसका उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति ही है।
४. मार्शल की परिभाषा **वर्गकारिणी** है क्योंकि वह आर्थिक, अनार्थिक, भौतिक और अभौतिक में भेद करता है।	४. परन्तु प्रो० रौबिन्स की परिभाषा **विश्लेषणात्मक** है। यह साध्य, साधन तथा उनके साथ उत्पन्न होने वाली चुनाव की समस्या को वैज्ञानिक ढंग से वर्णन करता है।
५. मार्शल की परिभाषा में **व्यवहारिकता** पाई जाती है। जिस कारण इनकी परिभाषा उत्तम मानी जाती है।	५. प्रो० रौबिन्स की परिभाषा **सैद्धान्तिक** है। इसमें मार्शल की परिभाषा की भांति व्यवहारिकता नहीं पाई जाती है।

उत्तम परिभाषा :—यह कहना कि कौनसी परिभाषा उत्तम है। यह एक कठिन कार्य है। फिर भी मार्शल की परिभाषा रौबिन्स की तरह विश्लेषात्मक एवं वैज्ञानिक न होने के कारण रौबिन्स की परिभाषा को सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उत्तम माना जा सकता है। लेकिन यदि व्यवहारिक दृष्टिकोण को ध्यान में रक्खा जाय तो मार्शल की परिभाषा उत्तम कही जा सकती है क्योंकि यह अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान मानकर चलता है। जबकि रौबिन्स अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान ही मानता है और कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि मार्शल और रौबिन्स दोनों की परिभाषाएँ एक दूसरे की पूरक है।

—०—

अध्याय २

अर्थशास्त्र का क्षेत्र

√ ✓प्रश्न ४—अर्थशास्त्र की एक उचित परिभाषा दीजिये तथा उस की विषय सामिग्री की विवेचना कीजिये।

(Give a suitable definition of Economics. Discuss its subject matter.)

उत्तर :—

परिभाषा के लिये प्रश्न (१) का उत्तर देखिये।

अर्थशास्त्र की विषय सामिग्री (Subject matter of Economics) :—

अर्थशास्त्र वह सामाजिक शास्त्र है जिनमे उन तमाम मानवीय क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिनका धन से सम्बन्ध है या जिन्हे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से द्रव्यों के मापदन्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे **मनुष्य की आर्थिक क्रियायें ही अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय या विषय-सामिग्री** है। हम प्रश्न न० १ में पहले ही देख चुके हैं कि समस्त मनुष्यो की आर्थिक क्रियाओं को अर्थशास्त्र अध्ययन नही करता। इसी मे केवल उन मनुष्यो की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो समाज के अङ्ग हैं और अन्य सामाजिक व्यक्तियो के साथ रहते और सम्पर्क रखते हैं, जो अपने कार्यों और विचारो से समाज को प्रभावित करते हैं और स्वयं भी अन्य व्यक्तियो के कार्य और विचारो से प्रभावित होते हैं। साथ ही ऐसे मनुष्य सामान्य और वास्तविक भी होने चाहिये। ऐसे व्यक्तियो के कार्य और उनकी विचारधारा सर्वसाधारण व्यक्तियों जैसी होनी चाहिये। अत

सामाजिक, सामान्य और वास्तविक व्यक्तियो की आर्थिक क्रियायें अर्थशास्त्र की विषय सामिग्री हैं ।

हम अनेको आवश्यकताओ का अनुभव करते हैं। इनकी सतुष्टि हेतु ही हम आर्थिक क्रियायें करते है। आवश्यकताओ की सन्तुष्टि करना ही आर्थिक क्रियाओ का उद्गम है। अर्थशास्त्र मे इसे उपभोग कहते हैं। परन्तु उपभोग तो धन का होता है और धन से ही आवश्यकताओ की सन्तुष्टि होती है। प्रश्न उठता है कि वह धन कहा से आता है। यह धन हमारी आर्थिक क्रियाओ का ही फल है। धन के प्राप्त करने सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओ को अर्थशास्त्र म उत्पादन कहते हैं। आदिकाल म मनुष्य आवश्यकताओ की समस्त वस्तुओ का उत्पन्न कर लिया करते थे परन्तु समाज के विकास के साथ स्थिति बदल गई है। अब अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाली समस्त वस्तुए कोई भी मनुष्य स्वय नहीं उत्पन्न कर सकता। वह किसी विशिष्ट वस्तु को बडी मात्रा म उत्पन्न करता है और फिर अपनी वस्तु को अन्यो की वस्तुओ स बदलकर अपनी आवश्यकता पूर्ति करता है या अपनी वस्तु को द्रव्य द्वारा बदलकर उस द्रव्य से अपनी इच्छित वस्तुए प्राप्त करता है। धन की इस प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अदल-बदल को अर्थशास्त्र मे विनिमय कहते है। बडी मात्रा म धनोत्पत्ति करने मे दूसरो का सहयोग प्राप्त करना पडता है। धन का उत्पादन सयुक्त रूप से मिल जुल कर किया जाता है जिसके कारण धनोत्पादन भी अधिक होता है। सयुक्त उत्पत्ति को द्रव्य द्वारा बदला जाता है और प्राप्त द्रव्य को उत्पादन मे सहयोग प्रदान करने वाले व्यक्तियों मे वितरित कर दिया जाता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी २ आवश्यकता की वस्तुए जुटाकर आवश्यकता पूर्ति करता है। सयुक्त उत्पत्ति को उत्पादन के सहयोगियो में बाँटने सम्बन्धी क्रियाओ को वितरण कहते हैं। अत आर्थिक क्रियाओ को चार भागों मे विभाजित किया जा सकता है—उपभोग, उत्पत्ति विनिमय और वितरण। ये आर्थिक क्रियाए ही अर्थशास्त्र की विषय सामिग्री हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त अर्थशास्त्र राज्य की उन आर्थिक क्रियाओं का भी अध्ययन करता है जो आर्थिक व्यवस्था के विधिवत सचालन के लिये आवश्यक है। ये भी अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय हैं।

अत सामाजिक, सामान्य व वास्तविक व्यक्तियों की धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय और वितरण से सम्बन्धित क्रियायें तथा समाज तथा राज्य की वे क्रियायें जो भौतिक कल्याण की वृद्धि करती हैं, अर्थशास्त्र की विषय सामिग्री हैं।

—०—

जो रौबिन्सन क्रूसो की तरह एकान्तवासी है उनकी क्रियाओं का अध्ययन इस शास्त्र मे नही किया जाता है ।

(२) **सामान्य प्राणी** :—समाज मे रहने वाले सभी व्यक्तियो की क्रियाओ को अर्थशास्त्र अध्ययन नही करता । वे व्यक्ति सामान्य होने चाहिये, समाज के साधारण व्यक्तियो की प्रवृत्तिया का प्रतिनिधित्व करते हो । इसलिये पागल, कजूस आदि व्यक्तियो का अध्ययन अर्थशास्त्र नही करता क्योकि उनका व्यवहार बडा अटपटा और असाधारण होता है ।

(३) **वास्तविक प्राणी** :—अर्थशास्त्र जैसे व्यक्तियो की क्रियाओ का अध्ययन करता है जो हाड मास के बने हो, चलते फिरते हो और दया, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष व सहानुभूति आदि तत्वो से प्रभावित होते हो । प्राचीन अर्थ शास्त्रियो ने एक 'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना की थी जो हर समय आर्थिक भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करता था और अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय माना गया । परन्तु हम देखते है कि हम सदैव आर्थिक भावना से प्रेरित होकर ही काम नही करते जैसे माता का अपने शिशु को पालना । देश भक्त का देश के लिये बलिदान हो जाना इत्यादि ।

अत हम कह सकते है कि सामाजिक, सामान्य व वास्तविक प्राणियो की आर्थिक क्रियाओ को अध्ययन करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है । प्रोफेसर मार्शल के शब्दो मे **"अर्थशास्त्र के साधारण जीवन-व्यापार सम्बन्धी क्रियाओ का अध्ययन है । यह बताता है कि वह किस प्रकार रुपया कमाता है और व्यय करता है । इस प्रकार यह एक ओर धन का अध्ययन है और दूसरी ओर जो अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है ।'** (**Economics is a study of mankind in the ordinary business of life, it enquires how he gets his income and how he uses it Thus it is on one side a study of wealth and on the other and more important side a part of the study of *man* (Marshall)**)

प्रोफेसर रौबिंस ने मार्शल के मत की कटु आलोचना की है । उनके अनुसार **'अर्थशास्त्र एक मानवीय शास्त्र है'** जो प्रत्येक प्राणी की क्रियाओ का अध्ययन करता है । रौबिंस के अनुसार भौतिक और अभौतिक, सामाजिक, असामाजिक, कल्याणकारक अथवा जो गैर कल्याणकारक आदि मे भेद अवैज्ञानिक है । उनके अनुसार **"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन अनेकों उपभोग वाले सीमित साधनो तथा लक्ष्यो के पारस्परिक सम्बन्ध के रूप मे करता है"** (**Economics is a**

science which studies human behaviour a relationship between ends and scarce means which have alternative uses'— (Robbins)

आजकल दोनो ही उपयुक्त मत—प्रो० मार्शल का व प्रो० रौबिस का प्रचलित है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रो० रौबिस की परिभाषा उपयुक्त है परन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से प्रो० मार्शल की उचित है। (विस्तृत ज्ञान के लिये प्रश्न १ का उत्तर पढिये।)

अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Economics) —

> **अथशास्त्र के क्षेत्र मे अध्ययन —**
>
> १ विषय सामिग्री — उपभोग उत्पत्ति विनिमय वितरण तथा राजस्व।
>
> २ अथशास्त्र का स्वभाव —विज्ञान और कला के रूप मे अर्थशास्त्र वास्तविक एव आदर्श विज्ञान।
>
> (३) मर्यादाय —
> (i) आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन।
> (ii) मानवीय क्रियाओं का अध्ययन।
> (iii) सामाजिक। सामान्य एव वास्तविक व्यक्तियों का अध्ययन।
> (iv) वास्तविक और आदर्श विज्ञान एव कला।

अथशास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त करने के उपरान्त इसके क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है ताकि यह पता चल जावे कि क्या क्या बातें इसके अन्तर्गत अध्ययन की जायगी उन बातों की किन किन पहलुओं की चर्चा की जावेगी और क्या बात इसके क्षेत्र से बाहर रहेगी और इसका स्वभाव क्या है? अतः अथशास्त्र के क्षेत्र का विवेचन करने में हम तीन प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है

(१) अथशास्त्र की विषय सामिग्री (Subject matter of Economics)

(२) अथशास्त्र का स्वभाव (Nature of Economics)

(३) अथशास्त्र की मर्यादाय (Limitations of Economics)

(१) **अथशास्त्र की विषय सामिग्री** —इस प्रश्न के उत्तर में हम देख चुके हैं कि अथशास्त्र सामाजिक वास्तविक व सामान्य व्यक्तियों की *आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।* जिन क्रियाओं का धन से कोई सम्बन्ध नही है वे अथशास्त्र के क्षेत्र से परे हैं। आवश्यकताय आर्थिक क्रियाओं को

जन्म देती है। आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिये हम आर्थिक क्रियायें करके धनोत्पत्ति करते हैं। प्राचीन युग मे धनोत्पत्ति व्यक्तिगत-प्रयास से ही हो जाती थी परन्तु आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ साथ स्वावलम्बन का युग समाप्त हो गया है और अब उत्पत्ति मिल-जुल कर उत्पत्ति के पाँचो साधनो के सहयोग मे होती है। अत सयुक्त उत्पत्ति को सब साधनो मे बाँट दिया जाता है जिससे वे अपनी इच्छित वस्तुयें प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सकें। इस कार्य को अर्थशास्त्र मे विनिमय कहते हैं। अत. **सामाजिक, सामान्य व वास्तविक प्राणियो की धन के उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय व वितरण से सम्बन्धित क्रियाये ही अर्थशास्त्र की विषय-सामिग्री ही हैं।**

(विस्तृत विवरण के लिये प्रश्न ४ का उत्तर अवश्य पढें)

(२) **अर्थशास्त्र का स्वभाव (Nature of Economics)**—अर्थशास्त्र एक विज्ञान व कला दोनों है। यह वास्तविक व आदर्शमूलक दोनों ही प्रकार का विज्ञान है। विज्ञान कार्य और कारण का सम्बन्ध बतलाता है। अर्थशास्त्र मे भी अनेको ऐसे विषय है जो कारणो व उनके प्रभावो के सबध को प्रदर्शित करते हैं। अत अर्थशास्त्र विज्ञान है। **वास्तविक विज्ञान** हमको वस्तु स्थिति से अवगत कराता है, यह प्रचलित अवस्था का ज्ञान कराता है। इसका काम केवल 'क्या है' (What is) प्रश्न का उत्तर देना है। यह समस्या को नैतिक दृष्टि से नही देखता। यह नही बतलाता कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है क्या करना चाहिए अथवा क्या नही करना चाहिए इत्यादि। यह उद्देश्य प्राप्ति के उपाय भी नही बतलाता। अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है क्योंकि इसके विभाग सामान्य स्थिति का ज्ञान कराते हैं। उदाहरणार्थ **माग का नियम :**—यदि मूल्य बढ जाता है तो माग घट जाती है और इसके विपरीत मूल्य घटने से माँग बढ जाती हैं, ब्याज का नियम यदि पूँजी की पूर्ति बढ जाती है तो ब्याज की दर कम हो जाती है।

आदर्श विज्ञान हमको बतलाता है कि 'क्या अच्छा है और क्या बुरा है' ? अर्थशास्त्र भी एक आदर्श विज्ञान है क्योंकि यह हमको मानव व्यवहारो के आदर्शों को बतलाता है। जैसे यदि ब्याज की दर ऊची है तो अर्थशास्त्र यह बतलाता है कि ब्याज की ऊचा दर ठीक नही है, यह कम होनी चाहिये। यदि भारतीय श्रमिको की कार्य क्षमता कम है तो इसमे वृद्धि होनी चाहिये इत्यादि।

कला किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम उपायों को बतलाती है।

दूसरे शब्दो मे इसका उद्देश्य वांछनीय आदर्शों की प्राप्ति और अवांछनीय बातो से आदर्श प्राप्ति के उपायो को बतलाना है। अर्थशास्त्र मे हम पढते है कि मजदूरो की कार्यक्षमता कैसे बढ सकती है, ब्याज की दर कैसे कम हो सकती है। देश मे जनसख्या कैसे सीमित रखी जा सकती है इत्यादि।

(विस्तृत विवरण के लिये प्रश्न ५ का उत्तर पढिये।)

(३) **अर्थशास्त्र की मर्यादायें** —अर्थशास्त्र की मुख्य मर्यादायें निम्न लिखित हैं —

(१) अर्थशास्त्र केवल आर्थिक क्रियाओ का अध्ययन करता है।

(२) इसमे केवल मनुष्यो की ही क्रियाओ का अध्ययन होता है पशु पक्षी की क्रियाओ का नही।

(३) अर्थशास्त्र केवल सामाजिक, सामान्य और वास्तविक व्यक्तियो की ही आर्थिक-क्रियाओ का अध्ययन करता है।

(४) अर्थशास्त्र एक वास्तविक एव आदर्श विज्ञान और कला दोनो हैं।

—०—

प्रश्न ७—"हमारे अर्थशास्त्र विज्ञान का प्रारम्भ और अन्त मानव है।" इस कथन की व्याख्या करो।

("The starting point and the goal of our Economic Science is man." Explain this statement clearly)

उत्तर—

मार्शल की परिभाषा से पहले अर्थशास्त्र को 'धन का शास्त्र' समझा जाता था तथा आगल अर्थशास्त्रियो ने 'आर्थिक मनुष्य' की कल्पना के आधार पर अर्थशास्त्र के सिद्धातो की रचनाएँ की थी। धन पर अत्यधिक महत्व के कारण इनकी बडी आलोचना हुई तथा अर्थशास्त्र को अनेक आलोचनाओ से बचाने के लिए मार्शल ने अपनी अर्थशास्त्र की परिभाषा दी। जिसम उसने यह स्पष्ट रूप से कहा कि अर्थशास्त्र धन का शास्त्र होते हुए मुख्यत मानव जीवन का शास्त्र है। इस प्रकार उससे अर्थशास्त्र के अध्ययन मे 'मनुष्य' को प्रधान स्थान दिया और 'धन' को गौण। और मार्शल के बाद के सभी अर्थशास्त्रियो ने भी अर्थशास्त्र के अध्ययन मे 'मनुष्य' के अध्ययन को मुख्य स्थान दिया है।

'मानव' अर्थ विज्ञान का प्रारम्भ—यह कहना उचित है कि ानव ही अर्थशास्त्र का प्रारम्भ है। मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जैसे खाने की, कपडे की तथा रहने की। ये आवश्यकताएँ आवश्यक, ।ऽ।+

और विलासिता तीनो ही प्रकार की हो सकती हैं।
पूर्ति करने के लिए ही मनुष्य कोई न कोई आर्थिक क्रि
खेती करना, अध्यापक होना, डाक्टर बनना आदि सब
अनेक रूप है। इस प्रकार मनुष्य को अनन्त आवश्यकत
एव उनको सतुष्ट करने के लिए किसी एक या एक से अधि
को करना पडता है और अर्थशास्त्र मानव जीवन से स...धित आर्थिक क्रियाओ के अध्ययन का शास्त्र है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानव ही अर्थशास्त्र का प्रारम्भ है। अर्थात मानवीय आवश्यकताएँ एव मानव समस्याएँ ही अर्थशास्त्र को जन्म देती है।

मानव अर्थशास्त्र का अन्त—"मानव अर्थशास्त्र का प्रारम्भ है।" इसी के साथ २ यह भी कहा जाता है कि मानव अर्थशास्त्र का अन्त है। क्योंकि अर्थशास्त्र का "साध्य" मनुष्य ही है तथा "धन" तो केवल इस साध्य की प्राप्ति का साधन मात्र है। मनुष्य आर्थिक क्रियाओ के द्वारा धन की प्राप्ति करता है तथा इस धन के द्वारा अपनी अनेक आवश्यकताओ की सतुष्टि करता है। मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि ही अर्थशास्त्र का उद्देश्य है। इस प्रकार मानव अर्थशास्त्र का अत भी ।

उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण एव राजस्व, मानव से सम्बन्धित—उपभोग की तीव्रता मनुष्य को आर्थिक क्रिया करने को प्रोत्साहित करती है। आर्थिक क्रिया का अध्ययन उत्पत्ति से सम्बन्धित है तथा मनुष्य के प्रयत्नो के फलस्वरूप उत्पादित वस्तुओ का विक्रय द्वारा धन प्राप्त करना विनिमय के अध्ययन मे सम्बन्धित है। इस कुल आय को उत्पत्ति के सहयोगियों मे बाँटना वितरण कहलाता है। प्राप्त आय से आवश्यकता की वस्तुओ एव सेवाओ को खरीदना फिर विनिमय से सम्बध रखता है तथा इन वस्तुओ एव सेवाओ के द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओ की सन्तुष्टि कर पाता है जिसका सम्बन्ध फिर उपभोग मे है। इस प्रकार मनुष्य की अनेक आर्थिक क्रियाएँ उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण से सम्बन्धित हैं।

राजस्व भी आज अर्थशास्त्र का एक मुख्य अग बन गया है। जिसका ध्येय कल्याणकारी राज्य की स्थापना है। राजस्व सरकार के आय, व्यय, ऋण के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है। जिसका उस देश के निवासियो पर काफी प्रभाव पडता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र मे राजस्व का अध्ययन भी मानव से सम्बन्धित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रत्येक शाखा मानव

जीवन से सम्बन्धित है। चाहे यह उपभोग हो, उत्पत्ति हो, विनिमय हो, वितरण हो या राजस्व। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि अर्थशास्त्र का प्रारम्भ और अन्त मानव है।

—o—

अध्याय ३

अर्थशास्त्र के विभाग और उनका सम्बन्ध

प्रश्न ८—अर्थशास्त्र का विषय किन किन मुख्य भागों में विभक्त है? उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

(Into what divisions the subject matter of Economics is divided? Discuss clearly their mutual relationship.)

उत्तर—

अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र को निम्न पाँच विभागों में बाँटा जाता है —

१ उपभोग (Consumption)
२ उत्पादन (Production)
३ विनिमय (Exchange)
४ वितरण (Distribution)
५ राजस्व (Public Finance)

(१) **उपभोग**—इस विभाग में मानवीय आवश्यकताएँ, उनके गुण, उनकी सन्तुष्टि, आय, व्यय बचत, बजट तथा इनसे सम्बन्धित नियमों का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र में उपभोग का बड़ा ही महत्त्व है क्योंकि आवश्यकतायें ही अर्थशास्त्र का प्रारम्भ और अन्त है।

(२) **उत्पत्ति**—आवश्यकताओं की संतुष्टि धन द्वारा की जाती है। अर्थशास्त्र के उत्पत्ति विभाग में धनोत्पत्ति के विभिन्न साधनों, उनकी पूर्ति व क्षमता, उत्पादन का पैमाना व उत्पत्ति नियमों आदि का अध्ययन किया जाता है।

(३) **विनिमय**—अर्थशास्त्र के इस विभाग में विनिमय की आवश्यकता,

शर्तें, रूप व मूल्य निर्धारण आदि का अध्ययन होता है । द्रव्य, बैंक, बाजार, यातायात के साधन, मण्डियाँ, राष्ट्रीय व्यापार आदि विभिन्न प्रकार की बातों का इस विभाग में अध्ययन किया जाता है

(४) **वितरण**—वर्तमान समय में सम्पत्ति का उत्पादन सयुक्त प्रयास का फल है । सयुक्त उत्पादन प्रणाली, सयुक्त उत्पत्ति के साझीदार तथा सयुक्त उत्पत्ति वितरण सिद्धान्तों का अध्ययन अर्थशास्त्र के वितरण विभाग के अध्ययन विषय हैं ।

(५) **राजस्व**—इसमें सरकारी आय व्यय के सिद्धांतों का विवरण होता है । हम देखते हैं कि राज्य किन किन साधनों द्वारा आय प्राप्त करता है और किन किन मदों पर व्यय करता है । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय ऋण, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, सरकारी उद्योग आदि समस्याओं का वर्णन वितरण विभाग में होता है ।

अर्थशास्त्र के विभागों का पारस्परिक सम्बन्ध —

हम पहले ही कह चुके हैं कि अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से अर्थ-शास्त्र के विषय को पाँच विभागों में बाँटा जा सकता है । ये विभाग एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं लेकिन यह नहीं भूल जाना चाहिये कि इनका आपस में घनिष्ठ सम्बंध है । इनके आपसी सम्बन्ध निम्न प्रकार हैं —

(१) **उपभोग और उत्पत्ति** —उपभोग और उत्पत्ति में घनिष्ट सम्बन्ध है । **उपभोग की आवश्यकता के कारण ही उत्पत्ति होती है ।** यदि किसी वस्तु के लिये हमारी आवश्यकता ही नहीं होगी तो उत्पादनकर्त्ता उसका उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि वह बिकेगी ही नहीं । इसी प्रकार **उत्पत्ति उपभोग को सम्भव बनाती है** । देश में जिन चीजों की उत्पत्ति होगी, उपभोक्ता उन्हीं का उपभोग कर सकते हैं । जब युद्धकाल में बहुत सी चीजों का उत्पादन बन्द हो गया तो उपभोक्ताओं को उनके उपभोग से वञ्चित रहना पड़ा ।

उपभोग उत्पत्ति की मात्रा और उसके स्वभाव को निर्धारित करता है उत्पादन वस्तु की माँग के अनुसार ही होता है । यदि किसी वस्तु की माँग ज्यादा है तो उसकी उत्पत्ति भी अधिक होगी । यही नहीं उत्पत्ति वैसी ही गुणवाली वस्तुओं की होगी जैसी कि उपभोक्ता माँग करते हैं । उत्पादन जनता की रुचि के अनुसार ही होता है । **इसी प्रकार उत्पत्ति उपभोग की मात्रा और उसके स्वभाव को निर्धारित करती है ।** व्यक्ति उन्हीं और उतनी ही वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं जैसी और जितनी कि उत्पादन-

कर्ता उत्पन्न करते हैं। युद्धकाल में बारीक (Fine) कपडा बनना बन्द हो गया और घटिया (Coarse) कपडे का उत्पादन कम हो गया। उस समय उपभोक्ताओ को थोडी मात्रा मे केवल घटिया कपडे को ही प्रयोग करना पडा।

(२) उपभोग और विनिमय —प्राचीनकाल मे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की वस्तुओ को स्वय उत्पन्न करता था। परन्तु आजकल कोई भी मनुष्य अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति केवल स्वय के ही प्रयत्न से नही कर सकता इसलिए वह अपनी वस्तु देकर बदले म दूसरो की वस्तुये लेता है और फिर अपनी आवश्यकता पूर्ण करता है। अत **विनिमय उपभोग को सम्भव बनाता है।** इसी प्रकार **उपभोग विनिमय को सम्भव बनाता है** वही वस्तु विनिमय साध्य हो सकती है जो उपभोग के योग्य हो। जब तक कोई वस्तु मनुष्य की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष आवश्यकता की सतुष्टि नहीं करेगी, उसका क्रय-विक्रय भी नही होगा।

(३) उपभोग और वितरण —उपभोग के लिये **वितरण अनिवार्य है।** उत्पत्ति के पाचो साधनो की सहायता से ही धन पैदा किया जाता है। जब यह धन सब साधनो मे वितरित कर दिया जाता है तब ही प्रत्येक साधन अपनी अपनी आवश्यकतायें पूर्ण कर सकता है। अत वितरण के बिना उपभोग असम्भव है। वितरण के ढग और मात्रा का भी उपभोग पर प्रभाव पडता है। यदि धन का वितरण समान है तो प्रत्येक व्यक्ति के पास व्यय करने के लिये काफी पैसा होगा और देश म उपभोग की मात्रा बढ जायेगी। इसी प्रकार उपभोग का भी वितरण पर प्रभाव पडता है। यदि मनुष्य हानिकारक पदार्थों का उपभोग करते हैं तो उनकी कार्यक्षमता कम हो जायेगी। फलस्वरूप उसकी धनोत्पादन शक्ति गिर जायगी। देश म कुल उत्पादन कम होगा और वितरण भी कम होगा।

(४) उपभोग और राजस्व —सरकार की आय-व्यय नीति का व्यक्तियो के उपभोग पर बडा प्रभाव पडता है। राज्य वस्तुओ पर कर लगा कर उनके उपभोग को हतोत्साहित कर देता है। विदेशी वस्तुओ के आयात पर भारी कर लगाकर, राज्य उनके उपभोग को बहुत कम कर देता है या उनके आयात को बिल्कुल बन्द करके, उपभोक्ताओ को उसके उपभोग से वचित रख सकता है। शराब व नशीली वस्तुओ के उपभोग पर राज्य द्वारा नियन्त्रण किया जाता है, खाद्य पदार्थों म मिलावट रोकने के लिये निरीक्षण किया जाता है आदि।

उपभोग का भी राजस्व पर प्रभाव पडता है। जिन वस्तुओ का उपभोग

अधिक होता है उन वस्तुओं पर कर लगाने से राज्य की आय अधिक होती है।

(५) उत्पत्ति और विनिमय :—आजकल अधिकांश उत्पत्ति उपभोग के लिये न होकर बजट मे बिक्री के लिये की जाती है। निजी उपभोग के लिये उत्पादन का बहुत कम महत्व है। जो वस्तु विनिमय साध्य नही होती उनको कोई उत्पन्न नही करता। सयुक्त उत्पत्ति को उत्पादनकर्ता बाजार मे विनिमय करके द्रव्य प्राप्त करता है और उस द्रव्य को उत्पादको मे बाट देता है। इस द्रव्य से वे अपनी आवश्यकताये सन्तुष्ट करते है। अत **विनिमय के अभाव मे उत्पत्ति असम्भव है।**

इसी प्रकार विनिमय भी उत्पत्ति पर निर्भर है। यदि उत्पादन बन्द हो जाये तो विनिमय का प्रश्न ही नही उठता। देश मे जितनी अधिक उत्पत्ति होती है उतना ही अधिक क्रय विक्रय अर्थात विनिमय होता है।

(६) उत्पत्ति और वितरण .—वितरण उत्पत्ति पर ही निर्भर है। अगर कुल उत्पत्ति की मात्रा (राष्ट्रीय आय) अधिक है तो उत्पादन के साधनो को अधिक मात्रा मे धन वितरित किया जायेगा और अगर राष्ट्रीय आय कम है तो धन का वितरण भी कम होगा। **वितरण का प्रभाव भी धन की उत्पत्ति पर पडता है।** यदि वितरण सन्तोष जनक है और उत्पादन के साधनो का विश्वास है कि उनका शोषण नही हो रहा है, तो वे सन्तुष्ट रहेगे कार्य अधिक परिश्रम और मन से करेगे, उनकी कार्यक्षमता बढ जायेगी और फलस्वरूप धनोत्पत्ति भी बढ जायेगी। **वितरण उत्पत्ति के स्वभाव को निर्धारित करता है।** यदि धन का वितरण असमान है तो धनिक और धनिक, और गरीब और गरीब होगे और समाज मे आवश्यकताओ की वस्तुओ के स्थान पर विलासिता की चीजो की उत्पत्ति बढ़ेगी। इसके विपरीत दशा मे ठीक इसका उल्टा होगा।

(७) उत्पत्ति और राजस्व —समाज मे शान्ति, सुव्यवस्था और न्याय का सुप्रबन्ध है तो उत्पत्ति भी निर्विघ्न और अधिक होगी। यदि समाज मे लूट मार, चोरी, डकैती आदि का भय रहता है तो स्वभावत उत्पादन कम होता है। किसी वस्तु पर अधिक कर लगाकर या कम करके राज्य उसकी उत्पत्ति को घटा या बढा देता है क्योंकि कर लगाने से वस्तु के दाम बढ जाते हैं, उसकी माग कम हो जाती है। और फलत उत्पत्ति भी कम हो जाती है। राज्य आर्थिक सहायता देकर किसी वस्तु के उत्पादन को प्रोत्साहन दे सकता

है या वस्तु के उपभोग को निषेध या नियन्त्रित करके, उसकी उत्पत्ति को बन्द या कम कर सकता है।

उत्पादन का प्रभाव भी राजस्व पर पड़ता है—राज्य अनेकों वस्तुओं पर उत्पादन कर (Excise Duty) लगाकर, आय प्राप्त करता है। यदि ऐसी वस्तुओं का उत्पादन अधिक है तो राज्य की आय भी अधिक होगी और यदि कम है तो राज्य की आय भी कम होगी।

(८) विनिमय और वितरण—**धन का वितरण विनिमय द्वारा ही सम्भव है।** संयुक्त उत्पत्ति को बाजार में बेचकर धन प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त धन को ही उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में विनिमय के नियमों के आधार पर वितरित किया जाता है। वितरण द्वारा प्राप्त धन से प्रत्येक साधन अपनी आवश्यकता के पदार्थों का क्रय करता है। अतः **वितरण के पूर्व और पश्चात दोनों समय विनिमय आता है।**

वितरण का भी विनिमय पर प्रभाव पड़ता है। यदि वितरित की जाने वाली सम्पत्ति अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति आय भी अधिक होती है। अधिक आय से उपभोक्ता अधिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं। अतः विनिमय भी अधिक होगा।

(९) विनिमय और राजस्व—सरकार वस्तुओं की बिक्री पर व विदेशी वस्तुओं के आयात निर्यात पर कर लगाती है। अतः **विनिमय जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक सरकार की आय होगी।** राज्य विनिमय की दर या कीमतों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हस्तक्षेप करता है। सरकार विनिमय की सुविधा के लिये मुद्रा की मात्रा व रूप तथा बैंकिंग व साख प्रणाली को नियन्त्रित करती है, परिवहन संदेश वाहक साधनों का निर्माण करती है। इसी प्रकार विनिमय भी राजस्व को प्रभावित करता है। सार्वजनिक अर्थशास्त्र की अनेक समस्यायें विनिमय के कारण उत्पन्न होती हैं।

(१०) वितरण और राजस्व—**राज्य की नीति धन वितरण के स्वभाव को प्रभावित** करती है। साम्यवादी देशों में धन का वितरण मनुष्यों की आवश्यकतानुसार होता है। समाजवादी देशों में योग्यता के अनुसार तथा पूँजीवादी देशों में माँग व पूर्ति की शक्तियों के द्वारा। **राजस्व नीति से वितरण की असमानता कम हो सकती है।** सरकार प्रगतिशील कर लगाकर धनिकों से ज्यादा बड़ी मात्रा में आय प्राप्त करती है और फिर इस आय का बहुत बड़ा भाग निर्धनों के कल्याण के लिये व्यय कर देती है।

वितरण का भी राजस्व पर प्रभाव पड़ता है। यदि समाज में धन का

वितरण समान है तो सरकार करों के रूप में अधिक आय प्राप्त नहीं कर सकती। यदि वितरण असमान है तो बड़ी २ आमदनियों पर प्रगतिशील कर लगाकर, काफी आय प्राप्त की जा सकती है।

—o—

अध्याय ४

अर्थशास्त्र के नियम

प्रश्न ९—आर्थिक नियम क्या है ? उनकी प्रकृति क्या है ? आर्थिक नियम प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों जैसे निश्चित क्यों नहीं हैं ?

(What are economic laws ? What is their nature ? Why are economic Laws not as exact as the laws of physical sciences ?)

उत्तर—

प्रत्येक विज्ञान मे 'कारण' और 'फल' के सम्बन्धो को स्थापित करके कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इन निष्कर्षों को उस विज्ञान के नियम कहते हैं। अर्थशास्त्र भी एक विज्ञान है। इसमे बहुत से आर्थिक कारणों और उनके प्रभावों को अध्ययन करके कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इन आर्थिक निष्कर्षों को ही आर्थिक नियम कहते हैं। वस्तु के मूल्य बढने पर मांग घट जाती है और मूल्य घटने पर माग बढ जाती है। यह कथन मूल्य मे परिवर्तन और माग पर उसके प्रभाव के सम्बन्ध को बतलाता है। यह एक आर्थिक नियम है। प्रो॰ मार्शल ने आर्थिक नियम की परिभाषा इस प्रकार दी है **"आर्थिक नियम अथवा आर्थिक प्रवृत्तियों के कथन वे सामाजिक नियम हैं जो व्यवहार की उन शाखाओं से सम्बन्धित हैं जिनमे किसी उद्देश्य की शक्ति मुद्रा में नापी जा सकती है।"** **(Economic laws or statements of economic tendencies are those social laws which relate to branches of conduct in which the strength of the motives chiefly concerned can be measured by money price)** अत: हम कहते हैं कि आर्थिक नियम **"आर्थिक प्रवृत्तियों**

के कथन मात्र हैं" और सामाजिक व्यक्ति के आर्थिक व्यवहारों के कारण व परिणामों में सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

आर्थिक नियमों की अन्य नियमों से तुलना :—

अर्थशास्त्र के नियम वैधानिक, नैतिक, सामाजिक व प्राकृतिक नियमों से भिन्न है —

आर्थिक व वैधानिक नियम —वैधानिक नियम वे राजाज्ञायें हैं जो व्यक्तियों को किसी काम के करने या न करने को विवश करते हैं जिनके न मानने पर राज्य की ओर से दन्ड मिलता है। उनका पालन करना अनिवार्य है। परन्तु आर्थिक नियम हम किसी काम के लिये आदेश नहीं देते और न उनके उल्लंघन पर कोई दण्ड दिया जाता है।

आर्थिक व नैतिक नियम —नैतिक नियम मनुष्य आचरण के वाञ्छनीय आदर्शों का उपदेश देते हैं। इन नियमों का पालन औचित्य की दृष्टि से ईश्वरीय प्रकोप से बचने के लिये किया जाता है। जैसे 'अहिंसा परमोधर्म' 'सदा सत्य बोलो' आदि। इनके उल्लंघन करने पर कोई दंड नहीं मिलता परन्तु व्यक्ति का नैतिक स्तर गिर जाता है। आर्थिक नियमों के न मानने पर यद्यपि कोई ऐसी हानि नहीं होती फिर भी इनमें आदर्श का योग तो रहता ही है क्योंकि अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान भी है।

आर्थिक नियम और सामाजिक नियम :—ये नियम समाज में प्रचलित रूढ़ियों और प्रथाओं द्वारा निर्धारित होते हैं। इनका पालन करना यद्यपि अनिवार्य नहीं, फिर भी सामान्यतया सभी व्यक्ति इनका पालन करते हैं जैसे विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर भोज देना। इनके पालन न करने पर व्यक्ति को समाज के अनादर, व विरोध का सामना करना पड़ता है। आर्थिक नियम इनसे भिन्न हैं क्योंकि ये प्रथाओं द्वारा निर्धारित नहीं होते और न इनके उल्लंघन करने पर व्यक्ति का समाज में कोई स्थान गिरता है।

आर्थिक नियम और प्राकृतिक नियम —प्राकृतिक तथ्यों का निरीक्षण व अवलोकन करके, उनके कारणों और परिणामों में सम्बन्ध स्थापित करके जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उन्हें प्राकृतिक नियम कहते हैं जैसे भौतिक शास्त्र का गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) यह बतलाता है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होने के कारण प्रत्येक चीज नीचे को गिरती है। यह नियम व्यापक और सदैव सत्य होते हैं। आर्थिक नियम भी अवलोकन और परीक्षण करने के उपरान्त बनाये जाते हैं अतः ये भी प्राकृतिक अथवा वैज्ञानिक नियमों की कोटि में आ जाते हैं परन्तु आर्थिक नियम सदैव सत्य नहीं होते और न इतने निश्चय (Exact) होते जितने कि प्राकृतिक नियम।

आर्थिक नियमों का स्वभाव

हम ऊपर देख चुके है कि आर्थिक नियम आर्थिक प्रवृतियों के कथन मात्र हैं। वे प्रवृति (Tendency) के द्योतक हैं। यह अनिवार्य नही कि उनके द्वारा स्थापित कारण-परिणाम (cause-effect) सम्बन्ध सदैव सही उतरे। बल्कि हम इस प्रकार कह सकते हैं कि **अगर अमुक कारण पैदा होता है तो अमुक परिणाम उत्पन्न होने की सम्भावना होगी। अत आर्थिक नियम काल्पनिक (Hypothetical) हैं** वे तभी सही उतरते है **जबकि अन्य बातें पूर्ववत रहें (Other things remaining same)** इसलिये आर्थिक नियमो के साथ यह वाक्यांश जुडा रहता है। मूल्य बढने से माग घट जाती है' *यह एक आर्थिक नियम है परन्तु यदि उपभोक्ता भविष्य मे वस्तु की ओर* अधिक कमी महसूस करते हैं तो वे मूल्य बढ जाने पर भी अधिक मॉग करेंगे। युद्धकाल मे ऐसा ही होता है।

परन्तु वैज्ञानिक नियमो की भी कुछ मान्यतायें होती हैं जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम तभी लागू होगा जबकि कोई अन्य शक्ति पदार्थ-विशेष को अपनी ओर नही खींच रही हो। इसलिये वैज्ञानिक नियम भी काल्पनिक हैं परन्तु इनमे आर्थिक नियमो की अपेक्षा कल्पना का अंश कम होता है।

आर्थिक नियम सापेक्षिक होते हैं —वे प्राकृतिक नियमों की भांति अनिवार्य और सार्वभौमिक (Universal) नही होते हैं परन्तु आर्थिक नियम स्थान, काल, परिस्थितियो व व्यक्तियो के साथ बदलते रहते हैं। जैसे माग का *नियम युद्धकाल मे सही नही उतरा। भारतवर्ष मे ऊची कीमत होने पर* भी देशी वस्तुओ को क्रय किया गया आदि। **आर्थिक नियम कम पूर्ण होते हैं।** यदि किसी वस्तु की माग दो गुनी बढ जाये तो यह आवश्यक नहीं कि वस्तु का मूल्य भी पहले की अपेक्षा दो गुना हो जाये। हम इस सम्बन्ध मे *निश्चितता पूर्वक कुछ नही कह सकते। परन्तु यदि किसी समय पानी* बनाने के लिये हाइड्रोजन और आक्सीजन की मात्रा (H_2O) को पहले की अपेक्षा चौगुना कर दिया जाय तो सदैव चौगुना पानी तैयार होगा। अतः प्राकृतिक नियम अधिक निश्चित होते हैं।

आर्थिक नियम प्राकृतिक नियमों की भाँति निश्चित और अटल क्यों नहीं हैं :—

यद्यपि आर्थिक नियम भी वैज्ञानिक नियमो की कोटि मे आते हैं परन्तु वे अन्य वैज्ञानिक नियमो की अपेक्षा कम निश्चित और कम व्यापक हैं। इसके निम्न कारण हैं :—

(१) प्राकृतिक विज्ञानो का अध्ययन विषय बुद्धिहीन, अचेतन व जड पदार्थ हैं मनुष्य अपनी इच्छानुसार इनका विभाजन, विश्लेषण, अवलोकन तथा परीक्षण कर सकता है। परन्तु अर्थशास्त्र स्वेच्छापूर्ण, विवेकशील, बुद्धिमान व चेतन व्यक्तियो का अध्ययन करता है जिन पर नियन्त्रण रखना अति कठिन है। मनुष्य विपरीत दिशा मे कार्य करने के लिये पूर्णत स्वतन्त्र है।

(२) वैज्ञानिक नियमो की सत्यता प्रयोगशालाओ मे प्रयोग करके प्रमाणित की जा सकती है परन्तु आर्थिक नियमो की प्रयोगशाला समस्त ससार है जहा प्रयोग करना बडा कठिन है।

(३) मानवीय प्रवृत्तियो का मापदड द्रव्य है जिसका मूल्य स्वय स्थिर नही रहता। परन्तु प्राकृतिक विज्ञानो के मापदड बहुत ही सूक्ष्म और स्थिर हैं जैसे ताप नापने का थर्मामीटर।

अत आर्थिक नियम अन्य प्राकृतिक नियमो की भाति व्यापक और निश्चित नही होते हैं। वे तभी लागू होते हैं जब अन्य बातें समान रहें। **परन्तु मुद्रा के माप दण्ड के कारण समस्त सामाजिक शास्त्रो के नियमों मे आर्थिक नियम अधिक वैज्ञानिक और निश्चित हैं।**

—०—

प्रश्न १०—'अर्थशास्त्र के नियमो की तुलना ज्वार भाटे के नियमों से करनी चाहिये न कि गुरुत्वाकर्षण जैसे निश्चित नियम से' मार्शल के इस कथन की व्याख्या कीजिये।

("The laws of Economics are to be compared with the laws of tides rather than with the simple and exact law of gravitation"—Marshall Discuss this statement)

उत्तर—

इस कथन से मार्शल यह स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक नियम भौतिक विज्ञानो के नियमों की भाति व्यापक, निश्चित और सदैव सही नही हैं। इस अनिश्चितता के कारण जानने के लिये प्रश्न (९) का उत्तर पढ़िये।

ज्वार भाटा का नियम यह बतलाता है कि चन्द्रमा और सूर्य के प्रभाव से दो बार दिन मे ज्वार क्यों आता है ? ज्वार पूर्ण चन्द्र (Full Moon) होने पर ऊचा और उसके क्षीण होने के साथ २ नीचा रहता है। इस नियम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कब ज्वार सबसे ऊचा होगा। परन्तु

समुद्र पर परिस्थितिया बदल जाने पर, यह भविष्य वाणी गलत हो सकती है। अतः यदि समुद्र पर अन्य परिस्थितिया समान रहे तो ज्वार आने की भविष्य-वाणी सदैव सही निकलेगी। ठीक यही प्रकृति आर्थिक नियमो की है। यदि अन्य बात समान रहे तो आर्थिक नियम सत्य उतरते है अन्यथा नही। गुरुत्वाकर्षण का नियम हम पहले ही देख चुके हैं अपेक्षाकृत बहुत अधिक निश्चित, और व्यापक है। अत मार्शल का यह कहना कि अर्थशास्त्र के नियमो की तुलना ज्वार भाटे के नियमो से करनी चाहिये न कि गुरुत्वाकर्षण जैसे निश्चित नियम से सही है।

—०—

अध्याय ५

अर्थशास्त्र के अध्ययन के तरीके

प्रश्न ११—अर्थशास्त्र के अध्ययन मे आगमन और निगमन प्रणालियों के गुण व दोषों का वर्णन करिये।

(Explain the merits and demerits of Deductive and Inductive *methods of study of Economics*)

Or

"जिस प्रकार चलने के लिए दाहिने और बाएं पैर की आवश्यकता होती है उसी प्रकार वैज्ञानिक विचारधारा के लिए निगमन और आगमन प्रणालियों की आवश्यकता होती है"। व्याख्या कीजिये।

(Induction and Deduction are both needed for scientific thought as the right and left *foot are needed for walking*" Explain fully.)

उत्तर—

"अध्ययन की विधि" या "रीतियों" का अर्थ हम अर्थशास्त्र मे उन तरीकों से लेते हैं जिनका उपयोग हम उस शास्त्र के तथ्यों एवं सिद्धांतों की रचना करने मे लाते हैं। अन्य शास्त्रो की भाति अर्थशास्त्र मे भी विद्वानो ने अध्ययन की दो प्रमुख विधियो का वर्णन किया है। जो क्रमश निगमन एव आगमन प्रणालियो के नाम से प्रसिद्ध हैं।

निगमन प्रणाली :—इस प्रणाली को अर्थशास्त्र में अनेक नामों से पुकारा जाता है। जैसे विश्लेषणात्मक प्रणाली (Analytical Method) निराकार प्रणाली (Abstract Method) आदि। इस प्रणाली के द्वारा किसी शास्त्र के नियमों की रचना कुछ सर्वमान्य आधारभूत बातों को लेकर किया जाता है। जो हमेशा और हर दशा में सत्य होते हैं। इन आधारभूत निष्कर्ष के आधार पर हम विशिष्ट सत्यों को ज्ञात करते हैं। इस प्रकार इस प्रणाली में हम **सामान्य सत्यों से विशिष्ट सत्यों की खोज** करते हैं। जिसे अंग्रेजी में From General to Particular का मार्ग कहा जाता है। उदाहरणार्थ यह एक मान्य सत्य है कि मनुष्य मृत्युशील है। अब यदि रमेश के विषय में यह कहें कि रमेश भी मृत्युशील है क्योंकि मनुष्य मृत्युशील है तो इस प्रकार से हम निगमन प्रणाली का प्रयोग करते हैं। निगमन प्रणाली के आधार पर अर्थशास्त्र में अनेक सिद्धांतों की रचना की गई है जैसे न्यूनतम त्याग का नियम (The law of least sacrific), उत्पत्ति का क्रमागत ह्रास नियम (The Law of Diminishing Returns), जनसंख्या का सिद्धांत (Law of population) आदि। इस प्रणाली को **आंगल अर्थशास्त्रियों** (classical Economists) ने अधिक अपनाया है जिनमें रिकार्डो (Ricardo) सीनियर (Senior) मिल (Mill) आदि अर्थशास्त्री अधिक प्रसिद्ध हैं।

आगमन प्रणाली :—निगमन प्रणाली की भांति अर्थशास्त्र में इस प्रणाली को भी अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे **ऐतिहासिक विधि** (Historical Method), **वास्तविक विधि** (Realistic Method), **प्रयोगात्मक विधि** (Experimental Method) आदि। इस प्रणाली के द्वारा किसी शास्त्र में नियमों की रचना वास्तविक घटनाओं तथा तथ्यों के आधार पर की जाती है। इस विधि में सर्वप्रथम विशिष्ट सत्यों की प्राप्ति की जाती है और उसके बाद उनका परिणाम निकाल कर सामान्य सत्य निकाला जाता है। इस प्रकार हम इस विधि के प्रयोग में **विशिष्ट से सामान्य की ओर अग्रसर होते हैं।** जिसे अंग्रेजी में From Particular to General कहते हैं, उदाहरणार्थ यदि हम देखते हैं कि राम की मृत्यु हो गई है और इसी प्रकार और व्यक्तियों की भी मृत्यु हो जाती है, तो हम यह सामान्य सत्य निकाल लेंगे कि मनुष्य मृत्युशील है। अर्थशास्त्र में इस प्रणाली के आधार पर अनेक सिद्धांतों की रचना की गई है जिसमें मांग का नियम (Law of Demand) भी एक है। इस प्रणाली के अवलम्बन पर **ऐतिहासिक विचार-धारा के अर्थशास्त्रियों** (Historical School) ने अधिक बल दिया है।

क्योंकि उनके अनुसार निगमन प्रणाली अधिक दोषपूर्ण थी। इन अर्थशास्त्रियो मे रोसचर (Roscher), नीज (Knies) अधिक प्रसिद्ध है।

निगमन प्रणाली के गुण-दोष :—निगमन प्रणाली के **गुण** निम्न लिखित हैं :—

(१) इस प्रणाली द्वारा बनाये गये नियम प्रभावपूर्ण होते है क्योंकि ये सर्वमान्य आधारभूत तथ्यो के आधार पर बनाये जाते हैं।

(२) यह प्रणाली बहुत ही सरल है। इसी कारण से यह अधिक लोकप्रिय भी है।

(३) इस प्रणाली मे निश्चयता का भी गुण पाया जाता है। क्योंकि इसमे निष्कर्ष तर्क द्वारा निकाले जाते है। जिसके कारण निष्कर्ष एवं नियम निश्चत एव विश्वासनीय होते है।

(४) इस प्रणाली के द्वारा हम अधिक से अधिक सत्य की खोज कर सकते हैं।

(५) इस प्रणाली में पक्षपात को कोई स्थान नही है। क्योंकि हम सर्व मान्य सत्य से विशिष्ट सत्य की खोज करते हैं।

(६) इस निगमन प्रणाली का प्रयोग अर्थशास्त्री आगमन प्रणाली से प्राप्त निष्कर्ष की जाच के लिए भी प्रयोग करते हैं।

(७) इस प्रणाली की सहायता से भविष्यवाणी भी की जा सकती है। यदि सामान्य तथ्यो की दशाओ मे अधिक परिवर्तन न हो।

> **निगमन प्रणाली के गुण :—**
> १. प्रभावपूर्ण नियम।
> २. सरल प्रणाली।
> ३. निश्चयता का गुण।
> ४ सत्य की खोज।
> ५. पक्षपात रहित प्रणाली।
> ६. आगमन प्रणाली की परीक्षा।
> ७. भविष्यवाणी मे सहायक।
> ८. सर्व व्यापकता का गुण।
>
> **निगमन प्रणाली के दोष :—**
> १. अव्यवहारिकता का डर।
> २. अविश्वासनीय।
> ३. अध्ययन मे अधूरी।
> ४. अस्थिर एव अनिश्चत निष्कर्ष।

(८) इस प्रणाली मे सर्वव्यापकता का भी गुण पाया जाता है क्योंकि प्राप्त निष्कर्ष तर्क के आधार पर बनाये जाते है, जो हर स्थान और हर समय सत्य निकलते हैं।

ऐतिहासिक विचारधारा के अर्थशास्त्रियो ने निगमन प्रणाली मे अनेक दोष बताये। निगमन प्रणाली के मुख्य **दोष** निम्नलिखित हैं :—

(१) इस प्रणाली का सबसे बडा दोष यह है कि यदि आधारभूत तथ्य वास्तविकता से जरा भी दूर हो तो परिणाम अवास्तविक एव अव्यवहारिक हो जाते हैं।

(२) आलोचको का कहना है कि आधारभूत तथ्यो को वास्तविक समझना भूल है। इसी कारण उनसे प्राप्त निष्कर्ष विश्वासनीय नही होते है।

(३) निगमन प्रणाली अध्ययन के लिए पर्याप्त नही है। इसकी सहायता एव विस्तृत अध्ययन के लिए आगमन प्रणाली भी आवश्यक है।

(४) सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन से निष्कर्ष मे स्थिरता एव निश्चयता का गुण समाप्त हो जाता है।

आगमन प्रणाली के गुण-दोष :—आगमन प्रणाली के मुख्य **गुण** निम्न हैं :—

> **आगमन प्रणाली के गुण :—**
> १ वास्तविक निष्कर्ष।
> २ मान्यता की जाच।
> ३ निगमन का आधार।
> ४. व्यवहारिकता का गुण।
> ५ परिस्थितियो के अध्ययन को महत्व।
>
> **आगमन प्रणाली के दोष :—**
> १ पक्षपात की सम्भावना।
> २. कठिन एव जटिल कार्य।
> ३ सर्वव्यापकता नही।
> ४ सामान्यताओ की अवहेलना।
> ५ अधिक समय और व्यय।

(१) इस प्रणाली द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वास्तविक होते है क्योकि इस विधि मे हम विशिष्ट तथ्यो की जांच करके निष्कर्ष निकालते हैं।

(२) इस प्रणाली के द्वारा किसी मान्यता की सत्यता प्रयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

(३) यह प्रणाली निगमन का आधार है। क्योकि इस विधि के द्वारा उसकी सत्यता की जाँच की जा सकती है।

(४) इस विधि मे ऐतिहासिक घटनाओ एव अनुभवो की सहायता ली जाती है। जिसमे व्यवहारिकता का गुण आ जाता है।

(५) इस विधि मे परिस्थितियो के अध्ययन को अधिक महत्व दिया जाता है जो कि निष्कर्ष को प्रभावित करती हैं।

आगमन प्रणाली मे अनेक **दोष** भी हैं जिनमे से मुख्य निम्न हैं —

(१) इस विधि का सबसे बडा दोष यह है कि यदि अध्ययन क्षेत्र सीमित हो तो पक्षपात की अधिक सम्भावना होती है जिससे प्राप्त निष्कर्ष सामूहिक रूप से असत्य हो सकते है।

(२) इस विधि द्वारा सामाजिक क्षेत्र मे प्रयोग करना एक कठिन एवं जटिल कार्य हो जाता है।

(३) इस विधि मे प्राप्त निष्कर्ष प्रत्येक क्षेत्र मे सत्य नहीं हो सकते।

(४) कभी-कभी इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष सामान्यताओ की अवहेलना करते हैं जिससे उनकी सत्यता पर शका हो जाती है।

(५) इस विधि मे अध्ययन कार्य विशेषज्ञो द्वारा किया जाता है जिससे व्यय और समय अधिक लगता है।

निगमन एवं आगमन—दोनों की आवश्यकता

यह एक प्रश्न उठता है कि निगमन या आगमन प्रणालियो मे से कौन सी प्रणाली का प्रयोग करना चाहिये ? इसके विषय मे सब अर्थशास्त्रियों का एक मत नही है कुछ निगमन के पक्ष मे तो कुछ आगमन के और कुछ दोनों ही के मिश्रित प्रयोग के पक्ष मे है।

आंग्ल अर्थशास्त्रियों (classical Economists) ने केवल निगमन प्रणाली का समर्थन किया था। लेकिन निगमन प्रणाली मे अनेक दोष होने के कारण **ऐतिहासिक विचारधारा के अर्थशास्त्रियों ने (Historical school)** इसी कडी आलोचना की और अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए केवल आगमन प्रणाली का समर्थन किया। परन्तु हम देखते हैं कि आगमन प्रणाली भी दोष रहित नही है।

इसी कारण आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है कि कोई भी रीति पूर्ण एव दोष रहित नही है और अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए किसी एक विधि पर निर्भर रहना ठीक नही है। उनका मत है कि **सैद्धांतिक अर्थशास्त्र में निगमन और व्यवहारिक अर्थशास्त्र में आगमन रीतियों का अधिकांशतः** प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार **अर्थशास्त्र के अध्ययन में दोनों ही प्रकार की प्रणालियों का प्रयोग होता है।** वास्तव मे देखा जाय तो आगमन और निगमन दोनो प्रणालियो का उपयुक्त सामन्जस्य ही अर्थशास्त्र के अध्ययन की उचित विधि कही जा सकती है।

इस ओर सकेत करते हुए **प्रेटो (Pareto)** ने ठीक ही कहा है कि **अध्ययन के विधि के विषय में बातचीत करना केवल समय समाप्त**

करना है।" क्योंकि वह इस पक्ष में थे कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए दोनों ही विधियों का उचित प्रयोग आवश्यक है।

प्रो० वैगनर (Wagner) ने भी यही मत प्रगट किया है। उसने कहा कि "निगमन और आगमन प्रणालियों में से किसको चुना जाय, इस प्रश्न का उपयुक्त उत्तर यही हो सकता है कि दोनों को ग्रहण किया जावे।"

इसी मत में सहमत होने के कारण ही प्रो० शोमलर (Shomaller) ने कहा कि, "जिस प्रकार चलने के लिए दाहिने और बांये दोनों पैरों की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन में आगमन तथा निगमन दोनों विधियों की आवश्यकता होती है।" डा० मार्शल ने भी दोनों विधियों के प्रयोग के महत्व को स्पष्ट करने के लिए उपरोक्त वाक्य का प्रयोग किया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन में दोनों विधियों का उचित प्रयोग होना चाहिये।

अध्याय ६

अर्थशास्त्र का दूसरे शास्त्रों से सम्बन्ध

प्रश्न १२—क्या अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है? अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक शास्त्रों से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

(Is Economics a social science? Explain clearly the relation of Economics with other social sciences)

उत्तर—

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान (Economics as a social science)

सामाजिक विज्ञान से तात्पर्य उस विज्ञान से है जो व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन समाज के एक सदस्य के रूप में करता है। प्राचीन अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र का इसी रूप में अध्ययन करते थे। आर्थिक कल्याणवादी अर्थशास्त्री जैसे मार्शल, पीगू इत्यादि भी अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान मानते हैं। मार्शल की परिभाषा के अनुसार अर्थशास्त्र उन्हीं व्यक्तियों की क्रियाओं

का अध्ययन करता है जो समाज मे रहते हैं, जो समाज के अन्य व्यक्तियो के कार्यों और विचारो से प्रभावित होते हैं और स्वय अपने कार्यों और विचारों से समाज के अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है। दूसरी विचारधारा के अर्थशास्त्रियो के अनुसार जिनमे **प्रो० रौबिंस प्रमुख हैं अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान (Human science) है और समाज मे रहने और न रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का अध्ययन करता है।** इस दृष्टिकोण से रौबिन्सन क्रूसो जो अकेला ही एक द्वीप पर रहता था, अर्थशास्त्र का अध्ययन विषय है क्योकि उसके और सामाजिक प्राणी के आचरण मे कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक के साधन सीमित हैं और इसलिये प्रत्येक के सामने चुनाव की समस्या आती है। अत यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से रौबिन्स का मत उपयुक्त है परन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से मार्शल का मत ही माननीय है।

अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक शास्त्रो से सम्बन्ध (Relation of Economics with other social sciences):—

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र —जो विद्या मनुष्य और समाज या मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धो का अध्ययन करती है उसे समाजशास्त्र कहते हैं। समाजशास्त्र मनुष्य के सभी व्यवहारो—धार्मिक, राजनैतिक, वैधानिक, आर्थिक आदि का अध्ययन करता है जबकि अर्थशास्त्र केवल आर्थिक व्यवहार का अध्ययन करता है। इसलिये अर्थशास्त्र समाजशास्त्र का एक अङ्ग है। समाजशास्त्र की शाखा होने के कारण, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र घनिष्टत सम्बन्धित हैं। कुछ व्यक्तियो का मत है कि अर्थशास्त्र का समाजशास्त्र से कोई सम्बन्ध नही होता। परन्तु मनुष्य के धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक आदि विचारो का प्रभाव आर्थिक व अनार्थिक सभी क्षेत्रो पर पड़ता है अत दोनो एक दूसरे से काफी सम्बन्धित हैं।

अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र —अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र दोनो ही समाजशास्त्र की शाखायें हैं इसलिए दोनो का आपस मे घनिष्ट सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। **बहुत से राजनीति के कार्य अर्थनीति से नियन्त्रित होते हैं,** यदि देश म बेकारी फैली हुई है तो राजनीतिज्ञो का ध्यान इसी समस्या के निवारण पर केन्द्रित हो जाता है, वे ऐसी नीति अपनाते हैं जिससे कि देश के प्राकृतिक व मानवीय साधनो का बहुत तेजी से विकास हो, और लोगो को काम मिले। अर्थशास्त्री भी इस समस्या को सुलझाने के लिये अपने सुझाव देते है जोकि राजनीतिज्ञो की नीति का आधार होते हैं। यदि देश म धन का वितरण असमान है तो राज्य धनियो पर अधिक कर लगाकर

उस आय को निर्धनों के ऊपर अधिक व्यय करके, इस दोष को दूर करने का प्रयत्न करता है।

किसी देश की धनोत्पत्ति व आर्थिक अवस्था पर उस देश की राजनैतिक अवस्था का प्रभाव पड़ता है। यदि देश में शान्ति सुव्यवस्था और आर्थिक कार्यों में सरकार का सहयोग है, तो देश समृद्धिशाली, धनी व आर्थिक रूप से विकसित हो जायेगा। भारतवर्ष में चीनी उद्योग की वर्तमान स्थिति राज्य के संरक्षण प्रदान करने के कारण ही है। यदि सरकार पूंजीपतियों के इशारे पर चलने वाली है तो धन का समान वितरण न हो पायगा और यदि साम्यवादी सरकार है तो धन का वितरण समान होगा और धनिकों द्वारा निर्धनों का शोषण भी नहीं होगा। साम्यवादी देशों में धन के उपयोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण पर राज्य का नियन्त्रण होता है और जनतान्त्रिक देशों में भी धनोत्पादन की क्रियाओं पर राज्य का नियन्त्रण रहता है। भारत मे 'आर्थिक नियोजन' इसी प्रकार का एक उदाहरण है। वर्तमान युग में तो अर्थशास्त्र और राजनीति का सम्बन्ध और भी बढ़ गया है। कल्याणकारी राज्य (Welfare State) बन जाने के कारण राज्य का आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप बढ़ता ही जा रहा है।

साम्यवाद, समाजवाद, पूंजीवाद आदि अर्थशास्त्र और राजनीति दोनों के ही अध्ययन विषय हैं। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने तो अर्थशास्त्र का नाम ही राजनैतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) रखा था।

अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्र—न्यायशास्त्र के अन्तर्गत हम देश के कानूनों का अध्ययन करते हैं। यह बतलाता है कि अमुक कार्य वैधानिक और अमुक कार्य अवैधानिक है। **एक देश की आर्थिक समृद्धि पर उस देश के कानूनों का बड़ा प्रभाव पड़ता है।** यदि देश में कानून का राज्य है तो शांति और सुव्यवस्था होगी और देश का आर्थिक जीवन उन्नत होगा, किन्तु यदि कानून की अवज्ञा की जाती है तो धन, जन की सुरक्षा नहीं रहेगी, और देश में धनोत्पत्ति का उत्साह कम हो जायेगा। भारतवर्ष में उत्तराधिकार के नियमों (Law of Inheritance) के कारण देश में खेतों के छोटे होने और बिखरे होने की समस्या उपस्थित हो गई है, जिससे देश की कृषि प्रतिदिन और अनार्थिक होती जा रही है। पिता के मरने के उपरान्त, पैतृक सम्पत्ति समस्त पुत्रों में (अब लड़कियों में भी) बराबर-बराबर बांट दी जाती है परन्तु इंगलैंड में ज्येष्ठता का नियम (Law of Primogeniture) प्रचलित है जिसके कारण वहाँ की भूमियां काफी बड़ी-बड़ी हैं क्योंकि पैतृक सम्पत्ति का अधिकार केवल बड़े बेटे को ही है। इसी प्रकार श्रम

संगठन एवं उद्योग संगठन आदि सामयिक वैधानिक व्यवस्था पर ही निर्भर हैं।

आर्थिक दशायें भी देश के विधान को प्रभावित करती हैं। जैसे २ देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होता है, नये-नये कानून बनाये जाते हैं और पुराने में संशोधन और परिवर्तन होते रहते हैं। भारतवर्ष में औद्योगीकरण के फलस्वरूप कई कारखानों और श्रम सम्बन्धी कानून बनाये गये हैं। जब व्यक्तियों की आय बढ़ जाती है तो राज्य नये २ कर लगा देता है। युद्धकाल में वस्तुओं की कमी को दूर करने के लिये सरकार ने बहुत से नियम बनाये जिसमें वस्तुओं का उपभोग, उत्पादन, विनिमय व वितरण नियन्त्रित रखा गया।

अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र :—नीतिशास्त्र हमारे सामने आदर्श उपस्थित करता है। वह बतलाता है कि कौन-सा कार्य अच्छा है, कौन-सा बुरा, मनुष्य को क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही नहीं, आदर्श विज्ञान भी है। अर्थशास्त्र के सामने ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं कि मजदूरों को कितना वेतन मिलना चाहिये, सूद की दर कहां तक उचित है वस्तुओं का उचित मूल्य क्या है आदि। इन सबका उत्तर नैतिक दृष्टिकोण से देना आवश्यक है। यही नहीं, आदर्शों की प्राप्ति के लिये उचित उपाय बताना भी अर्थशास्त्री का काम है। रहन-सहन का स्तर ऊंचा करने के लिये व्यक्ति को अपनी आय बढ़ानी चाहिए। अर्थशास्त्र यह नहीं कहता कि व्यक्ति को दूसरों का धन छीन कर या चोरी डकैती करके, अपनी आय बढ़ानी चाहिए बल्कि न्यायपूर्ण ढंग से परिश्रम करके।

आर्थिक परिस्थितियों का भी मनुष्य के नैतिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है :—यदि देश में धनोत्पत्ति कम होती है और धन वितरण असमान है तो देश के निवासी दुखी होंगे, निर्धन और भूखे होंगे। ऐसे व्यक्तियों का नैतिक स्तर ऊंचा नहीं रह सकता। चोरी, लूटमार करना बुरा नहीं समझेंगे। प्राचीन काल में ब्याज लेना अनैतिक था क्योंकि उस समय की आर्थिक परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं। व्यक्ति दुख और आपत्ति काल में उपभोग के लिये उधार लेते थे। उद्योग धंधों का विकास न होने के कारण उत्पादन के लिए पूंजी नहीं ली जाती थी। दुख और आपत्तिकाल में सहायता करना व्यक्ति का कर्तव्य था अत ब्याज लेना अनुचित था।

अर्थशास्त्र और इतिहास :—अर्थशास्त्र और इतिहास में परस्पर बड़ा सम्बन्ध है। आर्थिक इतिहास में किसी देश की आर्थिक घटनाओं का क्रमपूर्वक

अध्ययन किया जाता है। **यह ऐसी सामिग्री प्रदान करता है जिसके आधार पर बहुत से आर्थिक सिद्धांतो का निर्माण किया जाताहै, अनेकों आर्थिक सिद्धांतों की परीक्षा व पुष्टी की जाती है और उनमे संशोधन किये जाते हैं।** जैसे माल्थस का जनसख्या सिद्धात, मुद्रा मात्रा सिद्धात, मुद्रा प्रसार व सकुचन आदि। इतिहास के अध्ययन से भविष्य के लिये नीतियां बनाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिये इतिहास मे हमे पता चलता है कि आर्थिक सकट बार-बार आते है अत उनके दूर के लिये पहले से ही उपाय काम मे लाये जाते हैं।

अर्थशास्त्र और भूगोल :—भूगोल मे 'मनुष्य' और उसके प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन किया जाता है। किसी देश की प्राकृतिक परिस्थितियां जैसे भूमि, जलवायु पशु, खनिज पदार्थ, जगल आदि वहा के निवासियो की धनोत्पत्ति को प्रभावित करती हैं। जिस देश में प्राकृतिक साधन प्रचुर और उत्तम प्रकार के पाये जाते हैं, वहा का आर्थिक जीवन उतना ही उच्च होता है, भौगोलिक दशायें ही व्यक्तियो के मकान, खाना, वस्त्र, व्यवसाय आदि को निर्धारित करती हैं। यही कारण है कि किसी देश की आर्थिक स्थिति क पूर्णज्ञान के लिये, वहाँ के भूगोल का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। अत भूगोल और अर्थशास्त्र परस्पर सम्बन्धित हैं।

—०—

अध्याय ७

अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ एवं महत्व

प्रश्न १३—अर्थशास्त्र के अध्ययन से सैद्धांतिक और व्यवहारिक लाभों का उल्लेख कीजिए।

(Discuss the theoritical and practical advantages of the study of Economics)

उत्तर—

प्रत्येक शास्त्र का अध्ययन दो उद्देश्यो स किया जाता है—एक ज्ञान प्राप्ति क लिये और उस दूसरा ज्ञान से दिन प्रतिदिन क जीवन म लाभ उठाने क लिए। अर्थशास्त्र भी एक एसा ही विज्ञान है जिसका उद्देश्य मानव कल्याण की

वृद्धि करना है। अतः अर्थशास्त्र के अध्ययन से सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों ही लाभ हैं।

सैद्धांतिक लाभ (Theoretical advantages) —अर्थशास्त्र के अध्ययन से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास और ज्ञान-कोष की वृद्धि होती है। आर्थिक नियमों के निर्माण में मुख्यतः निगमन और आगमन प्रणाली (Deductive and Inductive method) का प्रयोग होता है। निगमन प्रणाली से मनुष्य की तर्क-शक्ति बढ़ती है और आगमन प्रणाली से उसकी निरीक्षण व अवलोकन शक्ति बढ़ती है। अर्थशास्त्र का अध्ययन एक मानसिक व्यायाम का काम करता है। **इसके अध्ययन से मनुष्य में छाँट करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।** समस्त आवश्यकताओं में से उनके सापेक्षिक महत्व की तुलना करके मनुष्य कुछ अति आवश्यक आवश्यकतायें छाँट लेता है और उन्हीं की संतुष्टि करता है व्यक्ति को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि सम्पत्ति के उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय तथा वितरण सम्बन्धी सिद्धांत क्या २ हैं आदि।

> **अध्ययन से लाभ :—**
> १ सैद्धांतिक लाभ।
> २ व्यवहारिक लाभ —
> (१) गृहस्वामियों को
> (२) व्यापारियों को
> (३) मजदूरों को
> (४) राजनीतिज्ञों को
> (५) समाज सुधारकों को

व्यवहारिक लाभ (Practical advantages) —अर्थशास्त्र के अध्ययन के सिद्धांतिक लाभ ही नहीं हैं बल्कि दैनिक जीवन में इससे मनुष्य को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में बहुत सहायता मिलती है **"अर्थशास्त्र के अध्ययन में ज्ञान की नहीं बल्कि फल की आशा हमारा ध्यान आकर्षित करती है"** इसका अध्ययन व्यवहारिक जीवन रूपी जलयान के लिये लाइट हाउस है। विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों को अर्थशास्त्र के अध्ययन से निम्न लाभ होते हैं —

गृहस्वामी को लाभ :— प्रत्येक गृहस्थी अपनी **सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि** प्राप्त करना चाहता है। अर्थशास्त्र का सम-सीमांत उपयोगिता नियम इस उद्देश्य प्राप्ति में उसकी मदद करता है। पारिवारिक बजटों के अध्ययन से वह अपनी आवश्यकताओं को जान लेता है और अपने व्यय को व्यवस्थित कर लेता है। बिना बजट बनाये वह अपने व्यय को अनावश्यक पदार्थों पर व्यय कर डालता है और कितनी ही आवश्यक आवश्यकतायें असंतुष्ट रह जाती हैं। **पारिवारिक बजट उसको बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय करने में सहायक होते हैं।** गृहस्वामी वर्तमान और भविष्य की आवश्यक-

ताओं पर व्यय की उपयोगिताओं की तुलना करके यह निश्चत करता है कि उसे कितनी रकम बचानी चाहिये और कितनी व्यय करनी चाहिये। अर्थशास्त्र का अध्ययन उसको यह बतलाता है कि अमुक वस्तु का मूल्य कितना देना चाहिये। वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं हो सकता। अत गृहस्थी के लिये अर्थशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त लाभदायक है।

व्यापारियों को लाभ —यह कहा जाता है कि 'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसकी कला का नाम व्यवसाय है'। अत कोई भी व्यापारी अर्थशास्त्र के ज्ञान के बगैर एक सफल व्यापारी नहीं बन सकता। बहुत सी व्यापारिक समस्याओं को हल बिना आर्थिक सिद्धांतों के ज्ञान के नहीं हो सकता। प्रतिस्थापन के नियम (Law of substitution) के अध्ययन से वह साधनों का उपयोग इस प्रकार कर लेता है कि **कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन** प्राप्त हो। देशी व विदेशी उपभोक्ताओं की माग, विदेशी उत्पादन-कर्ताओं की प्रतियोगिता, राज्य की नीति आदि के अनुसार ही वह अपना उत्पादन करता है। उसको अपना उद्योग कहाँ स्थापित करना चाहिए साधनों को कहा-कहा से जुटाना चाहिए आदि समस्याओं का हल अर्थशास्त्र के अध्ययन से मिलता है। उत्पत्ति के साधनों को उनकी सेवाओं का पुरस्कार लगान, मजदूरी ब्याज आदि किस आधार पर दिया जाये, श्रम-विभाजन उत्पत्ति का पैमाना, व्यवसायिक संगठन का स्वरूप, द्रव्य साख प्रणाली आदि बातों का उत्तर अर्थशास्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त होता है। वस्तु का मूल्य निर्धारण, बाजारों की छांट, यातायात के साधनों की छांट आदि सब ही अर्थशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित हैं। अत अर्थशास्त्र व्यापारियों और उद्योगपतियों के लिये भी महत्वपूर्ण है।

मजदूरों को लाभ :—मजदूरी क्या है? यह कैसे निर्धारित होती है? क्या उनको मजदूरी उचित है? मजदूरी म वृद्धि कैसे की जा सकती है? आदि बातों का ज्ञान **श्रमिकों** को अर्थशास्त्र के अध्ययन स ही होता है। मजदूर इस बात का महत्व समझ जाते है कि कार्यक्षमता म वृद्धि करके मजदूरी आसानी स बढाई जा सकती है। मजदूरी बढ़ाने के लिय गलत तरीकों का प्रयोग नहीं होगा और मजदूर व मिल मालिकों क संघर्ष कम हो जाते हैं। पारिवारिक बजट बना कर श्रमिक वर्ग अपने पैसे का उपयोग उचित प्रकार से करने म सफल हो जाते हैं और हानिकारक पदार्थों का सेवन त्याग कर, आवश्यक पदार्थों का सेवन प्राप्त कर सकते हैं।

राजनीतिज्ञों को लाभ —अर्थशास्त्र के अध्ययन से राजनीतिज्ञों का

देश की आर्थिक समस्याओं, उनके कारण और हल का ज्ञान हो जाता है। आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओं का घनिष्ट सम्बन्ध है। वर्तमान युग में राज्य का उद्देश्य समाज में शान्ति, सुरक्षा व सुव्यवस्था स्थापित करना ही नहीं बल्कि एक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना करना है। देश में धन के वितरण की असमानता को कैसे दूर किया जाय, देश के लिये एक उचित कर प्रणाली क्या होनी चाहिए, किन २ पदार्थों पर कर लगाया जाय और किन-किन पर नहीं, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाय या नहीं आदि बातों का उत्तर अर्थशास्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त होता है। वर्तमान युग योजना बद्ध आर्थिक विकास का युग है। योजना के निर्माण में, उसके लिये धन जुटाने, व साधनों के मितव्ययतापूर्ण प्रयोग के लिये, अर्थशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। यही कारण है कि प्रत्येक सरकार आर्थिक सलाहकार या आर्थिक सलाहकार समितियां नियुक्त करती है जो उनको उनकी नीति निर्माण में उचित सलाह प्रदान करते हैं।

समाज सुधारकों को लाभ :— अर्थशास्त्र का उद्देश्य समाज कल्याण में वृद्धि करना है। अतः समाजसुधारकों के लिये अर्थशास्त्र का ज्ञान अति-आवश्यक है क्योंकि इसके अध्ययन से ऐसे उपायों का ज्ञान हो जाता है जो सामाजिक दोषों को दूर करके, आर्थिक कल्याण की वृद्धि कर सकते हैं। बेकारी, गरीबी, बढ़ती हुई जनसंख्या, दहेज प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, जाति प्रथा, बाल विवाह, स्त्री और बाल मृत्यु संख्या इत्यादि सामाजिक-आर्थिक (Social-economic) समस्याओं के कारण समझने, और हल करने में अर्थशास्त्र के अध्ययन की अति आवश्यकता है।

—०—

प्रश्न १४—व्यवहारिक जीवन में अर्थशास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ होता है ? भारतवर्ष में अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालिये।

(Discuss the utility of the study of economics in practical life. Why is the study of economics useful in India ?)

उत्तर—

प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न १३ का उत्तर पढ़िये।

भारतवर्ष और अर्थशास्त्र का अध्ययन :—

भारतवर्ष में अर्थशास्त्र के अध्ययन का बहुत ही अधिक महत्व है। हमारे देश में कुछ ऐसी आधारभूत समस्यायें हैं जिनके कारणों और उपायों पर

अर्थशास्त्र प्रकाश डालता है। हमारा देश पिछड़ा हुआ है, प्रति व्यक्ति आय कम है, लोग गरीब हैं, कुछ साधनों का शोषण तो हुआ ही नहीं है और कुछों का बहुत ही कम हुआ है। अभी तक भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे कृषि सम्बन्धी समस्यायें ही हल नही हो पाई हैं। हमारी खेती पिछड़ी हुई है। यहा खेत बिखरे हुये और छोटे-छोटे हैं, सिंचाई, बीज, खाद आदि की कमी है, किसान आधे समय खाली रहते हैं। देश का औद्योगीकरण बहुत ही सीमित है। द्वितीय युद्ध के बाद से ही कुछ उद्योगों का देश में प्रादुर्भाव हुआ है, अब भी हम अनेकों वस्तुओं के लिये विदेशी उद्योगपतियों पर निर्भर हैं करोड़ो की सम्पत्ति देश से बाहर प्रतिवर्ष चली जा रही है। देश के कुटीर उद्योग धंधे जो किसी समय बहुत ही प्रसिद्ध थे आज पतन को पहुँच गये हैं उनको पुनर्जीवित करने की समस्या है। देश मे यातायात के साधन पिछड़े हुये हैं। जन-संख्या और बेकारी प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। खाद्य समस्या हमारे सामने मुह फाड़े खड़ी रहती है। प्रतिवर्ष १०० करोड़ रु० का अन्न विदेशों से आयात करना पड़ रहा है। इन सब समस्याओं के समझने और सुलझाने के लिये अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। भारत में अनेकों सामाजिक कुरीतियां हैं अर्थशास्त्र उनके कारणों और आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करता है और उनको दूर करने का उपाय बताता है। भारत सरकार योजना-बद्ध तरीके (Planned way) से देश का आर्थिक विकास कर रही है। हमारी पचवर्षीय योजनाओं का सफलता के लिये अर्थशास्त्र का ज्ञान अति आवश्यक है।

—o—

अध्याय ८

आर्थिक जीवन का विकास

प्रश्न १५—आदिकाल से अब तक विभिन्न अवस्थाओं के द्वारा आर्थिक जीवन का जो विकास हुआ है उसका वर्णन कीजिये और प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं को संक्षेप मे बताइये।

(Trace the development of economic life through the various stages from the earliest to the modern times, giving briefly the characteristics of each stage of development.)

उत्तर—

जब से मनुष्य ने पृथ्वी पर जन्म लिया है, तब से उसके जीवन मे बड़े २ परिवर्तन हुये है और उसने बहुत उन्नति कर ली है। मनुष्य के जीवन का विकास जिन-जिन आर्थिक अवस्थाओं से होकर गुजरा है, अर्थशास्त्र मे इन विभिन्न अवस्थाओ को हम 'आर्थिक जीवन' के विकास की अवस्थाये कहते हैं ये अवस्थाये निम्न है :—

१ शिकारी अवस्था (*Hunting stage*)
२ चरागाह अवस्था (**Pastoral stage.**)
३ कृषि अवस्था (**Agriculture stage.**)
४ कारीगरी या दस्तकारी अवस्था (**Handicraft stage.**)
५ औद्योगिक अवस्था (**Industrial stage.**)

(१) **शिकारी अवस्था** :—*आर्थिक जीवन के विकास की प्रथम* अवस्था मे मनुष्य प्रकृति का दास था। उसकी आवश्यकताये सीमित थी। जिनको वह स्वय के प्रयासो द्वारा ही सन्तुष्ट कर लेता था। ज्योंही उसको किसी वस्तु की आवश्यकता होती वह स्वय उसको उत्पन्न करता था। मनुष्य स्वावलम्बी और आत्म-निर्भर था। उसकी मुख्य आवश्यकतायें खाना, कपड़ा और मकान की ही थी। खाने के लिये वह जगल मे शिकार कर लेता था और जो फल आदि मिल जाते उन्ही पर जीवन निर्वाह कर लेता था। शरीर को ढकने के लिये पेड़ की छाल या जानवरो की खाल का प्रयोग करता था। रहने के लिये पेड़ो की डाल और गुफाए थी। शिकार के अभाव मे आदमी २ को भी मार कर खा जाते थे।

जीवन स्थायी नही था। शिकार की तलाश मे मनुष्य एक जगह से दूसरी जगह घूमा करता था। इसलिये जनसख्या बहुत सीमित थी। निजी सम्पत्ति का ज्ञान बिल्कुल नही था। केवल शिकार करने के हथियारो को छोड़कर उनके पास निजी सम्पत्ति कहने के लिये कुछ नही थी। जीवन बहुत ही सीधा साधा था। विनिमय का उदय अभी नही हुआ था।

(२) **चरागाह अवस्था** :—धीरे-धीरे मनुष्यो ने पशुओ की उपयोगिता को समझा। इस युग मे पशुओ को मारने के बजाय उनको पाला जाने लगा। मनुष्य ने देखा कि वे पीने के लिये दूध, पहनने के लिये ऊन और खाल और घूमने और लड़ने के लिये सवारी दे सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर मार कर खाये भी जा सकते हैं। मनुष्य जानवरो के लिये घास की तलाश मे घूमा करते थे और जहाँ चरागाह मिल जाते वही वे रहने लगते

और घास समाप्त हो जाने पर फिर चल पड़ते थे। अतः जीवन अंशतः स्थाई था।

भोजन आसानी से मिलने के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई। चरागाहों के लिये आपस में युद्ध होते थे। विजेताओं का विजितों, उनके पशुओं और चरागाहों पर अधिकार हो जाता था। बंदी व्यक्तियों को दास बना लिया जाता था। आखेट युग की अपेक्षा इस अवस्था में निजी सम्पत्ति की भावना अधिक विस्तृत हुई। पशुओं, अस्त्रों व दासों पर निजी अधिकार था। भूमि अभी भी सामूहिक सम्पत्ति समझी जाती थी। मनुष्य स्वावलम्बी थे और विनिमय का उदय अभी नहीं हुआ था।

(३) **कृषि अवस्था :**—इस युग में मनुष्य भूमि पर खेती बाड़ी करने लगे और उनका जीवन अधिक स्थायी भी हो गया क्योंकि कृषि द्वारा स्वयं के लिये अन्न और पशुओं के लिये चारा उत्पन्न किया जाने लगा। खाने की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहना समाप्त हो गया। मनुष्य के पास अवकाश अधिक होने और खेतों की देखभाल की आवश्यकता के कारण वे मकान बनाकर अपने परिवारों के साथ रहने लगे। जनसंख्या में वृद्धि हुई। लोग एक जगह मिलकर गाँव बनाकर रहने लगे। वे अपनी आवश्यकताओं की सब चीजें गाँव में बनाने लगे और जिन वस्तुओं को पैदा नहीं करते थे उनको वे अदल बदल के द्वारा ले लेते थे। मुद्रा का आविष्कार नहीं हुआ था। गाँव आत्म निर्भर थे परन्तु कुछ वस्तुएं जैसे नमक, लोहा, सुई इत्यादि बाहर से मंगाई जाती थीं। दासों को भी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता था और उनका क्रय-विक्रय जानवरों की भांति होता था।

(४) **कारीगरी या दस्तकारी अवस्था :**—ज्ञान और अवकाश वृद्धि के कारण मनुष्य की आवश्यकतायें भी बढ़ती गईं। नई आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के प्रयास किये गये। सर्वप्रथम दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की छोटी २ वस्तुयें बनाना शुरू किया गया। छुरी, चाकू, नावें, हल, गाड़ी कपड़ा, बरतन आदि बनाने के व्यवसाय खुले। प्रत्येक व्यक्ति उसी व्यवसाय को अपनाने लगा जिस कार्य में वह अधिक कुशल था। इस प्रकार विशिष्टीकरण (Specialisation) का प्रादुर्भाव हुआ। विशिष्टीकरण के साथ साथ विनिमय का भी श्रीगणेश हुआ। प्रारम्भ में एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदल ली जाती थी परन्तु बाद में वस्तु परिवर्तन प्रथा की कठिनाइयों के कारण मुद्रा का आविष्कार हुआ और विनिमय क्रय विक्रय के रूप में होने लगा।

दस्तकार समस्त कच्चा माल पूंजी व औजार इत्यादि तैयार वस्तु के बेचने का स्वयं ही प्रबन्ध करता था। इस अवस्था में उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था।

(५) औद्योगिक अवस्था :—अभी तक उत्पादन स्वयं निर्मित छोटे २ औजारों से होता था, धीरे-धीरे मशीनों का आविष्कार हुआ जिनको पानी, भाप और बिजली से चलाया जाने लगा। इगलैंड की औद्योगिक क्रांति ने समाज के आर्थिक ढाँचे का रूप ही बदल डाला। बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा दस्तकार के घर में उत्पादन नहीं हो सकता था। अतः उत्पादन बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में शुरू किया गया। पूंजी का महत्व बढ़ गया। मशीनों द्वारा वस्तुयें कम लागत और कम समय में बनने लगीं। दस्तकार लोग इनकी प्रतियोगिता में न ठहर सके। अपने उद्योगों को बंद करके वे कारखानों में श्रमिकों के रूप में कार्य करने लगे।

उत्पादन का पैमाना वृहत हो गया। व्यापार की उन्नति हुई और यातायात व सन्देशवाहन के साधन, बैंक व बीमा कम्पनियों की सुविधाओं का विकास हुआ। समाज दो वर्गों में बट गया—पूंजीपति और श्रमिक। श्रमिकों का शोषण होने लगा और इस प्रकार वर्ग संघर्ष बढ़ गया जो कि आधुनिक उत्पादन प्रणाली का मुख्य अंग है। मशीनों के प्रयोग ने बेकारी को बढ़ा दिया। चालक शक्ति और विशाल यन्त्रों के प्रयोग ने आज मनुष्य को प्रकृति के दास से नियामक के पद को पहुँचा दिया है। मनुष्य ने दूरी को जीत लिया है। विश्व के दो कोनों में बैठे हुए व्यक्ति आपस में ऐसे बात कर लेते हैं जैसे कि वे दो कमरों में बैठे हों।

—०—

अध्याय ६

भारतीय आर्थिक जीवन

प्रश्न १६—भारत के आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाली सामाजिक संस्थाओं का वर्णन कीजियेगा।

(Explain those social institutions that affected the economic development of India.)

उत्तर—

भारत में सदा से ही धर्म का स्थान प्रमुख रहा है और इसी कारण से धर्म ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं तथा आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित किया है। भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा तथा उत्तराधिकार के नियम प्रमुख हैं। इन संस्थाओं ने भारतीय आर्थिक विकास को अत्यधिक प्रभावित किया है। जिसका अध्ययन हम निम्न प्रकार से करेंगे।

जाति प्रथा :—भारत में जाति प्रथा के अनुसार आर्यों ने चार जातियाँ मानी—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। यह विभाजन पहले कार्यों के अनुसार किया गया। परन्तु बाद में यह जन्म के अनुसार माना जाने लगा। जाति प्रथा ने भारतीय आर्थिक विकास को अत्यधिक प्रभावित किया। इस प्रथा से श्रम विभाजन द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ समाज को प्राप्त हुए तथा प्रत्येक क्षेत्र में विशिष्टीकरण का विकास हुआ जिससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि हुई तथा उनके बच्चों ने अपने पिता के व्यवसाय को आसानी से सीखा। जाति प्रथा के इन लाभों के साथ साथ समाज को बहुत अधिक हानि भी हुई है। इसी प्रथा के कारण ही व्यक्तियों को अपनी इच्छा एवं योग्यता के अनुसार पेशा चुनने में बाधा हुई है। तथा शूद्रों का समाज के अन्य वर्गों द्वारा अत्यधिक शोषण हुआ है। इसी जाति-प्रथा के कारण कभी-कभी किसी वर्ग विशेष में व्यवसाय का एकाधिकार स्थापित हो जाता है जिससे उनकी कार्य-कुशलता कम होती चली जाती है तथा पैतृक धन्धों की प्रथा से व्यक्तियों में नए व्यवसाय के प्रति साहस व रुचि भी समाप्त हो जाती है। इन दोषों के कारण ही समाज सुधारकों का ध्यान इस ओर गया जिन्होंने समाज में जाति प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इन समाज सुधारकों में महात्मा गान्धी का नाम प्रमुख है।

संयुक्त परिवार प्रथा—जब एक पिता के सभी पुत्र तथा उनके परिवार सम्मिलित रूप में रहते, खाते और कमाते हैं तो इस प्रथा को संयुक्त परिवार प्रथा कहते हैं। यह प्रथा भारत की एक विशेषता है क्योंकि ऐसे परिवार पाश्चात्य देशों में नहीं पाये जाते हैं। इस प्रथा ने भी भारत के आर्थिक विकास को अधिक प्रभावित किया है। इस प्रथा के अनुसार परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार की देख-भाल करता है तथा धन के उचित व्यय की व्यवस्था करता है। साथ ही वह धन के बचत की ओर भी ध्यान रखता है। इस प्रथा से यह भी लाभ है कि भूमि के छोटे छोटे टुकड़े नहीं हो पाते हैं। इन लाभों के साथ-साथ इस प्रथा से अनेक दोष भी हैं। प्रथम संयुक्त परिवार प्रथा में जब कुछ व्यक्ति कमाने लगते हैं तो अन्य व्यक्ति लापरवाह तथा आलसी हो जाते हैं तथा जब परिवार का क्षेत्र बड़ा हो जाता है तो धन का व्यय अधिक बढ़ जाता है जिससे धन संचय करना कठिन हो जाता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि देश में धनोत्पत्ति में बाधायें पैदा हो जाती हैं। दूसरे इस प्रथा के कारण ही व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान को कार्य करने के लिए नहीं जाता है जिससे श्रमिकों की गतिशीलता कम हो जाती है। परन्तु अब शिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता के विस्तार के कारण परिवार की

दशा व्यक्तिवादी ढग की ओर होती जा रही है तथा श्रमिको म स्थान की गतिशीलता भी बढ रही है।

उत्तराधिकार के नियम —भारत म हिन्दुओ के उत्तराधिकार के दो प्रमुख नियम हैं —(१) मिताक्षर नियम तथा (२) दाय भाग नियम। मिताक्षरा नियम भारत म बगाल को छोडकर सभी भाग म प्रचलित हैं। इस नियम के अनुसार पूर्वजों की सम्पत्ति म पिता और पुत्र का समान अधिकार होता है। पिता बिना पुत्र की राय के सम्पत्ति को नही बेच सकता है तथा यदि पुत्र चाहे तो सम्पत्ति का बटवारा पिता के जीवन काल म करा सकता है परन्तु पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर यह नियम लागू नहीं होता हे। दूसरे दायभाग नियम केवल बगाल म ही लागू होता है। इस नियम के अनुसार पिता बिना पुत्र की राय के सम्पत्ति का बेच सकता है तथा सम्पत्ति का बटवारा केवल पिता की मृत्यु के बाद ही होता है। इन नियमो का महत्व इसलिए अधिक है कि इन नियमो ने समाज म धन के वितरण को समान लाने का प्रयत्न किया है लेकिन इस लाभ के साथ साथ इन नियमो से हानिया भी हुई है। प्रथम भूमि के छोटे छोटे टुकडे होते चले जा रहे हैं जिससे कृषि काय म बाधा पहुँची है तथा दूसरे धन सचय म रुकावट पैदा होती है। शीघ्र ही म भारत म हिन्दू उत्तराधिकार नियम के पास हो जाने से भविष्य म लडकियो को भी मुसलमानो के समान पिता की सम्पत्ति म से हिस्सा मिला करेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जाति-प्रथा सयुक्तपरिवार प्रथा तथा उत्तराधिकार के नियमो आदि सामाजिक सस्थाओ ने भारतीय आर्थिक विकास की दशा को अत्यधिक प्रभावित किया है।

अध्याय १०

महत्वपूर्ण परिभाषायें

प्रश्न १७—उपयोगिता (Utility) अर्घ (Value) कीमत (Price) और वस्तु (Goods) पर सक्षिप्त टिप्पणिया लिखिये।

(Write short notes on Utility, Value, Price and Goods)

उत्तर—

उपयोगिता (Utility)—साधारण भाषा में उपयोगिता का अर्थ लाभदायकता से लगाया जाता है। हम उसी वस्तु को उपयोगी मानते हैं जो हमारे लिये लाभप्रद हो। उदाहरण दूध को उपयोगी और शराब को अनुपयोगी या हानिप्रद कहा जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र में उपयोगिता का लाभप्रदता (Usefulness) से कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक व्यक्ति किसी वस्तु को क्यों प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि उसकी कुछ आवश्यकता है और वह उस वस्तु का प्रयोग करके उसको सन्तुष्ट कर सकता है। किसी वस्तु के इसी गुण को जिसके कारण वह एक मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है, उपयोगिता कहते हैं। अत **किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकता को पूर्ण करने की शक्ति को उपयोगिता कहते हैं।** इस अर्थ म दूध और शराब दोनों मे उपयोगिता है क्योंकि दोनो वस्तुयें अलग अलग व्यक्तियों की इच्छाओं को पूर्ण करती है यह बात सत्य है कि दूध पीने वाले व्यक्ति के लिए जो शराब का सेवन नहीं करता, शराब की कोई उपयोगिता नही होगी, इसी प्रकार एक शराबी के लिये जो दूध का आदी नही है, दूध की कोई उपयोगिता नही होगी। **उपयोगिता का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही है।**

उपरोक्त से ऐसा प्रतीत होता है कि उपयोगिता केवल वस्तु का ही गुण है। परन्तु एसी धारणा गलत है। **उपयोगिता किसी वस्तु का भीतरी गुण नही है वह मनुष्य की आवश्यकता द्वारा उत्पन्न होती है।** उपयोगिता वस्तु के प्रति आवश्यकता वाले मनुष्य के मन में होती है। प्यासे व्यक्ति के लिए पानी की उपयोगिता है पर प्यास मिट जाने के बाद पानी की उसके लिये कोई उपयोगिता नही रह जाती। उपयोगिता आवश्यकता की प्रबलता (Intensity of Want) पर निर्भर करती है। जितनी अधिक तीव्र किसी वस्तु के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता होगी उतनी ही अधिक उस वस्तु की उपयोगिता होती है। **अत उपयोगिता व्यक्तिगत होता है।** इसी प्रकार एक वस्तु की उपयोगिता एक समय पर कुछ हो सकती है और दूसरे समय पर कुछ और।

उपयोगिता का माप—इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों म मतभेद है। डा० एलन और प्रो० हिक्स के अनुसार यह अमापनीय है क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तत्व है। परन्तु डा० मार्शल और उनके अनुयाईयों के अनुसार यह मापनीय है। **उपयोगिता का मापदण्ड (Measuring rod) द्रव्य है।**

एक ही वस्तु के लिए एक ही समय दो व्यक्ति मूल्य देते हैं तो अधिक द्रव्य देने वाले व्यक्ति को उस वस्तु से अधिक उपयोगिता मिलती है और यह उन रुपयों के बराबर है जो वह अदा करता है।

मूल्य, या अर्घ (Value) —अर्घ या मूल्य शब्द का दो अर्थों मे प्रयोग किया जाता है—(i) उपयोगिता मूल्य (Value–in–use) और (ii) विनिमय मूल्य (Value–in–exchange)। प्रथम से हमारा तात्पर्य उपयोगिता से है, जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरे से हमारा अर्थ वस्तु या सेवा के उस गुण से है जिसके कारण यह अन्य वस्तुयें या सेवायें अपने बदले मे प्राप्त करती हैं। विनिमय मूल्य को ही वर्तमान समय मे अर्घ या मूल्य कहते हैं।

अत एक वस्तु की दूसरी वस्तु के बदले मे लेने या खरीदने की शक्ति को ही अर्घ कहते हैं। (Value in the power of a commodity to command other commodities in exchange for itself) यदि एक सेर दूध के बदले एक सेर गेहू प्राप्त किया जाता है तो एक सेर दूध का मूल्य एक सेर गेंहू हुआ अथवा एक सेर गेंहू का मूल्य एक सेर दूध हुआ। मूल्य भी उपयोगिता की भाति एक सापेक्षिक भाव है, यह किसी विशेष परिस्थितियो मे दो वस्तुओ या सेवाओ के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।

किसी वस्तु या सेवा के बदले म अन्य वस्तु या सेवा तभी प्राप्त की जा सकती है जब वस्तुओं मे निम्न तीन गुण हों —(१) उपयोगिता, (२) दुर्लभता और (३) स्वामित्व परिवर्तनशीलता। सूरज की रोशनी, चाँद की चाँदनी, ठडी हवा आदि हमारे लिये बडी उपयोगी हैं पर इसका अर्घ नहीं होता क्योकि यह अपरिमित मात्रा मे उपलब्ध होती हैं और इनको खरीदा बेचा नही जा सकता है। इसी प्रकार नदी के किनारे बालू या पानी का अर्घ नही होता—परन्तु शहरो म इसी बालू और पानी मे अर्घ उत्पन्न हो जाता है।

कीमत (Price) —जब किसी वस्तु या सेवा के विनिमय मूल्य को अन्य वस्तुओं या सेवाओं में प्रगट न करके मुद्रा मे प्रगट किया जाता है तो उसे कीमत कहते हैं। एक सेर दूध का अर्घ एक सेर गेहू न कह कर रुपयो में व्यक्त किया जाय तो वह कीमत कहलायेगी। जैसे एक कलम की कीमत तीन रुपया। यद्यपि साधारणतया हम कीमत और मूल्य मे कोई अन्तर नही करते परन्तु अर्थशास्त्र मे इन दोनो शब्दों का अलग-अलग अर्थ है।

वस्तु या माल (Goods) :—समस्त भौतिक वस्तुयें तथा अभौतिक जो

मानवीय आवश्यकताओ को सतुष्ट करती है, माल, वस्तु या पदार्थ कहलाती हैं। डा० मार्शल के अनुसार 'पदार्थ वे वस्तुयें हैं जो इच्छित हैं तथा जो मानव आवश्यकता की पूर्ति करते हैं' (Goods are all desirable things, all things that satisfy human events —Marshall) साधारण बोल-चाल मे तो माल शब्द का प्रयोग केवल भौतिक वस्तुओ के लिये ही करते है पर अर्थशास्त्र मे इसका प्रयोग अधिक व्यापक है। अभौतिक वस्तुयें भी जिन्हे हम देख अथवा स्पर्श नही कर सकते, अगर वे मानवीय आवश्य कताओ को सतुष्ट करती हैं, तो माल की परिभाषा के अन्तर्गत आ जाती हैं जैसे प्रेम, मित्रता, व्यवहार की ख्याति इत्यादि क्योकि इनमे भी कोई न कोई आवश्यकता सतुष्ट होती है।

वैसे तो माल के कितने ही प्रकार है पर आर्थिक दृष्टि से आर्थिक माल (Economic Goods) और अनार्थिक या मुफ्त माल (Uneconomic or free Goods) अधिक महत्वपूर्ण हैं। जिन वस्तुओ के प्राप्त करने मे न तो व्यक्ति को कोई परिश्रम ही करना पडता है और न उसकी कोई कीमत ही देनी पडती है, मुफ्त माल कहते हैं, ऐसी वस्तुयें असीमित मात्रा मे उपलब्ध होती हैं, जैसे सूर्य की रोशनी, वायु इत्यादि। इसके विपरीत स्वल्प वस्तुओं को जिनके प्राप्त करने म परिश्रम करना या कीमत देनी पडती है, आर्थिक माल कहते हैं जैसे मकान, मेज, कुर्सी इत्यादि। यहा यह ध्यान रखने योग्य है कि स्वल्पता (Scarcity) से हमारा अर्थ किसी वस्तु की माग की अपेक्षा कम होना है। अगर कोई वस्तु अपार मात्रा मे मिलती है पर उसकी माग काफी है तो उसको स्वल्प ही कहा जायगा जैसे गेहू, कोयला आदि। मानवीय परिश्रम लगने से मुफ्त पदार्थ, आर्थिक पदार्थ बन जाते हैं। उदा हरणार्थ नदियो के किनारे रेत मुफ्त पदार्थ है पर अगर इसको शहरो मे लाकर बेचा जाय तो यही रेत आर्थिक पदार्थ हो जायगा।

——

प्रश्न १८—धन की परिभाषा दीजिये और धन और मानव-कल्याण मे सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये। क्या निम्नलिखित धन हैं :—

(अ) बी० ए० की डिग्री, (ब) कापी-राईट, (स) गवैये का स्वर (द) रेत।

(Define Wealth and give out the relation between wealth and human Welfare Are following Wealth :—

(a) B. A. Degree, (b) Copy-right, (c) Voice of a Musician, (d) Sand.)

उत्तर—

साधारण भाषा मे 'धन' शब्द का अर्थ रुपया पैसा या द्रव्य तक ही सीमित होता है परन्तु अर्थशास्त्र मे इसका अर्थ भिन्न है। आजकल रुपया-पैसा ही धन नही है वरन मकान, भूमि, कम्पनी के हिस्से आदि सब ही धन के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। "आर्थिक माल का दूसरा नाम ही धन है" (All economic goods are wealth) अर्थात वे समस्त वस्तुयें जिनमे अर्थ या मूल्य होता है और जिनका विनिमय अथवा क्रय-विक्रय हो सकता है, धन या सम्पत्ति कहलाती है। वायु, प्रकाश आदि यद्यपि मानव जाति के लिए बहुत ही उपयोगी है परन्तु क्योंकि उनकी पूर्ति अपरिमित है, उनका कोई मूल्य नही है, उनको खरीदा-बेचा नही जा सकता, यह धन के अन्तर्गत नही आते हैं।

धन के लक्षण (Characteristics of Wealth) —

धन कहलाने के लिए किसी वस्तु मे निम्न तीन गुणों का होना आवश्यक है :—

(१) **उपयोगिता** —अगर किसी पदार्थ मे उपयोगिता अर्थात मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की क्षमता नहीं होगी तो कोई भी व्यक्ति उसको खरीदने को तैयार नही होगा। उसके बदले मे अन्य कोई वस्तु या सेवा प्राप्त नही हो सकती और उसका कुछ भी अर्थ नही होगा इसलिये ऐसी वस्तु धन के अन्तर्गत सम्मिलित नही की जा सकती।

> **धन के लक्षण :—**
> १ उपयोगिता।
> २. दुर्लभता।
> ३ विनिमय साध्यता।
>
> **धन का वर्गीकरण :—**
> १ व्यक्तिगत धन।
> २ सामाजिक धन।
> ३. राष्ट्रीय धन।
> ४ अन्तर्राष्ट्रीय धन।

(२) **दुर्लभता** —धन कहलाने वाली वस्तुयें दुर्लभ होती हैं। अगर वे अपरिमित मात्रा मे उपलब्ध है तो उनको बगैर मूल्य ही प्राप्त किया जा सकेगा, जैसे हवा, धूप इत्यादि। नदियो के पास पानी की पूर्ति माग की अपेक्षा अधिक है, इसलिये वहा धन का क्रय-विक्रय नही होता अर्थात, नदियो के किनारे पानी धन नही है परन्तु बडे-बडे शहरो के सिनेमाघरो मे पानी की कमी होती है और पानी के लिये पैसा दिया जाता है। शहरो मे पानी का मूल्य है इसलिये शहरो मे पानी धन है।

सूय की रोशनी, हवा इत्यादि यद्यपि काफी उपयोगी हैं पर धन नहीं क्योंकि वे दुर्लभ नही है और इन्हे मनचाही मात्रा मे प्राप्त कर सकते हैं।

विनिमय साध्यता —एक वस्तु को धन की श्रेणी म तभी रख सकते हैं जब उसका स्वामित्व बदला जा सकता है, अर्थात विनिमय द्वारा उसके अधिकार को बदला जा सके। जिस वस्तु का स्वामित्व नहीं बदल सकता उसके लिये कोई भी व्यक्ति पैसा देने को तैयार नहीं होगा चाहे उसमे कितनी ही उपयोगिता क्यो न हो और चाहे कितनी ही दुर्लभता क्या न हो। ऐसी वस्तुओ मे विनिमय साध्यता का गुण नही होता। हवा और रोशनी अत्यन्त उपयोगी हैं किन्तु उनका स्वामित्व नहीं बदल सकते। इसी प्रकार व्यक्ति के निजी गुण जो दुर्लभ हैं, हस्तातरित नहीं किये जा सकते। अत ये धन नहीं हैं। विनिमय-साध्यता अथवा स्वामित्व-शीलता धन की प्रारम्भिक आवश्यकताओ म से हैं। इसलिये कहा जाता है कि **"समस्त विनिमय साध्य वस्तुये धन हैं"** **(All exchangeable goods are wealth)**

धन का वर्गीकरण —प्रो० मार्शल ने सम्पत्ति को चार भागो मे बाटा है —

(अ) व्यक्तिगत धन (Personal Wealth)—इसके अन्तर्गत वे सब भौतिक और वाह्य अभौतिक वस्तुये सम्मिलित हैं जिन पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार हो। कुछ अर्थशास्त्री व्यक्तिगत गुणो को जैसे डाक्टर की कुशलता गवैये का कठ, आदि व्यक्तिगत धन मानते हैं यद्यपि इन गुणो म विनिमय साध्यता अर्थात खरीदे या बेचे जाने की योग्यता विद्यमान नही होती है।

(ब) सामाजिक धन (Social Wealth) —जिस धन पर किसी सस्था या समाज का सामूहिक अधिकार हो अर्थात जो उनके समस्त सदस्यो की सम्मिलित सम्पत्ति हो उसे सामाजिक धन कहते हैं। तालाब, पुल, सड़कें सार्वजनिक पुस्तकालय आदि इसके उदाहरण हैं।

(स) राष्ट्रीय धन (National Wealth) —राष्ट्रीय धन का एक विस्तृत अर्थ म प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्र के समस्त निवासियो की व्यक्तिगत सम्पत्ति, राष्ट्र का सामूहिक धन, देश की जलवायु, स्थिति, खनिज पदार्थ और देशवासियो के नैतिक गुणो का समावेश किया जाता है।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय धन (Cosmopolitan Wealth) —इस धन मे हम ससार के समस्त राष्ट्रो के धन को शामिल करते हैं और उस धन को भी

शामिल करते हैं जो सब राष्ट्रों को सामान्य रूप से प्राप्त हैं जैसे महासागर, वैज्ञानिक ज्ञान व आविष्कार आदि ।

धन एवं मानव कल्याण

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने धन को साध्य (end) मानकर अध्ययन किया परन्तु आजकल धन मानव-कल्याण वृद्धि का एक साधन (Means) मानकर अध्ययन किया जाता है। धन से मानव जाति का कुशल-क्षेत्र बढाया जा सकता है। जो राष्ट्र अधिक धनोपार्जन कर रहे है उनको ही अधिक प्रगतिशील, सभ्य और सुखी कहा जाता है। अत समाज मे धन की जितनी अधिक वृद्धि होगी, उतना ही मानव-कल्याण बढेगा। परन्तु यह सदैव सत्य नहीं। **अधिक धन उत्पादन की विधि समाज के लिये कल्याणकारी होनी चाहिये।** अगर व्यक्तियों से जबरदस्ती अधिक घन्टे ऐसे कारखानो मे काम लिया जाता है जिनमे सुखपूर्वक कार्य करने की सुविधायें नही हैं तो धन वृद्धि होने पर भी मानव-कल्याण मे वृद्धि नही हो सकती। समाज मे धन का वितरण भी समान होना चाहिये। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि व्यक्ति धन का उपयोग किस भाँति करते है। व्यक्तियों मे व्यय करने की चातुरी न होगी तो अधिक धन होने पर भी, मानव-कल्याण में वृद्धि नही होगी। अगर धन का उपयोग मादक और हानिप्रद पदार्थों के सेवन पर किया जायेगा तो उससे मानव-कल्याण का ह्रास होगा।

क्या निम्न धन हैं —

बी० ए० की डिग्री।—यह उपयोगी भी है और दुर्लभ भी परन्तु यह हस्तान्तरित नही हो सकती। अत यह धन नही है।

कापी राइट—यह उपयोगी और दुर्लभ होने के साथ २ हस्तान्तरित किया जा सकता है। एक लेखक अपने अधिकारो को दूसरे को बेच सकता है अत धन है।

गवैये का कंठ-स्वर—व्यक्तिगत गुणो में हस्तान्तरितता का गुण नही पाया जाता। गवैया अपने स्वर के कारण पैसा प्राप्त करता है उसके स्वर की उपयोगिता भी है पर वह इसको बेच नही सकता। इसलिये यह धन नही। कुछ अर्थशास्त्री इसको व्यक्तिगत धन मे शामिल करते हैं।

रेत—रेगिस्तान या नदियो के किनारे जहा रेत, माग की अपेक्षा प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है, यह धन नही है। परन्तु शहरो मे जहा यह अति दुर्लभ है, इसके लिये पैसा दिया जाता है, यह धन कहा जायेगा।

—०—

प्रश्न १६—"पानी स्वर्ण से अधिक उपयोगी है किन्तु स्वर्ण का बाजार मूल्य पानी से अधिक है।" इस कथन की व्याख्या करो।

("Water is more useful than Gold yet Gold has greater market value than water" Explain this statement clearly)

उत्तर—

पानी स्वर्ण से अधिक उपयोगी है—अर्थशास्त्र मे उपयोगी होने का अर्थ किसी वस्तु एव पदार्थ मे मानवीय आवश्यकताओ की सन्तुष्टि करने की क्षमता से है। अर्थशास्त्र म उपयोगिता का अर्थ लाभदायकता मे नही लगाया जाता है। यह उपयोगिता लाभदायक या हानिकारक दोनो हो सकती है लेकिन पदार्थ म किसी व्यक्ति की आवश्यकता का सन्तुष्ट करने की शक्ति होनी चाहिये। व्यवहारिक जीवन के अनुभव मे यह स्पष्ट है कि पानी जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। मनुष्य कपडे या भोजन के बिना कुछ समय तक जीवित रह सकता है लेकिन यदि उसको पानी न मिले तो उसका जीवित रहना असम्भव है। पानी की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता होती है। इस प्रकार पानी की उपयोगिता सबसे अधिक है।

दूसरी ओर, स्वर्ण म इतनी उपयोगिता नही है जितनी कि पानी म है क्योंकि स्वर्ण के बिना मनुष्य अपना जीवन व्यतीत कर सकते है। समाज म स्वर्ण केवल कुछ ही व्यक्तियो के पास होता है। इस प्रकार स्वर्ण केवल उनके स्वामियो के लिए ही उपयोगी है, परन्तु पानी समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवहारिक जीवन म पानी स्वर्ण से अधिक उपयोगी है।

स्वर्ण का बाजार मूल्य पानी से अधिक है—बाजार मूल्य केवल धन या आर्थिक वस्तुओ का ही होता है। क्योंकि इनम उपयोगिता दुर्लभता तथा स्वामित्वशीलता का गुण पाया जाता है। जिन पदार्थो म ये गुण नहीं पाये जाते उनका कोई बाजार मूल्य नही होता है।

इसी कारण पानी का कोई बाजार मूल्य नहीं होता है, क्योंकि पानी म केवल उपयोगिता एव स्वामित्वशीलता का ही गुण पाया जाता है। इसम दुर्लभता का गुण नही है। इसकी पूर्ति असीमित है, इसी कारण इसे प्रकृति की निःशुल्क भेट कही जाती है। इसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को विशेष परिश्रम एव त्याग नही करना पडता है, इसी कारण पानी जीवन का एक आवश्यक एव उपयोगी पदार्थ होते हुए भी इसका कोई बाजार मूल्य नहीं है, लेकिन जहा पानी की दुर्लभता है जैसे रेगिस्तानो म वहा पानी भी धन या

आर्थिक वस्तुओं में आ जाता है तथा उस समय इसको बिना त्याग या परिश्रम के प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उस समय इसका बाजार मूल्य भी हो जाता है, लेकिन सामान्य दशाओं में पानी हमको आसानी से असीमित मात्रा में प्राप्त हो जाता है। इसी कारण यह मानना उचित ही होगा कि पानी का कोई बाजार मूल्य नहीं होता है।

लेकिन दूसरी ओर स्वर्ण एक धन या आर्थिक वस्तु है। इसमें धन के तीनों गुण पाये जाते हैं। इसकी पूर्ति असीमित है। इसी कारण से इसका बाजार मूल्य भी अधिक है क्योंकि जिस पदार्थ की माँग अधिक हो और उसकी पूर्ति सीमित हो तो उसका बाजार मूल्य अधिक होता है। इस प्रकार सोना धन होने के कारण अधिक बाजार मूल्य रखता है और पानी धन न होने के कारण इसका कोई बाजार मूल्य ही नहीं है। इसी कारण से सोने का प्रयोग प्राचीन समय से मुद्रा के रूप में होता था तथा इसकी सीमितता के कारण ही इसका मुद्रा के रूप में चलन समाप्त हो गया है। अब भी स्वर्ण के रूप में द्रव्य संचय तथा विनियोग को व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पानी स्वर्ण से अधिक उपयोगी है, लेकिन पानी के धन न होने के कारण इसका कोई बाजार मूल्य नहीं है परन्तु स्वर्ण एक आर्थिक वस्तु होने के कारण बाजार मूल्य रखता है तथा इसमें दुर्लभता का प्रमुख गुण होने के कारण ही इसका बाजार मूल्य भी अधिक है।

अध्याय ११

उपभोग का अर्थ

प्रश्न २०—उपभोग की परिभाषा लिखिये। अर्थशास्त्र में उपभोग के ***महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।***

(Define consumption, and give its *importance in* economics.)

उत्तर—

साधारण बोलचाल में उपभोग का अर्थ किसी वस्तु के खाने या सेवन करने से होता है परन्तु अर्थशास्त्र में इस शब्द का एक विशेष और विस्तृत

अर्थ है। मनुष्यों की अनेकों आवश्यकतायें हैं जिनकी पूर्ति वस्तुओं या सेवाओं से की जाती है। भूख लगने पर हम भोजन करते है, प्यास लगने पर पानी पीते हैं, ज्ञान की आवश्यकता पूर्ति के लिये हम स्कूल में भर्ती होते हैं, मनो रञ्जन करने के लिये हम सिनेमा इत्यादि देखने जाते हैं। अत **आवश्यक ताओं की पूर्ति के लिए पदार्थों के ऐसे प्रयोग को उपभोग कहते हैं जिससे उपभोक्ता को प्रत्यक्ष और तात्कालिक तृप्ति और सन्तोष प्राप्त होता है।**

इस प्रकार मानवीय आवश्यकताओं की सतुष्टि हो जाने से सभी वस्तुओं अथवा सेवाओं की उपयोगिता धीमे २ या तेजी से लुप्त हो जाती है। इसीलिये कभी २ उपभोग को **उपयोगिता का नष्ट करना कहते हैं।** यह एक वैज्ञा निक सत्य है कि मानव पदार्थ को नष्ट नही कर सकता, न उसको बढा सकता है और न कम कर सकता है। ऐसा करना हमारी शक्ति से परे है। हम केवल उसके रूप को इस प्रकार परिवर्तित कर सकते है कि उसमे मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की शक्ति (उपयोगिता) घट जाये या बढ जाये। रोटी खा लेने के पश्चात रोटी नष्ट नही हो जाती बल्कि हमारे पेट मे पहुँच कर वह विभिन्न रूपो मे मौजूद रहती है। अन्तर केवल इतना हो गया कि अब रोटी का रूप अन्य पदार्थों ने ले लिया उसकी रोटी के रूप मे कोई उपयोगिता नही रही। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि उपयोगिता का नष्ट करना ही उपभोग नही कहा जा सकता। यह परिभाषा तो अपूर्ण ही है। **उपयोगिता का नष्ट होना वास्तव मे उपभोग न होकर, उप भोग का प्रभाव मात्र है।** वस्तु का प्रयोग मानवीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिये। अगर किसी पदार्थ की उपयोगिता बिना किसी मानवीय आवश्यकता की सतुष्टि किये नष्ट या कम होती है तो इस क्रिया को उपभोग नही कहेंगे। उपभोग के लिये यह जरूरी है कि इसमे मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति हो। कभी कभी आग लग जाने से बहुत से पदार्थ जलकर भस्म हो जाते हैं बाढ आने से बहुत से पदार्थ जलमग्न होकर गल जाते हैं। दोनो ही उदाहरणो मे वस्तुओं की उपयोगिता नष्ट हो जाती है परन्तु इसको उपभोग नही कहेंगे क्योंकि साथ ही साथ कोई भी मानवीय आवश्यकता की सन्तुष्टि नही होती है। इन वस्तुओं का प्रयोग मनुष्य नही कर पाया और वे व्यर्थ चली गईं। अत इनको हम 'बर्बादी' (*Waste*) कह सकते हैं।

अत हम कह सकते हैं कि उपभोग **वह मानवीय क्रिया है जिसके द्वारा**

किसी वस्तु की उपयोगिता का प्रयोग मानवीय आवश्यकता की प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक संतुष्टि के लिए किया जाता है।

उपभोग के प्रकार (Kinds of Consumption) :—उपभोग के निम्नलिखित प्रकार हैं :—

धीमा और शीघ्र (Slow and Quick)—बार-बार मानवीय आवश्यकताओं को तृप्त करती रहे तो ऐसे उपभोग को मन्द उपभोग कहेंगे जैसे कपड़ा मकान, किताब आदि का प्रयोग। इसके विपरीत यदि किसी पदार्थ की समस्त उपयोगिता एक ही बार के प्रयोग से नष्ट हो जाय तो ऐसे उपभोग को शीघ्र उपभोग कहेंगे जैसे पानी का पीना, सन्तरे का खाना इत्यादि।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (Direct and Indirect) .—यदि किसी वस्तु का उपभोग किसी अन्य वस्तु के बदलने में किया जाय तो यह उसका प्रत्यक्ष उपभोग है जैसे मकान बनाने के लिये ईंटों का उपयोग, इंजन में कोयले का उपयोग इत्यादि। इन चीजों से जो वस्तु तैयार होती है उसमें भी किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति होती है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से। यदि वस्तु के प्रयोग से कोई अन्य वस्तु तैयार न हो और प्रत्यक्ष रूप से ही किसी व्यक्ति की आवश्यकता संतुष्ट हो तो ऐसे उपयोग को त्यक्ष उपभोग कहेंगे जैसे अनाज की रोटी बनाने में प्रयोग। प्रथम प्रकार के उपयोग को उत्पादक उपयोग **(Productive Consumption)** तथा द्वितीय को अनुत्पादक अथवा अन्तिम **(Unproductive or Final)** उपभोग भी कहते हैं।

वर्तमान उपभोग और भविष्य उपभोग (Present & Future Consumption)—हम सम्पत्ति के कुछ भाग का वर्तमान में उपभोग कर डालते हैं और कुछ को भविष्य के लिये उठा कर रख देते हैं। प्रथम को तात्कालिक और द्वितीय को भविष्य उपभोग कहेंगे।

उपभोग का महत्व :—प्राचीन अर्थशास्त्री विशेषकर एडम स्मिथ, माल्थस और रिकार्डो आदि उपभोग को कुछ भी महत्व नहीं देते थे। उनके अनुसार अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण विभाग 'उत्पत्ति' है। उन्होंने उपभोग को व्यक्तिगत बात मान कर छोड़ दिया। सबसे पहले प्रोफेसर मार्शल ने इसके महत्व पर प्रकाश डाला और बतलाया कि एक व्यक्ति कितना ही अधिक धनी क्यों न हो उसका कुशल-क्षेत्र तब तक नहीं बढ़ सकता जब तक कि उसको अपनी आवश्यकताओं का पूर्ण ज्ञान न हो और वह उनकी संतुष्टि के लिये अपने धन का समुचित प्रयोग न करता हो। आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोग को सर्वाधिक महत्व देते हैं। **उपभोग हमारे आर्थिक प्रयासों का**

प्रारम्भ और अन्त है (Consumption is the begining and end of economic activity) हमारी आवश्यकताओ के अभाव मे, समाज मे कोई फलोत्पत्ति नही होगी और न कोई आर्थिक समस्या ही खडी होगी। आवश्यकता ही आर्थिक क्रियाओ को जन्म देती है। यही नही आवश्यकताओ की पूर्ति हमारे आर्थिक प्रयासो का ध्येय भी है। आवश्यकता सतुष्टि के लिये ही हम कार्य करते है इस प्रकार उपभोग अर्थशास्त्र का अन्त भी है। उत्पादन, विनिमय और वितरण, उपभोग से ही शुरू होते है और उपभोग पर ही समाप्त।

उपरोक्त के अतिरिक्त उपभोग का व्यवहारिक जीवन मे भी काफी महत्व है। उपभोग के प्रकार से किसी राष्ट्र के जीवन-स्तर के विषय मे मालूम कर सकते है, इस स्तर का गिरना या ऊचा उठना देश की अवनति या प्रगति को इगित करता है। गृह स्वामी वर्ग उपभोग के अध्ययन से अपनी आय का समुचित प्रयोग करना जान लेता है, पारिवारिक बजट बनाकर और अपने व्यय को नियन्त्रित ढग से करके वह अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करता है। राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक समाज के सदस्यो की व्यय मदों को देखकर यह मालूम करते हैं कि जनता अपने धन का दुरुपयोग तो नही कर रही। सरकार मादक पदार्थों के सेवन पर प्रतिबन्ध या नियन्त्रण लगा देती है क्योकि उनके सेवन से व्यक्तियो की कार्यक्षमता घट जायेगी और देश मे धनोत्पत्ति भी कम होगी। शराब बदी (Prohibition) इसी उद्देश्य पूर्ति की ओर एक प्रयास है। व्यापारी वर्ग मनुष्यो की आवश्यकताओ का अध्ययन करके, उन्ही पदार्थों को उत्पन्न करते है जिनकी माग अधिक होती है। वित्त मन्त्री भी उन्ही वस्तुओ पर अधिक कर लगाते है जिनमे उपभोक्ताओ को अधिक बचत प्राप्त होती है। अर्थशास्त्रियो ने उपभोग और आवश्यकताओ के अध्ययन मे बहुत से नियम बनाये है।

—०—

प्रश्न २१—"उपभोग अर्थशास्त्र का आदि भी है और अन्त भी" इस कथन की पूर्णतया व्याख्या कीजिये।

("Consumption is the beginning and also the end of Economics" Explain this statement fully)

उत्तर—

अर्थशास्त्र मे उपभोग का बडा महत्व है। प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने इसके महत्व को नही समझा और अपनी पुस्तको मे इसका वर्णन तक नही किया।

उनके दृष्टिकोण मे राष्ट्र के भौतिक कल्याण मे वृद्धि करने के लिये धन के उत्पादन मे वृद्धि करना आवश्यक था। अत. उन्होने 'उत्पादन' को अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण विभाग माना। सर्वप्रथम प्रोफेसर मार्शल ने अर्थशास्त्र मे उपभोग के महत्व पर प्रकाश डाला। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार उपभोग उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अर्थशास्त्र का कोई अन्य विभाग। इतना ही नही यदि यह भी कहा जाये कि उपभोग अर्थशास्त्र के अन्य विभागो से अधिक महत्वपूर्ण है तो अत्योक्ति न होगी। इसका कारण है 'उपभोग' का आर्थिक प्रयत्नो का प्रारम्भ और अन्त होना।'

उपभोग आर्थिक क्रियाओ का मूल :—

समस्त आर्थिक प्रयासो का स्रोत उपभोग है। यदि मनुष्यो को किसी वस्तु के उपभोग की आवश्यकता न हो तो उसे कौन उत्पन्न करेगा? उत्तर है, कोई नही। जब वस्तु उत्पन्न ही नही होगी तो उसके विनिमय तथा वितरण का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। आवश्यकताओ और उनकी पूर्ति की प्रेरणा से आज समस्त विश्व मे मनुष्य कार्य करते है। आवश्यकताओ के अभाव म, न कोई आर्थिक क्रिया होगी और न अर्थशास्त्र। कुछ व्यक्तियो की आवश्यकतायें कम होती है और कुछ की बहुत अधिक। जिन देशो के व्यक्तियो की आवश्यकतायें घनी होती हैं, वहा उनकी सतुष्टि के लिये उतने ही अधिक आर्थिक प्रयास किये जाते है और आर्थिक दृष्टि से वही देश अधिक प्रगतिशील समझे जाते है। मानवीय आवश्यकताये उत्पत्ति की मात्रा स्वभाव, प्रकार व उसके स्थान को निर्धारित करती है। उत्पत्ति के अनुसार ही धन का विनिमय व वितरण होता है। अत उपभोग अर्थशास्त्र का प्रारम्भ है।

उपभोग आर्थिक क्रियाओं का अन्त :—

समस्त आर्थिक प्रयत्नो का एक उद्देश्य है—मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि।, मानवीय आवश्यकतायें आर्थिक क्रियाओ को जन्म देती हैं और इन क्रियाओ का उद्देश्य तब समाप्त हो जाता है जब उन आवश्यकताओ की सतुष्टि हो जाती है। इस प्रकार उपभोग अर्थशास्त्र का अन्त भी है। उत्पादन, विनिमय और वितरण उपभोग से ही आरम्भ होते है और उपभोग पर ही अन्त।

अध्याय १२

आवश्यकतायें

प्रश्न २२—आवश्यकता की परिभाषा दीजिये और अर्थशास्त्र मे इसके महत्व को बताइये।

(Define Want and give its importance in Economics)

उत्तर :—

अन्य शब्दो की भाति अर्थशास्त्र मे आवश्यकता का अर्थ भी साधारण अर्थ से भिन्न है। दैनिक जीवन की बोलचाल म हम 'इच्छा', 'चाह' 'कामना' और 'आवश्यकता' इत्यादि मे कोई अतर नही करते और उन्हें एक ही अर्थ मे प्रयोग करते हैं परन्तु अर्थशास्त्र म 'आवश्यकता' (Want) शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। हम प्रत्येक इच्छा को आवश्यकता नही कह सकते। **अर्थशास्त्र मे 'आवश्यकता' मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसके पूर्ण करने के लिये उसके पास पर्याप्त साधन विद्यमान हों और वह उस इच्छा की पूर्ति के लिये उन साधनों को लगाने को तत्पर हो।** यदि किसी मजदूर को एक रेडियो की इच्छा है, उसके पास रेडियो खरीदन के लिये आवश्यक धन है और वह इस धन को रेडियो खरीदन म व्यय करने को तैयार भी है तो उसकी यह इच्छा प्रभावोत्पादक है और इसे आवश्यकता कहेंगे। किन्तु यदि एक मजदूर एक आलीशान मकान की इच्छा करने लगे जिसे खरीदने के लिये उसके पास साधन नही है या एक कजूस-धनी व्यक्ति एक कीमती कार की इच्छा करता है और कार खरीदने क लिये पर्याप्त धन होते हुए भी वह उस धन को खर्च करने को तैयार नहीं है, तो दोनो ही दशाओं मे मजदूर और कजूस की इच्छायें केवल इच्छायें मात्र हैं, उनको पूर्ण नहीं किया जा सकता, वे अप्रभावोत्पादक हैं। अत **अर्थशास्त्र मे प्रभावोत्पादक इच्छाओं को ही आवश्यकता कहते हैं (Effective desires are called wants.)**

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि एक की इच्छा मे आवश्यकता होने के लिये निम्न दो बातो का होना आवश्यक है —

(१) इच्छा पूर्ति के लिये पर्याप्त साधनो का होना।

(२) इच्छा पूर्ति के लिये साधनों को व्यय करने की तत्परता।

किसी एक भी गुण के अभाव मे किसी वस्तु को प्राप्त करने की कामना या चाह केवल इच्छा (desire) ही रह जायगी। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पैंसन

(Pension) के अनुसार "आवश्यकता शब्द में तीन चीजें निहित हैं, वस्तु प्राप्त करने की इच्छा, उसको क्रय कर सकने की शक्ति अथवा साधन और इस उद्देश्य पूर्ति के लिये साधनों को व्यय करने की तत्परता' "(Want implies three things, the desire to posses a thing, the means of purchasing it and the willingness to use those means for this particular purpose ," प्रो० टासग के शब्दो मे "आवश्यकता उस क्रियाशील इच्छा को कहते हैं जिसकी पूर्ति करने के लिये मनुष्य के पास पर्याप्त शक्ति अथवा साधन हो तथा वह उस सम्पत्ति को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये व्यय करने को तैयार हो।'

आवश्यकताओं का अर्थशास्त्र मे महत्व :— अर्थशास्त्र म आवश्यकताओ के अध्ययन का बडा महत्व है। आवश्यकताये आर्थिक प्रयत्नो को जन्म देती हैं। वे मनुष्य की प्रयत्नशीलता का रहस्य है। समाज म प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई आर्थिक कार्य करता है जिससे वह धन कमा कर अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। जितनी अधिक आवश्यकताये बढती जायेंगी उतना ही समाज म आर्थिक कार्य बढता जावेगा। अगर सभी व्यक्ति सादा जीवन उच्च विचार के समर्थक बन जायें तो आज जो आर्थिक और अन्य क्षेत्रो मे प्रगति दिखाई देती है, शीघ्र ही रुक जाय। आवश्यकताओ की संख्या और विभिन्नता एक देश की आर्थिक स्थिति का दर्पण है पिछडे हुये देश वासियो की आवश्यकतायें बहुत थोडी और घटिया प्रकार की होती हैं परन्तु एक प्रगतिशील देश जैसे अमेरिका के व्यक्तियो की आवश्यकताये सख्या म अधिक और बढिया प्रकार की होती हैं। आवश्यकताये सतुष्ट हो जाने पर, आर्थिक क्रियाओ की स्वाभाविक रूप से इतिश्री हो जाती है। अत आवश्यकताये वे बिन्दु हैं जहाँ से आर्थिक उद्यम प्रारम्भ होते हैं और जहाँ वापस आने पर उनका अन्त हो जाता है। आवश्यकताओ का महत्व इसलिये भी है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज के रहन-सहन का दर्जा और कार्य-क्षमता इन्ही पर निर्भर है। एक व्यक्ति जिसकी आवश्यकतायें पूरी सतुष्ट हो जाती हैं, उसकी कार्य-क्षमता अधिक हो जाती है, वह अधिक सुखी रहता है। फलस्वरूप देश मे धनोत्पत्ति भी अधिक होती है।

—०—

प्रश्न २३—मानवीय आवश्यकताओं की प्रमुख विशेषताओं (लक्षण) को बताइये और इन पर आधारित नियमो का भी उल्लेख कीजिये।

(What are the chief characteristics of human wants ? Also mention the economic laws based on them)

उत्तर :—

प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकतायें समान नहीं होतीं उनमें विभिन्नता पाई जाती है। आवश्यकताओं के स्वभाव में विभिन्नता होते हुये भी उनमें कुछ ऐसी विशेषतायें पाई जाती हैं जो हर देश काल में सत्य हैं और विश्वव्यापक हैं। मानवीय आवश्यकताओं की सामान्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) आवश्यकतायें असीमित हैं (Wants are unlimited) — मानवीय आवश्यकताओं की गिनती नहीं की जा सकती। मनुष्य तो आवश्यकताओं की एक गठरी है। ज्योंही एक आवश्यकता पूर्ण होती है त्योंही दूसरी आवश्यकतायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी बढ़ती हुई मांगों की पूर्ति करने के लिये पहले से अधिक आर्थिक प्रयत्न करने पड़ते हैं, ये प्रयत्न अन्य नई आवश्यकताओं को जन्म देते हैं और इस प्रकार यह चक्र बराबर चलता रहता है। आवश्यकताओं का यह लक्षण उन्नति के नियम (Law of Progress) का आधार है।

> **आवश्यकताओं की विशेषतायें —**
>
> १ असीमित होती हैं।
> २ विशेष आवश्यकता की पूर्ति सम्भव।
> ३ आवश्यकतायें प्रयोगी होती हैं।
> ४ आवश्यकतायें आवर्तक होती हैं।
> ५ आवश्यकतायें पूरक होती हैं।
> ६ आवश्यकतायें वैकल्पिक होती हैं।
> ७ ज्ञान वृद्धि के साथ साथ बढ़ती हैं।
> ८ तीव्रता में अन्तर होता है।
> ९. आदत में परिणित हो जाती हैं।
> १० वर्तमान आवश्यकतायें भविष्य की आवश्यकताओं से अधिक महत्वपूर्ण।
> ११ सामाजिक रीति रिवाजों से प्रभावित।

(२) किसी आवश्यकता विशेष को पूर्ण किया जा सकता है (Any particular want is satiable) — यद्यपि आवश्यकतायें अनन्त हैं और उनकी सूची बनाना कठिन है तो भी प्रत्येक आवश्यकता विशेष को दिये हुये स्थान या समय पर पूर्णतया संतुष्ट किया जा सकता है अगर मनुष्य के पास उचित मात्रा में धन है। उदाहरण के लिये एक प्यासे व्यक्ति को लीजिये। उसको एक के बाद दूसरा पानी का गिलास देते जाइये, एक सीमा ऐसी आयेगी कि वह पानी और नहीं चाहेगा। आवश्यकताओं के इस लक्षण पर अर्थ-

शास्त्र का 'उपयोगिता ह्रास नियम' (Law of Diminishing Returns) आधारित है।

(३) आवश्यकतायें प्रयोगी होती हैं (Wants are compititive) :— साधनों के सीमित और आवश्यकताओं के अगणित होने के कारण एक व्यक्ति की समस्त आवश्यकतायें उसके सम्मुख आती हैं और सर्वप्रथम सतुष्टि के लिये प्रतियोगिता करती है। जो आवश्यकता इस स्पर्धा में जीत जाती है उसी पर वह व्यक्ति अपना धन व्यय करता है। एक रुपये के नोट से एक विद्यार्थी एक पुस्तक, सिनेमा का टिकट, या मिठाई खरीद सकता है। वह किसको सर्व प्रथम सतुष्ट करता है यह आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करता है। आवश्यकताओं के इस लक्षण पर 'सममीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi marginal Utility) और प्रतिस्थापन का नियम (Law of substitution) आधारित हैं।

(४) आवश्यकतायें आवर्तक होती हैं (Wants recur) —एक बार पूर्ण हो जाने के पश्चात कालांतर में वह आवश्यकता पुनः महसूस होने लगती है। एक बार पानी पी लेने के बाद, फिर पानी की प्यास लगती है। सुबह को भोजन करने के बाद पुनः सायंकाल को भूख लगती है।

(५) आवश्यकतायें पूरक होती हैं (Wants are complimentary) :—कुछ आवश्यकतायें साथ-साथ अनुभव होती हैं और साथ ही साथ नष्ट की जाती हैं जैसे कलम और दवात, मोटर और पेट्रोल आदि। आवश्यकता के इस गुण पर सामूहिक मांग (Joint Demand) का नियम आधारित है।

(६) आवश्यकतायें वैकल्पिक होती हैं (Wants are alternative) — एक ही आवश्यकता अनेक वस्तुओं में से किसी एक के द्वारा पूरी की जा सकती हैं। भूख शांत करने के लिये फल, रोटी, दूध, बिस्कुट, चावल मिठाई किसी भी वस्तु का प्रयोग किया जा सकता है।

आवश्यकतायें ज्ञान-वृद्धि के साथ साथ बढ़ती हैं (Wants increase with increase in knowledge) —जैसे २ ज्ञान की वृद्धि होती है त्यों २ व्यक्ति की आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं। ग्रामीण व्यक्तियों की आवश्यकतायें शहरी व्यक्तियों की अपेक्षा कम रहती हैं क्योंकि ग्रामीणों का ज्ञान सकुचित होता है। आदिम काल से आज तक ज्यों ज्यों मानव के ज्ञान में वृद्धि होती गई वैसे ही उसकी आवश्यकतायें बढ़ती रही हैं।

(८) आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर होता है (Wants differ in intensity) —एक व्यक्ति की समस्त आवश्यकताओं की तीव्रता समान

नही होती, इसीलिये वह चुनाव करता है कि वह किस आवश्यकता को पहले सतुष्ट करे और किसको बाद मे। जो आवश्यकता अधिक तीव्र होती है उसको सर्वप्रथम पूर्ण किया जाता है। आवश्यकताओ के इस गुण पर सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) आधारित है। इस नियम के अनुसार अपनी विभिन्न आवश्यकताओ मे चुनाव करके उपभोक्ता अधिक सतुष्टि प्राप्त करता है।

(९) आवश्यकताये आदत मे परिणित हो जाती हैं (Wants became a matter of habit) —यदि किसी आवश्यकता की नित्य प्रति पूर्ति की जाय तो उसका स्वभाव सा पड जाता है। उसकी पूर्ति के अभाव मे उपभोक्ता को कष्ट होता है और उसकी शक्ति कार्य क्षमता आदि मे अन्तर पड जाता है। उदाहरण के लिये बीड़ी सिगरेट, चाय, तम्बाकू व शराब की आवश्यकतायें। इसी पर व्यक्ति का रहन सहन का स्तर (Standard of Living) निर्भर करता है।

(१०) वर्तमान आवश्यकताए भविष्य की आवश्यकताओ से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं (Present Wants are more important than future wants) —साधारण मनुष्य इतना दूरदर्शी और समझदार नही होता कि वह भविष्य को समझ सके और दूसरे भविष्य सदैव ही बड़ा अनिश्चित है। इन कारणोवश मनुष्य वर्तमान की आवश्यकताओ को अधिक महत्व देता है। आवश्यकताओ के इस गुण पर ब्याज का सिद्धान्त आधारित है।

(११) आवश्यकताए सामाजिक रीति रिवाजो से प्रभावित होती हैं (Wants are effected by social customs) —जिस समाज मे हम रहते है उसकी प्रथाओं और रीति रिवाजो के अनुसार हमारी आवश्यकतायें बन जाती हैं। एक साधारण व्यक्ति का खान-पान, पोशाक, मनोरजन, व्यवसाय आदि उसके सामाजिक रीति रिवाजो पर ही निर्भर करता है। शादी विवाह, शिशु जन्म तथा मृत्यु पर दावत देना कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

अध्याय १३

आवश्यकताओं का वर्गीकरण

प्रश्न २४—आवश्यक, आरामदायक तथा विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओ मे भेद स्पष्ट कीजिए। आवश्यकताओं के इस वर्गीकरण का क्या आधार है ?

(Distinguish between Necessaries, Comforts and Luxeries. What is the basis of this classification ?)

उत्तर—

मनुष्य की सभी आवश्यकताये एक समान नही होतीं। यदि कुछ आवश्यकताओ की माग अधिक तीव्र है तो कुछ ऐसी भी होती हैं जिनमे इतनी तीव्रता या महत्व नही होता। कुछ आवश्यकताओ के पूरा न करने से अपार पीडा होती है और कुछो के अभाव मे कोई विशेष कष्ट नही होता। अतः तीव्रता तथा महत्व के अनुसार मानवीय आवश्यकताओ को निम्न तीन वर्गो म बाँटा जा सकता है :—

(१) आवश्यक आवश्यकतायें (Necessaries)
(२) आरामदायक आवश्यकतायें (Comforts)
(३) विलासिता सम्बन्धी आवश्यकतायें (Luxuries)

(१) **आवश्यक आवश्यकतायें**-आवश्यक आवश्यकताओ अथवा अनिवार्यताओ का अर्थ उन वस्तुओ और सेवाओ से लिया जाता है जो दैनिक जीवन मे प्राय आवश्यक होती हैं, और जिनकी सतुष्टि अवश्य होनी चाहिये। ये वे वस्तुयें हैं जो जीवित रहने या कार्य-क्षमता बनाये रखने या सामाजिक प्रतिष्ठा स्थायी रखने के लिये आवश्यक हैं। इसी आधार पर अनिवार्यताओ को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है।

(१) जीवन रक्षक आवश्यकतायें (Necessaries for life)
(२) कार्य-क्षमता रक्षक आवश्यकतायें (Necessaries for efficiency.)
(३) सामाजिक प्रतिष्ठा रक्षक (Conventional Necesseties).

(i) **जीवन रक्षक आवश्यकतायें** —जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है जीवन रक्षक आवश्यकतायें वे हैं जो मनुष्य को केवल जीवित रखती हैं। इन आवश्यकताओं की सतुष्टि के बगैर जीवित रहना असम्भव है। इनकी सतुष्टि न करने से घोर दुख होता है और मृत्यु भी हो जाती है। कम से कम भोजन, वस्त्र, रहने के लिये मामूली घर इत्यादि ऐसी ही आवश्यकतायें हैं।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण :—
१ आवश्यक आवश्यकतायें —
(i) जीवन रक्षक
(ii) निपुणता रक्षक
(iii) सामाजिक— प्रतिष्ठा रक्षक
२ आरामदायक आवश्यकतायें।
३ विलासिता सम्बन्धी आवश्यकतायें।

वर्गीकरण का— आधार :—
१ कार्य—क्षमता पर प्रभाव।
२ सुख-दुख पर प्रभाव।
३ मूल्य और माँग का सम्बन्ध।

(ii) **निपुणता रक्षक आवश्यकतायें :**— इनके अन्तर्गत वे पदार्थ आते हैं जिनका उपभोग व्यक्ति की कुशलता को पूर्ववत बनाये रखने के लिए आवश्यक है। अच्छा खाना, अच्छे कपड़े, अच्छा मकान, चिकित्सा, शिक्षा आदि की सुविधायें कार्य-क्षमता की आवश्यकताओं के उदाहरण हैं। कम से कम जीवित रहने मात्र रूखा-सूखा भोजन खाकर एक मजदूर एक-सी कुशलता से रोज काम नहीं कर सकता है। वह दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जायेगा। अतः उसकी कार्य-कुशलता को बनाये रखने के लिये अच्छे प्रकार का खाना,कपड़ा व मकान,आदि आवश्यक हैं।

(iii) **सामाजिक प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकतायें** —ये वे आवश्यकतायें हैं जिनको सामाजिक रीति रिवाजों का पालन करने या अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये सन्तुष्ट करना पड़ता है। इन आवश्यकताओं के पूर्ण करने से न तो जीवन-शक्ति प्राप्त होती है और न कार्य क्षमता पर कोई प्रभाव पड़ता है। घर पर आये मेहमान का सत्कार, पान, सुपाड़ी, फल व मिठाई आदि से करना पड़ता है। विवाह के उपलक्ष में भोज देना, मृत्यु के समय कुछ विशेष धार्मिक क्रियाओं का करना आदि भी इनके उदाहरण हैं। इन आवश्यकताओं के पूर्ण न करने पर व्यक्ति की समाज में बदनामी होती है।

शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ सामाजिक त्रुटियाँ समाप्त होती जा रही हैं और प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकतायें बदल रही हैं।

(२) **आरामदायक आवश्यकतायें** —ये आवश्यकतायें कार्यक्षमता रक्षक आवश्यकताओं से कुछ ऊपर होती है। इनके उपभोग से हमको आनद प्राप्त होता है, जीवन अधिक सुखी, पूर्ण, शिष्ट व समृद्धिशाली हो जाता है और मनुष्य की कार्य क्षमता मे कुछ वृद्धि हो जाती है। उपभोग न करने मे न अधिक पीडा ही होती है और न विद्यमान निपुणता मे कमी आती है। जैसे अच्छे कपडे, हवादार बडा मकान, स्वादिष्ट भोजन, फर्नीचर, रेडियो और मनोरञ्जन के साधन आदि।

(३) **विलासिता सम्बन्धी आवश्यकतायें** :—वे आवश्यकतायें होती है जिनके उपभोग से हमे बडा आनन्द प्राप्त होता है परन्तु हमारी कार्य-कुशलता में कोई वृद्धि नही होती और उपभोग न करने से न कोई दुख होता है और न कार्य-क्षमता मे कोई कमी। इसीलिये प्रो० जीड (**Gide**) ने इन्हे '**बेकार की आवश्यकतायें**" और प्रो० ऐली (**Ely**) ने "**अत्यधिक व्यक्तिगत उपभोग**" कह कर परिभाषित किया है। आलीशान विशाल बगले, कीमती कारें, जवाहरात, मूल्यवान साडियाँ, बहुमूल्य चित्र इनके उदाहरण हैं।

विलासिता के कुछ पदार्थ ऐसे भी है जिनके उपभोग से हमको सुख तो प्राप्त होता है परन्तु हमारी कार्य-क्षमता काफी मात्रा मे कम हो जाती है जैसे शराब।

आवश्यकताओं के वर्गीकरण का आधार :—

मानवीय आवश्यकताओ का उपरोक्त वर्गीकरण निम्न तीन आधार पर किया गया है :—

(१) कार्यक्षमता पर प्रभाव
(२) सुख दुख पर प्रभाव
(३) मूल्य और माग का सम्बन्ध

कार्यक्षमता :—वे आवश्यकतायें जिनकी सतुष्टि मे हमारी निपुणता की रक्षा होती है और जिनको सतुष्ट न करने से निपुणता बहुत ज्यादा कम हो जाती है, अनिवार्यतायें कहलाती है। वे आवश्यकतायें जिनकी सतुष्टि हमारी कार्यक्षमता को बढाती है और यदि उन्हें सतुष्ट न किया जाये तो कार्यक्षमता मे कोई कमी नही होती, आरामदायक आवश्यकतायें कहलाती हैं। वे वस्तुयें जिनके उपभोग करने या न करने मे कार्यक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पडता, विलासतायें कहलाती है।

सुख दुख :—यदि किसी वस्तु के उपभोग करने मे थोड़ा सुख मिलता है या उपभोग न करने मे तीव्र दुख होता है, तब ऐसी वस्तु को अनिवार्यता की श्रेणी मे रखेंगे। इसी प्रकार आरामदायक वस्तुयें वे वस्तुयें हैं जिनके उपभोग से पर्याप्त आनद और उपभोग के अभाव मे थोड़ा कष्ट मिलता है। विलासतायें उन आवश्यकताओ को कहेंगे जिनकी सतुष्टि से बहुत आनन्द प्राप्त होता है और असतुष्ट रहने पर कोई दुख नही होता। अगर वे व्यक्ति की आदत बन चुकी हैं तो उन्हे उपभोग न करने से कष्ट होता है।

मूल्य और मांग :—आवश्यक आवश्यकता के पदार्थों का मूल्य बढ़ने अथवा घटने मे उपभोक्ता के लिये उन वस्तुओं की माग मे बहुत ही कम परिवर्तन होता है। यदि मूल्य के अनुपात मे ही माग मे परिवर्तन होता है तो ऐसी आवश्यकतायें आरामदायक आवश्यकतायें कहलाती हैं। इसी प्रकार यदि मूल्य मे परिवर्तन होने से, वस्तु की मांग मे भारी घट बढ होती है तो ऐसी आवश्यकता विलासितायें कहलाती हैं।

—०—

प्रश्न २५—अनिवार्य सुखकर व विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओ का अन्तर स्पष्ट कीजिये। क्या एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिये कभी अनिवार्य, कभी सुख कर और कभी विलासिता हो सकती है?

(Distinguish between Necessaries, Comforts and Luxuries. Is it possible for a commodity to be called necessary, comfort or luxury in relation to the same person?)

उत्तर :—

प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न २४ का उत्तर देखिये।

आवश्यक, आरामदायक और विलासिता सम्बन्धी आवश्यकतायें सापेक्षिक (Relative) शब्द हैं। किसी वस्तु विशेष की आवश्यकताओ को किस वर्ग में रखा जाय यह निश्चित रूप मे नही कहा जा सकता है। किसी वस्तु पर किसी वर्ग-विशेष का लेबिल लगाना महान गलती होगी। गेहू को आवश्यक, बिजली के पखे को आरामदायक और मोटरकार को विलासिता का पदार्थ कहना ठीक नही। इस बात का निर्णय बहुत से दृष्टिकोणों को सम्मुख रख कर किया जाता है।

एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिये कभी अनिवार्य, कभी सुखकर और कभी विलासिता हो सकती है। एक पांचवी या छटी कक्षा के विद्यार्थी के लिये

एक फाउन्टेनपॅन विलासिता की वस्तु है। वही विद्यार्थी जब हाईस्कूल में आता है तो वह फाउन्टेनपॅन उसके लिये एक आराम का पदार्थ बन जाता है। यह अब उस विद्यार्थी को तेज लिखने में सहायता करता है। पुन जब वह विद्यार्थी कालिज मे यूनीवर्सिटी कक्षाओ मे पढ़ने लगता है तो वह फाउन्टेनपॅन उसके लिये एक आवश्यक आवश्यकता बन जाता है क्योंकि अब विद्यार्थी को अपने शिक्षकों के लेक्चरो को लिखना पडता है। इसी प्रकार एक ही व्यक्ति के लिये एक जोडी जूता आवश्यक दूसरी जोडी आरामदायक और तीसरी जोडी विलासिता समझी जाती है।

इसके अतिरिक्त एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिये आवश्यक, दूसरे के लिये आरामदायक और तीसरे के लिये विलासिता की वस्तु हो सकती है। मोटरकार विद्यार्थी के लिये विलासिता की, डाक्टर के लिये आरामदायक और जी० डी० बिडला के लिये आवश्यकता की वस्तु है। बात यह है कि **स्थान, समय, उपभोक्ता की स्थिति, वस्तु की इकाई तथा कीमत आदि बातो के साथ २ आवश्यकताओ का वर्गीकरण भी बदलता रहता है।** इगलैंड मे गर्म कोट आवश्यक, भारत के उत्तरी भागो मे जहा काफी जाडा पडता है आरामदायक तथा भारत के दक्षिणी भागो मे जहा बहुत कम जाडा पडता है वही कोट विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार आज से कुछ वर्षों पूर्व चाय एक विलासिता का पदार्थ समझी जाती थी परन्तु आजकल चाय एक आवश्यक वस्तु है। धन सम्पन्न व्यक्ति को रेडियो आवश्यक पदार्थ है परन्तु एक गरीब श्रमिक को एक विलासिता सम्बन्धी आवश्यकता है।

—०—

अध्याय १४

उपयोगिता

प्रश्न २६—उपयोगिता की परिभाषा दीजिये तथा इसके मुख्य लक्षणों को स्पष्ट कीजियेगा।

(Give a suitable definition of Utility and explain its main characteristics.)

उत्तर—

साधारण बोलचाल में उपयोगिता का अर्थ लाभदायकता से लगाया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ दूसरा है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार **उपयोगिता किसी वस्तु की वह शक्ति या गुण है जिसके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है, अर्थात किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करने की क्षमता को ही उपयोगिता कहते हैं।** इस प्रकार रोटी, मक्खन, दूध, कपड़ा आदि वस्तुओं में उपयोगिता है क्योंकि इनके द्वारा मनुष्य की आवश्यकता की संतुष्टि होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ साधारण बोलचाल से भिन्न है।

उपयोगिता के स्वभाव के विषय में चार बातें प्रमुख हैं जिन्हें उपयोगिता के लक्षण कहा जाता है। वे निम्नलिखित हैं —

(१) उपयोगिता वस्तु का गुण नहीं है।—उपयोगिता का पहला लक्षण यह है कि यह वस्तु का आन्तरिक गुण नहीं है, वरन उपयोगिता मनुष्य की आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है। माना कि एक व्यक्ति प्यासा है तो उसे पानी की उपयोगिता अधिक होगी लेकिन पानी पी लेने के बाद उसको पानी के लिए कुछ भी उपयोगिता नहीं रहेगी। जबकि पानी में प्यास बुझाने की शक्ति अब भी है। इससे स्पष्ट है कि उपयोगिता वस्तु का आन्तरिक गुण नहीं है। वरन यह मनुष्य की आवश्यकता पर निर्भर करती है।

> **उपयोगिता के लक्षण —**
> १ उपयोगिता वस्तु का गुण नहीं है।
> २ उपयोगिता व्यक्तिगत होती है।
> ३ उपयोगिता वस्तु तथा उपभोक्ता के सम्बन्ध पर निर्भर करती है।
> ४ लाभदायक तथा हानिकारक दोनों ही प्रकार की वस्तुओं में होती है।

(२) उपयोगिता व्यक्तिगत होती है—उपयोगिता का दूसरा लक्षण यह है कि यह व्यक्तिगत होती है, यह व्यक्तियों की आदत, रुचि, फैशन आदि पर निर्भर करती है जो व्यक्ति सिगरेट पीते हैं उनको सिगरेट की उपयोगिता होती है लेकिन जो व्यक्ति सिगरेट नहीं पीते हैं उन्हें इसकी उपयोगिता नहीं होती है। इससे स्पष्ट है कि उपयोगिता व्यक्तिगत होती है।

(३) उपयोगिता वस्तु तथा उपभोक्ता के सम्बन्ध पर निर्भर करती है :—उपयोगिता के विषय में तीसरा लक्षण यह भी कहा जाता है कि उपयोगिता वस्तु तथा उपभोक्ता के सम्बन्ध पर निर्भर करती है। यदि किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की आवश्यकता है और वह वस्तु उसको मिल जाती है तो उस वस्तु में उपभोक्ता के लिए उपयोगिता होगी तथा आवश्यकता की पूर्ति के बाद उपभोक्ता को उस वस्तु की उपयोगिता समाप्त हो जायेगी उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जिसके पास पहले साइकिल थी उसको कार मिलने पर उसके लिए साइकिल की उपयोगिता समाप्त हो जायेगी। इससे स्पष्ट है कि उपयोगिता वस्तु तथा उपभोक्ता के सम्बन्ध पर निर्भर करती है।

(४) उपयोगिता लाभदायक तथा हानिकारक दोनों ही प्रकार की वस्तुओं में होती है —वस्तुयें दो प्रकार की होती है। प्रथम लाभदायक जैसे गेहू, दूध, फल आदि तथा दूसरे हानिकारक जैसे शराब, सिगरेट, अफीम आदि। साधारण बोलचाल में हम उपयोगिता केवल लाभदायक वस्तुओं में ही मानते है। परन्तु अर्थशास्त्र में उपयोगिता लाभदायक तथा हानिकारक दोनों ही प्रकार की वस्तुओं में मानी जाती है। उपयोगिता के लिए लाभदायकता का होना आवश्यक नहीं है वरन् उस वस्तु में मनुष्य की किसी आवश्यकता विशेष की संतुष्टि करने की क्षमता होनी चाहिये। इस कारण से हानिकारक वस्तुयें भी उपयोगी कही जाती है क्योंकि इनसे भी किसी वर्ग विशेष के व्यक्तियों की आवश्यकता की संतुष्टि होती है, इससे स्पष्ट है कि उपयोगिता लाभदायक तथा हानिकारक दोनों ही प्रकार की वस्तुओं में होती है।

इस प्रकार उपर्लिखित चार बातें उपयोगिता के स्वभाव को स्पष्ट करती हैं। यही उपयोगिता के मुख्य लक्षण हैं।

—o—

प्रश्न २७—"सीमांत उपयोगिता और कुल उपयोगिता का अभिप्राय समझाइये इनका सम्बन्ध बताते हुए सिद्ध करो कि "जब सीमांत उपयोगिता शून्य होती हैं तभी पूर्ण उपयोगिता सबसे अधिक होती है।"

(Explain the meaning of marginal and total utility. Give their mutual relationship and prove that "when the Marginal utility is least the total utility is the maximum")

उत्तर—

सीमान्त उपयोगिता —जब मनुष्य को अपनी किसी आवश्यकता को सतुष्ट करने के लिए वस्तु की अनेक इकाइयो का उपभोग करना पड़ता है, तो उपभोग की जाने वाली अन्तिम इकाई को सीमान्त इकाई कहते हैं क्योंकि यह इकाई उपभोग की अन्तिम सीमा पर है। **सीमान्त इकाई से मिलने वाली उपयोगिता को ही सीमान्त उपयोगिता कहते हैं।** उपभोग के क्रम में वस्तु की पहली इकाई सबसे अधिक उपयोगिता प्रदान करती है क्योंकि वह आवश्यकता के अधिक तीव्र भाग को सतुष्ट करती है और जैसे २ अगली इकाईयो के उपभोग से आवश्यकता की तीव्रता कम होती जाती है। वैसे ही वैसे उन इकाईयो की उपयोगिता भी कम होती जाती है। उपभोग के क्रम में अन्तिम इकाई की उपयोगिता ही सीमान्त उपयोगिता कहलाती है।

कुल उपयोगिता :—जब कोई व्यक्ति अपनी किसी आवश्यकता विशेष को सतुष्ट करने के लिये वस्तु की विभिन्न इकाइयो का प्रयोग करता है, तो उन समस्त इकाईया से प्राप्त उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं।

निम्न तालिका मे एक व्यक्ति की रोटियो की विभिन्न इकाईयो से मिलने वाली उपयोगिता व्यक्त की गई है।

रोटी की सख्या	सीमान्त उपयोगिता		कुल उपयोगिता
१	५०	धनात्मक	५०
२	४०		९०
३	२५		११५
४	८		१२३
५	०	शून्य	१२३
६	—५	ऋणात्मक	११८
७	—२५		९३

इस तालिका को देखने से यह स्पष्ट है कि पाचवी रोटी से उपयोगिता शून्य है इसके बाद उपयोगिता ऋणात्मक (Negative) हो जाती है अत. वह व्यक्ति केवल पाँच रोटिया ही खरीदेगा उससे अधिक रोटी खरीदने पर उसको उपयोगिता की हानि होने लगती है और उसकी कुल उपयोगिता कम होने लगती है। पाचवी रोटी पर ही उसकी पूर्ण सतुष्टि (Point of Satity) का बिन्दु विद्यमान है। वह छठी और सातवी रोटिया नहीं खरीदेगा। अत पाँचवी रोटी सीमान्त इकाई है। अगर वह व्यक्ति केवल चार ही रोटियां खरीदता है तो चौथी इकाई सीमान्त इकाई और इसकी उपयोगिता ८

इकाईयां सीमान्त उपयोगिता कहलायेगी और कुल उपयोगिता १२३ इकाईयां होंगी। अगर वह छटी रोटी भी खरीदता है तो सीमान्त इकाई छटी रोटी होगी और सीमान्त उपयोगिता ऋण ५ (Minus five) होगी और कुल उपयोगिता ११८ इकाईयाँ होंगी। इस प्रकार पूर्ण सतुष्टि के बिन्दु से पहले सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (Positive) होकर घटती रहती है, और कुल उपयोगिता बढती रहती है। पूर्ण सतुष्टि के बिन्दु पर यह शून्य होती है और कुल उपयोगिता सर्वाधिक होती है, इसके पश्चात् सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (Minus) हो जाती है और कुल उपयोगिता घटने लगती है।

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता का सम्बन्ध —

उपरोक्त उदाहरण द्वारा सीमात उपयोगिता और कुल उपयोगिता का सम्बन्ध भलीभाति स्पष्ट हो जाता है जो निम्न प्रकार है।

(i) जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक होती है तब तक कुल उपयोगिता सतत बढती रहती है परन्तु उसके बढने की दर कम होती जाती है। चौथी रोटी तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक है और कुल उपयोगिता भी इसी सीमा तक की घटती दर पर सतत बढ रही है।

(ii) पूर्ण सतुष्टि के बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता शून्य तथा कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। उपरोक्त उदाहरण में पूर्ण सतुष्टि का बिन्दु छटी रोटी पर आ जाता है परन्तु इसी बिन्दु पर कुल उपयोगिता, १२३ सबसे अधिक है।

(iii) पूर्ण सतुष्टि के बिंदु के पश्चात् सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होकर बढने लगती है और उसके साथ-साथ कुल उपयोगिता घटने लगती है।

सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता के इस सम्बन्ध को नीचे एक चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

अब रेखा सीमान्त उपयोगिता को प्रदर्शित करती है यह कख रेखा को द बिन्दु पर काटती है। द बिन्दु उपभोगिता की पूर्ण सतुष्टि का बिन्दु है। अस रेखा कुल उपयोगिता को प्रदर्शित करती है। जब तक अब रेखा क ख रेखा को द बिन्दु पर नही काटती है अ स रेखा जो कुल उपयोगिता रेखा है, ऊपर की ओर बढती जाती है। द बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता सबसे कम है पर कुल उपयोगिता सबसे अधिक है जो कि घ बिन्दु से प्रगट है। द बिन्दु के पश्चात सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होकर नीचे की बढने लगती है और अ स रेखा घ बिन्दु से नीचे की ओर गिरने लगती है।
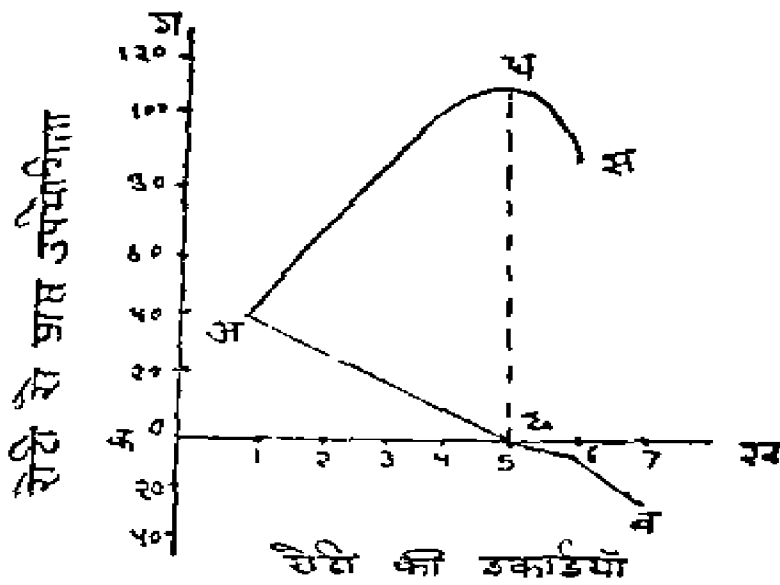
अत तालिका और ग्राफ दोनों द्वारा यह बात सिद्ध हो जाती है कि जब सीमान्त उपयोगिता सबसे कम होती है तो कुल उपयोगिता सबसे अधिक होती है।

—०—

प्रश्न २८—जब हम किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाईयों का उपभोग करते हैं, तो (अ) उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घट जाती है (ब) कुल उपयोगिता बढती जाती है और (स) हमारी उस वस्तु के लिये माँग घट जाती है। समझाइये।

(When we consume more and more units of a commodity (a) the marginal utility of that commodity diminishes, (b) total utility increases and (c) our demand for the commodity decreases Explain)

उत्तर —

इस प्रश्न के प्रथम दो भागों के उत्तर के लिये प्रश्न नं० २७ को देखिये।

(स) माँग और उपयोगिता का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। एक वस्तु की माग उसकी उपयोगिता पर निर्भर करती है। यह एक साधारण तथ्य है कि वस्तु अधिक उपयोगी होने से उसकी माँग बढ जाती है और जब उसकी उपयोगिता कम हो जाती है तो उसकी माग भी कम हो जाती है। उपयोगिता से यहा पर हमारा तात्पर्य वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से है। ज्यों ज्यों सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है त्यों त्यों माग भी कम होती जाती है।

—०—

अध्याय १५

उपयोगिता ह्रास नियम

प्रश्न २९—उपयोगिता ह्रास नियम का विस्तार पूर्वक विवेचन कीजिये। क्या इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं ?

(Explain fully the Law of Diminishing Marginal Utility. Are there any exception to this law ?)

उत्तर—

हम देख चुके हैं कि यद्यपि मानवीय आवश्यकतायें अनंत हैं तो भी किसी आवश्यकता विशेष को पूर्णतया सतुष्ट किया जा सकता है यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है कि किसी वस्तु को प्राप्त करने की हमारी इच्छा आरम्भ मे बहुत प्रबल होती है परन्तु ज्यो ही हम उसकी एक भी इकाई का सेवन कर चुकते हैं तो हमारी आवश्यकता की तीव्रता कुछ कम हो जाती है और दूसरी इकाई के लिये हमारी इच्छा इतनी तीव्र नही रहती जितनी पहले थी इस कारण दूसरी इकाई को हम पहली की अपेक्षा कम महत्व देते हैं। जैसे-जैसे किसी वस्तु की आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है उस वस्तु के सेवन से प्राप्त होने वाली उपयोगिता भी कम होती जाती है। इस प्रकार एक वस्तु की जितनी अधिक मात्रा मिलती जाती है, उसकी आवश्यकता उतनी ही कम होती जाती है और उस वस्तु की प्रत्येक बाद मे मिलने वाली इकाईयो (Succeeding units) से मिलने वाली उपयोगिता कम होती जाती है। इसी प्रवृत्ति को अर्थशास्त्र म उपयोगिता ह्रास नियम कहते हैं।

प्रोफेसर मार्शल ने उपयोगिता ह्रास नियम को इस प्रकार परिभाषित किया है। "किसी वस्तु के स्टाक मे वृद्धि होने से जो अतिरिक्त लाभ किसी व्यक्ति को प्राप्त होता है, अन्य वस्तुयें समान रहने पर वस्तु की मात्रा मे प्रत्येक वृद्धि के साथ २ घटता जाता है।" **(The additional benefit which a person desires from a given increase of a stock of a thing diminishes with every increase in the stock that he already has —Marshall)**

प्रोफेसर चैपमैन के शब्दो मे "जितनी ही कोई वस्तु हमारे पास अधिक मात्रा मे होती है उतना ही हम उसकी अधिक वृद्धि कम अश तक चाहते हैं अथवा उतना ही अधिक हम उसकी अधिक वृद्धि नहीं

चाहते" (The more we have of a thing, the less we went additional increments of it, or the more we want not to have additional increments of it. —Chapman)

नियम को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मानलो राम को बहुत भूख लग रही है। भूख की प्रबलता के कारण, उसके लिये पहली रोटी की उपयोगिता अधिक होगी। और भूख की आंशिक संतुष्टि होते जाने के कारण, अगली रोटियों की उपयोगिता घटती जावेगी। माना कि रोटी की विभिन्न इकाईयों से राम को निम्न उपयोगितायें प्राप्त होती हैं :—

रोटी की इकाईयां	प्राप्त उपयोगिता (इकाईयों में)
१	१००
२	८०
३	५०
४	३०
५	१०
६	०
७	—१०

छटी रोटी से राम की भूख पूर्णतया मिट चुकी है वह सातवीं रोटी नहीं खरीदेगा। अगर उसे सातवी रोटी लेने को बाध्य किया जाय तो इसकी उपयोगिता ऋण में होगी अर्थात उसको १० इकाईयों के बराबर अनुपयोगिता प्राप्त होगी क्योंकि इसके सेवन से उसके पेट में दर्द निश्चित है।

रेखा चित्र द्वारा निरूपण —
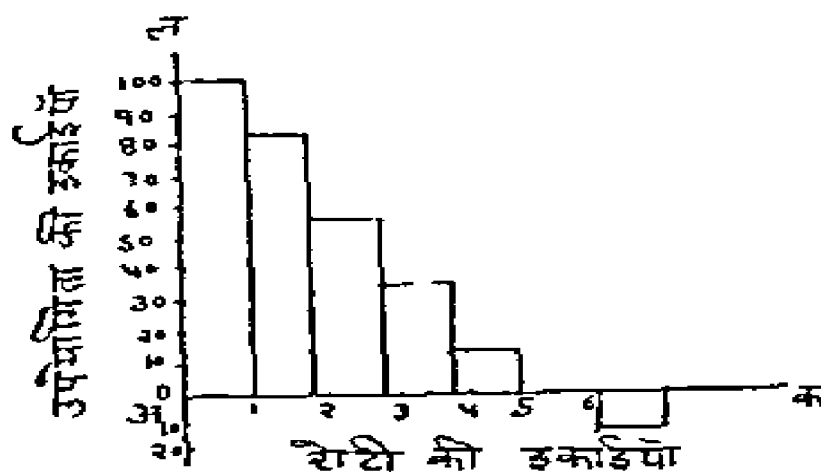
चित्र मे प्रत्येक आयत रोटियो से मिलने वाली उपयोगिताओं को प्रदर्शित

करता है। जैसे जैसे अगली रोटियों का उपभोग किया जाता है त्यों-त्यों आयतों का क्षेत्रफल भी घटता जाता है अर्थात् रोटियों की उपयोगिता गिरती जाती है। छटी रोटी से कोई उपयोगिता प्राप्त नहीं होती इसलिये छटी इकाई पर कोई आयत नहीं बनाया गया है। अतः इस उदाहरण का अध्ययन चाहे तालिका के आधार पर करें चाहे चित्रों के, एक बात स्पष्ट है कि प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त उपयोगिता घटती जाती है।

नियम के कार्यशील होने की शर्तें:—

उपयोगिता ह्रास नियम तब ही लागू होता है जबकि कुछ शर्तें पूरी हो जाती हैं। इस नियम की परिभाषा में प्रयुक्त वाक्यांश **'अगर अन्य बातें समान रहें'** का ही तात्पर्य भी इन्हीं शर्तों से जो निम्न हैं —

> **उपयोगिता ह्रास नियम की शर्तें —**
> १ वस्तु की इकाईयां गुण और परिमाण में समान हों।
> २ उपभोग के समय उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में समानता।
> ३ उपभोग का एक ही समय।
> ४ उपभोक्ता की आय, फैशन, स्वभाव व आदत में अपरिवर्तनशीलता।
> ५. वस्तु एवं स्थानापन्न वस्तु के मूल्य में समानता।

(१) **वस्तु की इकाईयां गुण और परिमाण में समान होनी चाहिये:—** यदि एक प्यासे व्यक्ति को एक गिलास पानी पीने के पश्चात दूसरा गिलास शिकंजी का दिया जाय तो निश्चय ही दूसरे गिलास की उपयोगिता पहले की अपेक्षा अधिक होगी। इसी प्रकार यदि किसी भूखे व्यक्ति को एक रोटी जौ की खा लेने के पश्चात अन्य रोटी गेहूं की दी जाय तो इस रोटी की उपयोगिता पहले की अपेक्षा कम होगी। इसलिये यह आवश्यक है कि वस्तु की इकाईयां एक ही प्रकार की होनी चाहियें अन्यथा यह नियम लागू नहीं होगा।

(२) **उपभोग के समय उपभोक्ता की मानसिक स्थिति समान रहनी चाहिए —** भांग, शराब आदि वस्तुओं को सेवन कर लेने से उपभोक्ता का मानसिक दृष्टिकोण बदल जाता है और उसको वस्तु की अनुक्रमिक इकाईयों से अधिक उपयोगिता प्राप्त होने लगती है। इसलिये उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

(३) **उपभोग का समय एक ही होना चाहिए :—** यदि उपभोग का समय समान न रह कर टूट जाता है तो यह नियम लागू नही होगा। यदि एक व्यक्ति एक रोटी प्रातःकाल, दूसरी दोपहर को और तीसरी रात को खाय तो दूसरी और तीसरी रोटी की उपयोगिता पहले की अपेक्षा कम नही होगी। परन्तु यदि तीनो रोटियो का सेवन एक ही साथ एक ही समय किया जाय तो दूसरी रोटी की उपयोगिता पहली से और तीसरी की दूसरी से क्रमश अवश्य कम होगी।

(४) **यदि वस्तु का उपभोग अधिक समय तक होता है, तब उपभोक्ता की आय, फैशन, स्वभाव व आदत पूर्ववत रहने चाहिये :—** इन सबमे परिवर्तन से नियम क्रियाशील नही होगा। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति को सिगरेट की उपयोगिता बहुत कम होगी परन्तु यह इसकी आदत पड जाने पर, सिगरेटो की उपयोगिता बढ जायेगी। यदि चौडी मोहरी की पतलून फैशन म नही हो तो उसकी उपयोगिता कम होगी परन्तु कुछ समय बाद फैशन म पुन आ जाने पर इसकी उपयोगिता बढ जायेगी। इसी प्रकार एक गरीब आदमी के लिये बहुत-सी चीजो की उपयोगिता नही होती है परन्तु आय बढ जाने पर उसकी उन चीजो के लिये इच्छा पैदा हो जायगी और इनकी उपयोगिता भी बढ जायगी।

(५) **वस्तु तथा उसकी स्थानापन्न वस्तुओं का मूल्य समान रहना चाहिये :—** किसी एक वस्तु के सस्ती या उसकी स्थानापन्न वस्तुओ के महगी हो जाने से उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा अधिक प्रबल हो जाती है। चाय सस्ती या काफी महगी हो जाने पर, व्यक्ति चाय की अधिक मात्रा खरीदने लगेंगे और चाय की अगली इकाईयो की उपयोगिता बढ जायगी।

उपयोगिता ह्रास नियम के अपवाद :—

इस नियम के कुछ अपवाद भी बताये जाते हैं जो निम्न प्रकार है —

(१) **उपभोग इकाई का बहुत छोटा होना :—** मानाकि एक व्यक्ति चाय बनाना चाहता है। इसके लिये कोयले की आवश्यकता होती है। मान लीजिये कि उसे १ छटाक कोयला मिल जाता है। इससे उसका कोई कार्य नही बनेगा क्योकि कोयले की मात्रा बहुत ही अपर्याप्त है। यदि उसे एक छटाक कोयला और मिल जाय तो उस व्यक्ति के लिये इसकी उपयोगिता पहले कोयले की अपेक्षा अधिक होगी क्योकि २ छटाक कोयले की मात्रा काम लायक मात्रा के समीप पहुँचती जायगी। अत नियम लागू नहीं होगा।

उपयोगिता ह्रास नियम के अपवाद :—

१ उपभोग इकाई का छोटा होना।
२ अद्भुत और दुर्लभ वस्तुओ का सग्रह।
३ दिखावट, शक्ति व धन की इच्छा।
४ मादक वस्तुओ का उपभोग।
५ एक वस्तु का बहुत से व्यक्तियो द्वारा प्रयोग।
६ मधुर कविता या गीत।
७ उपभोग की प्रारम्भिक अवस्था।

यह अपवाद केवल इसलिये है क्योकि वस्तु की इकाई बहुत ही छोटी मानी गई है। व्यवहार मे प्रत्येक वस्तु की इकाई का परिमाण इतना अवश्य होना है कि वह काम की हो। परन्तु फिर भी कुछ समय बाद जब पर्याप्त कोयला इकट्ठा हो जायगा तो कोयले की प्रत्येक अगली इकाई की उपयोगिता गिरने लगेगी।

(२) **अद्भुत और दुर्लभ वस्तुओ का सग्रह :—** विचित्र व दुष्प्राप्य वस्तुयें जितनी अधिक मिलती जाती हैं उतनी ही उनकी उपयोगिता बढती जाती है। मान लीजिये कि एक सिक्के इकट्ठे करने वाले को अकबर के युग का सिक्का मिल जाता है इसके बाद औरगजेब के युग का सिक्का मिलने पर उसकी उपयोगिता अकबर के सिक्के से अधिक होगी क्योकि यह उसके सग्रह को अधिक बहुमूल्य बना देगा। यही बात टिकट या हस्ताक्षर सग्रह करने के सम्बन्ध से सही होगी। परन्तु यहाँ पर उपयोगिता ह्रास नियम इस कारण लागू नही होता क्योकि वस्तु की इकाईयाँ एक ही प्रकार की नही हैं। अगर दूसरा भी सिक्का अकबर के युग का मिलता है तो निश्चिय रूप से इसकी उपयोगिता पहले से कम होगी। अत यह अपवाद वास्तविक नही है।

(३) **दिखावट, शक्ति व धन की इच्छा :—** प्रदर्शन, शक्ति तथा द्रव्य आदि के उपासको का अपनी अभीष्ट वस्तु के प्रति मोह अशोषणीय है। परन्तु वास्तव मे यह अपवाद अवास्तविक है क्योकि दिखावट या प्रदर्शन की इच्छा कोई एक वस्तु से सम्बन्धित नही होती यह बहुत सी वस्तुओ की सामूहिक इच्छा है। वस्तु एक नही अनेक हैं। मनुष्य के पास जितना धन बढता जाता है उतना ही उसका धन सग्रह का मोह बढता जाता है। परन्तु धन की इच्छा भी एक सीमा के पश्चात कम होने लगती है। मिदास राजा (King Midas) का उदाहरण हमारे सम्मुख है। शक्ति की इच्छा करने वाला व्यक्ति सामान्य नही होता अत अर्थशास्त्र के क्षेत्र से परे है।

(४) मादक वस्तुओं का उपभोग :—यह कहा जाता है कि एक शराबी को शराब के हर दूसरे प्याले मे अधिक उपयोगिता मिलती है। परन्तु यह अपवाद भी मिथ्या है क्योकि शराब का पहला प्याला पी लेने के पश्चात शराबी की मानसिक स्थिति बदल जाती है। इसके अतिरिक्त शराबी औसत व्यक्ति नही हैं अत अर्थशास्त्र के क्षेत्र से परे है।

(५) एक वस्तु का बहुत से व्यक्तियों द्वारा प्रयोग :—एक शहर मे जैसे २ टेलीफोन कनक्शनो की सख्या बढती जाती है त्यो २ उस व्यक्ति के लिये जिसके पास पहले से ही टेलीफोन है अधिक उपयोगिता होती जायेगी क्योकि वह टेलीफोन का पहले से अधिक उपयोग कर सकता है। परन्तु यह अपवाद भी असत्य है। अगर टेलीफोन की सख्या एक ही व्यक्ति के पास बढती है तो उसको प्रत्येक अगले टेलीफोन की उपयोगिता कम होती जायेगी परन्तु अगर अन्य व्यक्तियो के पास टेलीफोनो की सख्या बढती है तो यह नियम लागू नही होगा। क्योकि वस्तु की इकाईयो का विस्तार कई व्यक्तियों म होता है। —

(६) मधुर कविता या गीत :—प्रोफेसर टासिग (Taussig) का कथन है कि किसी अच्छी पुस्तक या कविता के दुबारा तिबारा पढने या किसी मधुर गीत को दुबारा या तिबारा सुनने मे पहली बार की अपेक्षा अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। यह हमारे नित्य-प्रति के अनुभव की बात है।

(७) अर्थशास्त्रियो का मत है कि वस्तु के उपभोग की प्रारम्भिक अवस्थाओ म जब तक कि अधिकतम सतुष्टि का बिन्दु न आ जाय, वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से बढती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है।

अत नियम के उपरोक्त अपवादो के विवेचन स यह स्पष्ट है कि इस नियम का कोई वास्तविक अपवाद नही है। छठे और सातवें अपवादो को वास्तविक अपवाद कहकर पुकारा जाता है परन्तु यह मिथ्या है। एक सीमा ऐसी अवश्य आती है जबकि हम एक ही गीत या कविता को और अधिक सुनना पसन्द नही करेंगे। इसी प्रकार अधिकतम सतुष्टि क बिन्दु क पश्चात से उपयोगिता घटने लगती है। अत. इस प्रवृत्ति को विश्वव्यापी कहने मे कोई त्रुटि नहीं होगी।

अध्याय १६

समसीमान्त उपयोगिता नियम

प्रश्न ३०—समसीमान्त उपयोगिता नियम को समझाइये और उसके महत्व पर प्रकाश डालिये।

(What is the law of Equi-Marginal Utility ? Explain also its importance)

उत्तर—

मनुष्य की आवश्यकतायें असीमित हैं परन्तु इन आवश्यकताओं को सतुष्ट करने वाले साधन सीमित हैं। इसलिए हम अपनी सभी आवश्यकताओं को सतुष्ट नही कर पाते और हमारे सम्मुख सदैव यह समस्या रहती है कि अपने सीमित साधनों को असीमित आवश्यकताओं की सतुष्टि मे किस प्रकार व्यय करें कि हमको अधिकतम सतोष की प्राप्ति हो। इसलिए वह अधिक लाभदायक अथवा अधिक उपयोगिता वाली चीजों को कम उपयोगिता वाली चीजों के स्थान पर प्रतिस्थापित करेगा। सर्वप्रथम वह सर्वाधिक उपयोगिता प्रदान करने वाली वस्तु को खरीदेगा इसके पश्चात वह उस वस्तु को खरीदेगा जो पहले की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण और आवश्यक है। परन्तु फिर भी अन्य वस्तुओं से अधिक आवश्यक है। इस प्रकार ही व्यय करने से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी आय को इसी प्रकार व्यय करता है। जो वस्तु द्रव्य की इकाई के बदले मे अपेक्षाकृत अधिक सतुष्टि देती है उस पहले क्रय किया जाता है और जो इसी इकाई के बदले म सबसे कम सन्तुष्टि देती है उसे अन्त म खरीदा जाता है। यह क्रय द्रव्य की सब इकाईयों के व्यय हो जाने तक चालू रहता है।

अगर आय को उपरोक्त क्रम म विभिन्न वस्तुओं के खरीदने मे व्यय किया जाये तो अन्त मे उपभोक्ता को इस बात का अनुभव होगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय की गई द्रव्य की अन्तिम इकाई की उपयोगिता समान अथवा लगभग समान है। इसी को अर्थशास्त्र म समसीमान्त उपयोगिता नियम कहते हैं अत नियम के अनुसार **"रुपयों की किसी निश्चित रकम से अधिकतम सन्तुष्टि तब ही प्राप्त हो सकती है जबकि हर वस्तु पर व्यय होने वाली रुपयों को अन्तिम इकाई की उपयोगिता या प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर या लगभग बराबर है।"**

प्रोफेसर मार्शल ने इस नियम की इस प्रकार व्याख्या की है "यदि एक **वस्तु का प्रयोग कई कार्यों मे किया जा सकता है तो उसका बंटवारा उन समस्त कार्यों में इस प्रकार करना चाहिये कि प्रत्येक कार्य में व्यय की गई उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता समान हो"** (**If a person has a thing which he can put to several uses, he will distribute it among these uses in such a way that it has the same marginal utility in all" —Marshall.**) इस नियम को अधिकतम सन्तुष्टि का नियम (**Law of Maximum satisfaction**) भी कहते हैं क्योंकि इस नियम के अनुसार व्यय करने से ही अधिकतम सन्तोष की प्राप्ति हो सकती है। इसको 'व्यय सिद्धान्त' (**Law of Expenditure**) भी कहा जाता है क्योंकि यह व्यक्ति व्यय करने के ढंग को बताता है।

यह बात याद रखने योग्य है कि यह नियम तभी लागू होता है जबकि वस्तु एक हो परन्तु उसको कई कार्यों मे प्रयोग किया जाये। द्रव्य ऐसी वस्तु है।

उदाहरण:—मान लीजिये कि मोहन के पास १२ रु० हैं और वह उन को गेहूं, फल, चीनी और घी पर व्यय करना चाहता है। अब सवाल यह है कि कितना धन किस वस्तु पर व्यय करें। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार मोहन की इन चीजों की उपयोगिता निम्न प्रकार है :—

	प्राप्त उपयोगिता			
रुपये की इकाई	गेहूं	फल	चीनी	घी
१	१२ (१)	८ (३)	८ (४)	७ (६)
२	१० (२)	६ (७)	५ (६)	५ (१०)
३	८ (५)	५ (११)	३	२
४	६ (८)	२	१	०
५	४ (१२)	०	०	
६	२			
७	०			

मोहन पहले रुपये को गेहूं पर व्यय करेगा क्योंकि उपरोक्त तालिका के अनुसार इसमें उसको अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरे रुपये को भी वह गेहूं पर व्यय करेगा। तीसरे, चौथे व पांचवे रुपये को वह फल, चीनी व गेहूं पर व्यय करेगा। इसी प्रकार खर्च करते चले जाने पर मोहन के ५ रु० गेहूं पर ३ रु० फलों पर, २ रु० घी पर व्यय होंगे और ऐसा करने में प्रत्येक

वस्तु की इकाई से अथवा प्रत्येक वस्तु पर व्यय की जाने वाली रुपयों की अन्तिम इकाई से मोहन को ४ इकाई की उपयोगिता मिलती है—सीमांत उपयोगिता प्रत्येक दशा में समान है। इस प्रकार उसे कुल ८१ इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी यदि वह उपरोक्त क्रम के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से अपने धन का व्यय करता है तो न सीमान्त उपयोगिता ही बराबर होगी और न अधिकतम सन्तोष ही प्राप्त होगा। यदि मोहन गेहूं पर ५ रु० के स्थान पर ४ रु० व्यय करे और फलों पर ३ रु० के स्थान पर ४ रु० व्यय करे तो सीमांत उपयोगितायें तो बराबर होंगी ही नही साथ ही साथ कुल उपयोगिता घट कर ७६ रह जायेगी। इसी प्रकार अन्य क्रम भी देखे जा सकते हैं परन्तु व्यय करने का प्रथम ढंग ही सर्वोत्तम है और अधिकतम संतुष्टि प्रदान करता है। अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिये सीमांत उपयोगिताओं का समान या लगभग समान होना अति आवश्यक है।

चित्र द्वारा निरूपण
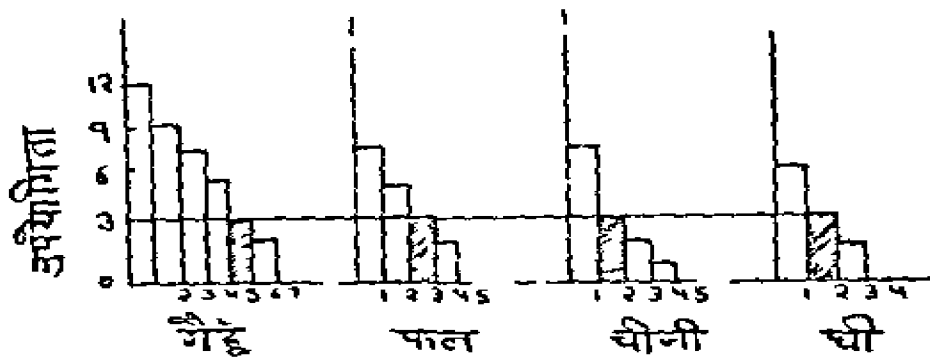
उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि गेहूं की पाँच, फल की तीन, चीनी की दो और घी की दो इकाइयां खरीदी गई है। प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (जो रंगे भाग द्वारा प्रदर्शित की गई है) बराबर हैं।

समसीमान्त उपयोगिता नियम का महत्व—इसी नियम का अर्थशास्त्र में बड़ा महत्व है। यह अर्थशास्त्र के प्रत्येक विभाग में लागू होता है। प्रोफेसर मार्शल ने तो इसको '**अर्थशास्त्र का आधार**' बतलाया है क्योंकि सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सदैव इसी नियम का पालन करना पड़ता है।

प्रत्येक **उपभोक्ता** की आय सीमित है वह उससे अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं को इस प्रकार सन्तुष्ट करना चाहता है कि उसे सर्वाधिक सन्तोष प्राप्त हो। यह नियम इस उद्देश्य प्राप्ति में उसकी मदद करता है। उपभोक्ता अपनी आय को वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं पर

व्यय करने मे इसी नियम का पालन करता है। अगर कोई ऐसी वस्तु है जिसका कई कार्यों मे प्रयोग होता है तो उस वस्तु के सर्वश्रेष्ठ उपभोग के लिये इसी नियम का पालन किया जाता है।

उत्पादको को भी इस नियम की शरण लेनी पड़ती है। उसका उद्देश्य कम से कम लागत उत्पत्ति करना होता है इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वह अधिक मूल्य वाले उत्पादन साधनो के स्थान पर कम मूल्य वाले साधनो को प्रति स्थापित करता है। **विनिमय** तो मुख्यत प्रति स्थापना की ही क्रिया है। दो मनुष्यो के बीच दो वस्तुओ का विनिमय उसी सीमा तक होता है जहा पर प्रत्येक मनुष्य के लिये दोना वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता बराबर हो जाती है। द्रव्य द्वारा विनिमय म भी हम द्रव्य की इकाईयो के बदले उपभोग की वस्तुओ का प्रतिस्थापन करते हैं। **वितरण** के क्षेत्र मे भी उत्पत्ति के साधनो का पुरस्कार उनकी सीमात उत्पादकता के आधार पर दिया जाता है। **राज्य** भी अपना व्यय इसी सिद्धांत के अनुसार करता है। राज्य के साधन भी सीमित हैं। वह अधिकतर सामाजिक लाभ प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिये रुपया इस प्रकार व्यय करता है कि प्रत्येक मद से लगभग बराबर सीमान्त लाभ प्राप्त हो।

प्रश्न ३१—समसीमांत उपयोगिता का नियम प्रतिपादित और स्पष्ट कीजिए। इस नियम के पालन मे क्या कठिनाइयाँ हैं? यह व्यक्तियो के दिन प्रतिदिन के व्यय मे किस प्रकार पथप्रदर्शन करता है?

(State and explain the law of Equi Marginal Utility? How does it guide the day today expenditure of a person?)

उत्तर—

प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न ३० का उत्तर पढ़िये।

नियम की सीमाएँ या प्रयोगो मे कठिनाइयाँ :—

समसीमांत उपयोगिता नियम अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भांति एक प्रवृत्ति का द्योतक है, इसका यह तात्पर्य नही है कि उपभोक्ता इस नियम के अनुसार व्यय करने के लिये विवश होगा। नियम तो यह बतलाता है कि अधिकतम सतोष प्राप्ति के लिये साधनो को इस प्रकार व्यय करना चाहिये। हो सकता है कि उपभोक्ता ऐसा न कर पाये। व्यवहारिक जीवन म इसके लागू होने म बहुत सी कठिनाइया उत्पन्न होती हैं जो निम्न हैं :—

(१) **उपभोक्ता की लापरवाही व अज्ञानता :**—बहुत से व्यक्तियों को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि उनको अमुक वस्तु से इतनी उपयोगिता प्राप्त होती है और अमुक से इतनी। कुछ व्यक्ति जानबूझ कर इस नियम की अवहेलना करते हैं और विभिन्न वस्तुओं की उपयोगिताओं के अनुमान लगाने की परवाह ही नहीं करते। उनको जब किसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव होती है तब ही उसको खरीद डालते हैं चाहे उनके पास अन्य आवश्यकताओं के लिये पैसा रहे या न रहे या उसकी अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकतायें अतृप्त रह जायें।

समसीमांत उपयोगिता नियम की कठिनाइयां एवं सीमायें :—

१ उपभोक्ता की लापरवाही व अज्ञानता।
२ रीति-रिवाज तथा फैशन।
३ मूल्य परिवर्तन।
४ वस्तुओं के विभाजन में असुविधा।
५. वस्तुओं की अपर्याप्तता।
६. धन की सीमान्त उपयोगिता में परिवर्तन।

(२) **रीति रिवाज तथा फैशन :**—सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को अनेकों रीति-रिवाजों और प्रथाओं का पालन करना पड़ता है चाहे उनकी उसके लिये कोई उपयोगिता हो या न हो।। ऐसी प्रथायें हमारे भारतवर्ष में बहुत ही अधिक प्रचलित हैं। मृत्यु पश्चात भोज देना आवश्यक है चाहे ऋण लेकर किया जाय। व्यक्ति को अपनी अन्य आवश्यक आवश्यकतायें छोड़ कर ऐसे कार्यों पर व्यय करना पड़ता है। वह अपने साधनों का ठीक उपयोग नहीं कर सकता और उसका आचरण इस नियम के प्रतिकूल चला जाता है। यही बात फैशन के सम्बन्ध में सही है। फैशन से प्रभावित होकर व्यक्ति को ऐसी वस्तुओं का उपभोग करना पड़ जाता है जिनकी उपयोगिता बहुत कम होती है।

(३) **मूल्य परिवर्तन :**—विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों में समय पर परिवर्तन होते रहते हैं और उपभोक्ता के व्यय का वह क्रम भंग हो जाता है जो उसने एक बार तय किया था। उसको प्राथमिकता सारिणी दुबारा बनानी पड़ती है और वस्तुओं की मात्रा में पुनः हेर फेर करना पड़ता है। इस कठिनाई और परेशानी से बचने के लिये उपभोक्ता इस नियम का पालन करना ही छोड़ देता है।

(४) **वस्तुओं के विभाजन में असुविधा**—कुछ वस्तुयें ऐसी होती

हैं जैसे मोटर जिनको कि हम छोटी छोटी इकाईयों मे नही बाट सकते है जिसमे कि उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता की तुलना अन्य छोटी-छोटी इकाईयो की वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता की तुलना से नहीं की जा सकती। अतः इस नियम के प्रयोग मे असुविधा हो जाती है।

(५) **वस्तुओ की अपर्याप्तता :**—कुछ वस्तुयें ऐसी होती हैं जो कि कन्ट्रोल या राशन के समय आसानी से प्राप्त नहीं हो सकतीं और यदि प्राप्त होती भी हैं तो अधिक खर्च करना पड़ता है। अत उपभोक्ता इन वस्तुओ के स्थान पर अन्य वस्तुओ का उपभोग करने लगता है। अत इस नियम के प्रयोग म कठिनाई होती है।

(६) **धन की सीमान्त उपयोगिता मे परिवर्तन :**—जैसे-जैसे हम वस्तुओ की इकाई खरीदते जाते हैं वैसे ही हमारे लिए धन की सीमान्त उपयोगिता बढ जाती है, जिससे नियम के पालन म परेशानी होती है।

उपरोक्त कठिनाइयों से तात्पर्य नही निकालना चाहिये कि समसीमात उपयोगिता नियम पूर्णतया काल्पनिक है। छोटी छोटी मात्रा मे धन व्यय करते समय भले ही उपभोक्ता इस नियम को ध्यान म न रखे परन्तु यदि व्यय की जाने वाली रकम बहुत ज्यादा है तो वह व्यय की विभिन्न मदो से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओ की अवश्य ही तुलना करेगा और उस वस्तु को पहले खरीदेगा जिससे उपयोगिता अधिक मिलती है। प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति जाने या अनजाने, इस नियम के अनुसार ही आचरण करता है।

प्रश्न ३२—आपको १६ रुपये तीन वस्तुओं क, ख ग पर जिनकी सीमात उपयोगितायें नीचे दर्ज हैं व्यय करने हैं। वस्तुओ की प्रत्येक इकाई का मूल्य १ रु० है। बतलाइये इन तीनों वस्तुओं पर आप किस प्रकार धन व्यय करेगे।

(क) १००, ९०, ७८, ६८, ६०, ५०, ४२

(ख) ८०, ७६, ७०, ६८, ५२, ४०, २८

(ग) ७६, ६४, ५४, ४६, ३९, ३०, २०

(You are asked to spend a sum of Rs 16 on three Commodities—A, B and C whose marginal utilities are given below Show how will you spend the money on these commodities, if each unit of the commodities costs Rs 1/- each)

(A) 100, 90, 78, 68, 60, 50, 42
(B) 80, 76, 70, 68, 52, 40, 28
(C) 76: 64, 54, 46, 38, 30, 20

उत्तर—

दिये हुए प्रश्न मे वस्तुओ की प्रत्येक इकाई का मूल्य १ रु० है और हमको कुल १६ रु० व्यय करने हैं। इस प्रकार हम तीनो वस्तुओ की कुल १६ इकाईया खरीद सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन १६ रुपयो को विभिन्न वस्तुओ के क्रय करने मे किस प्रकार प्रयोग किया जाय कि हमको अपने व्यय से अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो।

समसीमांत उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) के अनुसार व्यय करके एक उपभोक्ता अपनी आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। इस नियम के अनुसार दिये हुए धन से अधिकतम सतुष्टि तभी प्राप्त हो सकती है **जबकि प्रत्येक वस्तु पर व्यय की जाने वाली द्रव्य की अन्तिम इकाई की उपयोगिता समान अथवा लगभग समान हो।** इस सिद्धान्त को ध्यान मे रख कर १६ रुपयों को तीनो वस्तुओ पर निम्न प्रकार व्यय किया जायगा :—

रुपये की इकाईया	व्यय की वस्तु			प्राप्त उपयोगिता
पहली	१०० क (१)			१००
दूसरी	९० क (२)			९०
तीसरी		८० ख (३)		८०
चौथी	७८ क (४)			७८
पाँचवी		७६ ख (५)		७६
छठी			७६ ग (६)	७६
सातवीं		७० ख (७)		७०
आठवी	६८ क (८)			६८
नवी		६८ ख (९)		६८
दसवीं			६४ ग (१०)	६४
ग्यारहवी	६० क (११)			६०
बारहवी			५४ ग (१२)	५४
तेरहवी		५२ ख (१३)		५२
चौदहवी	५० क (१४)			५०
पन्द्रहवी			४६ ग (१५)	४६
सोलहवी	४२ क (१६)			४२
व्यय की गई इकाईया	७	५	४	१०७४ इकाईया

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि हम क वस्तु की ७, ख वस्तु की ५ और ग वस्तु की ४ इकाइयाँ खरीदेंगे। क वस्तु पर व्यय किये जाने वाले पाँचवें रुपये की सीमान्त उपयोगिता ५२ और ग वस्तु पर व्यय होने वाले सातवें रुपये की सीमान्त उपयोगिता ४२ है, ग वस्तु पर व्यय किये जाने वाले चौथे रुपये की सीमान्त उपयोगिता ४६ इकाई है। ४२, ४६, ५२ उपयोगितायें लगभग समान हैं। इस क्रम से व्यय करने पर हमको १०७४ इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है। यह उपयोगिता अधिकतम है। यदि हम किसी और क्रम से वस्तुओं का क्रय करें तो हमारी कुल उपयोगिता प्रत्येक दशा में १०७४ से कम ही होगी। मान लीजिए हम क वस्तु पर १ रुपया कम अर्थात् ६ रुपये व्यय करें और ख वस्तु पर १ रुपया अधिक अर्थात् ६ रुपये व्यय करें तो हमको ४२ उपयोगिता की कमी और ४० इकाई उपयोगिता की वृद्धि होती है अर्थात् कुल उपयोगिता (१०७४—२)=१०७२ इकाइयाँ रह जावेंगी। इस बात को व्यय क्रम में अन्य परिवर्तन करके दिखाया जा सकता है। प्रत्येक दशा में कुल उपयोगिता १०७४ इकाइयों से कम ही होगी।

अध्याय १७

उपभोक्ता की बचत

प्रश्न ३३—'उपभोक्ता की बचत' का क्या अर्थ है? यह कैसे उदय होती है? इसके अध्ययन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(What is the meaning of 'Consumers Surplus' ? How does it arise ? Discuss the utility of this concept)

उत्तर—

'उपभोक्ता की बचत' का विचार अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम प्रोफेसर मार्शल ने प्रस्तुत किया था। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार जब हम किसी वस्तु की एक से अधिक इकाइयों का उपभोग करते हैं तब उत्तरोत्तर इकाइयों में उपयोगिता बराबर कम होती जाती है। वस्तु की आखिरी इकाई की सीमान्त उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर होती है। वस्तु के लिये दी जाने

वाली कीमत उपभोक्ता द्वारा वस्तु को प्राप्त करने मे त्याग की गई उपयोगिता के बराबर है। सीमांत इकाई से हमको उतनी ही उपयोगिता प्राप्त होती है जितनी कि मूल्य के रूप मे त्याग की जाती है। सीमांत इकाई से पूर्व की इकाईयो से हमको त्याग की अपेक्षा अधिक उपयोगिता मिलती है क्योंकि बाज़ार मे वस्तु की प्रत्येक इकाई का मूल्य समान होता है। इसलिये सीमांत इकाई को छोडकर प्रत्येक पूर्व की इकाईयो पर उपभोक्ता को उपयोगिता की बचत प्राप्त होती है। इसी को अर्थशास्त्र मे 'उपभोक्ता की बचत' कहते हैं। अत किसी वस्तु से प्राप्त सन्तुष्टि और उस वस्तु को खरीदने मे व्यय हुई सन्तुष्टि के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं। प्रो० जे० के० मेहता के शब्दो म **"किसी वस्तु के उपभोग से मिलने वाली सन्तुष्टि और उस वस्तु को पाने के लिए किए गए त्याग के अन्तर को ही उपभोक्ता की बचत कहते हैं"** (**Consumers Surplus obtained by a person from a commodity is the difference between the satisfaction which he derives from it and which he for goes in order to procure that commodity**)

वस्तु सीमांत की इकाई के अतिरिक्त पूर्व की प्रत्येक इकाई के लिये उपभोक्ता अधिक मूल्य देने को तैयार होता है परन्तु वास्तव मे वह प्रत्येक के लिये एक समान मूल्य देता है। इस प्रकार उसको कुछ द्रव्य की बचत हो जाती है जो कि अन्य वस्तुओं के खरीदने मे व्यय हो सकती है। अत एक वस्तु के प्राप्त करने के लिये जो मूल्य हम देने को तैयार होते हैं और जो वास्तव मे हम देते हैं के अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं। प्रो० मार्शल ने इस विचार की निम्न परिभाषा दी है :—

"किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता जो कीमत इस वस्तु के लिए देने को तैयार होता है, और जो कीमत वह वस्तु को देता है, उनका अन्तर ही इस तृप्ति का आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता की बचत कह सकते हैं" (**The excess of the price** ***which he would be willing to pay rather than go without thing,*** ***over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus satisfaction"*** **Marshall.**) एक प्यासा व्यक्ति एक गिलास पानी के लिये ५ रु० देने को तैयार है इससे ज्यादा वह इसका मूल्य नहीं दे सकता परन्तु वास्तव मे वह उसको एक आने मे मिल जाता है तो उस व्यक्ति की उपभोक्ता की बचत ४ रु० १५ आ० होगी।

उपभोक्ता की बचत का उदय निम्न कारणों से होता है :—

(१) उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार उपयोगिता के क्रमश. घटने की प्रवृत्ति ।

(२) वस्तु के मूल्य का सीमान्त उपयोगिता के बराबर होना ।

(३) वस्तु की प्रत्येक इकाई का मूल्य समान होना ।

उदाहरण —मान लीजिये बाजार मे प्रति टोपी कीमत ५ आना है और एक व्यक्ति क्रमश घटती उपयोगिता नियम के अनुसार पहली टोपी के लिये ३० आना, दूसरी के लिये २० आना, तीसरी के लिये १० आना, चौथी के लिये ५ आना और पाँचवी के लिये २ आना देने को तैयार है। वह पहली तीन टोपियाँ बगैर हिचक के खरीद लेगा क्योंकि उनमे उसे ५ आने से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है, वह चौथी टोपी भी खरीद लेगा क्योंकि ऐसा करने से उसको कोई हानि नहीं है। किन्तु वह पाचवी टोपी नहीं खरीदेगा क्योंकि इससे उसको तीन आने के बराबर उपयोगिता की हानि होगी। उसको ६५ आने उपयोगिता प्राप्त होगी और २० आने की उपयोगिता का त्याग करना पड़ेगा। अत उसकी उपभोक्ता की बचत ४५ आने के बराबर है।

निम्न तालिका द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

इकाई की सख्या (टोपी)	प्रति इकाई उपयोगिता (आनो मे)	प्रति इकाई मूल्य	उपयोगिता की बचत (आनों में)
१	३०	५	२५
२	२०	५	१५
३	१०	५	५
४	५ सीमान्त	५	०
५	२ इकाई	५	

उपभोक्ता की बचत को निम्न समीकरण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है :—

उपभोक्ता की बचत = कुल उपयोगिता – (सीमान्त उपयोगिता × उपभोग-इकाईयो की सख्या)

$= ६५ - (५ \times ४) = ४०$ आने।

चित्र द्वारा निरूपण

आयतों के रंगे हुए भाग प्रत्येक इकाई से उपभोक्ता की बचत को प्रदर्शित करते हैं।

उपभोक्ता की बचत का महत्व—सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टिकोण से उपभोक्ता की बचत का अर्थशास्त्र में बड़ा महत्व है। अपने दैनिक जीवन में हम इसका अनुभव करते हैं। हम समाचार-पत्र केवल २ आने में देकर खरीदते हैं, दियासलाई के लिये हम १ आना देते हैं, पोस्ट-कार्ड के लिये हम तीन पैसे देते हैं परन्तु इन चीजों को प्राप्त करने को हम बहुत कुछ देने को तैयार हो जायेंगे। अतः **उपभोक्ता की बचत का विचार हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करता है कि वस्तु की उपयोगिता उसके लिए किए गए त्याग से अधिक होती है।**

वित्त मंत्री भी नये कर लगाते समय या पुराने करों में वृद्धि करते समय इस विचार का आश्रय लेता है। **कर उन्हीं वस्तुओं पर लगाने चाहियें जिनसे पर्याप्त मात्रा में उपभोक्ता को बचत प्राप्त होती है।** जिन वस्तुओं से यह बचत कम होती है, उन पर कर लगाने से लोग दुखी होते हैं।

यदि हमें किसी जाति अथवा देश के निवासियों के भौतिक कल्याण व रहन-सहन के दर्जे का अध्ययन करना है तो हमें उस देश के लोगों की उपभोक्ता की बचत को देखना होगा। **जिस देश में उपभोक्ता की बचत अपेक्षाकृत कम है वहां के निवासी सुखी नहीं कहे जा सकते हैं।** अफ्रीका आदि देश इसी प्रकार के हैं। इनके विपरीत योरोप व अमरीका के देश में उपभोक्ता की बचत बहुत अधिक है।

एकाधिकारी व्यापारी (Monopolist) अपनी वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करते समय इस बचत की सहायता लेकर अपने मूल्यों को घटाता बढ़ाता है। अगर उसकी वस्तु में उपभोक्ताओं को काफी बचत प्राप्त हो रही है तो वह उसका मूल्य बढ़ाकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करेगा। इसके विपरीत अगर बचत कम है तो वह मूल्य में कोई

वृद्धि नहीं करेगा अन्यथा उपभोक्ताओं मे उसके प्रति असन्तोष उत्पन्न हो जायेगा।

किसी देश को उसके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से क्या लाभ प्राप्त होता है, इसका माप उपभोक्ता की बचत द्वारा किया जा सकता है। **किसी वस्तु के आयात से उस वस्तु के उपभोग मे पहले की अपेक्षा उपभोक्ता की बचत जितनी बढ गई है उतना ही उस वस्तु के आयात व्यापार से लाभ हुआ।**

अध्याय १८

मॉंग और पूर्ति

प्रश्न ३४—मांग किसे कहते हैं ? मांग का नियम समझाइये और इसका उपयोगिता ह्रास नियम से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

(What is demand ? Explain the law of demand, and show its relationship with the law of Diminishing Utility)

उत्तर :—

माग किसी वस्तु को प्राप्त करने की उस इच्छा को कहते हैं जो उस वस्तु को प्राप्त करने के साधन तथा उन साधनो को उस वस्तु की प्राप्ति के लिये दे देने की तत्परता से सयुक्त होती है। दूसरे शब्दो मे प्रभावोत्पादक इच्छा **(Effective desire)** को माग कहते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि 'मॉंग' और 'आवश्यकता' दोनो पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु ऐसा नहीं है, **आवश्यकता और मॉंग मे अन्तर है। इन दोनों को व्यक्त करने के तरीके में अन्तर है।** माग सदैव एक विशेष मूल्य पर होती है, आवश्यकता बिना मूल्य के व्यक्त की जाती है। मान लो एक व्यक्ति रेडियो खरीदना चाहता है, उसके खरीदने के लिये उसके पास धन भी है और वह उस धन को व्यय करने को भी तैयार है तो यह कहा जायेगा कि उसको रेडियो की *आवश्यकता* है। किन्तु यह कहने के लिए कि उसको रेडियो की माग है, यह व्यक्त करना होगा कि उसको अमुक मूल्य पर रेडियो की माग है। वह कह सकता है कि मुझे ३०० रुपया पर रेडियो की माग है। अत स्पष्ट है कि **मांग सदा मूल्य सापेक्ष होती है जबकि आवश्यकता को व्यक्त करने के लिये मूल्य को नहीं बतलाया जाता है।**

माग के लिये चार बातो का होना आवश्यक है —

(१) किसी वस्तु की इच्छा

(२) वस्तु प्राप्त करने के लिए पर्याप्त साधन

(३) साधनो को देकर वस्तु प्राप्त करने की तत्परता

(४) वस्तु का एक निर्दिष्ट मूल्य ।

अत '**किसी वस्तु को निर्दिष्ट मूल्य पर प्राप्त करने की उस इच्छा को जिसकी सन्तुष्टि के लिये व्यक्ति के पास आवश्यक साधन और उन साधनो को व्यय कर डालने की तत्परता हो, माग कहते हैं"।**

दूसरे अर्थ मे माग शब्द से तात्पर्य किसी वस्तु की विशेष मूल्य पर मांगी हुई मात्रा से है' प्रो० बेनहम के शब्दो मे "**किसी वस्तु की मांग से वस्तु की उस मात्रा का बोध होता है जो किसी विशेष कीमत पर, किसी विशेष समय मे खरीदी जायेगी" (The demand for anything at a given price, is the amount of it which will be bought per unit of time at that price.)** प्रो० कैरनीज की परिभाषा मे उपरोक्त दोनो ही अर्थों का समावेश है। उनके अनुसार "यह सप्रमाणिक माग होती है और उस मात्रा द्वारा सूचित होती है जो एक दी हुई कीमत पर लोग खरीदने को तैयार हैं" ।

माग का नियम (Law of Demand) :—

मांग का नियम बतलाता है कि किसी वस्तु की कीमत के घटने से वस्तु की मांग बढ जाती है और उसकी कीमत बढने से मांग घट जाती है। अर्थात वस्तु की कीमत और माग मे उल्टा सम्बन्ध है—कीमत बढ जाने से मांग कम हो जाती है और कीमत कम होने से माग बढ जाती है। प्रो० मार्शल के अनुसार "**कीमत गिरने से मांग बढती है और कीमत ऊपर उठने से मांग घटती है"** माग और मूल्य का सम्बन्ध बच्चो के खेलने के (**Sea-Saw**) से अच्छा समझा जा सकता है। जब एक सिरे पर बैठा हुआ बच्चा नीचे आता है तो दूसरे सिरे पर बैठा हुआ बच्चा ऊपर उठ जाता है और जब दूसरा नीचे आता है तो पहला ऊपर उठ जाता है। ठीक यही बात मांग और मूल्य की है। माग की प्रवृत्ति इस प्रकार की है कि उसमे कीमत की विपरीत दशाओ मे परिवर्तन होते हैं। माग की इसी प्रवृत्ति को अर्थशास्त्र मे 'माग का नियम' कहा जाता है।

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि माग मे कीमत की विपरीत दशा मे परिवर्तन होते हैं, इसका अर्थ यह नही कि मांग-मूल्य और मांगी गई

मात्रा म समान अनुपात म ही घट बढ हो। एक वस्तु के २०% मूल्य बढ जाने पर यह आवश्यक नही कि उसकी मांग २०% कम हो जाय। कभी इससे ज्यादा या कम भी हो सकती है। माग का नियम तो एक प्रवृति का द्योतक है। अगर अन्य बातें जैसे उपभोक्ता की रुचि फैशन, आमदनी, व्यवसाय, स्थानापन्नो की कीमत, समय आदि पूर्ववत रह तो वस्तु के मूल्य म परिवर्तन होने स उसकी माग म विपरीत दशा म परिवर्तन होन की प्रवृति होगी। यही माग का नियम है।

माग नियम का उपयोगिता ह्रास नियम से सम्बन्ध : माग नियम क्रमगत उपयोगिता ह्रास नियम से ही निकला है। उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार *ज्यो ज्यो एक व्यक्ति किसी वस्तु का उपभोग करता जाता है त्यो २* इसके लिये वस्तु की अगली इकाईयो की उपयोगिता कम होती जाती है अर्थात वस्तु की सीमांत उपयोगिता गिरती जाती है। वस्तु का मूल्य उसकी सीमात उपयोगिता के बराबर होता है। इसलिए ज्यो ज्यो अधिक इकाईया खरीदी जाती है वस्तु की उपयोगिता म ह्रास होने के कारण वह उस वस्तु की अगली इकाईयो के लिये कम मूल्य देने को तैयार होता है। दूसरे शब्दा म वह किसी वस्तु की अधिक मात्रा कम मूल्य पर खरीदेगा। इसके विपरीत यदि सीमात उपयोगिता बढ जाती है तो उसका थोडी सी मात्रा मोल लेकर ही अपनी खरीद बन्द करनी पडगी क्योकि द्रव्य की सीमात उपयोगिता तथा वस्तु की सीमात उपयोगिता शीघ्र ही बराबर हो जाती है। इसलिये अधिक मूल्य पर कम मात्रा मोल ली जाती है। अत माग का नियम उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है।

प्रश्न ३५—मांग की लोच का क्या अर्थ है ? मांग की लचक को प्रभावित करने वाली बातो को बताइये।

(What is elasticity of Demand ? State the factors which govern the elasticity of demand)

उत्तर :—

माग के नियम के अनुसार जब किसी वस्तु की कीमत बढ जाती है तो उसकी माग कम हो जाती है और उसकी कीमत घट जाती है तो माग म वृद्धि हो जाती है। **मूल्य मे परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माग मे परिवर्तन हो जाने की प्रवृति को 'मांग की लचक' कहते हैं।** डा० केरनक्रास **(Dr. Cairncross)** के शब्दो म **"किसी वस्तु की माग की लोच उस तेजी को दिखाती है जिससे कि कीमतो मे परिवर्तनों के साथ खरीदो**

जाने वाली मात्रा में परिवर्तन होते हैं" (The elasticity of demand for a commodity in the rate at which the quantity bought changes as the price changes)

लोच के प्रकार :—किसी वस्तु की माँग की लोच निम्न पाँच प्रकार की हो सकती है :—

माँग की लोच के प्रकार —
१ पूर्णतया बेलोचदार—माग ।
२. पूर्णतया लोचदार माग ।
३. अधिक लोचदार माग ।
४ लोचदार माँग ।
५ सामान्य लोचदार माँग ।

(१) पूर्णतया बेलोचदार माँग :—जब मूल्य मे घट-बढ़ होने पर भी किसी वस्तु की माँग में कोई परिवर्तन नही होता तब उस वस्तु की माग पूर्णतया बेलोचदार कही जाती है परन्तु इस प्रकार की माग कोरी कल्पना मात्र है और व्यवहार मे ऐसी माग नही पाई जाती । मूल्य परिवर्तन पर वस्तु की माँग मे कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य ही होता है चाहे वह कितना ही कम क्यो न हो ।

(२) पूर्णतया लोचदार माँग :—मूल्य अपरिवर्तित रहते हुए भी यदि वस्तु की माग मे बहुत घट-बढ हो, तो वस्तु की माँग को पूर्णत: लोचदार कहा जायगा । यह अवस्था भी केवल सैद्धांतिक है और व्यवहार मे किसी वस्तु की भी माग ऐसी नही होती ।

(३) अधिक लोचदार माँग :—जब मूल्य मे थोडी सी घट-बढ मे माग मे बहुत अधिक कमी या वृद्धि हो जाय तब माग को अधिक लोचदार कहा जाता है । ऐसी स्थिति मे माग मे परिवर्तन मूल्य के परिवर्तन से अधिक अनुपात मे होता है । बहुधा विलासिता के पदार्थों की माग ऐसी ही होती है ।

(४) लोचदार माँग :—लोचदार माग वाली वस्तुओ की माग मे परिवर्तन लगभग उसी अनुपात मे होता है जिस अनुपात मे उनके मूल्य मे परिवर्तन हुआ हो । साधारणत आरामदायक पदार्थों की माँग लोचदार हुआ करती है ।

(५) बेलोचदार या सामान्य लोचदार माँग :—कुछ वस्तुओ की माग मे मूल्य के परिवर्तन से बहुत कम अनुपात मे परिवर्तन होता है । ऐसी माग को बेलोचदार या सामान्य लोचदार माग कहा जाता है । अगर नमक का मूल्य दूना हो जाये या आधा रह जाये, तो भी नमक की माग उतनी ही रहेगी क्योकि नमक का प्रयोग सदैव एक निश्चित मात्रा मे ही होता है ।

माँग की लोच के प्रकारों का चित्र द्वारा निरूपण —
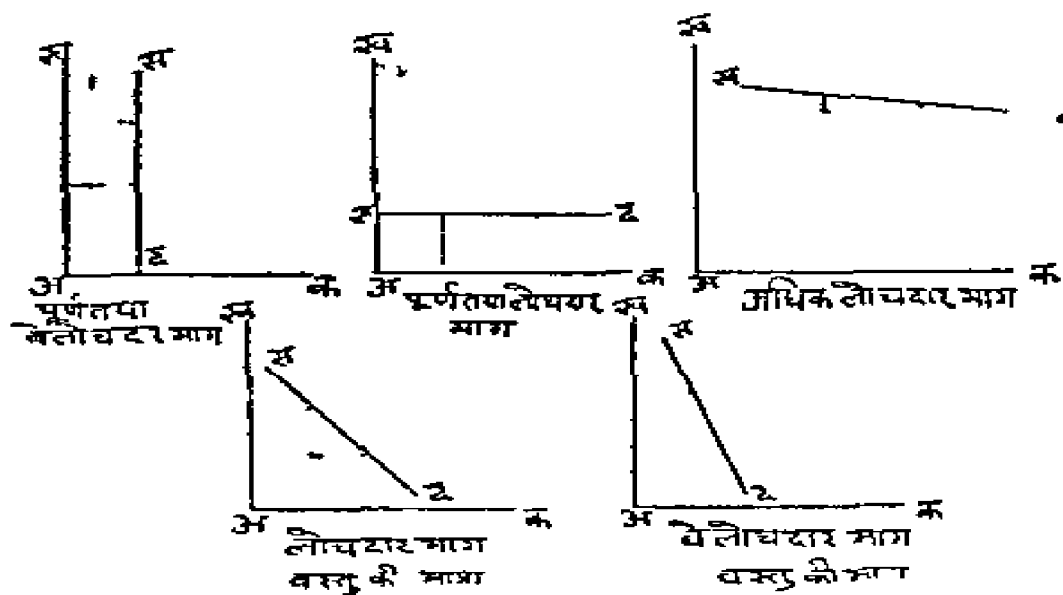
माग की लोच को प्रभावित करने वाली बातें —

निम्न वस्तुओं की माँग की लचक म विभिन्नता के कारण निम्न है —

(१) आवश्यकता के भेद —आवश्यकता पदार्थों की माँग प्राय बहुत कम लचकीली होती है आरामदायक पदार्थों की माग लोचदार और विलासिताओं की माग बहुत लोचदार होती है। नमक आवश्यक पदार्थ है इसके मूल्य म बहुत अधिक वृद्धि होने पर, इसके उपयोग म थोड़ी ही कमी कर पायेंगे। इसी प्रकार नमक का मूल्य बढ जाने पर हम अधिक नमक खाना आरम्भ नहीं करेंगे। परन्तु विलासिताओं का मूल्य कम या अधिक होने पर उनकी माग म काफी विस्तार या सकुचन हो जाता है। आरामदायक पदार्थ बीच की वस्तुयें हैं और इनकी माग की लोच साधारण होती है। यहा पर यह ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकताओं का यह वर्गीकरण सापेक्ष है।

> **माँग की लोच को प्रभावित करने वाली बातें —**
>
> १ आवश्यकता के भेद।
> २ वस्तु के अनेक प्रयोग।
> ३ स्थानापन्न की उपलब्धि।
> ४ मूल्य स्तर।
> ५ वस्तु पर व्यय आय का अनुपात।
> ६ माग का स्थगन।
> ७ उपभोक्ता की रुचि आदत व स्वभाव।
> ८ सम्पत्ति का वितरण।

(२) **वस्तु के अनेकों प्रयोग :**—जिस वस्तु के बहुत से उपयोग हो सकते हैं उसकी मांग अधिक लोचदार होती है। मूल्य बढ़ने पर इसका उपयोग कम आवश्यक कार्यों से हटा दिया जायगा और घटने पर कम आवश्यक के लिए भी प्रयोग शुरू हो जाता है। जैसे बिजली, यदि यह सस्ती हो जाय तो इसका उपयोग पखा, हीटर, रेफ्रीजेरेटर, प्रेस, कुकर आदि मे होने लगेगा अन्यथा इसका उपयोग केवल रोशनी करने तथा अन्य आवश्यक उपयोगो तक सीमित रहेगा और माग मे कमी हो जायेगी।

(३) **स्थानापन्न की उपलब्धि :**—उन वस्तुओ की मांग जिनके स्थानापन्न उपलब्ध होते हैं लोचदार होती हैं। काफी का मूल्य बढ जाने पर लोग चाय का प्रयोग करने लगेंगे और काफी की माग कम हो जायगी। इसी प्रकार चाय की कीमत बढ जाने पर लोग काफी पीना शुरू कर देंगे और चाय की मांग कम हो जायेगी।

(४) **मूल्य-स्तर :**—मांग की लचक बहुत अधिक और बहुत कम मूल्य पर बेलोचदार होती है। अधिक कीमत की वस्तु को जैसे हीरे की अगूठी, चाहे इसका मूल्य कम हो या अधिक, समाज के केवल अमीर व्यक्ति ही खरीदते हैं और माग पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता है। दूसरे यदि वस्तु की कीमत इतनी कम है कि गरीब से गरीब व्यक्ति ने आवश्यकतानुसार खरीद लिया है तो और अधिक मूल्य कम होने पर इसकी माग नही बढेगी। मध्यम श्रेणी की वस्तुओ की माग लोचदार होती है।

(५) **वस्तु पर व्यय आय का अनुपात :**—यदि वस्तु पर मनुष्य की आमदनी का ज्यादा भाग खर्च होता है तो वस्तु की माग लोचदार और बहुत थोडा भाग व्यय होता है तो माग बेलोचदार होती है। उदाहरण के लिये नहाने का साबुन, इस पर आय का बहुत ही छोटा अश व्यय किया जाता है, इसकी माग बेलोचदार होगी। परन्तु कपडे पर व्यक्ति की आय का एक बडा अश व्यय होता है, मूल्य बढने पर, कपडे का प्रयोग कम हो जायेगा और घटने पर बढ जायेगा अत कपडे की माग लोचदार होगी।

(६) **मांग का स्थगन :**—जिन वस्तुओ की मांग को भविष्य के लिये स्थगित किया जा सकता है, उसकी मांग लोचदार होती है और जिन वस्तुओ का उपभोग स्थगित नही किया जा सकता, उनकी माग बेलोचदार होती है। जूतो की कीमत मे वृद्धि हो जाने पर, उपभोक्ता कुछ दिन के लिये जूते पहनने को टाल कर सकता है, वह अपने पुराने जूतो की मरम्मत करा कर प्रयोग मे ले आये। ऐसी स्थिति मे जूतो की मांग लोचदार हुई।

(७) **उपभोक्ता की रुचि, आदत व स्वभाव :**—ऐसी वस्तुयें जिनके प्रति उपभोक्ता की रुचि है या जिनको उपभोग करने की आदत पड गई है, इनकी माग बेलोचदार होती है। ऐसी वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि या कमी होने पर उपभोक्ता इनको उसी मात्रा मे प्रयोग करते हैं और माग पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता। चाय का मूल्य बढ जाने पर भी, चाय का आदी व्यक्ति चाय पीना कम नही करेगा। इसलिये चाय की मांग बेलोचदार हुई। परन्तु जिन वस्तुओ का उपभोक्ता आदी नही, उनकी माग लोचदार होती है क्योंकि मूल्य बढने पर उनका प्रयोग आसानी से कम किया जा सकता है।

(८) **सम्पत्ति का वितरण :**—धन के समान वितरण से माग की लोच बढ जाती है और असमान वितरण से माग की लोच कम हो जाती है। सम्पत्ति का वितरण जितना समान होगा उतनी ही व्यक्तियों की क्रय-शक्ति समान होगी और मल्य परिवर्तन का समाज के समस्त लोगो पर समान प्रभाव पडेगा। वितरण असमान होने पर एक ओर समाज मे निर्धन व्यक्ति होंगे और दूसरी ओर धनिक व्यक्ति। दोनो ही व्यक्तियो की माग की लचक कम होती है।

—०—

प्रश्न ३६—'मांग की लचक' की पूर्ण व्याख्या कीजिये। मांग की लचक का (अ) करारोपण और (ब) एकाधिकार लाभों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(State and explain fully the Elasticity of demand. Consider the effect of elasticity of demand on (a) Taxation and (b) monopoly profits.)

उत्तर :—

प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न न० ३५ का उत्तर देखिये।

(अ) अर्थशास्त्र मे वस्तु की माग की लचक का बडा महत्व है। वित्त-मन्त्री कर लगाने या कर वृद्धि करते समय वस्तु विशेष की माग की लचक का अध्ययन अवश्य करता है। कर लगाने मे वस्तु की कीमत बढ जाती है। अगर बेलोचदार माग वाली वस्तु पर कर लगाया जायेगा तो मूल्य वृद्धि होने पर भी उसकी मांग कम नही होगी और करो से राज्य को काफी आमदनी हो सकती है। इसके विपरीत लोचदार मांग की वस्तु पर कर लगाने से उसकी मांग कम हो जायेगी और राज्य की आय कम हो जायेगी। दियासलाई की माग बेलोचदार है, राज्य उस पर टैक्स लगा कर, काफी आय प्राप्त करता

है। रेडियो की माग लोचदार है, इन पर टैक्स लगाने से मूल्य बढ़ जाने के फलस्वरूप, इनकी माग कम हो जायेगी और टैक्सो से आय भी कम हो जायेगी। अत लोचदार माँग की वस्तुओ पर टैक्स कम और बेलोचदार माग की वस्तुओ पर अधिक लगाया जाता है।

(व) एकाधिकारी का उद्देश्य अपने एकाधिकार लाभो को अधिकतम करना होता है। यदि वस्तु लोचदार माग वाली है तो वह वस्तु का मूल्य नीचा रख कर, माग का विस्तार करके लाभ कमाता है और यदि वस्तु की माग बेलोचदार है तो वह उसका मूल्य ऊचा रख कर अधिकतम लाभ प्राप्त करता है। लोचदार माँग वाली वस्तु का मूल्य ऊचा रखने से उसकी बिक्री कम हो जायेगी और उसके कुल लाभ अधिकतम नही हो पायेंगे। ऐसी वस्तुओ का मूल्य वह नीचा रखता है जिससे उसकी बिक्री बढ़े और उसका कुल लाभ बढ़ जाये।

प्रश्न ३७—पूर्ति क्या है ? पूर्ति के नियम को तालिका व चित्र द्वारा समझाइये।

(What is supply ? Explain the Law of supply with the help of a suitable schedule and diagram)

उत्तर :—

पूर्ति (supply

साधारण भाषा मे 'पूर्ति' शब्द से किसी वस्तु के कुल स्टाक या कुल उत्पादन से अर्थ लगाया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र मे इस शब्द का एक विशिष्ट अर्थ है। अर्थशास्त्र म **पूर्ति का अर्थ किसी वस्तु की उस मात्रा से लिया जाता है जो कि विक्रेता किसी खास कीमत पर किसी खास समय बेचने को तैयार हो।** वस्तु के स्टाक (Stock) और वस्तु की पूर्ति (Supply) दोनो अलग-अलग वस्तुयें हैं। स्टाक से तात्पर्य वस्तु की उस कुल मात्रा से है जो किसी विशेष समय बाजार मे व्यापारियो के गोदामो मे रखी हुई है परन्तु पूर्ति किसी वस्तु की वह मात्रा है जो किसी विशेष मूल्य पर किसी विशेष समय उस स्टाक मे से बिकने के लिए प्रस्तुत है। मान लीजिए मण्डी मे १००० मन चना का सग्रह है। १५) रुपया प्रति मन के भाव पर व्यापारी ८०० मन चना बेचने को तैयार है। हम कहेगे कि १००० मन चने का स्टाक है और १५ रुपया प्रति मन के भाव पर ८००० मन चने की पूर्ति है। उपरोक्त मे यह भी विदित हो जाता है कि जैसे माग का मूल्य के बिना कोई अर्थ नही

है उसी प्रकार पूर्ति और मूल्य भी साथ-साथ जुड़े हुए हैं। पूर्ति सदैव किसी निश्चित मूल्य पर हुआ करती है।

पूर्ति का नियम (Law of Supply) —

मांग के नियम के अनुसार ही पूर्ति का नियम भी वस्तु की पूर्ति और उसके मूल्य के सम्बन्ध को बतलाता है। पूर्ति का नियम बतलाता है कि **यदि अन्य बातें समान रहे तो किसी वस्तु की कीमत मे वृद्धि होने से उसकी पूर्ति मे भी वृद्धि हो जाती है और कीमत मे कमी होने से उसकी पूर्ति भी कम हो जाती है।** अत किसी वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति मे सीधा (Direct) सम्बन्ध है। पूर्ति और मूल्य म साथ साथ एक ही दिशा मे परिवर्तन होते ह। मूल्य बढने पर पूर्ति क्यो बढती है ? हो सकता है कि कम मूल्य पर केवल थोडे से ही ऐसे व्यक्ति हो जिनका उत्पादन व्यय उस मूल्य से प्राप्त हो सकता है परन्तु जब मूल्य बढते हैं तो बहुत से नये उत्पादनकर्त्ता उस वस्तु की पूर्ति (उत्पादन) बढा देंगे क्योकि मूल्य बढने से उनका उत्पादन व्यय निकल आयेगा। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। अत कीमत बढने पर मण्डी मे वस्तु की पूर्ति बढ जाती है ? जब मूल्य घटते हैं तो वस्तु की पूर्ति क्यो घट जाती है ? जब मूल्य घटते हैं तो उन उत्पादनकर्ताओ को जिनका उत्पादन व्यय पहले ठीक कीमत के बराबर था अब उनको हानि होने लगेगी और वे वस्तु की पूर्ति कम कर देगे। मूल्यो के घटने के साथ साथ यह क्रम बढता ही रहता है। अत मूल्य घटने पर वस्तु की पूर्ति कम हो जाती है।

उदाहरण —मान लीजिये कि १० रुपया प्रति मन के भाव पर ३००० मन चने की पूर्ति है। यदि भाव १२ रुपया प्रति मन हो जाये तो पूर्ति के नियम के अनुसार पूर्ति भी बढ जायेगी मान लीजिये पूर्ति ४०० मन हो जाती है। इसी प्रकार विभिन्न मूल्यो पर बाजार मे वस्तु की क्या पूर्ति होगी यह निम्न पूर्ति तालिका (Supply Schedule) द्वारा दिखाया जा सकता है —

पूर्ति की तालिका

मूल्य (रु० मे)	वस्तु की पूर्ति (मनो म)
१०	३००
१२	४००
१४	६००
१६	८००
१८	१२००
२०	१५००

चित्र —उपरोक्त तालिका को चित्र द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है —
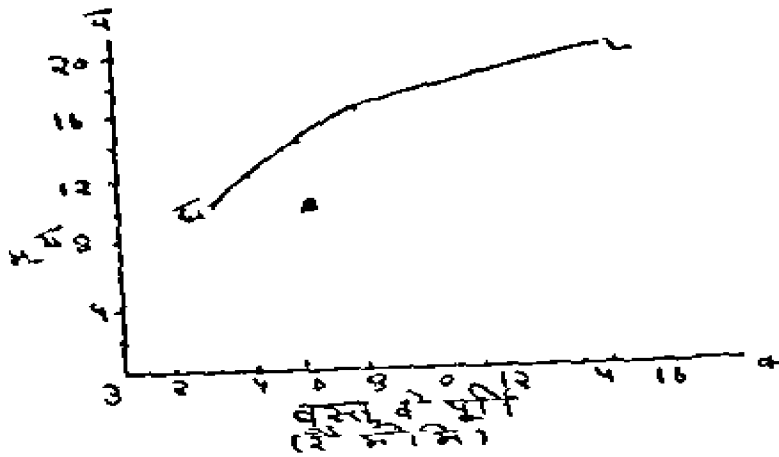
यह रेखा पूर्ति का वक्र है यह मूल्यो मे वृद्धि के साथ नीचे से ऊपर की ओर बढ़ रही है।

प्रश्न ३८—पूर्ति की लचक को समझाइये तथा इसके भेद भी कीजिये और उन बातो को लिखिये जिन पर पूर्ति की लचक निर्भर होती है।

(Explain the meaning and types of the Elasticity of supply Also mention the factors affecting the Elasticity of supply)

उत्तर —

मांग की लचक की भांति पूर्ति की भी लचक होती है और इसलिए पूर्ति की लचक की परिभाषा इस प्रकार कर सकते है कि **मूल्य के घटने और बढ़ने से पूर्ति की मात्रा मे घटने बढने की प्रवृति को ही पूर्ति की लचक कहते हैं।"** मांग की लोच की भांति पूर्ति की लोच को भी पांच भागो मे बांट सकते हैं जो निम्न प्रकार से हैं —

(१) **लोचदार पूर्ति** —जब वस्तु के मूल्य और उसकी पूर्ति मे आनुपातिक परिवर्तन होते हैं तो उसे लोचदार पूर्ति कहते हैं।

(२) **अधिक लोचदार पूर्ति** —जब वस्तु की पूर्ति के अनुपात मे परिवर्तन मूल्य के परिवर्तन के अनुपात मे अधिक होता है तो उसे अधिक लोचदार पूर्ति कहते हैं।

(३) कम लोचदार पूर्ति :—जब वस्तु की पूर्ति के अनुपात में परिवर्तन मूल्य के परिवर्तन के अनुपात से कम होता है तो उसे कम लोचदार पूर्ति कहते हैं।

पूर्ति की लोच के भेद :—

1. लोचदार पूर्ति।
2. अधिक लोचदारपूर्ति।
3. कम लोचदार पूर्ति।
4. पूर्णतया लोचदार पूर्ति।
5. पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति।

(४) पूर्णतया लोचदार पूर्ति :—जब वस्तु के मूल्य मे कोई परिवर्तन न होने पर पूर्ति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं तो उसे पूर्णतया लोचदार पूर्ति कहते हैं।

(५) पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति – जब वस्तु के मूल्य मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाने पर पूर्ति मे कोई परिवर्तन नही होता है तो उसे पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माँग की लचक की भांति पूर्ति की लचक के पांच प्रमुख भेद हैं। अब हम पूर्ति की लचक को प्रभावित करने वाली बातों को विस्तार से देखेंगे।

पूर्ति की लचक को प्रभावित करने वाली बातें :—

(१) वस्तु का स्वभाव —जो वस्तुयें टिकाऊ हैं उनकी पूर्ति लोचदार तथा जो शीघ्र नष्ट होने वाली हैं उनकी पूर्ति बलोचदार होती है क्योंकि मूल्य के घटने और बढने पर प्रथम वर्ग की वस्तुओं की पूर्ति बढाई या घटाई (आगे के लिए उठाकर रखकर) जा सकती है जबकि द्वितीय वर्ग की वस्तुओं की पूर्ति मे परिवर्तन आसानी से नहीं किया जा सकता है।

पूर्ति की लचक को प्रभावित करने वाली बातें :—

1. वस्तु का स्वभाव।
2. वस्तुओं के उत्पादन मे लागत व्यय का स्वभाव।
3. वस्तुओं की पूर्ति का समय।
4. वस्तु के उत्पादन का ढग।

(२) वस्तुओं के उत्पादन मे लागत व्यय का स्वभाव :— यदि वस्तु का उत्पादन क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो अधिक मात्रा मे उत्पत्ति करने से वस्तु का उत्पादन व्यय बढ जाता है तो ऐसी स्थिति मे पूर्ति कम लोचदार होती है। परन्तु इसके विपरीत यदि वस्तु का उत्पादन

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो अधिक मात्रा में उत्पत्ति करने से वस्तु का उत्पादन व्यय कम हो जाता है तो ऐसी स्थिति मे पूर्ति लोचदार होगी।

(३) **वस्तुओ की पूर्ति का समय** —वस्तुओ की पूर्ति के समय पर भी पूर्ति की लोच निर्भर करती है। यदि अल्प काल मे वस्तुओ के मूल्य बढने पर पूर्ति नही बढाई जा सकती है तो पूर्ति बेलोचदार होगी परन्तु यदि वस्तुओं के मूल्य मे दीर्घकालीन वृद्धि हो तो पूर्ति बढाई जा सकती है तब पूर्ति लोचदार होगी।

(४) **वस्तु के उत्पादन का ढंग** :—वस्तु के उत्पादन के ढग पर भी पूर्ति की लचक निर्भर करती है। यदि उत्पादन का ढग सरल एव सीधा है अर्थात जिसमे अचल पूजी कम मात्रा मे प्रयोग होती है तो ऐसी दशा मे वस्तु के मूल्य बढने पर पूर्ति आसानी से बढाई जा सकती है तो पूर्ति लोचदार कहलायेगी। परन्तु इसके विपरीत यदि उत्पादन का ढंग कठिन एव जटिल है अर्थात जिसमे अचल पूंजी का अधिक मात्रा मे प्रयोग होता है तो ऐसी दशा मे वस्तु के मूल्य बढने पर पूर्ति आसानी से नही बढाई जा सकती। तब पूर्ति बेलोचदार कहलायेगी।
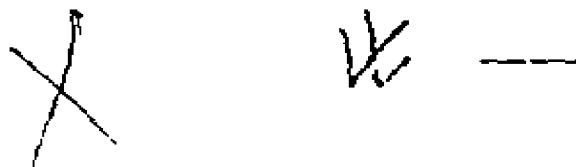
अध्याय १९

पारिवारिक बजट

प्रश्न ३९—परिवारिक बजट क्या है ? किसी (अ) गृहस्थी (ब) अर्थशास्त्री तथा (स) समाज सुधारक के लिये इसका क्या उपयोग है ?

(What are family budgets ? How is their study beneficial to (a) House holder (b) Economist and (c) Social reformer ?)

उत्तर :—

किसी व्यक्ति या सस्था के एक निश्चित समय के आय-व्यय विवरण को बजट कहते है। जब यह आय-व्यय विवरण एक परिवार द्वारा बनाया जाता है तो इसे पारिवारिक बजट कहते है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसको अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष की प्राप्ति हो। इस उद्देश्य प्राप्ति

के लिये वह अपना व्यय बड़े विवेकपूर्ण ढंग से करता है। वह अपनी आय और व्यय का ब्यौरा रखकर यह निश्चित करता है कि व्यय का कौन सा क्रम सबसे अधिक सन्तोष प्रदान करेगा। आय व्यय के ऐसे ब्यौरे एक निश्चित समय के लिये ही बनाये जाते हैं। अतः **किसी परिवार की किसी विशेष अवधि में होने वाली आय और व्यय के विस्तृत विवरण को पारिवारिक बजट कहते हैं।** इससे यह विदित हो जाता है कि उस परिवार की आमदनी कितनी है, उस परिवार में कितने सदस्य हैं, व्यय किन २ पदार्थों पर हुआ है, कुछ बचत है अथवा नहीं। यद्यपि कोई विशेष नियम तो नहीं है कि पदार्थों का वर्गीकरण किस प्रकार से हो फिर भी बजट बनाने के लिये कुल व्यय को इस प्रकार बांटते हैं—खाना, कपड़ा, मकान, रोशनी, लकड़ी, शिक्षा स्वास्थ्य, मनोरञ्जन, अन्य खर्चे और बचत इत्यादि।

पारिवारिक बजटों का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि उनसे बहुत सी उपयोगी सूचनायें प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश में पारिवारिक बजटों का विधिवत अध्ययन किया जाने लगा है।

गृहस्थी के लिए —

(अ) पारिवारिक बजट किसी गृहस्थी के लिये बहुत ही लाभदायक है बजट उसे उसकी आमदनी और खर्चे की सही जानकारी देता है और वह जान सकता है कि उसको कुछ बचत भी हो रही है अथवा नहीं। बचत के अभाव में वह अपने व्यय का निरीक्षण फालतू मदों पर व्यय कम कर सकता है। वह यह भी जान सकता है कि वह आवश्यक वस्तुओं पर अधिक व्यय कर रहा है या विलासिताओं की वस्तुओं पर। अगर अनिवार्यताओं की अपेक्षा विलासिताओं पर व्यय अधिक है तो वह शीघ्र ही इस दोष को दूर कर सकता है। वह विभिन्न मदों पर अपनी आय को सोच विचार कर बांट लेता है और प्रत्येक मद पर व्यय हुए द्रव्य की सीमान्त इकाई से लगभग समान उपयोगिता प्राप्त करके अधिकतम सन्तोष का उपभोग कर सकता है। अपने कई वर्षों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन करके एक गृहस्थी यह पता लगा सकता है कि उसके जीवन स्तर में समय-समय पर क्या परिवर्तन हुआ है।

अर्थशास्त्री के लिए —

(ब) पारिवारिक बजटों का अध्ययन अर्थशास्त्रियों के लिये भी बड़ा महत्वपूर्ण है। ये अर्थशास्त्री को बतलाते हैं कि समाज के कौन-कौन से वर्ग किस प्रकार की आवश्यकताओं पर कितना व्यय करते हैं। देश के विभिन्न भागों में अथवा विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का रहन-सहन का स्तर क्या है,

यह ऊंचा उठ रहा है या गिर रहा है। यदि लोग आवश्यक आवश्यकताओं पर अपनी आय का कम भाग व्यय करते हैं और आराम और विलासिताओं पर अधिक। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि समाज का रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो रहा है। पारिवारिक बजट ही रहन-सहन की लागत (Cost of living) मालूम करने के लिये एक मात्र साधन हैं। श्रमिकों की वेतन वृद्धि इन्हीं के आधार पर तय की जाती है। व्यक्तियों की बचत के आधार पर उनकी कर देय क्षमता भी पारिवारिक बजटों के अध्ययन से मालूम हो सकती है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन और सरकारी नीतियों का उपभोक्ताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह बजटों के अध्ययन से मालूम किया जा सकता है। पारिवारिक बजटों का अध्ययन करके अर्थशास्त्रियों ने अनेकों नियमों का प्रतिपादन किया है। डा० ऐंजिल का उपभोग का नियम ऐसे ही नियमों में प्रमुख है।

राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक के लिए :—

(घ) राजनीतिज्ञ और समाज सुधारकों के लिए पारिवारिक बजट बहुत उपयोगी होते है। बजटों के अध्ययन से वे व्यक्तियों के व्यय की भिन्न २ मदों को जान सकते हैं जिन पर रुपया व्यर्थ खर्च किया जा रहा है या अनिश्चित ढंग से व्यय किया जा रहा है। वह जान सकता है कि विभिन्न वर्ग विलासिता पर, नैतिक दृष्टि से हानिकारक वस्तुओं पर, धार्मिक व सामाजिक कुप्रथाओं पर, हानिकारक मनोरञ्जन पर कितना खर्च कर रहे हैं। ऐसे व्यर्थ के व्यय को रोकने के लिए समाज सुधारक अपना प्रयत्न शुरू कर देता है। व्याख्यान आदि देकर वे व्यक्तियों के सामने आदर्श व्यय प्रणाली को रख सकता है, या कानून बनवाकर ऐसे अपव्यय को रोक सकता है। पारिवारिक बजट उन्हें अपना दृष्टिकोण सिद्ध करने के लिये पर्याप्त सामिग्री प्रदान करते हैं। इसी प्रकार राजनीतिज्ञ भी हानिकारक वस्तुओं पर कर लगाकर उनके उपभोग को बंद या कम करा सकते हैं। भारतवर्ष में औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों के बजटों का अध्ययन करके यह पता लगा कि वे अपनी आय का एक बड़ा भाग शराब पीने पर व्यय करते है। इस दोष को दूर करने के लिये भारत सरकार ने शराब बंदी (Prohibition) की नीति को देश में लागू किया है।

पारिवारिक बजट का नमूना

नाम व पता...

सदस्यों की संख्या (आयु सहित)......पुरुष....स्त्री..........लड़के......

लड़कियां.................

आय...... ....

अवधि.....................

व्यय की मद	वस्तु की मात्रा	दर	व्यय की राशि	कुल व्यय	विशेष विवरण
१ भोजन					
२ वस्त्र					
३ मकान					
४. रोशनी व ईंधन					
५ विविध—					
शिक्षा					
स्वास्थ					
मनोरंजन					
यात्रा					
अन्य					
बचत					

प्रश्न ४०—ऐंजिल के उपभोग नियम की व्याख्या कीजिये और समझाइये।

या

"आय जितनी अधिक होती है, आवश्यक वस्तुओं पर उतना ही प्रतिशत व्यय होता है" इस कथन को समझाइये।

(State and explain the Engel's Law of consumption)

Or

("As the income increase the percentage expenditure on necessities diminishes" Discuss this statement)

उत्तर :—

डा० ऐंजिल जर्मनी के निवासी थे। सन् १८५७ में उन्होंने जर्मनी के प्रशिया प्रांत के निवासियों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन करके उपभोग सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष निकाले और एक सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह सिद्धांत 'ऐंजिल का उपभोग का नियम' नाम से विख्यात है।

पारिवारिक बजटों के अध्ययन के लिये डा० ऐंजिल ने समस्त परिवारों को तीन भागों में विभाजित किया था। (१) ४५ पौं० से ६० पौं० आय वाले परिवार अर्थात श्रमिक परिवार (२) ६४ पौं० से १२० पौं० आय वाले परिवार अर्थात मध्यम श्रेणी के परिवार और (३) १५० पौं० से २०० पौं० आय वाले परिवार अर्थात धनी परिवार। इन पारिवारिक बजटों के गहरे अध्ययन से डा० ऐंजिल ने निम्न निष्कर्ष निकाले।

(i) *जैसे २ आय बढ़ती है, भोजन पर प्रतिशत व्यय घटता जाता है* और आय घटने से बढ़ता जाता है।

(ii) आय में परिवर्तन होने पर भी वस्त्र, रोशनी, ईंधन और किराये पर व्यय का प्रतिशत लगभग स्थिर रहता है।

(iii) आय बढ़ने पर शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि पर व्यय का प्रतिशत बढ़ता है और आय में कमी होने से घटता है।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर ऐंजिल के उपभोग के नियम की इस प्रकार परिभाषा दी जा सकती है —

"ज्यों २ किसी व्यक्ति की आय बढ़ती है, त्यों २ भोजन पर व्यय किये जाने वाली आय का प्रतिशत घटता जाता है, वस्त्र, मकान, व ईंधन रोशनी पर लगभग स्थिर रहता है और शिक्षा, स्वास्थ और मनोरंजन आदि पर बढ़ता जाता है।

यहाँ यह बात याद रखने योग्य है कि आय बढ़ने से भोजन पर व्यय होने वाला आय का प्रतिशत घटता है न कि भोजन पर व्यय की गई कुल धन राशि। यही बात नियम के अन्य निष्कर्षों के विषय में सही है। **नियम का सम्बन्ध किसी विशेष मद पर व्यय की गई कुल धन-राशि से नहीं बल्कि कुल आय के प्रतिशत भाग से है जो उस पर व्यय होता है।** मानाकि एक परिवार की आय १००) रु० महीना है। यह परिवार भोजन पर ५०) रु० व्यय करता है जो कुल आय का ५०% है। अब यदि उस परिवार की आय २००) रु० मासिक हो जाय तो वह भोजन पर अधिक व्यय करने लगेगा। मानलीजिये वह ८०) रु० व्यय करता है जो कि कुल आय का ४०% है। यहाँ भोजन पर व्यय की जाने वाली आय की प्रतिशत तो कम हो गई परन्तु धन-राशि ५०) रु० से बढ़ कर ८०) रु० हो गई है। इसका कारण है कि आय बढ़ जाने पर व्यक्ति अधिक नहीं खाने लगता है बल्कि थोड़ा अपेक्षाकृत अच्छा खाने लगता है। कितने ही तरह की सब्जी बनती हैं और फल दूध इत्यादि का सेवन होने लगता है। इस कारण भोजन पर

व्यय की जाने वाली कुल धन-राशि तो बढ़ जाती है पर कुल आय का प्रतिशत गिरने लगता है।

परन्तु जो बात भोजन के विषय में सत्य है वह वस्त्र, मकान, ईंधन और रोशनी पर लागू नहीं होती। इन पर व्यय होने वाला आय का प्रतिशत लगभग समान रहता है। आय वृद्धि से पहले अगर हम मिट्टी के तेल का लैम्प जला रहे थे तो अब लालटैन जलाने लगेंगे, पहले अगर किसी छोटे मकान मे रह रहे थे तो अब एक बड़े मकान मे रहने लगेंगे इत्यादि। परन्तु यह सत्य है कि व्यय की प्रतिशत समान ही रहती है। इन सब उपरोक्त आवश्यकताओं को सतुष्ट करने के बाद मे गरीब लोगो के पास अमीरो की अपेक्षा बहुत ही कम धन शेष रहता है। इस कारण गरीब व्यक्तियों का शिक्षा, स्वास्थ्य व मनोरञ्जन आदि पर व्यय अधिक नहीं हो पाता। दूसरे क्योंकि अमीरों के पास काफी धन बच रहता है, वे इन आवश्यकताओं पर अधिक व्यय करते हैं। आय बढने पर गरीब अपनी भोजन, मकान, वस्त्र, ईंधन आदि की आवश्यकताओं को थोड़ा और अच्छी प्रकार से पूर्ण कर लेता है परन्तु उसके पास इतना पैसा नहीं बचता कि वह विलासिताओं और आरामदायक पदार्थों का सेवन कर सके। डा० ऐंजिल का नियम निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है :—

व्यय की मद	कुल आय का व्यय किया गया प्रतिशत		
	श्रमिक वर्ग	मध्यम वर्ग	धनिक वर्ग
(१) भोजन	६०	५५	५०
(२) वस्त्र	१८	१८	१८
(३) मकान	१२	१२	१२
(४) ईंधन व रोशनी	५	५	५
(५) शिक्षा स्वास्थ्य मनोरंजन आदि	५	१०	१५
	१००%	१००%	१००%

अध्याय २०

आय व्यय और बचत

प्रश्न ४१—"आय, व्यय और बचत का अर्थ स्पष्ट कीजिये। 'सामाजिक दृष्टिकोण से व्यय की अपेक्षा बचत सदैव अच्छी है" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? समझाकर लिखिये।

(Explain clearly the meaning of Income, Expenditure and Saving. "From the social point of view savings are always better than expenditure". Do you agree with this statement? Explain.)

उत्तर—

आदि काल में मनुष्य की आवश्यकतायें प्रत्यक्ष रूप में संतुष्ट होती थीं। अपनी आवश्यकताओं की समस्त वस्तुओं को वह स्वयं ही उत्पन्न कर लिया करता था। आज स्थिति बदल गई है। समय और सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ मनुष्यों की आवश्यकतायें इतनी अधिक हो गई हैं कि वह अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुयें स्वयं उत्पन्न नहीं कर पाता है। वह परिश्रम करके धन उपार्जन करता है और उस धन से अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदता है। **अतः आय से तात्पर्य उस धन से है जो हमें एक समय विशेष में आर्थिक प्रयासों के फलस्वरूप प्राप्त होता है।** अब आवश्यकताओं की संतुष्टि प्रयत्नों से प्रत्यक्ष रूप में न होकर आय से जो द्रव्य के रूप में होती है, उसके माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से होती है। आय एक निधि (Fund) नहीं बल्कि प्रवाह (flow) है जिसका उद्गम स्थान आर्थिक प्रयत्न है।

आय प्राप्त करके व्यक्ति उसको अपनी आवश्यकताओं की अनेकों वस्तुओं के खरीदने में उपयोग करता है। **आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन का प्रयोग करना ही व्यय कहलाता है।** व्यक्ति अपनी आय को दो प्रकार से प्रयोग करता है—(अ) व्यक्तिगत कार्यों में और (ब) सामाजिक कार्यों में। मनुष्य की आय का अधिकांश भाग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयुक्त होता है। वह समस्त आय को केवल वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही नहीं लगाता, कुछ आय को भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी शेष रख लेता है। भविष्य अनिश्चित है और उसकी

सुरक्षा हेतु कुछ बचाना प्रत्येक विचारशील और दूरदर्शी व्यक्ति का कर्तव्य है। अतः **आय का वह भाग जो वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय किया जाता है, व्यय कहलाता है।** शेष आय को दो प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। व्यक्ति उसे जमीन मे गाड कर या अलमारी या तिजोरी म बद करके रख दे या सोना चादी खरीद कर रखदे या वह उसे किसी बैंक, बीमा कम्पनी या व्यापारी को व्याज पर उधार दे दे या किसी कम्पनी के हिस्से खरीदने मे लगा दे। प्रथम को आय का अनुपादक (Unproductive) प्रयोग और द्वितीय को आय का उत्पादक (Productive) प्रयोग कहेग। **आय का वह भाग जो उत्पादक कार्यों मे प्रयोग किया जाये बचत' (Saving) कहलाता है, उसका वह भाग जो अनुत्पादक ही रहता है अर्थात किसी प्रकार की अतिरिक्त धन उत्पत्ति मे कोई सहायता नहीं देता, 'सचय' (Hoarding) कहलाता है।**

उदाहरणार्थ एक मनुष्य की आय ५००) रुपया मासिक है वह ४०० रु० प्रति मास अपनी वतमान आवश्यकताओ पर खर्च कर डालता है और १००) रु० मासिक भविष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु बचा लेता है। उस व्यक्ति का व्यय ४००) रु० मास है। उसकी बचत १००) रु० प्रति मास होगी यदि वह इन १००)रु० को इस प्रकार प्रयोग करे कि उसको अतिरिक्त आय की प्राप्ति हो। मानलीजिये वह ६०) रु० प्रति मास बैंक मे जमा कर देता है या किसी कम्पनी के शेयर खरीदने मे व्यय कर देना है और शेष ४०) रुपयो को वह जमीन म गाड कर रख लेता है या अपनी स्त्री के गहने बनवा देता है, या तिजोरी म बन्द कर देता है। तो उसकी बचत ६०) रुपया प्रति मास और सचय ४०) रुपया प्रति मास होगा।

सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति की आय का कुछ भाग सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति पर भी व्यय होना है। सामाजिक व्यय के दो प्रकार है—ऐच्छिक और अनिवार्य। सार्वजनिक पार्क, अस्पताल, स्कूल, धर्मशाला, अनाथालय आदि के निर्माण हेतु दान करना, एच्छिक सामाजिक व्यय है। दान देना हमारी इच्छा पर निर्भर है। इसके विपरीत व्यक्ति राज्य को कुछ कर देता है। राज्य उसके लिय शातिपूर्वक और सुव्यवस्थित स्थिति मे धनोपार्जन करने की सुविधायें उत्पन्न करता है और वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण को बढाने का प्रयास करता है। करो की अदायगी हमारी इच्छा पर निर्भर नही करती बल्कि उनको अनिवार्य रूप मे देना पडता है। ऐसा व्यय अनिवार्य सामाजिक व्यय कहलाता है।

व्यय और बचत का सामाजिक महत्व :—

उपरोक्त से स्पष्ट है कि व्यय और बचत व्यक्ति की आय के दो रूप हैं। वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आय के प्रत्यक्ष उपयोग को व्यय कहते हैं और भविष्य की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये आय के उत्पादक उपभोग को बचत कहते हैं। व्यय उपभोग से सम्बन्धित है और बचत का उत्पत्ति से। अब, प्रश्न उठता है कि सामाजिक दृष्टिकोण से व्यय अधिक महत्वपूर्ण है या बचत ?

व्यय और बचत दोनो एक दूसरे पर आधारित हैं। यदि व्यक्ति अपनी आय के अधिक भाग को उपभोग करता है तो उसके पास बचाने के लिए कम शेष रह जायेगा। यदि वह बचत अधिक करता है तो उसकी वर्तमान की आवश्यकतायें कम संतुष्ट हो पायेगी। बचत करना व्यक्ति के लिये आवश्यक है। व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर बचत काम देती है। पहले की बचत से ही बीमारी, बेकारी तथा विशेष खर्च के अवसर पर काम निकाल सकते हैं। बचत होने के लिये व्यक्ति की आय का उसके उपभोग से अधिक होना आवश्यक है। यही नही, सामाजिक दृष्टिकोण से इन दोनो का विशेष महत्व है। परन्तु कुछ व्यक्ति व्यय को अधिक महत्वपूर्ण समझते है और दूसरे बचत को।

अधिक व्यय करने से समाज मे वस्तुओं की माँग बढ़ती है, माग बढ़ने से उत्पादनकर्ता उसकी उत्पत्ति बढ़ा देते हैं। व्यापार की वृद्धि होती है। जनता का रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठता है माँग और बढ़ती है, उत्पादन भी और बढ़ता है उत्पादन बढ़ने से देश मे लोगो को काम मिलता है। व्यापारी वर्ग और उद्योगपतियों को लाभ होता है। परन्तु ये लोग यह भूल जाते हैं कि अगर आय का अधिक भाग व्यय कर दिया जायेगा तो बचत कम हो जायेगी और पूंजी की कमी हो जायेगी। अगर पूंजी का संचय कम हो जायेगा तो उत्पादन की कथित वृद्धि केवल सोचना मात्र है।

दूसरी ओर कुछ व्यक्ति बचत को अधिक महत्वपूर्ण बतलाते हैं। अधिक बचत होने से अधिक पूंजी का निर्माण होगा, अधिक उत्पत्ति होगी, बेकारी दूर होगी, लोगो की आमदनी बढ़ेगी और जीवन स्तर ऊंचा उठेगा। परन्तु अगर ध्यान से सोचा जाये तो यह मत भी गलत है। अधिक बचत का अर्थ है व्यय कम हो जाना, इसलिये अगर अधिक बचत के फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होती है तो इसका उपभोग कौन करेगा। व्यय कम हो जाने के कारण व्यक्तियो की माँग कम हो जायेगी। उत्पन्न किया हुआ माल बाजार मे नही

बिकेगा। फलतः अति उत्पत्ति की समस्या सामने आयेगी, और उत्पादकों को हानि होने लगेगी। उद्योग बद कर दिये जायेंगे और बेकारी फैल जायेगी।

इस प्रकार न अधिक व्यय उपयुक्त है और न अधिक बचत ही। असल में बचत और व्यय में न्यायानुकूल अनुपात होना चाहिये। ऐसा होना सामाजिक दृष्टिकोण से हितकर ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। यदि व्यय न किया जाये तो उत्पन्न किया हुआ माल कौन खरीदेगा और यदि बचत न की जाये तो उपभोग के लिये माल कैसे तैयार होगा। बचत और व्यय दोनों को साथ २ चलना चाहिये।

अध्याय २१

व्यय का सामाजिक पहलू

प्रश्न ४२—व्यक्तिगत आय के व्यय करने के ढंग का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या समाज द्वारा व्यक्ति की व्यय करने की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप उचित है?

(What are the effects of an individual's expenditure on society? Is the interference of society in individual's expenditure freedom to opened desirable?)

उत्तर—

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रभाव परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में समाज के दूसरे लोगों पर पड़ता है। अतः उसके व्यय करने की नीति का भी समाज पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। अगर उसका व्यय विवेकपूर्ण है तो उसके व्यय करने के ढंग को अन्य व्यक्ति भी अपना सकते हैं और उसके साथ उनका भी भला हो जायगा और सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी। यदि व्यक्ति असावधानी से अपनी आय को व्यय करता है तो उसकी कार्य क्षमता कम हो जायगी और उत्पादन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसको देख कर अन्य व्यक्तियों का व्यय भी असावधानी से होने लगेगा। और समाज में कुल धन उत्पादन कम हो जायगा। व्यक्ति तो सबसे पहले अपने स्वार्थ को देखता है, समाज को पीछे। वह उस

आवश्यकता को पहले पूर्ण करेगा जिससे उसे अधिक सन्तोष की प्राप्ति होती है चाहे समाज के अन्य सदस्यों के लिये उसका उपभोग हानिकारक ही क्यों न हो।

उदाहरण यदि कोई व्यक्ति शराब पीने लगता है तो उसकी कार्य-क्षमता गिर जाती है, उसका चारित्रिक पतन होने लगता है। कार्यशक्ति कम होने से उत्पादन कम हो जाता है और उस सीमा तक वह अपने गलत व्यय के कारण समाज को निर्धन बनाता है। यही नहीं, शराबी के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी शराबी बन जायेंगे, उनकी भी कुशलता कम हो जायगी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार इत्यादि बढ़ जायेंगे। इस प्रकार समाज का कल्याण बजाये बढ़ने के गिरने लगेगा। इसके विपरीत यदि व्यक्ति व्यय को बहुत ही सोच समझकर, स्वास्थ्यप्रद और उत्तम वस्तुओं पर करता है तो वह स्वयं और अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियों की कुशलता मे वृद्धि करके, सामाजिक हित को बढ़ा सकता है। अतः समाज के लिये यह बड़े ही महत्व की बात है कि व्यक्ति अपनी आय को किस प्रकार व्यय करता है।

व्यक्ति के व्यय से समाज मे उत्पत्ति का स्वभाव निर्धारित होता है। केवल वही वस्तुयें उत्पन्न होती हैं जिनकी उपभोग के लिये माग है। मांग के स्वभाव से ही उत्पत्ति का पैमाना तय होता है। जिस वस्तु पर अधिक व्यय हो रहा है अर्थात जिस वस्तु की माग अधिक है उसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है अन्यथा छोटे पैमाने पर और इसी प्रकार वस्तु की लागत प्रति इकाई कम या अधिक हो जाती है। यही नहीं, उत्पत्ति की कुल मात्रा श्रमिकों की कुशलता पर निर्भर करती है जो स्वयं इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति का व्यय किस प्रकार की—हानिप्रद अथवा स्वास्थ्यवर्धक—वस्तुओं पर होता है। हानिप्रद वस्तुयें कार्य-क्षमता कम करके, धन उत्पादन कम कर देती हैं और स्वास्थ्यवर्धक वस्तुयें कार्य-क्षमता मे वृद्धि करके, उत्पादन को बढ़ा देती हैं। भारतवर्ष मे शराब बंदी नीति अपनाये जाने का एक प्रमुख कारण, मजदूरों की कार्य-क्षमता पर शराब के बुरे परिणाम थे।

व्यक्तिगत व्यय में राजकीय हस्तक्षेप:—

कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि व्यक्ति को अपने व्यय मे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। वह अपनी आय का उपभोग किसी भी ढग से और किन्ही भी वस्तुओं के उपभोग मे कर सकता है। परन्तु यदि कोई अपना व्यय अविवेकपूर्ण ढग से करता है तो राज्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उस व्यय के कुप्रभावों को रोकने के लिये उसके व्यय पर नियन्त्रण करे।

दूसरे अर्थशास्त्रियों का विचार है कि व्यक्तिगत व्यय पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये। परन्तु ऐसा करना उचित प्रतीत नही होता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग उसकी आदत, स्वभाव, फैशन, रीति रिवाज, जीवन स्तर आदि पर निर्भर करता है। अत उपरोक्त दोनो मतो के बीच का ही मार्ग अपनाना उचित है। **व्यक्ति को उसके व्यय करने मे उसी सीमा तक स्वतन्त्रता होनी चाहिये जिस सीमा तक कि उसका समाज पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।**

हस्तक्षेप की नीतियां :—राज्य का समाज द्वारा व्यक्ति की व्यय करने की स्वतन्त्रता मे कितने ही प्रकार से हस्तक्षेप किया जा सकता है। राज्य **कानून बना कर** ऐसी वस्तुओ का उपभोग निषेध कर देती है जो समाज के लिए हानिकारक हैं जैसे शराब। विदेशो मे ऐसे कितने ही नियम लागू किये गये। आजकल भारतवर्ष मे मद्य–निषेध (Probibition) की नीति इसीलिये अपनाई गई है। **मूल्य नियन्त्रण द्वारा** भी राज्य कुछ वस्तुओ को उपभोक्ताओं के लिये सस्ती ही सुलभ करा देता है। अन्न की कमी दूर करने के लिये राज्य ने गल्ले के दाम निश्चित करके **राशनिंग की व्यवस्था** चालू करदी थी। कुछ वस्तुयें जैसे कोकीन, अफीम, भाग, चरस आदि केवल **लाईसेंस** प्राप्त व्यक्ति बेच सकते हैं और यह प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिलती हैं। अफीम एक निश्चित मात्रा से केवल उन व्यक्तियों को मिलती है जिनके पास अफीम के राशन कार्ड हैं। **कर लगा कर** भी वस्तुओ के उपभोग को कम या अधिक किया जा सकता है। राज्य जिन वस्तुओ पर व्यय कम कराना चाहती है उन पर उत्पादन कर बढा देती हैं जैसे तम्बाकू। इसी प्रकार विदेशी वस्तुओं के उपभोग को कम कराने के लिये राज्य आयात कर (Import duty) लगा देती है। राज्य जिन वस्तुओ के उपभोग को बढाना चाहता है उनके उत्पादन के लिये उद्योगो को **आर्थिक सहायता** प्रदान करती है जिससे उनकी लागत कम हो जावे और उसकी माग बढ जावे। भारतवर्ष मे लघु व कुटीर उद्योग धधो (Small scale and cottage industries) के प्रोत्साहन को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है जिससे उनको प्रोत्साहन मिले और उनकी वस्तुओं का उपभोग बढे।

अध्याय २२

रहन सहन का स्तर

प्रश्न ४३—रहन-सहन के दर्जे का क्या आशय है ? भारतवासियों का रहन सहन का स्तर नीचा होने के क्या कारण हैं ? उसको ऊंचा करने के उपाय बताइये।

(What is meant by 'Standard of Living' ? What are the causes of the low standard of living of Indians ? Define ways to raise it)

उत्तर—

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कुछ अनिवार्य आरामदायक और विलासिता सम्बन्धी पदार्थों का सेवन करता है। इन वस्तुओ का सेवन करते-करते व्यक्ति इनका आदी हो जाता है। यही समस्त वस्तुयें जिनके उपभोग करने का एक व्यक्ति आदी हो जाता है उसके जीवन स्तर को निर्धारित करती है। **दूसरे शब्दो मे रहन-सहन के दर्ज से उन आवश्यकताओं से आशय है जिन्हे सतुष्टि करने की मनुष्य को साधारणतया आदत पड़ गई है।**

रहन-सहन के स्तर का विचार एक सापेक्ष और तुलनात्मक विचार है जिसका प्रयोग दो व्यक्तियो, दो वर्गों, दो देशो व कालो के तुलनात्मक अध्ययन मे किया जाता है। यह कहना कठिन है कि भारतवासियो का जीवन स्तर कैसा है परन्तु भारत और अन्य किसी देश या देशो के जीवन स्तर मे किसका जीवन स्तर ऊचा है यह बताना आसान है। ' जब हम यह कहते हैं कि अमेरिकावासियो का जीवन स्तर ऊचा है'' तो हमारे दिमाग म एक ऐसे देश का भी विचार रहता है जिसकी तुलना मे अमेरिकावासियो का जीवन स्तर ऊचा है।

रहन-सहन के स्तर के निर्धारक तत्व :—

रहन-सहन का स्तर मुख्यत दो बातो पर निर्भर करता है :—

(१) व्यय की जाने वाली आय की रकम

(२) व्यय करने मे प्रयुक्त विवेक

यदि अन्य बातें पूर्ववत रहे तो एक धनी व्यक्ति का जीवन-स्तर एक गरीब आदमी के जीवन-स्तर की अपेक्षा ऊचा हो सकता है क्योकि धनी व्यक्ति आय की अधिकता के कारण अधिक आवश्यकताओ को सतुष्ट कर सकता है और गरीब व्यक्ति केवल थोड़ी सी प्रारम्भिक आवश्यकतायें ही

सन्तुष्ट कर पायेगा। इसके अतिरिक्त दो बराबर आमदनी वाले व्यक्तियों में उस व्यक्ति का रहन-सहन का दर्जा ऊंचा होगा जो अपने व्यय को सावधानी और विवेक से करता है। बहुधा यह समझा जाता है कि अधिक आय वाले व्यक्ति का जीवन स्तर सदैव ऊंचा होगा और कम आय वाले व्यक्ति का जीवन स्तर नीचा होगा। परन्तु यह धारणा गलत है। रहन-सहन का स्तर आय के साथ-साथ इस बात पर भी निर्भर करता है कि व्यक्ति विशेष अपनी आय को किस प्रकार व्यय करता है। मान लीजिये हरीश को ५०० रु० प्रतिमास और सतीश को ४०० रु० प्रतिमास की आय है। साधारणतया हम कहेंगे कि हरीश का रहन-सहन का दर्जा ऊंचा होना चाहिये क्योंकि उसकी आय अधिक है जिसकी सहायता से वह अधिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। परन्तु हो सकता है कि हरीश का व्यय करने का ढंग अविवेकपूर्ण हो और सतीश अपनी आय को चतुरता से व्यय करता हो। हरीश अपनी आय का एक बड़ा भाग सिनेमा देखने, शराब पीने, होटलों में खाना खाने, तड़क भड़क के फैशनेबल कपड़े पहनने में बर्बाद कर देता है। फलस्वरूप वह न तो ठीक-सा भोजन ही कर पाता है, न दूध पीता है उसके पास इतना धन शेष नहीं रहता कि वह अपनी स्त्री व बच्चों का भरण पोषण सुचारुरूप से कर पाये हरीश के कुल उपभोग की किस्म बहुत नीची है। इसके विपरीत सतीश चतुरता से व्यय करता है। वह शुद्ध स्वास्थ्यप्रद भोजन करता है, दूध पीता है और अच्छे कपड़े पहनता है। स्त्री बच्चे भी ठीक रहते हैं। बच्चे शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। अतः सतीश का जीवन स्तर हरीश की अपेक्षा ऊंचा है।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि **खर्चीला रहन सहन का दर्जा आवश्यक रूप से ऊंचा रहन-सहन नहीं होता। (Costly living is not necessarily a high standard of living)** अगर कम आय वाला व्यक्ति अपने व्यय को चतुरता से और सोच समझकर करता है तो उससे अधिक आय वाले व्यक्ति की अपेक्षा जो लापरवाही से अपने धन को व्यय करता है, उसका रहन सहन का दर्जा अवश्य ही ऊंचा होगा।

भारतवासियों के रहन-सहन का स्तर नीचा है :—

भारतवासियों का रहन सहन का स्तर बहुत ही नीचा है। इस सम्बन्ध में दो सम्मतियां हो ही नहीं सकतीं। सन् १९५६–५७ में प्रति व्यक्ति आय २८४ रु० प्रतिवर्ष अर्थात लगभग १२ आने प्रतिदिन आंकी गई थी। इतनी कम आमदनी वालों से आज के मंहगाई के युग में जबकि रुपये की क्रय-शक्ति बहुत ही कम हो गई है, एक अच्छे रहन-सहन की कैसे आशा की जा सकती

है। इतनी आय तो जीवन रक्षक पदार्थों के लिये भी पर्याप्त नहीं, आराम-दायक और विलासिता के पदार्थ तो दूर की बात हैं। शरीर ढकने को पूरा कपडा नही मिलता, रहने के स्थान तग गदे और अस्वास्थ्यपूर्ण हैं। अधिकांश भारतीय अपने बच्चो को शिक्षा नही दे पाते और न स्वास्थ्य चिकित्सा का प्रबन्ध ही कर पाते हैं। देश की ३/४ जनता गांवो मे रहती है जहा कि जीवन स्तर शहरो की अपेक्षा और भी नीचा है।

भारतवासियो का जीवन-स्तर नीचा होने के निम्न कारण हैं :—

(१) कम आय —हम पहिले ही देख चुके हैं कि औसत भारतीय की वार्षिक आय २८४ रु० है। कम आय के कारण लोग मुश्किल से ही अपनी आवश्यकताओं को सतुष्ट कर पाते हैं। अधिकाश जन-सख्या खेती पर निर्भर है जो कि एक अनार्थिक व्यवसाय मात्र है। प्रति एकड उपज बहुत कम है। देश औद्योगिक दृष्टिकोण से अभी बहुत पिछडा हुआ है। इन्ही सब कारणों से भारतवासियो की आय बहुत कम है।

जीवन स्तर नीचा होने के कारण :—

१. कम आय।
२. अशिक्षा।
३. पैतृक ऋण।
४. सामाजिक कुप्रथायें।
५. धार्मिक विचार।
६. प्राकृतिक कारण।
७ जनसख्या की अधिकता।
८. औद्योगीकरण का अभाव।
९. साधनो के उपयोग का अभाव।
१०. उत्पादन की कमी।
११ असन्तुलित अर्थ-व्यवस्था।
१२ धन का असमान वितरण।
१३. बैंकिंग एव यातायात के साधनो की कमी।
१४ लोक उपयोगी सस्थाओं का अभाव।
१५. फैशन एव विलासिता का कुप्रभाव।

(२) अशिक्षा —अशिक्षित होने के कारण भारतवासियों का दृष्टिकोण सकुचित हो गया है। जो कुछ भी धन वे प्राप्त करते हैं अज्ञानता और अशिक्षित होने के कारण, ठीक प्रकार से प्रयोग भी नही कर पाते हैं। उनमे व्यय चातुर्य की कमी है।

(३) पैतृक ऋण :— भारतीय किसान ऋण मे ही जन्म लेता है, ऋण मे ही पलता है और ऋण में ही मर जाता है। पैतृक ऋण के अतिरिक्त किसान स्वयं भी सामाजिक रीति-रिवाजो को पालन करने के लिये वे अपनी आमदनी की कमी को पूरा करने के लिये ऋण लेता है। उसकी आमदनी का काफी भाग साहूकारों, महा-

जनों व बनियों को ब्याज देने म चला जाता है और उसके पास उसकी आवश्यकताओं पर व्यय करने को बहुत कम पैसा रह जाता है।

(४) **सामाजिक कुप्रथायें** :—हमारे देश मे कुछ ऐसी प्रथायें हैं जैसे शादी, मृत्यु या बच्चे के जन्म पर बिरादरी का भोज देना आदि, जिन पर व्यक्ति को खर्च करना ही पडता है चाहे उसकी अन्य आवश्यक आवश्यकतायें असतुष्ट रह जायें या उसको ऋण ही क्यों न लेना पडे। इस कारण व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊचा नही उठ पाता है।

(५) **भारतवासियों के धार्मिक विचार** — हिन्दू धर्म इस लोक की अपेक्षा परलोक बनाने पर जोर देता है। भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मिक सुख प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है। '**सादा जीवन उच्च विचार (Simple living and high thinking**) के आदर्श ने भौतिक उन्नति मे बहुत ही बाधा पहुँचाई है। इस आदश के अनुयायी रहन सहन के ऊचे दर्जे के पोषक नहीं।

(६) **प्राकृतिक कारण** —हमारे देश की जलवायु ऐसी है कि यहा के व्यक्तियो को अधिक साधनो की आवश्यकता नही पडती है। गर्म देश होने के कारण बडे मकान व अधिक कपडो की आवश्यकता नहीं पडती, लोग कम परिश्रम करके ही अपनी गुजर कर लेते हैं। और वे अधिक के लिये इच्छा भी नहीं करते। योरोपीय देशो के रहन-सहन के दर्जे के ऊचे होने का कारण वहां की ठडी जलवायु है।

(७) **जनसख्या की अधिकता** —भारतवर्ष की जनसख्या प्रतिवर्ष १ २% के हिसाब से बढ रही है। हर वर्ष ४० लाख व्यक्ति हमारी जन सख्या मे और बढ जाते हैं। देश मे उत्पादन की वृद्धि इतनी तेजी से नही हो रही कि इतनी बडी जनसख्या ठीक प्रकार से रह सके। बेरोजगारी बढती जा रही है। अत लोग गरीब हैं।

(८) **औद्योगीकरण का अभाव** —देश की दो तिहाई जनसख्या खेती पर निर्भर है। उद्योग धधो का विकास बहुत ही सीमित है। खेती की अवस्था कोई विशेष अच्छी नही है इसलिये प्रति व्यक्ति आय कम है और जीवन स्तर नीचा है।

(९) **साधनों के उपयोग का अभाव** :—कहा जाता है कि 'भारत एक धनी देश है जिसम निर्धन निवास करते हैं (**India is a rich country inhabiteated by the poors**)। भारत म अपार मात्रा म प्राकृतिक सम्पत्ति है परन्तु उसका पूर्ण शोषण नहीं हो पाया है। पृथ्वी के गर्भ मे अपार खनिज पदार्थ हैं परन्तु उनको निकाला नहीं जा रहा, बहुत सी भूमि बेकार

रडी है, वन सम्पत्ति का २/३ भाग अभी हमारे उपयोग से बाहर है, अपार जनशक्ति बेकार पडी है, अपनी नदियो के केवल १/१० पानी का ही हम उपभोग कर रहे हैं आदि। इसलिये हमारा देश गरीब है।

(१०) उत्पादन की कमी —भारतवर्ष मे अन्य देशो की तुलना मे कृषि व औद्योगिक उत्पादन बहुत ही कम है। इसी कारण से भारतवासियो का रहन सहन का स्तर अन्य देशों की तुलना म गिरा हुआ है।

(११) असन्तुलित अर्थ व्यवस्था :—हमारे यहा जनसख्या का लगभग ७०% भाग कृषि पर कार्य करता है और उद्योग म केवल १५% व्यक्ति कार्य करते हैं। जिस कारण से हमारे देश म औद्योगिक उत्पादन अन्य देशो से कम है। इसी कारण से भारत मे प्रति व्यक्ति आय कम है और रहन-सहन का स्तर भी नीचा है।

(१२) धन का असमान वितरण —भारत मे उत्पादन पूजीवादी व्यवस्था के अनुसार होता है, जिससे श्रमिको का शोषण किया जाता है। उन्हें कम मजदूरी दी जाती है और पूँजीपतियों के पास धन का एक बडा भाग एकत्र हो जाता है, जिससे देश मे धन का असमान वितरण हो गया है इस कारण से भी श्रमिको का रहन सहन का स्तर नीचा है।

(१३) देश मे बैंकिग और यातायात के साधनो का अभाव :— भारत मे बैंकिग व यातायात एव सम्वाद वाहन के साधनो का अभाव है। जिस कारण से एक वस्तु एक स्थान स दूसरे स्थान को आसानी से नही ले जाई जा सकती है। इसी कारण से फैशन एव नये प्रयोग की वस्तुओ का प्रयोग सीमित रहता है। रहन सहन का स्तर बढने नही पाता है।

(१४) लोक उपयोगी सस्थाओ का अभाव —भारत मे शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमा आदि लोक उपयोगी सस्थाओ का बहुत अभाव है, जिससे जनता के सामूहिक आवश्यकता की पूर्ति नही हो पाती है। इस कारण से भी यहा का रहन-सहन का स्तर नीचा है।

(१५) फैशन एव विलासिता का कुप्रभाव :—साधारणत व्यक्ति फैशन एव विलासिता की वस्तुओ पर बिना सोचे विचारे आवश्यकता से अधिक व्यय कर देते हैं। जिससे वह आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति से वचित रह जाता है। इस कारण से भी यहाँ का रहना सहन का स्तर नीचा है।

रहन सहन के स्तर को ऊंचा करने के उपाय —भारतवासियो के रहन-सहन का स्तर बहुत ही नीचा है। इस रहन सहन के स्तर को ऊचा करन के लिए निम्न सुझावो पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

(१) प्राकृतिक साधनों के उचित प्रयोग से अधिकतम धनोत्पत्ति करना —देश म योजना के द्वारा वन सम्पत्ति खनिज सम्पत्ति, जलशक्ति का उचित प्रयोग होना चाहिये तथा कृषि व औद्योगिक उत्पादन का बढ़ावा मिलना चाहिये। तभी देश के व्यक्तियों की आय बढ़ सकती है और रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो सकता है।

> **जीवन स्तर ऊंचा करने के उपाय —**
>
> १ प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग।
> २ जनसंख्या की वृद्धि पर रोक।
> ३ शिक्षा का प्रसार।
> ४ श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि।
> ५ फैशन एवं विलासिता के प्रयोग पर रोक।
> ६ धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों पर रोक।
> ७ उद्योगों का विकास।
> ८ धन का समान वितरण।
> ९ लोक—हितकारी संस्थाओं की वृद्धि।
> १० बैंकिंग एवं यातायात के साधनों का—विकास।

(२) जनसंख्या की वृद्धि पर रोक —देश म जनसंख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है इस वृद्धि को रोकने के लिए परिवार नियोजन को प्रोत्साहन मिलना चाहिये तथा शादी की आयु को कानून द्वारा बढ़ा देना चाहिये, जिससे देश म जनसंख्या अधिक न हो।

(३) शिक्षा का प्रसार होना चाहिये —शिक्षा के प्रसार से आर्थिक औद्योगिक एवं व्यापारिक समस्याओं का आसानी से हल होता है तथा व्यक्ति का रहन-सहन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है।

(४) श्रमिकों की कार्य-कुशलता मे वृद्धि होनी चाहिये —देश म कृषि एवं औद्योगिक सभी प्रकार के श्रमिकों की प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। जिससे उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि हो सके। इससे उनकी आय बढ़ेगी तथा रहन सहन का स्तर भी ऊंचा होगा।

(५) फैशन एवं विलासिता की वस्तुओं के प्रयोग को हतोत्साहित करना —व्यक्तियों को प्रथम उन्हीं आवश्यकता की वस्तुओं की पूर्ति पर ध्यान देना चाहिये। फैशन एवं विलासिता की वस्तुओं के प्रयोग को सीमित करना चाहिये। यह कार्य शिक्षा के प्रसार एवं सरकारी हस्तक्षेप के द्वारा किया जा सकता है।

(६) धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों को रोकना चाहिये —

सरकार को समाज में से दहेज प्रथा, शादी व मृत्यु आदि पर दावतों आदि पर होने वाले व्यय को कानून द्वारा बन्द कर देना चाहिये, जिससे व्यक्ति धन का अपव्यय न करें और उसे उचित प्रकार से व्यय करें। तभी उनका रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो सकता है।

(७) सन्तुलित अर्थ व्यवस्था के लिए उद्योगों के विकास पर बल :—सरकार को देश में उद्योगों के विकास पर बल देना चाहिए। जिससे कृषि पर भार कम हो तथा रोजगार में वृद्धि हो। औद्योगिक विकास से ही व्यक्ति की आय बढ़ सकती है तथा रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो सकता है।

(८) देश में धन के समान वितरण को लाना :—सरकार को देश में धन के असमान वितरण को समाप्त करना चाहिये। इसके लिए उसे आय की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमा निश्चित करनी चाहिये तथा पूंजीपतियों पर प्रगति कर लगा कर प्राप्त आय को लोक हितकारी कार्यों पर व्यय करना चाहिये। तभी भारतियों का रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो सकता है।

(९) देश में लोक हितकारी संस्थाओं की वृद्धि करना :—सरकार को देश में लोक हितकारी संस्थाओं की वृद्धि करनी चाहिये। इन लोक हितकारी संस्थाओं में शिक्षा, मनोरन्जन, स्वास्थ्य, बीमा आदि से सम्बन्धित संस्थायें आती हैं। इनके विकास से नागरिकों के जीवन एवं रहन-सहन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

(१०) बैंकिंग एवं यातायात के साधनों का विकास होना चाहिये :—बैंकिंग व्यवस्था के विकास से उत्पादनकर्त्ताओं को कम ब्याज पर पूंजी मिल सकेगी जिससे उत्पादन में वृद्धि होगी तथा यातायात एवं सम्वादवाहनों के साधनों के विकास से कृषि एवं औद्योगिक कार्य का विकास होगा। इन सबका प्रभाव यह होगा कि व्यक्तियों की आय बढ़ेगी तथा उनका रहन-सहन का स्तर ऊंचा होगा।

इस प्रकार उपलिखित सुझावों के अनुसार भारतवासियों का रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो सकता है।

—o—

प्रश्न ४४—'रहन-सहन का स्तर दो कारणों से प्रभावित होता है—(अ) परिस्थितियां जिनमें समय, आय तथा वर्ग शामिल हैं तथा (ब) व्यक्तित्व।" इस कथन की व्याख्या करो।

("The standard of living is a result of two forces (a) Envi-

ronment comprising time, income and class and (b) Individuality." Discuss)

उत्तर :—

उपलिखित कथन से यह स्पष्ट होता है कि रहन सहन का स्तर दो बातों पर निर्भर करता है । (१) परिस्थितियां तथा (२) व्यक्तित्व ।

परिस्थितियों के अन्तर्गत समय, आय तथा वर्ग प्रभावित दशाओं का अध्ययन किया जाता है तथा व्यक्तित्व के अन्दर शिक्षा दूरदर्शिता पारिवारिक वातावरण, धार्मिक प्रभाव, तथा पाश्चात् सभ्यता का प्रभाव आदि का अध्ययन होता है । अब हम इन दोनों बातो का क्रमशः विस्तार मे अध्ययन करेंगे ।

परिस्थितियाँ—परिस्थितियों का यहाँ अर्थ उन सामाजिक वातावरण से है जिसमे रह कर मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है । इस प्रकार उसकी आवश्यकताये एव आर्थिक क्रियायें सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती हैं । सामाजिक वातावरण मे भी हम यह देखना होगा कि वह किस वर्ग से सम्बन्धित है । उसकी मासिक आय क्या है, तथा वह किस समय के वातावरण मे रह रहा है ।

समय —एक व्यक्ति किस समय मे रह रहा है, इसका उसके रहन-सहन के स्तर पर अधिक प्रभाव पडता है । प्राचीन समय में जो वस्तुयें आराम एवं विलासिता की वस्तु मानी जाती थी वह आज वैज्ञानिक विकास के कारण तथा उत्पादन मे अधिक वृद्धि होने के कारण तथा उनके अत्यधिक उपयोग के कारण आवश्यक वस्तुयें हो गई है । विद्यार्थी के लिए फाउन्टेनपेन पहले आराम की वस्तु समझी जाती थी लेकिन आज वही फाउनटेनपेन आवश्यक वस्तु हो गई है । इसी प्रकार रेडियो साइकिल आदि वस्तुओ का उदाहरण ले सकते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि रहन-सहन के स्तर पर सामाजिक दशाओ के विकास का अधिक प्रभाव पड़ता है ।

आय :—दूसरे, किसी व्यक्ति का रहन-सहन उसकी आय से प्रभावित होता है । उसकी आय पर ही उसकी आवश्यकताओ तथा सेवाओ की सन्तुष्टि की सीमा निर्भर है । इस प्रकार किसी व्यक्ति का रहन-सहन प्रत्यक्ष रूप से उसकी आय पर निर्भर करता है । यदि आय अधिक है तो रहन-सहन का स्तर ऊंचा होगा और यदि आय कम हो तो रहन-सहन का स्तर नीचा होगा । इसी कारण से किसी व्यक्ति की आय मे परिवर्तन होता है तो उसके रहन-सहन मे भी परिवर्तन आ जाता है । इस प्रकार यदि हमे दो व्यक्तियो के रहन-सहन की तुलना करनी हो तो उनकी आय पर भी ध्यान देना चाहिये कि

किस व्यक्ति की आय कम है और किसकी अधिक। भारत मे प्रतिव्यक्ति आय कम होने के कारण ही रहन-सहन का स्तर अन्य देशो की तुलना मे कम है। इसी कारण यदि भारतवासियो के रहन-सहन मे वृद्धि करनी है तो अन्य बातों के साथ उनकी आय मे वृद्धि होनी चाहिये।

वर्ग :—व्यक्ति समाज के जिस वर्ग विशेष मे रहता है उसका भी उसके रहन-सहन के स्तर पर अधिक प्रभाव पडता है, उसी के अनुसार उसको रीति-रिवाज, खान पान, परम्परायें एव आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करना पडता है, जिससे उसका रहन-सहन प्रभावित होता है। साधारणतः समाज मे तीन वर्ग दिखाई देते हैं—निम्न, मध्य तथा उच्च वर्ग। निम्न वर्ग के व्यक्तियों की आय भी कम होती है तथा उनके रहने की दशायें भी सन्तोषप्रद नहीं होती हैं। प्राय. इस वर्ग के व्यक्ति सामाजिक रिवाज के वशीभूत होकर अपनी आय का अपव्यय कर देते हैं जिससे इनके रहन-सहन का स्तर नीचा होता है। मध्य वर्ग के व्यक्ति इसकी ओर अपनी स्थिति के अनुसार रहन-सहन के स्तर को बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इस वर्ग के व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अपना स्तर बनाये रखने का प्रयत्न करते है। उच्च वर्ग के व्यक्तियो की दशा अन्य दोनो वर्गों से भिन्न होती है। इनकी आय अन्य दोन वर्गों की अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसी कारण इस वर्ग के व्यक्तियों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा होता है तथा वे विलासिता की आवश्यकताओ की भी सन्तुष्टि कर सकते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्ग विशेष मे रहने वाले व्यक्ति का रहन सहन उस वर्ग की दशाओ से प्रभावित होता है।

व्यक्तित्व :—किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का उसके रहन-सहन के स्तर पर अधिक प्रभाव पडता है। किन्ही दो व्यक्तियों के समय, आय तथा वर्ग के समान होने पर भी व्यक्ति के आधार पर रहन-सहन मे भिन्नता पाई जाती है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसकी शिक्षा, दूरदर्शिता, पारिवारिक वातावरण, धार्मिक प्रभाव एवं पाश्चात्य सभ्यता का असर प्रभावित करते हैं, जिसका अध्ययन हम निम्न प्रकार से विस्तार मे करेंगे।

शिक्षा एवं दूरदर्शिता :—शिक्षा एव दूरदर्शिता से व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। वह उचित एव अनुचित मे भेद करने की योग्यता रखता है। इसी कारण एक शिक्षित व्यक्ति तथा एक अशिक्षित व्यक्ति को यदि समान आय दी जाय तो शिक्षित व्यक्ति उस आय का उचित ढग से व्यय करेगा। उसका रहन-सहन का स्तर ऊंचा होगा। परन्तु दूसरी ओर अशिक्षित व्यक्ति उस आय को बिना विचारे व्यय न करेगा जिससे उसके रहन-सहन की दशा में कोई सुधार नहीं होगा। इसी प्रकार एक शिक्षित व्यक्ति भविष्य के विषय मे भी

कुछ बचा कर रखने की कोशिश करता है। क्योंकि वह समझता है कि परिवार मे हारी-बीमारी चलती ही रहती है जिसके लिए धन बचाना अच्छा होता है, परन्तु दूसरी ओर अशिक्षित व्यक्ति इस ओर ध्यान नहीं देता और भविष्य मे यदि ऐसी कोई घटना होती है तो अपने घर के स्त्रियो के जेवरो तथा सामानो को बेच देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रहन-सहन के स्तर पर व्यक्ति की शिक्षा एव दूरदर्शिता का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

पारिवारिक वातावरण :—मनुष्य के रहन-सहन पर उसके परिवार का भी असर पड़ता है जिसमे रह कर वह पला है। यदि उसके परिवार का रहन-सहन अच्छा है तो उसको भी अच्छे रहन-सहन के स्तर बनाये रखने की रुचि होगी। परिवार के बाद मनुष्य के जीवन को प्रभावित करने वाली जातीय गुण होते हैं जिसके अनुसार वह रीति-रिवाज एवं परम्पराओं को मानता है और अपने रहन-सहन के स्तर को बनाता है।

धार्मिक विचारधारा :—धार्मिक विचारो का भी मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, विशेषकर उन देशो मे जहाँ का आर्थिक विकास अधिक नही हुआ है। उदाहरणार्थ भारत मे मनुष्य के जीवन पर धार्मिक प्रभाव अधिक है। यहा व्यक्ति मांस, मदिरा का सेवन धर्म के विरुद्ध समझते हैं। तथा त्यौहारो पर अधिक धन व्यय करना ये अच्छा समझते हैं। धर्म के प्रभाव के कारण ही यह भगवान पर विश्वास करके अधिक उत्पादन एव कार्यक्षमता के बढाने का प्रयत्न ही नही करते हैं, तथा एक स्थान से दूसरे स्थान की गतिशीलता भी इसी कारण से कम है। इससे यह स्पष्ट है कि धार्मिक विचारो का भी मनुष्य के रहन सहन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। विशेषकर उन व्यक्तियो पर जो अशिक्षित हैं तथा गावो मे रहते हैं।

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव :—मनुष्य के रहन-सहन पर पाश्चात् सभ्यता, शिक्षा एव विचारधाराओ का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति देश-विदेश मे भ्रमण करते हैं उनको विदेशी के रहन-सहन की विधि ज्ञात हो जाती है। और वे भी उसी प्रकार का रहन-सहन बनाने की कोशिश करते हैं। उदाहरणार्थ अग्रेजो का असर भारतीय रहन-सहन पर अधिक पड़ा है। इसी के कारण यहाँ पर मशीनो द्वारा निर्मित सामान का उपयोग शुरू हुआ। तथा भारतीयो ने विदेशी भेष-भूषा को अपनाना शुरु किया। इसी प्रकार अग्रेजो पर भी कुछ भारतीय बातो का प्रभाव पड़ा जिसे वे आज भी करते है। जैसे पान व हुक्का पीना। इससे स्पष्ट है कि विदेशी सभ्यता से प्रभावित होकर भी मनुष्य का रहन-सहन का स्तर निर्धारित होता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनुष्य के रहन-सहन का स्तर मुख्य दो बातो से प्रभावित होता है। प्रथम परिस्थितियो से जिसमे समय, आय तथा वर्ग प्रभावित करते हैं तथा दूसरे व्यक्तित्व से जिनके अन्तर्गत शिक्षा एव दूरदर्शिता, पारिवारिक वातावरण, धार्मिक विचारधारा तथा पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आदि बातें मनुष्य के रहन-सहन के स्तर को प्रभावित करते हैं।

उत्पत्ति
(Production)

अध्याय २३

उत्पत्ति का अर्थ

प्रश्न ४५—"उत्पादन क्या है ? उत्पत्ति के कौन २ से तरीके हैं" ।

या

"उपयोगिताओं का सृजन करना ही उत्पत्ति है" इस कथन को स्पष्ट कीजिए । पदार्थों मे उपयोगिता वृद्धि के क्या-क्या तरीके हैं ?

(What is production ? What are different ways of production ?)

Or

(Production is the creation of utilities, discuss and explain clearly the methods of increasing utility)

उत्तर :—

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य पदार्थ का न सृजन कर सकता है और न उसका विनाश ही । सृष्टि के प्रारम्भ से ससार मे जितना पदार्थ था, उसमे न वृद्धि हुई न हो सकती है । यदि मनुष्य कुछ कर सकता है तो केवल अपने परिश्रम से मौजूद वस्तुओ को अपनी आवश्यकता के अनुकूल बनाने के लिये अधिक उपयोगी बना सकता है अर्थात वह इनमे अधिक उपयोगिता पैदा कर सकता है । वस्तुओ से इस उपयोगिता के सृजन करने अथवा वृद्धि करने को ही अर्थशास्त्र मे उत्पत्ति कहते हैं । राज एक मकान बनाता है, दर्जी एक कमीज सीता है, दोनो उदाहरणो मे कोई वस्तु उत्पन्न नही होती है । राज विभिन्न पदार्थों जैसे ईंट, मिट्टी, सीमेन्ट, लोहा आदि का प्रयोग इस प्रकार करता है कि मकान बन जाता है । इसी प्रकार दर्जी कोट नहीं बनाता बल्कि कपडे मे काट-छाट करके, उसे इस प्रकार जोडता है कि कोट बन जाता है । उसने कपडे को अपनी कैंची और मशीन की सहायता से अधिक उपयोगी बना दिया । प्रो० पेसन के मतानुसार "उत्पत्ति से अर्थ किसी पदार्थ के निर्माण करने से नहीं लिया जाता वरन् इसका अर्थ वस्तु मे मानवीय आवश्यकताओं को तृप्ति करने की योग्यता, शक्ति अथवा गुण में वृद्धि करना है" ।

केवल उपयोगिता वृद्धि को ही उत्पत्ति नही कहा जा सकता जब तक कि

उस वस्तु का आर्थिक मूल्य भी न बढे, अर्थात जिसके होने से उसका मूल्य पहले से कुछ अधिक हो जाये। ऐसी वस्तु के उत्पन्न करने को जिसमे उपयोगिता हो पर मूल्य न हो आर्थिक दृष्टि से उत्पत्ति नही कह सकते। इसी लिये प्रो० टामस के अनुसार **"वस्तु मूल्य में वृद्धि करना या अर्थ का सृजन करना उत्पत्ति कहलाता है"।**

उत्पादन की रीतियाँ अथवा उपयोगिता के प्रकार :—

प्रत्येक व्यक्ति जो किसी न किसी प्रकार उपयोगिता मे वृद्धि लाता है अर्थशास्त्र मे उत्पादक कहलाता है। पदार्थो मे उपयोगिता वृद्धि निम्न प्रकारों से हो सकती है। इन्हीं को उत्पादन की रीतियाँ कहते हैं :—

(१) रूप उपयोगिता (Form Utility) —जब किसी पदार्थ के रूप को बदलकर उपयोगिता वृद्धि की जाती है तो उसे रूप उपयोगिता द्वारा उत्पत्ति कहते हैं। बढई का लकडी से मेज बनाना, दर्जी का कपडे से कोट बनाना, सुनार का जेवर बनाना इत्यादि रूप परिवर्तन द्वारा उपयोगिता वृद्धि के उदाहरण हैं।

(२) स्थान उपयोगिता (Place Utility) —किसी वस्तु को एक स्थान पर ले जाने से भी उपयोगिता मे वृद्धि होती है। नागपुर से सन्तरो, काश्मीर से मेवो, जगलो से लकडी अन्य स्थानो पर ले जाने से उनकी उपयोगिता बढ जाती है। अत वस्तुओ के पैदा होने के स्थान से उपभोग के स्थान पर ले जाने से उनमे उपयोगिता की वृद्धि होती है।

> **उपयोगिता के प्रकार —**
> १. रूप उपयोगिता।
> २ स्थान उपयोगिता।
> ३ समय उपयोगिता।
> ४ अधिकार उपयोगिता
> ५. सेवा उपयोगिता।
> ६ ज्ञान उपयोगिता।

(३) समय उपयोगिता (Time Utility) —बहुत सी वस्तुयें कुछ समय तक रखने के पश्चात अधिक उपयोगी हो जाती हैं जैसे चावल, शराब व सिरका। अतः कुछ समय तक वस्तुओ को रखे रहना या सुरक्षित रखना उत्पादन की एक रीति है। व्यापारी लोग मदी मे माल भर लेते हैं और तेजी मे बेचते हैं। वे भी पदार्थ मे समय उपयोगिता उत्पन्न करते हैं।

(४) अधिकार उपयोगिता (Possession Utility) —कभी २ वस्तु एक व्यक्ति से दूसरे के पास जाकर अधिक उपयोगी हो जाती है। दूकानदार की अलमारी मे रक्खी हुई किताबो की उतनी उपयोगिता दूकानदार को नही होती जितनी कि उनको खरीदने वाले विद्यार्थियो को।

(५) सेवा उपयोगिता (Service Utility) :—बहुत से व्यक्ति कोई वस्तु नहीं बनाते, वह केवल सेवा करते हैं। सेवा कार्य द्वारा भी उपयोगिता वृद्धि होती है। अध्यापक, शिक्षक, डाक्टर, घरेलू नौकर, नर्तकी, अभिनेता, सिपाही, ये सब सेवा उपयोगिता उत्पन्न करते हैं।

(६) ज्ञान उपयोगिता (Knowledge Utility) :—वस्तु के बारे में अधिक ज्ञान हो जाने से, उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। विज्ञापन द्वारा वस्तुओं के गुण का ज्ञान उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाता है और उनके लिए उनकी उपयोगिता बढ़ जाती है क्योंकि वे उनको खरीदने को तत्पर हो जाते हैं।

अध्याय २४

उत्पत्ति के साधन

प्रश्न ४६—उत्पादन के साधन से आप क्या अर्थ समझते हैं? उत्पत्ति में उनके सापेक्षिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

(What do you mean by its Factors of Production? What is their relative importance in production?)

उत्तर :—

उत्पत्ति के साधनों से तात्पर्य उन समस्त वस्तुओं और सेवाओं से है जिनका धनोत्पत्ति कार्य के लिये होना आवश्यक है या जिनका धन उत्पादन कार्य के लिये उपयोग किया जाता है। उत्पत्ति के पांच साधन हैं :—

उत्पत्ति के साधन :—
१. भूमि।
२. श्रम।
३. पूंजी।
४. व्यवस्था।
५. साहस।

(१) भूमि (Land) :—अर्थशास्त्र में भूमि शब्द का अर्थ पृथ्वी की ऊपरी सतह से ही नहीं बल्कि उन समस्त प्राकृतिक पदार्थों और शक्तियों से है जो हमको पृथ्वी के धरातल पर, उससे ऊपर और उसके नीचे पाये जाते हैं। नदी, नाले, पहाड़, जंगल, झील, सूर्य की रोशनी, चांदनी, वर्षा, खनिज पदार्थ समस्त भूमि हैं। इनको प्रकृति की मुफ्त देन (Free gift of nature) भी कहते

है। प्रकृति उत्पादन के लिये प्रथम वस्तु है इसके बिना उत्पादन नहीं हो सकता।

(२) श्रम (Labour) :—प्राकृतिक देनों का शोषण करने के लिए मानवीय श्रम की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि भूमि एक निष्क्रीय साधन (Passive factor) है। श्रम से हमारा तात्पर्य मनुष्यों के शारीरिक और मानसिक श्रम से है जो शौकिया नहीं बल्कि धन लाभ की आशा से किया जाता है। यह भी भूमि की भांति उत्पत्ति का आवश्यक साधन है और इसके बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती।

(३) पूंजी (Capital) :—मनुष्य प्राकृतिक साधनों के शोषण में निहत्था काम नहीं कर सकता। उसे अनेकों छोटे बड़े औजारों, यन्त्रों और मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। इन्हीं को अर्थशास्त्र मे पूंजी कहते हैं। पूंजी सम्पत्ति का वह भाग है जो अधिक धन उत्पन्न करने में प्रयोग किया जाता है। पूंजी श्रम और भूमि के योग का ही फल है।

(४) व्यवस्था (Organisation) :—उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को उचित अनुपात मे लगाने तथा उत्पादन कार्य के निरीक्षण का कार्य 'व्यवस्था' अथवा 'संगठन' के नाम से पुकारा जाता है। आजकल की बड़े पैमाने की धनोत्पत्ति में जहा भूमि श्रम और पूंजी विशाल मात्रा से एकत्रित किये जाते हैं, व्यवस्था का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

(५) साहस (Enterprise) —हर व्यवसाय मे चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा कुछ जोखम अवश्य होती है। हो सकता है कि व्यापारी के अनुमान सही न उतरें और उसे हानि सहनी पड़े। आजकल जबकि उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और मांग से पूर्व ही उत्पत्ति की जाती है यह जोखिम और भी अधिक बढ़ गई है इस जोखिम को उठाने वाला व्यक्ति 'साहसी' (Enterpreneus) कहलाता है।

उत्पत्ति के साधन और उत्पत्ति के साधक (Factor and Agent of Production) :—उत्पत्ति के साधन से आशय उन वस्तुओं अथवा सेवाओं से है जो उत्पत्ति के लिये अनिवार्य हैं, और उत्पत्ति के साधक से आशय उन व्यक्तियो से है जो इन साधनो को देते हैं :—

साधन	साधक
भूमि	भूमिपति या जमींदार
श्रम	श्रमिक
पूंजी	पूंजीपति
व्यवस्था	व्यवस्थापक, संगठनकर्ता
साहस	साहसी

साधनों सम्बन्धी विवाद—अर्थशास्त्रियों में इस बात पर मतभेद है कि उत्पत्ति के साधन कितने हैं ? कुछ अर्थशास्त्री उत्पत्ति के केवल दो—भूमि और श्रम ही साधन मानते हैं। इनको उत्पत्ति के प्रमुख साधन (Primary Factors of Production) कहा जाता है क्योंकि इनके अभाव में उत्पत्ति की कल्पना करना व्यर्थ है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूंजी साधन का अलग कोई अस्तित्व नहीं है बल्कि यह भूमि और श्रम का संयुक्त प्रतिफल है। व्यवस्था और साहस भी एक विशिष्ट प्रकार के श्रम ही हैं। अतः उत्पत्ति के मूल साधन दो ही हैं। परन्तु आजकल के बड़े पैमाने की उत्पत्ति में जहां करोड़ों रुपयों का विनियोग होता है पूंजी का अपना अलग महत्व है। उत्पादन के साधनों की देखभाल व व्यवस्था के लिये संगठनकर्ता अनिवार्य हो गया है। इतने बड़े पैमाने की उत्पत्ति में जोखिम भी अधिक होती है। बड़े पैमाने की उत्पत्ति में ही नहीं, छोटे-छोटे व्यवसायों और घरेलू उद्योग धन्धों में भी व्यवस्था और जोखिम भुगतना प्रमुख साधन हो गये हैं। थोड़ी बहुत जोखिम प्रत्येक उत्पादन के कार्य में सम्मिलित है। अतः आजकल उत्पत्ति के ५ साधन हैं। प्रो० बेनहम के अनुसार तो उत्पत्ति के साधन दो या पांच नहीं बल्कि अगणित हैं, जो भी वस्तु उत्पत्ति में सहयोग देती है, उत्पादन का साधन है। प्रत्येक भूमि, प्रत्येक श्रमिक और प्रत्येक पूंजी पदार्थ व व्यवस्थापक एक पृथक साधन है क्योंकि सभी में कुछ न कुछ भिन्नता पाई जाती है। परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए साधनों को साधारणतया पांच ही भागों में बांटा जाता है।

साधनों का सापेक्षिक महत्व—उत्पादन कार्य पांचों साधनों के सहयोग से होता है। किसी एक के भी अभाव में उत्पादन नहीं हो सकता। प्रत्येक साधक अपने साधन को अन्य साधनों से अधिक आवश्यक समझता है। इन दो कठिनाईयों के कारण यह निर्णय करना कठिन है कि उत्पत्ति का कौनसा साधन अधिक महत्वपूर्ण है कौनसा कम महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस समस्या का हल किया जा सकता है। उदाहरण के लिये मानवी जीवन के आदिकाल में प्रकृति का मनुष्य पर अधिकार था उस समय भूमि साधन अधिक महत्वपूर्ण था। बाद में ज्यों २ मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की, श्रम का महत्व बढ़ता गया। कालान्तर में धनोत्पत्ति में पूंजी का इतनी बड़ी मात्रा में उपयोग होने लगा कि उसने श्रम से भी अधिक महत्व प्राप्त कर लिया। आधुनिक समय में उत्पत्ति का पैमाना बढ़ जाने से बाजारों के अन्तर्राष्ट्रीय हो जाने से संगठन और साहस ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है।

प्रश्न ४७—"श्रम धन का पिता तथा सक्रिय तत्व है, जबकि भूमि उसकी माता है" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

("Labour is the father and active principle of wealth, as Lands are the mother" Explain this statement fully)

उत्तर :—

उपरोक्त कथन श्रम और भूमि का सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं। जिस प्रकार किसी सन्तान के माता और पिता दोनों होते हैं। उसी प्रकार उत्पत्ति कार्य में श्रम का स्थान पिता का तथा भूमि का स्थान माता के समान है। इस प्रकार श्रम और भूमि उत्पत्ति के प्रमुख साधनों में से हैं।

इस कारण से प्राचीन समय में उत्पत्ति के साधनों में केवल श्रम और भूमि ही माने जाते थे। उनका विचार था कि किसी उत्पादन कार्य में इन दोनों के सहयोग बिना कार्य नहीं हो सकता है भूमि का अर्थ अर्थशास्त्र में भूमि की सतह पर तथा इस सतह के ऊपर और नीचे पाये जाने वाले सभी पदार्थों से होता है। इस कारण से खनिज पदार्थ, नदियां, पहाड़, वर्षा, जंगल आदि सबों को हम भूमि के अन्तर्गत मानते हैं। ये सब माता की प्रकृति की देन है। इन्हीं सब प्राकृतिक साधनों के सहयोग से अनेक प्रकार का उत्पादन किया जाता है, जिसका हम अपने जीवन में नित्य प्रति प्रयोग करते हैं। अर्थशास्त्र के अध्ययन में भूमि को एक निष्क्रिय साधन (Passive Factor) माना गया है। निष्क्रिय साधन से यहां पर अर्थ यह है कि भूमि में उत्पत्ति के सम्पूर्ण गुण होते हुए भी यह अपने आप उत्पत्ति कार्य करने में असमर्थ है।

भूमि के उत्पादन का एक निष्क्रिय साधन होने के कारण उत्पादन कार्य के लिए श्रम की आवश्यकता होती है। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है, माना हमको खनिज पदार्थ की आवश्यकता है। ये भूमि की सतह के नीचे पाये जाते हैं, इनको प्राप्त करने के लिए हमको श्रमिकों का तथा पूंजी की सहायता लेनी होगी। तभी खान खोदने के बाद हम खनिज पदार्थ प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि भूमि स्वयं कुछ नहीं कर सकती। भूमि को उपयोग में लाने के लिए श्रम का सहयोग लेना आवश्यक है। तभी उत्पादन कार्य सम्भव हो सकता है, बिना श्रम के भूमि का कोई महत्व नहीं रह जाता है। इसी कारण अर्थशास्त्रियों ने श्रम को पिता एवं भूमि को माता की उपमा दी है।

श्रम उत्पत्ति का एक सक्रिय साधन (Active factor of production) है। यही उत्पादन की क्रियाओं का सचालन करता है। श्रम के बिना अन्य

उत्पत्ति के साधनो का कोई महत्व ही नही रह जाता है, श्रम का प्रयोग पूँजीपतियो के द्वारा श्रमिको एव व्यवस्थापको के रूप मे होना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भूमि एव श्रम दोनो ही उत्पादन के मुख्य साधन हैं। इनमे से किसी एक साधन के द्वारा उत्पादन कार्य सम्भव नही है। उत्पादन मे दोनो साधनो का सहयोग आवश्यक है। इसी कारण से यह कहा गया है कि श्रम पिता एव भूमि माता के समान है।

साथ-साथ यहा यह भी समझ लेना चाहिये कि आधुनिक युग मे उत्पादन कार्य केवल श्रम और भूमि के सहयोग से ही सम्भव नही है। आज उत्पादन का ढग प्राचीन ढग से काफी विकसित दशा मे है। आज उत्पादन कार्य मे पूँजी, व्यवस्थापक एव साहसी का भी विशेष महत्व है। इस कारण आज यदि हम कोई बडे पैमाने का उत्पादन करते हैं तो श्रम और भूमि के साथ हमें अन्य उत्पत्ति के साधनों का भी पूरा पूरा सहयोग लेना होगा।

अध्याय २५

भूमि

प्रश्न ४८—अर्थशास्त्र मे 'भूमि' शब्द का क्या तात्पर्य है? उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

(What is meant by the term 'Land' in Economics? What ***are its characteristics?)***

उत्तर :—

दैनिक जीवन मे 'भूमि' शब्द से तात्पर्य जमीन या पृथ्वी की सतह से होता है परन्तु अर्थशास्त्र मे इसका अर्थ काफी व्यापक है। अर्थशास्त्र मे भूमि के अन्तर्गत वे सब वस्तुयें सम्मिलित की जाती हैं जो प्रकृति की भेंट (Gifts of nature) है या जिन्हे प्रकृति ने मनुष्य को धनोत्पादन मे सहायता करने के लिये मुफ्त प्रदान किया है। प्रो० मार्शल के शब्दो मे 'भूमि का **अर्थ केवल संकुचित अर्थ मे भूमि से नहीं है बल्कि उन सभी वस्तुओं और शक्तियो से है जो स्थल और जल, प्रकाश और गर्मी के रूप मे प्रकृति की ओर से निशुल्क मनुष्य की सहायता के लिये प्रदान की जाती हैं (By land is meant not merely land in the strict sense** ***of the word, but the whole of the material and forces which***

nature gives freely for man's and, in land and water, in air light and heat' Marshall) । इस प्रकार भूमि शब्द में निम्न चीजें सम्मिलित की जाती हैं :—

(१) भूमि की सतह और उस पर पाये जाने वाले जंगल, पशु, पक्षी, नदी, नाले, पहाड़, समुद्र इत्यादि ।

(२) भूमि के नीचे के खनिज पदार्थ ।

(३) भूमि की सतह से ऊपर वायुमण्डल में निहित समस्त शक्तियां जैसे वायु, जलवायु, प्रकाश, उष्णता धूप, वर्षा आदि ।

प्रकृति द्वारा उत्पन्न वस्तुयें तभी तक भूमि कहलायेंगी जब तक मनुष्य इन्हें प्राप्त करने के लिये कोई परिश्रम न करे, परिश्रम करके प्राप्त वस्तुयें धन की कोटि में आती हैं ।

भूमि की विशेषतायें (Characteristics of land) :—

(१) भूमि सीमित है (Land is limited) —सीमितता भूमि का एक प्रमुख गुण है । प्रकृति की देनों में वृद्धि या कमी करना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है । किसी देश के भूगर्भ में छिपे खनिज पदार्थों को किसी भी प्रकार से बढ़ाया नहीं जा सकता । बम्बई में समुद्र के पानी को सुखा कर मेरीन ड्राइव (Marine Drive) के क्षेत्रफल को बढ़ाया गया । क्या यह भूमि की मात्रा में वृद्धि है ? नहीं ! अन्तर केवल इतना है कि जो भूमि पहले पानी के नीचे थी वह अब पानी से अलग हो गई है । भूमि की मात्रा वही है जो इस परिवर्तन से पहले थी ।

भूमि की विशेषतायें :-

१ भूमि सीमित है ।
२. भूमि स्थिर है ।
३ भूमि में विविधता का गुण है ।
४. भूमि निष्क्रिय साधन है ।
५ भूमि अक्षय है ।
६ भूमि निःशुल्क उपहार है ।
७ भूमि की उर्वरा एवं स्थिति भिन्न होती है ।

(२) भूमि स्थिर है (Land is immobile) —यही नहीं कि भूमि सीमित है, वह स्थिर भी है । किसी स्थान विशेष की भूमि को किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जाया जा सकता । भारत के लोहे के भंडार को अमरीका नहीं ले जाया जा सकता । वनों को उठा कर अन्य किसी जगह नहीं ले जा सकते, आदि । उत्पादन के अन्य सब साधनों में गतिशीलता का गुण पाया जाता है ।

(३) भूमि मे विविधता का गुण (Land is variable) :—समस्त भूमि एक सी नहीं होती। अलग-अलग भूमि अलग अलग कामो के लिए उपयुक्त होती है। किसी भूमि के टुकडे मे सामन मछलियां अधिक मिलती हैं किसी मे काड। किसी खान से उत्तम प्रकार का लोहा निकलता है तो किसी से घटिया प्रकार का।

(४) भूमि निष्क्रीय साधन है (Land is a passive factor) :—भूमि स्वयं धनोत्पत्ति नहीं करती बल्कि मनुष्य इस पर श्रम व पूंजी लगाकर धनोत्पत्ति करता है।

(५) भूमि अक्षय है (Land is indestructible) —यह विशेषता प्रथम विशेषता का स्पष्टीकरण ही है। हम भूमि को उत्पन्न भी नहीं कर सकते और न हम भूमि का नाश ही कर सकते हैं। वह खराब हो सकती है, बेकार हो सकती है, परन्तु नाश नही हो सकती। वह किसी न किसी रूप मे रहेगी अवश्य।

(६) भूमि निशुल्क उपहार है (Land is a free gift) —इसको हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि भूमि का कोई उत्पादन व्यय नहीं होता। समाज को भूमि के लिये कोई व्यय नही करना पडा, यह प्रकृति की देन है। यद्यपि सामाजिक दृष्टि से भूमि की कोई लागत नही है किन्तु व्यक्ति विशेष के लिये भूमि का मूल्य अवश्य है।

(७) भूमि की उर्वरता व स्थिति भिन्न होती है (Land differs in fertility and situation) :—प्रत्येक भूमि समान नही होती। यदि कोई भूमि अधिक उपजाऊ है तो दूसरी कम उपजाऊ और तीसरी बंजर है। भूमि का मूल्य उसकी स्थिति से भी निर्धारित होता है। लगभग समान उर्वरता भूमियों का मूल्य उनकी स्थिति के अनुसार कम या अधिक हो सकता है। शहर के पास की भूमि का मूल्य दूर गाव मे स्थित भूमि के टुकडे की अपेक्षा अधिक होता है।

प्रश्न ४६—उत्पत्ति मे भूमि का क्या महत्व है? भूमि की कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाली बातों का वर्णन कीजिये।

(What is the importance of Land in Production? Discuss the factors governing the efficiency of Land.)

उत्तर :—

भूमि का उत्पादन मे महत्व —आर्थिक जीवन के विकास की प्रत्येक

अवस्था मे भूमि का धनोत्पत्ति मे प्रमुख कार्य रहा है। प्राचीन युग का व्यक्ति तो पूर्णत प्रकृति पर ही निर्भर था। आज भी भूमि का उत्पादन कार्य मे बडा महत्व है। उद्योग-धधों के लिए कच्चा माल प्रकृति अथवा प्राथमिक उद्योगो से प्राप्त होता है, शक्ति के लिए कोयला, पैट्रोल, लकडी, जलशक्ति सब प्रकृति की ही देन है। भूमि के ऊपर ही सब कारखाने खड किये जाते हैं और मनुष्य को काम करने के लिये स्थान मिलता है। कृषि, खान खुदाई, वन-व्यवसाय, मछली व्यवसाय आदि का विकास भी प्राकृतिक देनों से बहुत प्रभावित होता है। यातायात और सवादवाहन के साधनों का विकास धरातल की बनावट पर निर्भर है। प्राकृतिक साधनो का उस देश के आर्थिक विकास मे इतना अधिक महत्व है कि जिन देशो मे **'प्रकृति मे देनों'** की अधिकता है वे देश दूसरो की अपेक्षा अधिक सभ्य, प्रगतिशील, समृद्धिशाली और सुखी हैं।

भूमि की कार्य-क्षमता —भूमि की कार्य क्षमता उसकी उत्पादकता (**Productivity**) पर निर्भर करती है। जो भूमि अधिक उत्पादक होती है अर्थात जिससे उसके उपभोग करने वाले को अधिक लाभ पहुचता है, उस भूमि की कार्य-क्षमता अधिक मानी जायेगी। जो भूमि कम उत्पादक होती है अर्थात जिससे उसके प्रयोग करने वाल को अपेक्षाकृत कम लाभ होता है, उस भूमि की कार्य-क्षमता कम होती है। भूमि की कार्य-क्षमता निम्न बातो से प्रभावित होती है —

(१) **प्राकृतिक उपयुक्तता** (**Natural suitability**) :—भूमि की कार्य-क्षमता उसकी उपयुक्ता पर निर्भर करती है। भूमि जिस कार्य के लिये प्रयोग की जाय उस कार्य के लिये उपयुक्त होनी चाहिये। अन्यथा भूमि की उत्पादकता कम हो जायगी। उर्वरा भूमियो पर कृषि करनी चाहिये। किन्तु यदि इस भूमि पर मकान बना दिये जाये तो इसकी कार्यक्षमता गिर जायगी। जो भूमिया उर्वरा होती हैं उसमे कम खर्च करके ही अधिक माल उत्पन्न किया जा सकता है। भूमि की उर्वरा शक्ति उसकी प्रकृति, रसायनिक विशेषताओ सजीव तत्वों, जलवायु आदि पर निर्भर होती है।

(२) **स्थिति (situation)** —जो भूमि क्षेत्र बाजार के निकट होता है या यातायात मार्गों के समीप होता है वह कृषि कार्य के लिये अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि उस पर कम व्यय म अधिक उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी भूमि पर वे फसलें उगाई जायेंगी जो शीघ्र नष्ट हो जाती हों, जिनका शीघ्र ही व्यापार करना अनिवार्य हो। जो भूमि आबादी से बहुत दूर हो जहा वर्षा

न होती हो और जो किसी नदी के निकट न हो, वह खेती के लिये अधिक उपयोगी नहीं हो सकती। इसी भांति जो नदियां मैदानी भागों में होकर बहती हैं वे सिंचाई के लिये अधिक उपयुक्त समझी जाती हैं।

(३) **व्यवस्थापक की योग्यता (Organiser's ability)** :—भूमि की कुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसका किस प्रकार प्रयोग किया जाता है। *समझदार व परिश्रमी कृषक भूमि से अधिक पैदा कर लेते हैं* किन्तु आलसी व मूर्ख किसान उसी भूमि से बहुत कम पैदा करता है।

(४) **बाहरी बातें (External conditions)** —यातायात व संदेश वाहन के साधनों द्वारा प्राकृतिक साधनों का उचित शोषण हो सकता है। इसी प्रकार माल बेचने की सुविधायें देश में पर्याप्त मात्रा में पूंजी और पूंजी को लेन देन करने वाली संस्थायें सिंचाई के साधन आदि भी भूमि की कार्य-क्षमता को प्रभावित करते हैं।

—

प्रश्न ५०—गहरी व विस्तृत खेती पर टिप्पणियां लिखिये।
(Write short notes on Intensive and Extensive cultivation)

उत्तर —

यदि कोई किसान अधिक फसल पैदा करना चाहे तो उसके सामने दो रीतियां हैं—*(१) विस्तृत खेती (Extensive Cultivation)* और (२) गहरी खेती, (Intensive Cultivation)

(१) **विस्तृत खेती** —इस प्रकार की कृषि के अन्तर्गत जोते जाने वाले खेत का क्षेत्रफल पहले से अधिक विस्तृत हो जाता है। यदि एक किसान अब तक १० एकड़ भूमि पर खेती करता था तो उपज बढ़ाने के लिये वह १० के स्थान पर १५ या २० एकड़ भूमि पर खेती करने लगेगा, यह प्रणाली विशेष तया नये देशों में पाई जाती है। वहाँ आबादी कम होती है और भूमि की पूर्ति काफी होती है। इसलिये उपज बढ़ाने के हेतु, खेती का क्षेत्रफल बढ़ा दिया जाता है। आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना व कनाडा में ऐसी ही कृषि का प्रचार है।

(२) **गहरी खेती** —इस प्रकार की खेती में भूमि का क्षेत्रफल सीमित रखकर उसी खेत पर श्रम और पूंजी का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग किया जाता है। प्राचीन देशों में जहाँ जनसंख्या की पर्याप्त वृद्धि हो चुकी है और भूमि की न्यूनता है, उपज बढ़ाने के लिये प्रस्तुत भूमि पर ही अधिक श्रम और पूंजी का प्रयोग किया जाता है।

यह सोचना गलत है कि कोई देश या तो विस्तृत खेती को अपनाता है, या गहरी खेती को। वास्तव मे प्रत्येक देश मे दोनो प्रकार की कृषि प्रणालियां साथ साथ चलती हैं। धीरे धीरे एक-सा महत्व कम होता जाता है और दूसरी का बढ़ता जाता है। आधुनिक काल मे जनसख्या की वृद्धि के कारण गहरी खेती का महत्व लगभग सब ही देशों मे बढता जा रहा है। गहरी खेती दो बातो पर निर्भर करती है —

(१) जनसख्या की वृद्धि और (२) टेक्नीकल आविष्कार और कृषि सम्बन्धी सुधार।

अध्याय २६

भारतवर्ष की भूमि

प्रश्न ५१—भारतवर्ष की विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का सक्षेप मे वर्णन कीजियेगा।

(Explain in brief the various types of soil in India.)

उत्तर—

एक कृषि प्रधान देश के लिए भूमि का लक्षण एव उर्वरा शक्ति का प्रभाव आर्थिक जीवन पर महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि बिना अच्छी भूमि की सहायता के अच्छी एव सस्ती फसलें नही पैदा की जा सकती हैं। भारतवर्ष मे विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती हैं तथा वे विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त भी हैं। भारतवर्ष मे निम्न मुख्य प्रकार की मिट्टियां पाई जाती हैं :—

मिट्टी के प्रकार :—
१ लाल मिट्टी।
२ काली मिट्टी।
३ लेटराइट मिट्टी।
४ नदियों की मिट्टी।
५ बलुई मिट्टी।

(१) **लाल मिट्टी** —इस मिट्टी मे लोहे का अंश अधिक होने के कारण इसका रग लाल होता है। इस प्रकार की मिट्टी मद्रास, मैसूर, बम्बई, हैदराबाद, मध्यप्रान्त के पूर्व मे तथा छोटा नागपुर उडीसा एव बगाल के दक्षिणी भाग में पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी कई प्रकार की चट्टानों के सहयोग से मिलकर बनती है। इस कारण से यह गहराई

तथा उर्वराशक्ति के विचार से विभिन्न प्रकार की होती है। इसी कारण से ऊंचे मैदानों पर पाई जाने वाली मिट्टी अधिक उर्वरा नही होती है तथा यह केवल हीन फसलों के उगाने के काम ही आती है, परन्तु इसके विपरीत जो मिट्टी नीचे मैदानो मे पाई जाती है जिसका रग गहरा लाल होता है वह अधिक उर्वरा मिट्टी होती है तथा उसमे अनेक प्रकार की फसलें उगाई जा सकती हैं जिसमे ज्वार, बाजरा, चावल मुख्य हैं। लाल मिट्टी के कम उर्वरा होने का कारण यह है कि इसमे नाइट्रोजन, फासफोरिक एसिड और वनस्पति का अंश कम होता है।

(२) काली मिट्टी :—इस मिट्टी म धातुओ की अधिक मिलावट होने के कारण इसका रग काला होता है। यह मिट्टी कपास की उपज के लिए अधिक उपयुक्त है तथा इस प्रकार की मिट्टी मे कपास की उपज के लिए वर्षा एव सिचाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार की मिट्टी भारत म बम्बई राज्य के अधिकांश भाग मे, बरार मध्यप्रदेश का पश्चिमी भाग, हैदराबाद तथा मद्रास के कुछ जिलों मे पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी का क्षेत्र लगभग १ लाख वर्गमील मे है। लाल मिट्टी की भाँति यह मिट्टी भी कई प्रकार की होती है। ऊंचे मैदानो तथा पहाड़िया की ढालो पर पाई जाने वाली मिट्टी कम गहरी होने के कारण अधिक उपजाऊ नही होती है लेकिन नीचे मैदानो, नदिया की घाटियो तथा पहाड़ियो के मध्य पाई जाने वाली मिट्टी अधिक गहरी होने के कारण अधिक उपजाऊ होती है। बरसात के दिनो मे यह मिट्टी चिकनी तथा लचीली हो जाती है परन्तु गर्मी के दिनो म उसमे दरारें पड जाती हैं। इस प्रकार की मिट्टी अधिकांश अधिक उपजाऊ होती है।

(३) लेटराइट मिट्टी —इस प्रकार की मिट्टी विशेषकर मध्यभारत, पूर्वी और पश्चिमी घाटो के समीप और कहीं-कहीं आसाम और बर्मा के पास पाई जाती है। यह मिट्टी भी लाल रग की होती है। अत्यधिक वर्षा के कारण लेटराइट चट्टानों के टूटने से इस प्रकार की मिट्टी बनती है। यह मिट्टी सामान्यतया अधिक उपजाऊ नही होती है। यह मिट्टी भी अनेक प्रकार की होती है। पहाड़ियो पर पाई जाने वाली मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है जिससे इसमे कुछ फसलें उगाई जा सकती हैं जिनमे चावल मुख्य है। चाय की खेती भी इस प्रकार की मिट्टी म अच्छी होती है।

(४) नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी :—यह मिट्टी भारतवर्ष मे अधिक विस्तृत क्षेत्र मे पाई जाती है तथा कृषि की दृष्टि से अधिक उपजाऊ एव महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र बडी बडी नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है। भारत के

उत्तरी भाग मे सिन्धु और गगा के मैदानो मे इस प्रकार की मिट्टी फैली हुई है। इस प्रकार की मिट्टी उत्तर, राजपूताना, पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल और आधे आसाम के भाग म पाई जाती है। देश के दक्षिणी भाग म यह मिट्टी प्रायद्वीप के दोनों तटो पर पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी का क्षेत्रफल लगभग ३ लाख वर्गमील है। रसायनिक दृष्टि से यह मिट्टी अधिक उत्तम है लेकिन इस मिट्टी म नाइट्रेट की कमी पाई जाती है। यदि सिचाई की उचित व्यवस्था रहे तो इस प्रकार की मिट्टी म सभी प्रकार की फसल बोई जा सकती हैं। इन मैदानो म चावल एव गन्ने का उत्पादन अधिक होता है।

(५) **बलुई मिट्टी :**—इस मिट्टी को मरुस्थलीय मिट्टी भी कहते है क्योंकि इस प्रकार की मिट्टी ऐसे स्थानो पर पाई जाती है जहाँ वर्षा या तो होती ही नहीं है या होती भी है तो बहुत कम। ऐसे स्थानो पर बालू के टीले पाये जाते हैं। इस प्रकार की मिट्टी म पानी सोखने की शक्ति अधिक होती है ऐसी मिट्टी उपजाऊ नही होती है। भारत म ऐसी मिट्टी दक्षिणी पजाब तथा पश्चिमी राजस्थान म पाई जाती है।

भारत की विभिन्न प्रकार की मिट्टियों मे नाइट्रोजन तत्व की कमी पाई जाती है। यही कारण है कि हम खाद द्वारा इस तत्व की कमी को पूरा करना पडता है। इसके अलावा भारत की मिट्टियाँ अपेक्षाकृत शुष्क हैं। इसी कारण से भारत के किसानों के सम्मुख सिचाई की एक कठिन समस्या रहती है।

प्रश्न ५२—भूमि के कटाव से आप क्या समझते हैं ? इसके कारणों तथा रोकने के उपायों का वर्णन कीजियेगा।

(Explain the meanings and causes of soil Erosion Also suggest the methods to check soil Erosion.)

उत्तर :—

भूमि के कटाव का अर्थ —जब बाढ, हवा या अधिक वर्षा के कारण भूमि की सतह की मिट्टी बह जाती है तो उसे भूमि का कटाव कहते हैं। भूमि के ऊपर की सतह की मिट्टी बहुत मुलायम तथा उपजाऊ होती है और जब अधिक वर्षा या बाढ आती है या तेज हवा चलती है तो सतह के गुणकारी तत्व बह जाते हैं जिससे भूमि की उर्वराशक्ति कम हो जाती

है। इसी को ही भूमि का कटाव कहते हैं। भारतवर्ष मे मिट्टी का कटाव मुख्यत उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बगाल, पजाब के होशियारपुर तथा अम्बाला जिलो मे और पहाडी प्रदेशो मे तथा अधिक वर्षा होने के कारण बम्बई के दक्षिणी जिलो तथा छोटा नागपुर मे विशेष रूप से पाया जाता है। वैसे भूमि के कटाव की समस्या प्रत्येक देश म पाई जाती है।

भूमि के कटाव के कारण —भूमि के कटाव के मुख्य कारण निम्न लिखित हैं :—

(१) अधिक वर्षा का होना —जिन स्थानो पर वर्षा अधिक होती है। वहा या तो भूमि मे गहरे गड्ढे हो जाते हैं या भूमि के ऊपरी सतह के गुणकारी तत्व वर्षा के साथ-साथ बह जाते हैं, जिस कारण से उन स्थानो पर भूमि का कटाव हो जाता है।

> **भूमि के कटाव के कारण :—**
> १. अधिक वर्षा का होना।
> २ मिट्टी मे ढलाव।
> ३ मिट्टी की बनावट।

(२) भूमि मे ढलाव —यदि भूमि का ढलाव कम है जैसे सिन्ध और गगा के मैदान तो भूमि का कटाव बहुत ही कम होता है। इसके विपरीत यदि भूमि का ढलाव अधिक है जैसे भारत के दक्षिणी भाग म तो भूमि का कटाव अधिक होता है। ऐसे स्थानो पर वर्षा के कारण गहरे गड्ढे हो जाते हैं।

(३) मिट्टी की बनावट —जिन स्थानो की मिट्टी काली है वहा वर्षा के दिनो में मिट्टी लिबलिबी हो जाती है तथा ऊपरी सतह की थोडी ही मिट्टी बहने पाती है और सतह में गहरे गड्ढे भी नही होने पाते हैं इस कारण से भूमि का कटाव भी कम होता है लेकिन जिन स्थानो की भूमि की मिट्टी रेतीली या दोमट होती है वहा वर्षा के कारण ऊपर की सतह की मिट्टी बह जाती है तथा भूमि में गहरे गड्ढे भी हो जाते हैं जिससे उन स्थानो पर भूमि का कटाव भी अधिक होता है।

भूमि के कटाव को रोकने का सुझाव :—भूमि के कटाव को रोकने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) वर्षा से पहले भूमि को जोतना —वर्षा होने से पहले भूमि को ढाल के समानान्तर जोत देना चाहिये जिससे पानी के बहने की शक्ति कम हो जाती है। भूमि मे पानी के सोखने की शक्ति भी बढ जाती है। यह कार्य प्रतिवर्ष वर्षा होने से पहले हो जाना चाहिये।

(२) वनो की वृद्धि करना :—जिन स्थानो पर भूमि का कटाव अधिक

होता है। वहां वनो की वृद्धि करनी चाहिये। वनो के लगाने से भूमि सगठित हो जाती है। बाढ तथा वर्षा से मिट्टी अधिक नहीं बहती है। वनो के लगाने से हवा के वेग मे भी कमी आ जाती है जिससे मिट्टी हवा के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को उडके नही जाती है। इसलिए भूमि के कटाव को रोकने के लिए वनो की वृद्धि करनी चाहिये।

कटाव को रोकने के सुझाव —

१ वर्षा से पहले भूमि को जोतना।
२ वनो की वृद्धि करना।
३ बांधो का लगाना।
४ ढलाऊ भूमि पर सीढी दार खेती।
५ चारागाहो की उचित व्यवस्था।
६ वर्षा के समय खेतो में फसल का होना।

(३) बाँधो का लगवाना — जगह जगह पर भूमि पर बांध लगवा देने चाहिये जिससे पानी का बहाव कम हो सके। इस कार्य मे खर्चा अधिक होगा जिसको गरीब किसान सहन नही कर सकते हैं। इसलिए इस कार्य मे सरकार द्वारा सहायता प्राप्त होनी चाहिये।

(४) ढलाऊ भूमि पर सीढीदार खेती —यदि भूमि अधिक ढलाऊ है तो उस पर सीढीदार खेती करनी चाहिये क्योकि ऐसा करने से भूमि का कटाव कम होगा।

(५) चारागाहो की उचित व्यवस्था —चारागाहो म पशुओ के चरने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। भूमि से सारी घास नही काटनी चाहिये। एसा करने से वर्षा द्वारा मिट्टी का बहाव रुक जायेगा।

(६) वर्षा के समय खेतो मे फसल का होना —वर्षा के समय खेतों म किसी भी प्रकार की फसल होने से पानी का बहाव पौधो की जडो के कारण कम हो जाता है। जिससे भूमि का कटाव कम हो जाता है।

इस प्रकार उपलिखित विधियो को अपनान स भूमि के कटाव की समस्या हल हो सकती है।

प्रश्न ५२—"भारतवर्ष मे वर्षा" पर एक निबन्ध लिखियेगा।

(Write an essay on 'Rainfall in India')

उत्तर :—

भारतवर्ष मे वर्षा मानसूनो द्वारा होती है। यहां मानसून का अर्थ वर्षा

लाने वाली हवाओं से है। भारतवर्ष में मानसून हवायें दो प्रकार की होती हैं (१) ग्रीष्मकालीन मानसून तथा (२) शीतकालीन मानसून। अब हम प्रत्येक के विषय में विस्तार से देखेंगे।

ग्रीष्मकालीन मानसून :—भारतवर्ष में अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसून हवाओं से होती है। इसी कारण से ग्रीष्मकालीन वर्षा के समय को "वर्षाऋतु" कहते हैं। यह जून में शुरू होकर सितम्बर तक चलती है। ग्रीष्म कालीन मानसून दो प्राकर की होती हैं —

(१) बंगाल की खाडी से मानसून तथा **(२) अरब की खाडी से मानसून।**

बंगाल की खाडी से मानसून —पहले मानसून बंगाल में हिमालय के पूर्वी भाग से टकराता है जिससे इस भाग में अधिक वर्षा होती है। इस मानसून का कुछ भाग आसाम की ओर चला जाता है तथा ब्रह्मपुत्र की खाडी में बहुत वर्षा करता है तथा शेष भाग पश्चिम की ओर चलकर बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में जाकर वर्षा करता है। जैसे-जैसे मानसून पूर्व से पश्चिम की ओर चलता जाता है। वर्षा की मात्रा कम होती चली जाती है। दूसरी प्रकार की ग्रीष्मकालीन मानसून अर्थात **अरब की खाडी से मानसून** का अधिकांश भाग पश्चिमी घाट के पर्वतों से टकराकर पश्चिमी घाट तथा मैदानों में वर्षा करता है। इस मानसून का कुछ भाग मध्य प्रदेश में भी वर्षा करता है तथा शेष मानसून सिंध, काठियावाड तथा राजपूताना आदि में वर्षा करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसून हवाओं के द्वारा होती है।

शीतकालीन मानसून —यह मानसून हवाये अक्टूबर से शुरू होकर दिसम्बर तक चलती हैं। यह मानसून थल से जल की ओर चलता है। दक्षिणी प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग में भारी वर्षा करती हैं। मध्य प्रदेश, बरार और हैदराबाद में भी इस मानसून से कुछ वर्षा हो जाती है जिससे इन प्रदेशों की गेहूं की फसल को अधिक लाभ होता है।

भारतीय वर्षा की विशेषताये :—भारतवर्ष की वर्षा की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) वर्षा की मात्रा में भिन्नता —भारतवर्ष में वर्षा की मात्रा हर स्थान पर भिन्न भिन्न पाई जाती है। जैसे चेरापूंजी में वर्षा ६००" के लगभग होती है लेकिन राजस्थान एवं पंजाब के दक्षिणी भाग में यह केवल १०" ही होती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट पर तथा गंगा के मैदान में ८०"

आसाम में ६०", बंगाल में ५५", उत्तर प्रदेश में २५" से ४०" तथा दक्षिणी प्रायद्वीप में १०" से २०" के लगभग वर्षा होती है। इससे स्पष्ट है कि देश के प्रत्येक भाग में वर्षा की मात्रा में असमानता पाई जाती है।

> भारतीय वर्षा की विशेषतायें —
> १. वर्षा की मात्रा में भिन्नता।
> २. अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसूनों द्वारा।
> ३. वर्षा की अनिश्चितता
> ४. कुछ भागों में वर्षा की कमी।
> ५. वर्षा से भूमि के कटाव की समस्या।
> ६. वर्षा के बाद सिंचाई के साधनों की आवश्यकता।

(२) अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसूनों द्वारा :—९०% वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसून द्वारा होती है जो कि जून से शुरू होकर सितम्बर तक चलती है। इसी कारण से इस समय को "वर्षाऋतु" कहते है।

(३) वर्षा की अनिश्चितता :—'भारतवर्ष में वर्षा की अनिश्चितता पाई जाती है। कभी वर्षा शीघ्र शुरू हो जाती है कभी देर से या कभी वर्षा शीघ्र समाप्त हो जाती है या देर से। इसी प्रकार किसी दिन वर्षा अधिक हो जाती है तो किसी दिन कम।

(४) कुछ भागों में वर्षा की कमी —देश के कुछ भाग ऐसे हैं जिनमें वर्षा की कमी पाई जाती है तथा जिन पर किसी वर्ष वर्षा हो जाती है और किसी वर्ष वर्षा नहीं भी होती है। जैसे मध्य भारत।

(५) अधिक वर्षा से भूमि के कटाव की समस्या　ग्रीष्मकालीन मानसून हवाओं से वर्षा जोर से होती है जिससे पानी व्यर्थ जाता है तथा भूमि के ऊपरी सतह के गुणकारी तत्व बह जाते हैं जिससे कृषकों के सामने भूमि के कटाव की समस्या आती है।

(६) वर्षा के बाद सिंचाई के साधनों की आवश्यकता —देश में वर्षा साल के कुछ महीनों में ही होती है। इस कारण से वर्षा के बाद कृषकों को सिंचाई के साधनों की उचित व्यवस्था करनी होती है।

वर्षा की उपर्लिखित विशेषताओं के कारण ही "भारतीय कृषि को जल-वृष्टि का जुआ" कहा है। इसलिए कृषि के उचित विकास एवं उसमें स्थिरता लाने के लिए देश में सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

———

अध्याय २७

भारतीय भूमि की उत्पत्ति

प्रश्न ५४—भारत मे कृषि के कम उत्पत्ति के कारण लिखियेगा तथा सुधार के लिए सुझाव भी दीजिये।

(Explain the causes of low Agricultural Production in India and suggest methods for its development.)

उत्तर—

हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। यहा की अधिकाश जनता लगभग ८०% खेती पर ही निर्भर है। खेती भारतवर्ष का प्राचीन धन्धा है। फिर भी यदि हम अपने देश की कृषि उत्पादन की ओर ध्यान दें तो हमे दशा शोचनीय दीख पडती है। हमारे देश का कृषि उत्पादन विदेशो की तुलना मे बहुत कम है। जब विदेशो मे अन्न ३० मन प्रति एकड पैदा होता है तो भारत मे यह केवल १० मन प्रति एकड ही पैदा होता है।

कृषि के कम उत्पत्ति के कारण - भारत म कृषि के कम उत्पादन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं —

(१) प्राकृतिक कारण :—भारत एक विशाल देश है। इसमें न एक सी भूमि पाई जाती है और न वर्षा की ही समानता पाई जाती है। कहीं-कही वर्षा इतनी अधिक होती है कि बाढ तक आ जाती है जैसे बगाल और आसाम और कही वर्षा बहुत कम होती है जैसे सिन्ध और राजपूताना। वर्षा का अधिक और कम होना दोनो ही कृषि के लिए बाधक हैं।

(२) दैवी कारण —जहाँ कही कृषि की उपज अच्छी होती है वहा दैवी कारणों से फसल खराब हो जाती है। जैसे चूहे, कीडे, मकोडे, टीडी आदि के द्वारा। कभी-कभी पाला या जाडा मार जाता है जिससे फसल नष्ट हो जाती है। भारतीय किसान प्राचीन ढग से कृषि कार्य करता है, इस कारण से यह इनसे बचने के वैज्ञानिक उपाय नही जानता है।

कृषि के कम उत्पत्ति के कारण —

१ प्राकृतिक कारण।
२ दैवी कारण।
३ खेतो का छोटा व छिटका होना।
४. सिंचाई का अभाव।
५. किसानो की गरीबी।
६. वैज्ञानिक यन्त्रो की कमी।
७. खाद की कमी।
८. दुर्बल पशु।
९ उत्तम बीज का अभाव।
१०. शिक्षा का अभाव।

(३) **खेतों का छोटा व छिटका होना**—भारतवर्ष मे यह प्रथा है कि पैतृक सम्पत्ति मे सभी पुत्रो का बराबर हक होता है। इस कारण से दिन पर दिन खेत छोटे छोटे व दूर-दूर होते चले जाते हैं, जिन पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नही होता है।

(४) **सिंचाई का अभाव**.—भारतीय किसान पानी के लिए वर्षा पर निर्भर रहते हैं। जिस वर्ष वर्षा अच्छी हो जाती है तो फसल भी अच्छी हो जाती है। अन्यथा वर्षा की कमी में फसल भी अच्छी नही होती है। भारत में सिंचाई के साधनो का अभाव है। सरकार को विभिन्न सिंचाई के साधनो को जैसे नहरो तथा बिजली के कुओं की व्यवस्था करनी चाहिये।

(५) **किसानों की गरीबी**—भारतीय किसान गरीब है। उनके पास कृषि के विकास के लिए पर्याप्त पूँजी भी नही है, इसलिये वे आये दिन महाजनों से रुपया उधार लेते हैं जिसको वे अपनी जिन्दगी में कभी अदा नहीं कर पाते हैं। इसी गरीबी के कारण वे पौष्टिक भोजन भी नही कर पाते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नही है। इसी कारण से विदेशो के कृषकों के रहन-सहन की तुलना में भारतीय कृषक का रहन-सहन का दर्जा नीचा है।

(६) **वैज्ञानिक यन्त्रो की कमी**—भारतीय किसान पुराने किस्म के हल एव औजारो से ही कृषि कार्य करता है जिससे कृषि का उत्पादन अधिक नही होने पाता है, जबकि विदेशो मे किसान आधुनिक यन्त्रों का पूर्णत प्रयोग करता है। इसी कारण से उनका कृषि का उत्पादन अधिक होता है।

(७) **खाद की कमी**.—भारत में अधिकांश किसान गोबर के कन्डे बनाकर उसको ईंधन के रूप मे प्रयोग में लाते हैं तथा हड्डी तथा मछली की खाद को वे प्रयोग में लाते ही नहीं हैं। इस कारण खेती मे खाद की कमी रहती है तथा कृषि उत्पादन बढने नही पाता है।

(८) **दुर्बल पशु**—भारतीय किसान अधिकतर कृषि कार्य में पशुओं का सहारा लेते हैं, जिनमे बैल मुख्य है लेकिन उनकी दशा भी शोचनीय है। उनको अच्छा तथा उचित मात्रा में चारा नही मिलता है। उनकी नस्ल भी अच्छी नहीं है तथा उनकी बीमारियो के लिए कोई प्रबन्ध नहीं है। इस कारण से पशु दुर्बल रहते हैं।

(९) **उत्तम बीज का अभाव**.—भारतीय किसान बीज की उत्तमता पर ध्यान नहीं देता है। उसको जैसा बीज मिल जाता है वैसा ही बो देता है। यह बीज अधिकतर किसान महाजनो से लेता है जो कि अच्छा नहीं होता है इसी कारण से उपज भी अच्छी नहीं होती है।

(१०) **शिक्षा का अभाव** :—भारतीय किसान अशिक्षित है। वह कृषि कार्य पुराने ढग से करता है। शिक्षा के अभाव मे वह आधुनिक एवं वैज्ञानिक रीति से कृषि कार्य करके अधिक उत्पादन करने मे समर्थ नहीं हो पाता है।

इन्हीं सब कारणों से भारत मे कृषि का उत्पादन कम है तथा प्रति वर्ष सरकार को विदेशों से अन्न मगाना पडता है।

सुझाव :—भारतीय कृषि के उत्पादन को बढाने के लिए निम्न सुझावो पर ध्यान देना होगा :—

(१) **चकबन्दी कार्य** :—खेतो को छोटे एव छिटका होने से रोकने के लिए चकबन्दी कार्य का होना आवश्यक है तभी खेतों मे वैज्ञानिक रूप से कृषि लाभप्रद हो सकती है।

(२) **सिचाई का प्रबन्ध** :—सरकार को नहरो के विकास पर ध्यान देना चाहिये तथा साथ ही साथ ट्यूब वैल, तालाब आदि साधनो का भी उचित प्रबन्ध कराना चाहिये जिससे कृषकों को कम खर्चे पर सिचाई की सुविधा प्राप्त हो सके।

(३) **नवीन एवं वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग** :—सरकार को भारतीय किसानों को कृषि से सम्बन्धित नवीन एवं वैज्ञानिक यन्त्रों की शिक्षा देनी चाहिये तथा उनके प्रयोग के लिए सुविधायें प्रदान करनी चाहिये। तभी कृषि का उत्पादन बढ सकता है।

(४) **अच्छी खाद की व्यवस्था** :—यह कार्य कृषक स्वय कर सकते हैं। उनको चाहिये कि वे गोबर का प्रयोग खाद के रूप मे करें न कि ईंधन के रूप मे। तभी खाद की कमी दूर हो सकती है।

(५) **पशुओं की नस्ल मे सुधार** :—सरकार को पशुओं की नस्ल मे सुधार की भी व्यवस्था करनी चाहिये। गाव २ मे पशु चिकित्सालय एव अच्छे साड- होने चाहिये। उनके लिए चारे की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये।

अधिक उत्पत्ति के लिए सुझाव :—

१. चकबन्दी कार्य।
२. सिचाई का प्रबन्ध।
३. वैज्ञानिक यन्त्रो का प्रयोग।
४. अच्छी खाद की व्यवस्था।
५. पशुओं की नस्ल मे सुधार।
६. उत्तम बीज की व्यवस्था।
७. शिक्षा का प्रचार।
८. आदर्श फार्म की व्यवस्था।
९. नुमायश एव प्रदर्शनो का प्रबन्ध।
१०. पचायतो द्वारा सहयोग।

(६) **उत्तम बीज की व्यवस्था :**—सरकार को उत्तम बीज की भी व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लिये प्रत्येक गांव मे सहकारी बीज भन्डार खोलने चाहिये। तभी अच्छे बीजो से अच्छे प्रकार की खेती हो सकती है।

(७) **शिक्षा का प्रचार** —गांवो मे शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होना चाहिये जिससे किसान कृषि के नये साधनो के प्रयोग को समझे तथा महाजनो के अत्याचारो से बच सके।

(८) **आदर्श फार्म की व्यवस्था** —सरकार को अपने आदर्श फार्म खोलने चाहिये तथा किसानो को उनके देखने का मौका देना चाहिये जिससे वे भी उसी प्रकार अपनी कृषि मे सुधार कर सकें।

(९) **नुमायश एवं प्रदर्शनो का प्रबन्ध :**—सरकार को कृषि से सम्बन्धित नुमायशो एवं प्रदर्शनियो का प्रबन्ध करना चाहिये जिसमे आधुनिक यन्त्रो के प्रयोग करने की विधि भी समझानी चाहिये।

(१०) **पंचायतों द्वारा सहयोग** —पंचायतो को अपने अपने गांव की कृषि के उत्पादन की मात्रा बढाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये तथा गांव मे शान्ति स्थापित रखने का उत्तरदायित्व लेना चाहिये।

उपर्लिखित सुझावो द्वारा ही भारत मे कृषि का उत्पादन अन्य देशो की तुलना मे बढ सकता है। इसलिए सरकार एवं कृषको का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है।

प्रश्न ५५—खाद कितने प्रकार की होती है? क्या भारतीय किसान इन खादो का समुचित उपयोग करता है?

(What are the kinds of fertilizer? Does Indian farmer use there fertilizer in a good way?)

उत्तर :—

जिस प्रकार स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अच्छी खेती के लिए खेतो मे खाद की आवश्यकता होती है। खाद मुख्यत सात प्रकार की होती है।

(१) **गोबर और गोमूत्र की खाद** —गोबर की खाद सबसे अच्छी एवं सस्ती होती है लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय किसान गोबर को ईंधन के रूप मे प्रयोग करते हैं। वर्षा के दिनो मे जबकि गोबर आसानी से सुखाया नहीं जा सकता तब किसान कहीं इसका प्रयोग खाद के रूप मे करता है। साथ ही

भारतीय किसान गोबर का वैज्ञानिक ढग से खाद बनाने की विधि भी नही जानता है। इसके अतिरिक्त गोमूत्र भी खाद के रूप मे काम मे लाई जा सकती है किन्तु भारतीय किसान इसका भी उचित प्रयोग नही कर पाता है और वह इधर-उधर बह कर व्यर्थ जाता है लेकिन यदि किसान गोबर एव गोमूत्र को गाव के बाहर गड्ढा बनाकर एकत्र करे और बाद मे उसे खाद के रूप मे काम म लाए तो यह कृषि के लिए उत्तम खाद रहेगी।

(२) **मल की खाद** मल के द्वारा भी अच्छी खाद बन सकती है लेकिन भारतीय किसान इसका भी उचित प्रयोग नही करता है, क्योंकि वह इस खाद को छूना नही चाहता है। दूसरे इससे बदबू भी आती है। गावो मे पाखाने न होने से इसके एकत्र करने म भी परेशानी होती है। इस कारण से मल की खाद अधिक प्रयोग मे नही आती है। इसके लिए पचायतो को गाव मे पिट-लैट्रिन्स की व्यवस्था करनी चाहिये तथा मल को खाद के रूप मे प्रयोग करन की उचित व्यवस्था करनी चाहिये।

खाद के प्रकार :—
१ गोबर व गोमूत्र की खाद।
२. मल की खाद।
३ हरी खाद।
४ खली की खाद।
५ रासायनिक खाद।
६ हड्डियो की खाद।
७ मछलियो की खाद।

(३) **हरी खाद :**—हरी खाद के लिए साधारणत सन का उपयोग किया जाता है। पहले सन को खेत म बो दिया जाता है और जब वह उग आता है तो पटला चला कर पौधो को मिट्टी मे मिला दिया जाता है, इस प्रकार हरी खाद प्रयोग मे आती है। इस प्रकार के करने से भूमि कुछ समय क लिए खाली रखनी पडती है। इस कारण से कृषक इस प्रकार से खाद का प्रयोग करना पसन्द नही करते हैं।

(४) **खली की खाद :**—तिलहन मे तेल निकालने के बाद जो शेष रहता है उसे खली कहते हैं। खली की खाद बहुत उपयोगी होती है क्योंकि इसम नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, जिसकी भारतीय मिट्टियो को अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन भारतीय किसानो को यह खाद भी आसानी से नही मिल पाती है क्योंकि अधिकाश खली विदेशो को भेज दी जाती है तथा शेष खल को पशुओ के खिलाने के कार्य मे लाया जाता है। इसलिए यदि सरकार विदेशो को खली भेजना बन्द कर दे तथा पशुओ के लिए उचित चारे की व्यवस्था हो जाय तो भारतीय कृषको को खली के खाद का प्रयोग करने का अवसर मिल सकता है।

(५) **रासायनिक खाद** —रासायनिक खादें फलो एव गन्नों की पैदावार के लिए अधिक उपयोगी होती है। रासायनिक खाद दो प्रकार की होती हैं —(१) सोडा नाइट्रेट तथा (२) अमोनिया सल्फेट। ये खादें अधिक मूल्यवान होती हैं जिनको कृषक आसानी स प्रयोग मे नहीं ला सकते हैं। सोडा नाइट्रट रासायन खाद की तो भारत मे ही कमी है। सरकार का ध्यान देश म रासायनिक खाद के उत्पादन की ओर गया है और आशा की जाती है कि कुछ ही वर्षों मे भारत में रासायनिक खाद की कमी नहीं रहेगी तथा भारतीय कृषक इसका आसानी से प्रयोग कर सकेंगे।

(६) **हड्डी की खाद** —जिस भूमि में फासफोरस के तत्व की कमी है वहा हड्डी की खाद अधिक उपयोगी होती है। हड्डी की खाद हड्डियों को सडा कर एव पीस कर बनाई जाती है। यह खाद फलदार वृक्षो के लिए भी अधिक उपयोगी होती है। परन्तु भारत म अधिकाश हड्डी की खाद विदेशों को भेज दी जाती है जिससे भारतीय किसान इसके प्रयोग से वचित रह जाते हैं। दूसरे भारतीय किसान धार्मिक दृष्टिकोण के कारण इस खाद का प्रयोग करना भी नहीं चाहते हैं। यदि भारत म इस खाद का प्रयोग बढाना है तो सरकार को विदेशों को निर्यात बन्द करना होगा तथा शिक्षा के प्रचार द्वारा कृषको को इसकी उपयोगिता समझानी होगी।

(७) **मछली की खाद** —मछली की खाद भी बहुत उपयोगी होती है लकिन इसका भी भारत म अभाव है क्योंकि भारत म इतनी मछली पैदा नहीं होती कि उनको खाद के रूप मे प्रयोग किया जा सके। केवल समुद्र तट के प्रदेशों म कहीं-कहीं इस खाद का प्रयोग होता है।

उपलिखित विवरण स स्पष्ट है कि भारतीय किसान खेती म उचित मात्रा मे खाद का प्रयोग नहीं करता है। भारत की दशा के अनुसार गोबर की खाद ही सस्ती एव उत्तम है। इसलिए भारतीय कृषको को गोबर की खाद का उपयोग बढाना चाहिये तथा इसका ईंधन के रूप म प्रयोग समाप्त करना चाहिये। तभी भारतीय कृषको की खाद की समस्या का हल सम्भव हो सकता है।

प्रश्न ५५—"भारतीय कृषि मे यन्त्रीकरण से लाभ-हानि" पर नोट लिखिये।

(Write a note on the advantages and disadvantages of machinese in India agriculture)

उत्तर :—

आज का युग विज्ञान का युग है। प्रत्येक व्यवसाय म औद्योगिक हो या

कृषि सम्बन्धित मशीनो का प्रयोग दिन पर दिन बढता जा रहा है। पाश्चात्य देशो ने विज्ञान मे अधिक प्रगति की है और इसी कारण से वे कृषि व औद्योगिक क्षेत्र म सबसे आगे हैं। अब यह प्रश्न होता है कि भारत को एक कृषि प्रधान देश होने के नाते विज्ञान का सहारा लना चाहिये या नही। जिस देश की ८०% जनसख्या कृषि पर निर्भर करती हो वहा यन्त्रीकरण का क्या परिणाम होगा ? यह एक वाद विवाद का प्रश्न है। किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचने से पहले हम नीचे विस्तार से भारतीय कृषि म यन्त्रीकरण से लाभ व हानि देखेंगे।

कृषि मे यन्त्रीकरण से लाभ

(१) **कठिन कार्य मे आसानी** —कृषि कार्य शारीरिक श्रम से अधिक सम्बन्धित है। इन कार्यों को करने म समय भी अधिक लगता है जैसे खेत जोतना, सिचाई का प्रबन्ध करना, फसल करना आदि। इसलिये यदि कृषि कार्य में यन्त्रो का प्रयोग किया जाय तो ये सब कार्य आसानी स हो सकते हैं। जैसे ट्रैक्टर का प्रयोग।

(२) **उत्पादन मे वृद्धि** —मशीनो की सहायता स कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। क्योकि मशीनो के द्वारा कार्य आसानी से एव कम समय मे समाप्त हो जाता है। इसी कारण स विदेशो में कृषि का उत्पादन हमारे देश की तुलना म अधिक है।

(३) **कृषको की कार्य क्षमता मे वृद्धि** —मशीनो के प्रयोग से कृषक वर्ग कार्य विशेष म निपुण एव कुशल हो जाते है जिससे उनकी कार्य-क्षमता एव उत्पादन क्षमता म वृद्धि हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन मे वृद्धि होती है और लाभ की मात्रा बढ जाती है।

(४) **सिचाई की व्यवस्था** —यन्त्रों की सहायता से अब कृषको की सिचाई की समस्या का भी अन्त सा हो गया है। ट्यूब वैल व नहरो की सहायता से खेतो को पानी आसानी से

कृषि मे यन्त्रीकरण से लाभ —

१ कठिन कार्य मे आसानी।
२ उत्पादन मे वृद्धि।
३ कृषको की कार्य क्षमता म वृद्धि।
४ सिचाई की व्यवस्था।
५ श्रम विभाजन के लाभ।
६. क्रय विक्रय में सहायता

हानियां —

१ बेरोजगारी का डर।
२ आर्थिक असमानता को बढावा।
३ उत्पादन व्यय में वृद्धि।
४ दूसरो पर निर्भरता
५ श्रमिको के स्वास्थ्य पर प्रभाव।

मिल जाता है। अब किसानों को प्राचीन ढग से सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं पडती है।

(५) **कृषि मे यन्त्रो की सहायता से श्रम-विभाजन के लाभों की प्राप्ति** —कृषि कार्य मे जितना अधिक यन्त्रों का प्रयोग बढता जाता है उतना ही श्रम विभाजन का क्षेत्र भी बढ जाता है जिससे श्रम-विभाजन द्वारा होने वाले लाभ भी कृषि कार्य में प्राप्त होने लगते हैं।

(६) **क्रय विक्रय मे सहायता** :—यातायात के साधनो के विकास म किसानो की आवश्यकता की वस्तु उनके खेतों तक पहुँच सकती है। इसी प्रकार कृषि उत्पादन को बाजार तक ले जाने म सहायता मिलती है जिससे धन और समय की बचत होती है।

कृषि मे यन्त्रीकरण स हानियां

(१) **बेरोजगारी का डर** —आलोचकों का कहना है कि कृषि म यदि यन्त्रो के प्रयोग को बढावा दिया गया तो बेरोजगारी बढने का डर है क्योंकि जो व्यक्ति इस समय कृषि कार्य में लगे हुए हैं उनमे से अधिकाश व्यक्ति मशीन के प्रयोग होने से बेकार हो जायगे। भारत मे जनसख्या अधिक है। इसका अधिकाश भाग कृषि पर ही निभर है। इस कारण से मशीनो का प्रयोग बेरोजगारी बढाने मे सहायक होगा।

(२) **आर्थिक असमानता को बढावा** —यन्त्रो के प्रयोग से कुछ कृषक अधिक धनी तथा अधिकाश कृषक गरीब रहेंगे जिससे आर्थिक असमानता बढेगी क्योंकि यन्त्रों को भारत म प्रत्येक किसान प्रयोग नही कर सकता है। उसकी आर्थिक दशा सन्तोषजनक नही है।

(३) **उत्पादन व्यय मे वृद्धि** —भारतीय कृषक क पास भूमि छोटे छोटे टुकडो म और दूर दूर पर बटी हुई है जिसम यन्त्रो का प्रयोग आसानी स नहीं हो सकता है। यदि यन्त्रो का प्रयोग किया भी जाय तो उत्पादन व्यय बढ जाता है जिससे लाभ की मात्रा कम हो जाती है।

(४) **दूसरों पर निर्भरता** .—आज किसान प्रत्येक कार्य स्वय कर लेता है तथा दूसरो की सहायता की कम आवश्यकता पडती है। लेकिन जब कृषि मे यन्त्रो का प्रयोग बढेगा तो किसानो को विशेषज्ञो के लिए दूसरों पर निर्भर रहना होगा जिससे कृषि कार्य मे बाधा पडेगी।

(५) **श्रमिको के स्वास्थ्य पर प्रभाव** —कृषक अपने हाथो से प्रत्येक कार्य करता है। इस कारण से उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है लेकिन जब

यन्त्रो का प्रयोग अधिक होगा तो किसान आलसी हो जायेगा जिससे उसका स्वास्थ्य भी गिर जायेगा।

उपर्लिखित विवरण से स्पष्ट है कि कृषि मे यन्त्रों के प्रयोग से जहाँ लाभ है वहा हानिया भी हैं। भारतीय परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए जहा ८०% जनसख्या कृषि पर निर्भर है। जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नही है जिन्हे उचित शिक्षा प्राप्त नही हैं। यन्त्रो का प्रयोग उस सीमा तक होना चाहिये जिससे देश म बेरोजगारी को बढावा न मिले। सरकार को कृषि यन्त्रो की शिक्षा एव अनुसन्धान की ओर ध्यान देना चाहिये। धीरे-धीरे भारतीय कृषिकों को इनके अपनाने का अवसर प्रदान करना चाहिये। तभी भारतीय कृषक कृषि यन्त्रो का प्रयोग उचित रूप से कर सकेंगे।

—o—

प्रश्न ५७—भारत में कौन २ से वन मिलते हैं ? देश के आर्थिक विकास मे वनों का महत्व बताइये।

(What are the main types of forests in India ? State the importance of forests in the economic development of the country.)

उत्तर :—

किसी देश की वनस्पति वहा की जलवायु और मिट्टी पर निर्भर करती है। भारतवर्ष मे जलवायु और मिट्टियो की विभिन्नता के कारण अनेक प्रकार के वन पाये जाते हैं। भारत के मुख्य वन निम्नलिखित हैं :—

(१) पहाड़ी वन (Mountain forests) —ये वन किसी एक प्रकार के नही होते। पर्वतो की ऊचाई और वर्षा की मात्रा के अनुसार यह विभिन्न प्रकार के होते हैं। इन वनो मे देवदार, पाइन, फर, स्प्रूस, सरोवर, बलूत, मगोलियाडा आदि के पेड अधिक होते हैं। भारत के हिमालय पर्वत ऐसे पेडो से आच्छादित हैं।

(२) सदाबहार वन (Evergreen Forests) —ऐसे वन उन प्रदेशो मे पाये जाते हैं जहा वर्षा बहुत अधिक होती है (८०")। ये साल के बारहो महीने हरे-भरे रहते हैं। इन वनो मे मुख्यतया बाँस, बेंत, महोगनी आदि के पेड पाये जाते हैं। भारत मे ऐसे वन पूर्वी हिमालय, आसाम तथा पच्छिमी घाट पर पाये जाते हैं।

(३) पतझड़ वाले वन (Deciclous Forests) —ये वन ऐसे क्षेत्रों

में पाये जाते हैं जहां ४०"—६०" तक वर्षा हो जाती है। भारत में यह वन दक्षिणी पठार और हिमालय के निचले भागों में मिलते हैं। गर्मी के दिनों में ये अपनी पत्तियां गिरा देते हैं। साल, सागवान, हल्दू, चन्दन, सेमल आदि इन वनों की मुख्य लकड़ियाँ हैं।

वनों के प्रकार :—

१ पहाड़ी वन।
२. सदाबहार वन।
३. पतझड़ वाले वन।
४ सूखे वन।
५ समुद्र तटीय वन।

(४) **सूखे वन** (Dry Forests) :—जैसा कि इनके नाम ही विदित होता है, ये वन उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा बहुत ही कम होती है। भारत में इस प्रकार के वन राजस्थान, दक्षिणी पंजाब, और गुजरात में पाये जाते हैं। इन वनों में काँटेदार वृक्ष और झाड़ियां उगती हैं। इनमें कीकर, बबूल, खेजड़ी आदि के पेड़ प्रमुख हैं।

(५) **समुद्र तटीय वन** (Tidal Forests) :—ऐसे वन समुद्र के किनारे उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहां ज्वार के साथ समुद्र का पानी भूमि पर बढ़ आता है जैसे नदियों के डेल्टे और समुद्र तटीय प्रदेश। इन वनों में सुन्दरी नाम का वृक्ष बहुतायत में मिलता है। गंगा नदी के डेल्टा प्रदेश के वनों को इसी कारण 'सुन्दर वन' कहते हैं।

वनों का देश के आर्थिक विकास में योग :—

वन किसी देश की एक बहुमूल्य सम्पत्ति होते हैं। वे देश के धन तथा कल्याण की वृद्धि में सहयोग देते हैं। वनों से मिलने वाले लाभों को हम दो भागों में बांट सकते हैं।

१. प्रत्यक्ष लाभ (Direct advantages)
२. परोक्ष लाभ (Indirect advantages.)

(१) **प्रत्यक्ष लाभ** :—वनों की प्रत्यक्ष उपज को बहुधा दो भागों में बांटा जाता है :—(१) बड़ी उपज (Major Produce) और (२) छोटी उपज (Minor Produce)।

बड़ी उपज :—इसमें जलाने की लकड़ी बहुमूल्य इमारती और व्यापारिक लकड़ी व घास और जानवरों के लिये चारा आदि सम्मिलित हैं। वनों की लकड़ी को जला कर ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष ५० लाख टन लकड़ी जलाने के काम आती है। इसकी कमी के कारण ही हमारे किसान गोबर को खाद के रूप में प्रयोग न करके,

उपला बनाकर ईंधन के रूप मे प्रयोग करते हैं। वनों की लकडी का इमारती कामो मे भी प्रयोग होता है। कितने ही उद्योग धन्धे अपने कच्चे माल के लिये वनो की लकडी पर ही निर्भर हैं। जिनमे दियासलाई, खेल का सामान कागज व फर्नीचर उद्योग प्रमुख हैं। वनो की कडी लकडी जहाज और नाव बनाने के काम आती है। रेलो को स्लीपर्स जगलो मे ही प्राप्त होते हैं। देश मे फौलाद की कमी को पूरा करने के लिये लकडी के लट्ठो को तार, टैलीफोन व बिजली के खम्भो की जगह प्रयुक्त किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वनो से पशुओ को चारा मिलता है।

वनो से लाभ

१—प्रत्यक्ष लाभ :—
  १ बडी उपज।
  २. छोटी उपज।

२—परोक्ष लाभ —
  १ तापक्रम कम।
  २ वर्षा का होना।
  ३ भूमि कटाव का रोकना
  ४ बाढ की भीषणता कम
  ५ ठन्डी हवाओ को रोकना।
  ६ मनोरम स्थान।
  ७ व्यक्तियो को रोजगार और राज्य की आय।

छोटी उपज :—वनो की छोटी उपज के अन्तर्गत अनेको उपयोगी वस्तुए शामिल की जाती हैं जैसे रबड, तेल, तारपीन, गौंद, विरोजा, लाख, कत्था, रग, घास, शहद, रेशम, जडी-बूटिया व चमडा रगने का सामान आदि। रग-रोगन उद्योग (Paint & Varnishes) चमडा उद्योग, बीडी उद्योग, कागज उद्योग इन्ही छोटी उपजो पर निर्भर हैं। भारत मे सबाई घास से कागज बनाया जाता है। बीडियाँ बनाने के लिये पत्ते जगलो से ही प्राप्त होते हैं।

(२) परोक्ष लाभ :—वनो के परोक्ष लाभ उनके प्रत्यक्ष लाभों से भी अधिक उपयोगी हैं —

(१) तापक्रम कम —वृक्षों की पत्तियाँ भूमि के नीचे पानी को सोख कर वातावरण मे नमी छोडती रहती हैं जिससे तापक्रम कम हो जाता है।

(२) वर्षा का होना —जब जल से भरी हुई हवायें नम वातावरण के जगलो के ऊपर होकर गुजरती हैं तो स्वय ठडी होकर, जल की वर्षा कर देती हैं।

(३) भूमि कटाव रोकना :—वनो के कारण बरसात का पानी अधिक वेग से नहीं बह पाता है। वृक्षो की जडें मिट्टी के कणो को पकडे रहती हैं।

(४) **बाढ़ की भीषणता कम** —जंगल पानी के वेग को कम कर देते हैं। अगर पहाड़ों पर जंगल न हों तो वर्षा का पानी काफी वेग से आकर मैदानों में काफी क्षति पहुँचा सकता है।

(५) **ठंडी हवाओं और बाहरी आक्रमणों को रोकना**.—घने वनों से तेज हवायें रुक जाती हैं और आस पास के स्थानों पर बहुत गर्म या ठंडी हवा का प्रभाव नहीं होता। भारतवर्ष में राजस्थान के रेगिस्तान को यू०पी० और दिल्ली की ओर बढ़ने से रोकने के लिये पेड़ लगाये जा रहे हैं।

(६) **मनोरम स्थान**.—वनों में ऐसे स्थान पाये जाते हैं जहां मनुष्य जाकर स्वास्थ्य लाभ या पर्यटन कर सकते हैं।

(७) **व्यक्तियों को रोजगार और राज्य को आय** —वनों में अनेकों व्यक्तियों को काम मिल जाता है। राज्य को भी इनसे काफी आय हो जाती है। भारत में अनुमानत जंगलों से ६ करोड़ रु० प्रतिवर्ष की आय होती है।

अत स्पष्ट है कि वन भारत के आर्थिक विकास में बड़े महत्वपूर्ण हैं। परन्तु बड़े खेद की बात है कि भारत में अभी ऐसे बहुत से वन हैं जिनकी लकड़ी का कोई उपयोग नहीं हो सका है। वनों में सड़कें बना कर इनका उपयोग किया जाना चाहिये। देशवासियों को भी इनका महत्व समझना चाहिये, उनको वन-महोत्सव सप्ताह में वृक्ष लगाने और उनकी रक्षा करनी चाहिये। एक उष्ण कटिबंधीय देश के कुल क्षेत्रफल का १/३ भाग जंगलों के नीचे होना चाहिये परन्तु भारत का केवल २०% भाग ही जंगलों के नीचे है। अत हमारे देश में और जंगल लगाने के प्रयत्न करने चाहिये।

प्रश्न ५८—'वन-महोत्सव आन्दोलन' पर एक निबन्ध लिखिये। इसके विकास पर भी प्रकाश डालियेगा।

(Write an essay on 'Van Mahotsev Movement' started in India. Also show its progress.)

उत्तर —

वन-महोत्सव आन्दोलन —इस आन्दोलन का प्रारम्भ जुलाई सन् १९५० में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने किया। इस आन्दोलन के अनुसार वनों तथा वृक्षों की वृद्धि के लिए प्रयत्न किये गये। तभी से प्रतिवर्ष जुलाई के महीने में यह उत्सव सारे देश में मनाया जाता है। लगभग प्रतिवर्ष इस

उत्सव के अन्तर्गत २½ लाख वृक्ष लगाये जाते हे जिनमे केवल १½ लाख वृक्ष ही पनप पाते हैं। इस प्रकार के अपव्यय को रोकने के लिए सरकार अब यह कार्य सामुदायिक योजना तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खन्डो के आधीन कर रही है। जिससे आशा है कि वनो तथा वृक्षो के विस्तार मे काफी सहयोग मिल सकेगा तथा यह 'वन-महोत्सव आन्दोलन' सफलता को प्राप्त करेगा।

यह आन्दोलन देश के सभी राज्यो मे मनाया जाता है तथा योजना के अन्तर्गत इस आन्दोलन का भी विशेष स्थान होता है। इस आन्दोलन मे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और पंजाब प्रान्तो म अधिक कार्य हुआ है। तथा वृक्षो के विस्तार के लिए सरकार की ओर से पौद मुफ्त दी जाती है।

'वनमहोत्सव सप्ताह' के अन्तर्गत वृक्षो की आवश्यकता तथा इनके आर्थिक महत्व का प्रचार किया जाता है तथा प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह इस आन्दोलन मे सहयोग प्रदान करे। सरकारी दफ्तरो, स्कूलो तथा कालेजो में यह महोत्सव बडे उत्साह के साथ मनाया जाता है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि जो वृक्ष इस महोत्सव के अन्तर्गत लगाये जाते हैं उनकी वर्ष भर ठीक प्रकार से देखभाल होती रहे। उचित समय पर खाद, पानी तथा बन्दरो आदि से रक्षा आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिये। तभी लगाये गये वृक्षो मे से अधिक वृक्ष पनप सकते हैं तथा इस महोत्सव का उद्देश्य सफल हो सकता है तथा इस महोत्सव पर किया गया व्यय उत्पादक व्यय माना जा सकता है। इसलिए जन सहयोग की इस महोत्सव की सफलता के लिए विशेष आवश्यकता है। यदि जन साधारण इस महोत्सव का उचित महत्व समझ कर इसके विकास मे सहयोग प्रदान करे तो यह आशा की जा सकती है कि इस उत्सव से देश मे अनेक वृक्षो की वृद्धि होगी जिससे देश की आर्थिक दशा पर बहुत अच्छा प्रभाव पडेगा।

वन महोत्सव के अन्तर्गत विकास :—इस उत्सव को देश की पचवर्षीय योजनाओ मे विशेष स्थान दिया गया है। **प्रथम पंचवर्षीय योजना** मे इस आन्दोलन मे १० करोड रुपया व्यय करने का विचार था। इस धन मे से पुराने वनो के विकास तथा नये वृक्षो की वृद्धि पर खर्च किया गया। साथ ही वनो मे से सडको का निर्माण, ईंधन की कमी को दूर करने के लिए गावो मे वनो की वृद्धि, मरुस्थल होने से बचाने के लिए वनो की वृद्धि करना तथा युद्धकालीन अविकसित वनो को विकसित करने पर भी प्रथम पंचवर्षीय योजना मे विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना काल मे ८० हजार एकड भूमि पर वन लगाये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस ओर और भी अधिक ध्यान दिया गया है और उसके लिए २७ करोड रुपये की धनराशि निश्चय की गई। तथा इस योजना मे ५ लाख एकड भूमि पर वन लगाये गये। इसके अतिरिक्त वन अनुसन्धान, वन शिक्षा, वन पशुओ की सुरक्षा की दिशा मे भी अधिक उन्नति हुई है।

इस 'वन महोत्सव' आन्दोलन के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे हैं। ये एक ओर तो नये बाग स्थापित कर रहे हैं, तथा दूसरी ओर दिया-सलाई की लकडी तथा गोंद आदि के वृक्षो की वृद्धि कर रहे हैं। साथ ही औषधियो के लिए भी वृक्षो की वृद्धि पर जोर दिया जा रहा है। पशुओ के चरने की व्यवस्था भी की जा रही है। जगली पशुओं की रक्षा तथा पशु-पक्षियो की उचित व्यवस्था पर भी ध्यान दिया जा रहा है। इस प्रकार इस आन्दोलन के अन्तगत विभिन्न दिशाओ मे कार्य प्रगति के साथ किया जा रहा है।

तृतीय पचवर्षीय योजना अब शुरू होने वाली है। इस योजना मे भी अन्य दो याजनाओ की भाति वन के विकास पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। विभिन्न प्रकार के वन सम्बन्धी प्रोग्राम बनाये जायेंगे। वन अनुसन्धान तथा वन सम्बन्धी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। जलाने की लकडी की कमी को अवात पूरा करने के उद्देश्य से तीसरी योजना के अन्तर्गत कोई २० लाख एकड क्षेत्र म जल्दी उगने वाले वृक्षों के जगल लगाने का विचार है। तीसरी योजना के दौरान म अमल के लिए जो विकास कार्य-क्रम शामिल किये गये हैं उनके उत्तर प्रदेश, पजाब, जम्मू-काश्मीर, हिमाचल प्रदेश और पश्चिमी बगाल के ५० हजार एकड क्षेत्र म सान और शकुल वृक्ष उगाने, मध्य प्रदेश, आसाम, केरल मैसूर, आन्ध्र प्रदेश और बिहार की दो लाख एकड भूमि मे टीक के पेड उगाने तथा पजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मद्रास, केरल और कुछ अन्य राज्यो म साढे चार लाख एकड क्षेत्र मे विविध प्रकार के पेड विशेष रूप से तेजी से बढने वाले पेड उगाने के कार्य-क्रम हैं। नहरो, सडको और रेल की पटरियो के सहारे पेड उगाने के कार्य-क्रम जारी रहेंगे। हीन दशा मे पडे हुए लगभग १० लाख एकड जगलो को ठीक किया जायगा। इसके अति-रिक्त ३३ हजार वर्ग मील के ऊपर वन-क्षेत्र से चकबन्दी का कार्य शुरू किया जायेगा।

भविष्य :—तीसरी, चौथी और पाचवी पचवर्षीय योजनाओं मे वन विकास के ब्यौरेवार कार्य क्रम तैयार करते समय आर्थिक पहलू विशेष रूप मे महत्वपूर्ण होगा। तेजी से वनो का विकास करने वाली योजनाओ के द्वारा

प्रतिवर्ष लगातार पैदावार बढ़नी चाहिये। इसके अन्तर्गत तेजी से उगनेवाली जाति के पेड लगाये जायेंगे। ऐसे स्थान चुने जायेंगे जहा पर उपज अधिक हो और उन्नत तरीकों का प्रयोग किया जायेगा। वन सचार का भी विकास किया जायेगा और आम तौर से अगले १०-१५ वर्षों मे औद्योगिक विकास की जो विशिष्ट योजनायें शुरू की जायेगी उनके साथ वन-विकास की योजनाओ का सम्बन्ध जोडा जायेगा।" (भारत सरकार योजना आयोग की 'तीसरी पचवर्षीय योजना' से)।

प्रश्न ५९—भारत मे कौन २ खनिज पदार्थ मिलते हैं? देश के आर्थिक विकास पर इनके प्रभाव बताइये।

(What are the mineral products of India? What is their effect on the economic development of the country?)

उत्तर :—

आज के औद्योगिक विश्व मे खनिज पदार्थों का महत्व बहुत ही अधिक है। उद्योग धधे उन्ही देशो मे बहुत विकसित है जहाँ पर भूमि के गर्भ से अपार खनिज निकालकर उत्पादन कार्य मे उपयोग किये जा रहे हैं। भारतवर्ष भी खनिज पदार्थों की दृष्टि से एक बहुत धनी देश है परन्तु यहाँ की खनिज सम्पत्ति का पूर्णतया शोषण और वैज्ञानिक रीति से उपयोग नही किया जा रहा। **भारतवर्ष के मुख्य खनिज पदार्थ निम्नलिखित है —**

(१) कोयला (Coal) —कोयले की दृष्टि से भारत का विश्व मे आठवा स्थान है। यह मुख्यत बगाल बिहार व उडीसा मे पाया जाता है। झेरिया, रानीगज, म्यूरभज, डाल्टनगज इत्यादि इसके मुख्य केन्द्र हैं। कुछ कोयला हैदराबाद व मध्य प्रदेश म भी पाया जाता है।

खनिज पदार्थ के प्रकार —

१. कोयला।
२ लोहा।
३ मैंगनीज
४ अबरख।
५ पट्रोलियम।
६ सोना।
७ बाक्साईट।
८ जिप्सम।

कोयला शक्ति का मुख्य साधन है। भारतीय कोयले का २/३ भाग रेलो द्वारा प्रयोग किया जाता है, बाकी कारखाने चलाने और थोडा-सा भाग घरेलू कामो मे प्रयोग किया

जाता है। भारत में कोयले का वितरण बड़ा ही असन्तोषजनक है। कोयले के क्षेत्र देश के दक्षिणी-पूर्वी भागों में ही केन्द्रित हैं इसलिये बम्बई के कारखानों में दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया से कोयला मगा कर प्रयोग किया जाता है। विद्युत-शक्ति के दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ते रहने के कारण, अब कोयले का महत्व कम होता जा रहा है।

(२) **लोहा (Iron)** :—आधारभूत उद्योगों के विकास के लिये लोहा एक अनिवार्य खनिज है। इसका उपयोग युद्धकाल और शांतिकाल दोनों में महत्वपूर्ण है। भारत एशिया में सबसे अधिक लोहा निकालता है। देश के औद्योगीकरण में भारतीय लोहा काफी योग दे रहा है। भारत में लोहा बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश मैसूर में पाया जाता है। भारत अब तक अपने कच्चे लोहे का एक बहुत बड़ा भाग विदेशों को भेज दिया करता था परन्तु द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कच्चे लोहे से इस्पात बनाने के तीन बड़े कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं। अब इसका प्रयोग देश में ही किया जा सकता है।

(३) **मैंगनीज (Manganese)** :—मैंगनीज एक बहुत ही महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ है। इसका प्रयोग मुख्यतः लोहे से इस्पात बनाने में होता है। अतः लोहा और इस्पात उद्योग विकास के लिये मैंगनीज एक आवश्यक धातु है। इसके उत्पादन में भारत का रूस को छोड़कर द्वितीय स्थान है। हमारी आवश्यकता से अधिक मैंगनीज योरोपियन देशों को निर्यात कर दिया जाता है। इसकी मुख्य खानें मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, बम्बई और आंध्र प्रदेश में हैं। भारत में इसका उत्पादन २० लाख टन प्रतिवर्ष है। जब भारत के नये इस्पात के कारखाने हमारी मैंगनीज का प्रयोग करने लगेंगे तो इसका निर्यात बहुत कम हो जायगा।

(४) **अभ्रक (Mica)** :—इसका प्रयोग बिजली की मशीनें और बिजली के अन्य सामान बनाने में प्रयोग होता है जैसे रेडियो, हवाई जहाज बेतार का तार इत्यादि। भारत का औद्योगीकरण विद्युत-शक्ति के निर्माण पर निर्भर है। भारत में विद्युत-शक्ति के बनाने और वितरित करने के लिये अबरक बहुत ही आवश्यक है। भारत संसार में अबरक का सबसे बड़ा उत्पादनकर्ता और निर्यातकर्ता है।

(५) **पैट्रोलियम (Petroleum)** :—पैट्रोल का प्रयोग हवाई जहाज, मोटर, बस, ट्रक, समुद्री जहाज व छोटे २ इंजनों को चलाने में होता है। पैट्रोल की दृष्टि से भारत की स्थिति ठीक नहीं है। भारत में आसाम में डिगबोई के क्षेत्र में तेल निकाला जाता है। इसकी कमी को पूरा करने के लिये, हम

ईरान व बर्मा से तेल आयात किया जाता है। हाल ही में खुदाई कार्य करके यह पता लग गया है कि ज्वालामुखी खम्बात की खाड़ी काश्मीर व जैसलमेर में भी तेल के भंडार छिपे पड़े हैं। इन स्थानों पर बोरिंग किया जा रहा है।

(६) **सोना (Gold)** —भारत विश्व की उत्पत्ति का लगभग ३% मात्रा उत्पन्न करता है। इसकी मुख्य खान मैसूर राज्य के कोलार जिले में है जिनसे ६८% सोना निकाला जाता है। थोड़ा सा सोना मद्रास राज्य में अनन्तपुर और हैदराबाद में हुटी स्थानों पर भी निकलता है।

(७) **बाक्साईट (Bauxite)** —इसका प्रयोग मुख्यतः एल्यूमीनियम बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह तेल-शोधन कारखानों में, उच्च प्रकार का सीमेंट व रसायनों आदि के बनाने में भी प्रयोग होती है। यह बम्बई, मध्यप्रदेश और बिहार में पाई जाती है।

(८) **जिप्सम (Gypsum)** —इसका उपयोग प्लास्टर आफ पेरिस (Plaster of Paris) तथा सीमेंट बनाने में किया जाता है। इसके भंडार राजस्थान और दक्षिणी भारत में हैं। यद्यपि थोड़ा सी धातु उत्तरी और पश्चिमी भारत में भी पाई जाती है। अब इसका प्रयोग खाद के कारखानों में खाद बनाने के लिये भी किया जाता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त भारतवर्ष में चांदी जस्ता नमक शोरा, इमारती पत्थर व शीशा बनाने के भी पदार्थ पाये जाते हैं।

अध्याय २८

शक्ति के साधन

प्रश्न ६०—भारत में उपलब्ध शक्ति के मुख्य साधन क्या हैं? उनका पूर्ण विवेचन कीजिये।

(What are the chief sources of power in India? Discuss fully.)

उत्तर—

उत्पादन के औजारों यन्त्रों और मशीनों को चलाने के लिये गामक शक्ति (Motive power) की आवश्यकता होती है। इसीलिए देश के आर्थिक विकास में शक्ति के साधनों का बड़ा महत्व है। जिस देश में सस्ते व प्रचुर

शक्ति के साधन उपलब्ध होते हैं वहां कृषि, उद्योग, व्यापार आदि सभी की उन्नति की जा सकती है। भारत मे शक्ति के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं :—

(१) मानव शक्ति —मनुष्य स्वय शक्ति का साधन है। धनोत्पत्ति का कोई भी कार्य बिना उसकी सहायता के सम्भव नही। मानव-शक्ति की पूर्ति जनसख्या और उसकी निपुणता पर निर्भर करती है। इस दृष्टिकोण से भारत में अपार जनशक्ति है। विश्व की जनसख्या का सातवां भाग भारत मे रहता है परन्तु मनुष्यों की कार्यक्षमता बहुत ही गिरी हुई है।

मानव शक्ति सीमित है। मनुष्य शीघ्र ही थक जाता है। आजकल के बड़े पैमाने के उत्पादन मे जहाँ विशाल मशीनों का प्रयोग आवश्यक है मानव शक्ति अनुपयुक्त रहती है। अत आधुनिक उत्पादन व्यवस्था मे शक्ति के अन्य साधनों का महत्व अधिक है।

(२) पशु शक्ति —प्राचीन काल से ही पशुओं का शक्ति के एक सस्ते व सुलभ साधन के रूप म प्रयोग होता आया है। भारतवर्ष मे पशु शक्ति मनुष्य शक्ति की भांति बहुत है। भारत मे विश्व म सबसे अधिक पशु पाये जाते हैं। परन्तु वे बहुत ही दुर्बल हैं, उनको पूरा चारा नही मिलता है उनके रहने के स्थान गदे हैं उनके रोगो के उपचार के लिये कोई उचित व्यवस्था नही है।

शक्ति के साधन —

१ मानव शक्ति।
२ पशु शक्ति।
३ लकडी या ईंधन शक्ति।
४ वायु शक्ति।
५ कोयला शक्ति।
६ तेल शक्ति।
७ अणुशक्ति।
८ पानी की शक्ति।

कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत म पशु शक्ति का अधिक महत्व है। कृषि म हल चलाने गाडी हाकने बोझा ढोने लाक चलाने आदि मे इसका प्रयोग होता है। जिन प्रदेशो म मोटर रेल आदि की व्यवस्था नहीं है, पशु-शक्ति यातायात ही मुख्य साधन हैं। परन्तु इनकी शक्ति भी सीमित है और आधुनिक मशीनों को चलाने के लिये अनुपयुक्त है।

(३) लकडी या ईंधन शक्ति —वनों की लकडी जलाकर इससे भाप बना कर इजिन व मशीनें चला सकते हैं। परन्तु यह एक बहुत ही महगा साधन है। दूसरे, शीघ्र ही हमारे जगल इस प्रकार प्रयोग किये जाने पर समाप्त हो जायेंगे। अत वनो की लकडी का ईंधन के रूप मे प्रयोग अहितकर है।

(४) **वायु शक्ति** :—वायु भी शक्ति का एक प्रमुख स्रोत है। इसका सबसे अधिक प्रयोग हालैंड में हवाई चक्कियाँ चलाने मे होता है। भारत मे प्रचण्ड वायु शक्ति न बहने के कारण, इसका कोई विशेष प्रयोग नहीं होता है। मैदानो मे वायु शक्ति अनाज से भूसा अलग करने मे प्रयोग की जाती है। औद्योगिक उपयोग के लिये वायु शक्ति सर्वथा अनुपयुक्त है।

(५) कोयला शक्ति—प्रश्न ५६ का उत्तर पढ़िये।

(६) तेल शक्ति—प्रश्न ५६ का उत्तर पढ़िये।

(७) **अणु शक्ति** :—विशेषतया उन स्थानों में जहाँ कोयला और विद्युत शक्ति दोनो का ही अभाव है, अणु शक्ति का प्रयोग बहुत ही लाभदायक है। अणुशक्ति बिजली उत्पन्न करने में प्रयोग की जा सकती है। भारत में 'ट्राम्बे' मे अणुशक्ति विकास का केन्द्र है। यूरेनियम, जिप्सम, टीटेनियम व थोरियम आदि खनिजो की प्रचुरता के कारण भारत में अणुशक्ति का भविष्य उज्जवल है।

(८) **पानी की शक्ति** :—पानी की शक्ति का प्रत्यक्ष और परोक्ष दो रूपो में प्रयोग किया जाता है। बहते पानी से आटा पीसने की चक्कियाँ चलाई जाती हैं। यह इसका प्रत्यक्ष उपयोगी है। ऐसी चक्कियाँ हमारे देश में भी पाई जाती हैं। आजकल पानी की शक्ति का प्रयोग विद्युत उत्पन्न करने में अधिक होता है।

जल विद्युत :—जलविद्युत आधुनिक युग में बहुत ही महत्वपूर्ण है। शक्ति के अन्य प्रमुख साधन जैसे कोयला, पेट्रोल आदि एक दिन समाप्त हो सकते हैं परन्तु *जल विद्युत कभी न समाप्त होने वाला स्रोत है।* भारतवर्ष मे पैट्रोल कुल आवश्यकता का केवल ६% ही उत्पन्न करने की भारत मे अत्यधिक आवश्यकता है। इसके अलावा आसानी और कम खर्चे पर विद्युत उत्पादन केन्द्रों तक ले जाई जा सकती है। इसका उत्पादन व्यय भी कम है। यह उद्योगों के विकेन्द्रीकरण मे सहायक सिद्ध हुई है। छोटे और कुटीर उद्योग धन्धों को बिजली से चलाया जा सकता है। रेलों को बिजली से चला कर आवश्यक कार्यों के लिये कोयले को बचाया जा सकता है।

भारत में बिजली उत्पन्न करने के स्थान :—बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं के अन्तर्गत निर्मित हो रहे, विद्युत उत्पादन केन्द्रो के अतिरिक्त भारतवर्ष मे विद्युत उत्पन्न करने के निम्नलिखित मुख्य स्थान हैं —

(१) मैसूर मे शिवसमुन्द्रम, शिमशा व जोग झरने।

(२) बम्बई में लोनावाला, भीरा व भीवपुरी स्थानों पर टाटा हाइड्रो इलेक्ट्रिक कम्पनी द्वारा।

(३) काश्मीर म झेलम नदी पर बारामूला के निकट।

(४) यू० पी० मे ऊपरी गगा नहर पर सात स्थानो पर बहादुरबाद, गजनी, चित्तौरा, सलावा, भोला, पलड़ा तथा सुमेरा—कृत्रिम झरने बनाकर।

(५) पजाब म यूहल नदी पर मडी रियासत मे जोगेन्द्र नगर के निकट।

(६) मद्रास म पाइकारा, मैटूर, पापानसम, मैयर तथा पेरियार योजनायें।

प्रश्न ६१—भारत मे शक्ति के मुख्य साधन क्या हैं ? उत्तर प्रदेश मे जल शक्ति के विकास से क्या आर्थिक प्रभाव होने की आशा है ?

(What are the chief sources of power in India ? What would be the economic effects of Hydroelectric development in U P)

उत्तर —

शक्ति के मुख्य साधनो के लिये प्रश्न ६० का उत्तर पढिये।

उत्तर प्रदेश मे जल विद्युत विकास के प्रभाव :—उत्तर प्रदेश म ही नही बल्कि देश के समस्त भागो म जलविद्युत विकास के बडे अच्छे परिणाम होंगे। यहा हम विशेषतया यू० पी० से ही सम्बन्धित हैं —

कृषि मे —उत्तर प्रदेश एक कृषि प्रधान राज्य है। कृषि को आधुनिक वैज्ञानिक स्तर पर लाने के लिये इन्जनो का प्रयोग अनिवार्य है जिनके सचालन के लिये जलविद्युत सर्वश्रेष्ठ साधन है। कुओं से पानी खीचने का काम आसान हो सकता है। नलकूपो (Tube wells) द्वारा जो बिजली द्वारा संचालित होते है, राज्य मे सिंचाई की सुविधायें बढाई जा सकती हैं। ठण्डे गोदाम (Cold storages) फलो व सागभाजी की खेती मे अपार वृद्धि की जा सकती है व कृषि के लिये बीजो को सुरक्षित रखा जा सकता है।

उद्योग धधो मे —बडे पैमाने के उद्योग तो कोयले के अलावा केवल विद्युत शक्ति से ही चल सकते हैं। उद्योगो को बिजली से चलाकर, कोयले के प्रयोग मे बचत की जा सकती है। उद्योगो को घने बसे क्षेत्रो से हटाना (Decentralisation of Industries) विद्युत शक्ति से सम्भव हो सकता है। **कुटीर उद्योग धधों** को भी विद्युत शक्ति से काफी लाभ होगा। कुटीर उद्योग धन्धो म उन छोटी २ कम कीमत की मशीनो का प्रयोग हो सकेगा जो अब विद्युत के अभाव मे प्रयोग नही की जाती हैं। नये नये उद्योग भी खुलेंगे जो

बिजली के कारण अब तक नहीं हुये थे जैसे तेल पेरना, कपास से रुई व बिनौला अलग करना, चावल साफ करना आदि।

यातायात के साधन :—रेलों को बिजली से चलाया जा सकता है बिजली से रेलें तेज चलाने वाली और सस्ती होती हैं।
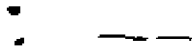
प्रश्न ६२—बहु उद्देशीय नदी घाटी योजनायें क्या हैं? भारत की कुछ मुख्य बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये।

(What are multipurpose river valley projects ? Write short notes on some principal river valley projects in India.)

उत्तर :—

देश में जलविद्युत निर्माण के लिये अनेकों नदी घाटी योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। इन नदी घाटी योजनाओं का उद्देश्य केवल बिजली बनाने तक ही सीमित न रह कर, बहुमुखी है। इसीलिये इनको बहु-उद्देश्य नदी घाटी योजनायें कहते हैं। किसी भी ऐसी योजना के निम्न-लिखित उद्देश्य हो सकते हैं :—

(१) विद्युत उत्पन्न करना
(२) सिंचाई
(३) बाढ़ नियन्त्रण
(४) मलेरिया की रोकथाम
(५) नौका परिवहन की सुविधाओं का विकास
(६) मत्स्य उद्योग का विकास
(७) भूमि नष्ट होने से रोकना
(८) नगरों को पानी सप्लाई करना
(९) मनोरंजन के क्षेत्रों को विकसित करना।

(१) **भाकरा नांगल योजना (*Bhakra Nagal Project*)** :—यह राष्ट्र की सबसे बड़ी सिंचाई और जल-विद्युत योजना है इस योजना के अन्तर्गत पंजाब में सतलज नदी पर भाकरा और नांगल स्थानों पर दो बांध हैं। नांगल बाँध पूरा हो चुका है। भाकरा पर कार्य चालू है। इस पर १५० करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है। इसके पूर्ण हो जाने पर लगभग ६० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और १०४ लाख किलोवाट बिजली बनेगी।

(२) दामोदार घाटी योजना (Damodar valley Project) :— दामोदर नदी पर ७ स्थानों पर बांध बनाये जायेंगे। लगभग दो लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। यह नदी प्रतिवर्ष बंगाल व बिहार में बाढ़ से करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट कर देती है। अत: बाढ़ नियन्त्रण इस योजना का मुख्य उद्देश्य है। यह योजना संयुक्त राज्य की 'टेनसी घाटी योजना' के आदर्शानुसार बनाई गई है। इस योजना पर १०० करोड़ रुपया के व्यय होने का अनुमान है।

(३) हीरा कुण्ड योजना (Hirakund Project) :—यह महानदी घाटी योजना के नाम से भी विख्यात है। उड़ीसा में महानदी पर नाराज, टिक्पारा और हीराकुण्ड स्थानों पर बांध बनाये जायेंगे। हीराकुण्ड पर कार्य समाप्त हो चुका है और विद्युत निर्माण होने लगी है। इस पर ९२ करोड़ रुपया व्यय होगा। ११ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और २३/४ लाख किलोवाट बिजली बनेगी। रूरकेला के इस्पात के कारखाने को यहीं से बिजली प्रदान की जायगी।

(४) कोसी घाटी योजना (Kosi River Valley Project) :— यह बिहार राज्य की सबसे बड़ी योजना है। इस योजना के अन्तर्गत कोसी नदी पर दो बांध—पहला नेपाल में और दूसरा नेपाल बिहार की सीमा पर बनाये जायेंगे। इसमें १८ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और नेपाल बिहार में ३० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस योजना पर १७७ करोड़ रु० व्यय होगा और १० वर्ष इसके पूर्ण होने में लगेंगे।

(५) तुङ्गभद्रा योजना (Tung Bhadra Project) :—यह योजना मैसूर और आंध्र राज्यों द्वारा शुरू की गई है। कृष्णा नदी की सहायक तुङ्गभद्रा पर एक बांध बनाकर १३६००० किलोवाट बिजली व ६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायगी।

(६) रिहन्द बांध योजना (Rihand Dam Project) :—यह पूर्वी उत्तर प्रदेश की मुख्य योजना है। मिर्जापुर जिले में रिहन्द नदी के कार, पीपरी गांव के स्थान पर, एक ३०००' लम्बा बांध बनाया जायेगा। इस योजना के द्वारा ३१/२ लाख किलोवाट बिजली पैदा की जा सकेगी और २५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस योजना पर ३० करोड़ रुपया व्यय होगा।

इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में शारदा योजना, उड़ीसा-आंध्र में मचकुण्ड योजना, बम्बई में वकरपारा व कोयला बांध योजनायें मद्रास में रामपद सागर

योजना, मध्य-प्रदेश और राजस्थान मे चम्बल नदी घाटी योजना आदि प्रमुख बहुउद्देशीय योजनायें हैं।

अध्याय २६

श्रम

प्रश्न ६३—'श्रम' किसे कहते हैं ? श्रम की क्या विशेषतायें हैं ? उत्पादक और अनुत्पादक श्रम का भेद स्पष्ट कीजिये।

(What is labour ? What are the peculiarities of labour ? Differentiate clearly between Productive and Unproductive Labour ?)

उत्तर :—

साधारण बोलचाल मे 'श्रम' से तात्पर्य किसी भी प्रकार के मानसिक अथवा शारीरिक प्रयत्नो से है जो किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिये किये जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र मे श्रम शब्द का एक सकुचित अर्थ है। सर्वप्रथम, अर्थशास्त्र मे श्रम शब्द केवल मानवी श्रम के लिये ही प्रयोग किया जाता है। जानवरो, पशुओ, पक्षियो आदि के प्रयत्नो को श्रम नही कहा जाता। दूसरे, अर्थशास्त्र मे मनुष्य की हर चेष्टा को श्रम नही माना जाता। मनुष्य की कुछ चेष्टायें तो आर्थिक उद्देश्य अर्थात धन कमाने की आशा से की जाती हैं, और कुछ चेष्टायें काय से आनन्द प्राप्त करने, कर्तव्य पालन करने अथवा अन्य किसी उद्देश्य से की जाती हैं। प्रथम प्रकार की आर्थिक चेष्टाओ को ही श्रम कहा जा सकता है द्वितीय को नही। तीसरे श्रम के अन्तर्गत मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दोनो ही प्रकार की चेष्टायें सम्मिलित की जाती हैं। इस दृष्टिकोण से एक रिक्शा चलाने वाला ही श्रम नही करता है बल्कि वकील, जज, देश का प्रधानमत्री आदि भी श्रम करते है। **अतः आर्थिक** ***उद्देश्य से की गई मानवीय चेष्टाओं को श्रम कहते हैं।***

प्रोफेसर जीवन्स की परिभाषा के अनुसार '**श्रम मस्तिष्क अथवा शरीर की वह चेष्टा है जो पूर्णतया या अशतया कार्यजन्य प्रत्यक्ष सुख के अतिरिक्त किसी आर्थिक उद्देश्य से की जाये।**"

प्रोफेसर टामस के अनुसार "**सभी प्रकार का मानव श्रम चाहे वह**

शारीरिक हो या मानसिक, जो किसी पारितोषण की आशा पर किया गया है, श्रम कहलाता है।"

उदाहरणार्थ एक पर्वतारोही की चेष्टायें जो ख्याति प्राप्त करने के लिए किसी पर्वत की चोटी पर चढता, अर्थशास्त्र मे श्रम नही है परन्तु पर्वतारोही के साथ चढने वाले कुली की चेष्टाये श्रम हैं क्योंकि उसको अपनी सेवाओं के लिये पैसा प्राप्त होता है। इसी प्रकार शिशु के पालन पोषण मे धाय की चेष्टा श्रम है परन्तु मा की शिशु पालन-पोषण मे चेष्टा श्रम नही क्योंकि वह यह कार्य स्नेह वश करती है।

श्रम की विशेषतायें (Characteristics of Labour)

(१) **श्रम उत्पत्ति का अनिवार्य साधन है** :—उत्पादन का पैमाना चाहे कैसा भी क्यो न हो, श्रम के सहयोग के बिना उत्पत्ति नही की जा सकती। आधुनिक कारखानो मे बडी बडी मशीनो की देखभाल चालू करने अथवा रोकने आदि के लिये श्रम अनिवार्य है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म धन उत्पादन के लिये श्रम एक अनिवार्य साधन है।

(२) **श्रम उत्पत्ति का सक्रिय साधन है** —भूमि व पूंजी उत्पत्ति के निष्क्रीय साधन हैं वे स्वय कोई उत्पत्ति नही कर सकते। श्रमिकों द्वारा इन साधनो का उपयोग करके ही धनोत्पत्ति होती है।

(३) **श्रम नाशवान है** —श्रम सबसे अधिक नाशवान वस्तु है। यदि किसी श्रमिक को एक दिन काम न मिले तो उसका उस दिन का श्रम बेकार हो जाता है। दूसरे दिन वह दो दिन का काम एक साथ नही कर सकता। इसी विशेषता के कारण, श्रमिक कभी-कभी थोडी मजदूरी पर ही कार्य कर लेता है।

श्रम की विशेषतायें —

१ उत्पत्ति का अनिवार्य साधन।
२ उत्पत्ति का सक्रिय साधन।
३ श्रम नाशवान है।
श्रम को श्रमिक से पृथक नही किया जा सकता।
५ श्रम की पूर्ति धीरे धीरे बढती है।
६ श्रम की गतिशीलता कम होती है।
७ श्रमिक अपनी इच्छानुसार कार्य करता है।
८ श्रम म पूंजी का विनियोग किया जा सकता है।
९ श्रम की सौदा करने की शक्ति कम है।

(४) **श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता** —जहा श्रम की आवश्यकता होती है वहा श्रमिक को भी जाना पडता है परन्तु उत्पत्ति के अन्य साधन जैसे भूमि व पूंजी, अपने साधको (Agents) से अलग कहीं भी प्रयोग किए जा सकते हैं। इसीलिये काम करने की दशायें, काम करने का वातावरण आदि का श्रमिक की कार्यक्षमता और गतिशीलता पर काफी प्रभाव पडता है।

(५) **श्रम की पूर्ति धीरे धीरे बढती है** —यदि आज देश मे मजदूरो की माग बढ जाये तो उनकी पूर्ति कल ही नही बढाई जा सकती। जनसख्या मे परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं। कुशल श्रमिको जैसे डाक्टर, इजीनियर आदि की पूर्ति मे इतना समय लग सकता है जितना कि उनकी शिक्षा के लिये आवश्यक है।

(६) **श्रम की गतिशीलता कम होती है** —व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारण श्रमिको को एक स्थान से दूसरे स्थान या एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय को जाने म बाधा उत्पन्न करते है। उनके सामने, धर्म, भाषा, जल-वायु, घर का मोह, जाति प्रथा, गरीबी आदि आकर उपस्थित होते है।

(७) **श्रमिक अपनी इच्छानुसार कार्य करता है** :—श्रमिक एक सजीव प्राणी है अन्य साधनो जैसे भूमि व पूंजी की भाति निष्क्रिय और निर्जीव नही है। अत श्रमिक से उसकी इच्छा के विरुद्ध काम नही लिया जा सकता।

(८) **श्रम मे पूजी का विनियोग किया जा सकता है** :—जिस प्रकार हम भूमि तथा कारखानो मे धन लगा सकते हैं उसी प्रकार श्रमिक की शिक्षा पर पूंजी विनियोग की जा सकती है। श्रमिक की शिक्षा पर व्यय करके उसको अधिक धन उपार्जन के योग्य बना दिया जाता है।

(९) **श्रम की सौदा करने की शक्ति कम है** :—श्रम नाशवान है। इस विशेषता के कारण वह किसी भी मूल्य पर काम करने को बाध्य किया जा सकता है। इसके विपरीत मिल मालिक सगठित होते है। वे मजदूरो की बेबसी का लाभ उठाते हैं। मजदूर सघो के बन जाने से यह दोष अब दूर हो गया है।

उत्पादक व अनुत्पादक श्रम —

अर्थशास्त्रियो मे इस बात पर बडा मतभेद रहा है कि कौन सा श्रम उत्पादक है और कौन सा अनुत्पादक। फिजीयोक्रेट (Physiocrate) अर्थ-शास्त्रियो के अनुसार कृषि और खानो मे काम करने वाले श्रमिको का श्रम

ही उत्पादक है। आडम स्मिथ ने इसकी परिभाषा को थोड़ा विस्तृत किया। उसके अनुसार स्पर्शनीय पदार्थों की उत्पत्ति मे लगा श्रम उत्पादक है। घरेलू नौकर, वकील, अध्यापक, मत्री आदि का श्रम अनुत्पादक है क्योंकि ये कोई स्पर्शनीय पदार्थ उत्पन्न नहीं करते। परन्तु आज क अर्थशास्त्रियो के अनुसार वह श्रम उत्पादक है जो पदार्थ मे उपयोगिता वृद्धि करता है क्योंकि अर्थशास्त्र मे उत्पत्ति का अर्थ उपयोगिता वृद्धि से है। परन्तु जो श्रम किसी भी प्रकार की उपयोगिता वृद्धि न कर सके अर्थात जो नष्ट हो जाये, अनुत्पादक श्रम कहलाता है। मान लीजिये एक लेखक एक पुस्तक लिखता है। यदि प्रकाशक उस पुस्तक को नहीं छापता है तो पुस्तक लिखने मे व्यय श्रम अनुत्पादक कहलायेगा। क्योंकि इस समय किसी भी प्रकार की उपयोगिता वृद्धि नहीं की। चोर, डाकू, जेब कतरो आदि का श्रम सामाजिक दृष्टिकोण से अनुत्पादक है परन्तु व्यक्तिगत दृष्टिकोण मे उत्पादक है।

अध्याय ३०

भारत की जनसंख्या

प्रश्न ६४—जनसंख्या के घनत्व का क्या अर्थ है? भारतवर्ष में जनसंख्या के घनत्व की भिन्नता के क्या कारण हैं? उदाहरण सहित समझाइये।

(What is meant by 'Density of Population'? What are the causes of variations in the Density of Population in India? Illustrate your answer with examples)

उत्तर :—

जनसंख्या के घनत्व का अर्थ :—जनसख्या के घनत्व से हमारा अर्थ किसी देश मे प्रतिवर्ग मील मे रहने वाले निवासियो की सख्या से है। जनसख्या का घनत्व दो बातो पर निर्भर करता है। १—जनसख्या और २—क्षेत्रफल। यदि किसी देश या स्थान विशेष की कुल जनसख्या को वहाँ के क्षेत्रफल से विभाजित कर दिया जाये तो वहा की जनसख्या का घनत्व मालूम हो जाता है।

सन १९५१ की जनगणना के अनुसार भारतवर्ष मे जनसख्या का घनत्व ३१२ है अर्थात औसतन ३१२ है। व्यक्ति प्रतिवर्ग मील में निवास करते

हैं। परन्तु देश के विभिन्न राज्यो और राज्यो के विभिन्न भागो मे जनसख्या के घनत्व मे बहुत विभिन्नता पाई जाती है। जैसा कि निम्न लिखित से स्पष्ट होता है —

राज्य	जनसख्या का घनत्व
दिल्ली	३०२८
प० बगाल	८७५
विहार	५७१
बम्बई	३११
उत्तर प्रदेश	५६२
मध्यभारत	१६२
राजस्थान	११६
अडमान निकोबार	१०

जनसख्या के घनत्व मे विभिन्नता के कारण —

जनसख्या वही अधिक होगी जहा मनुष्य को रहन-सहन और रोजगार आदि की सुविधायें प्राप्त होगी। इस दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष मे जनसख्या के घनत्व की विभिन्नता के निम्न कारण हैं :—

(१) भूमि के गुण —भूमि के **धरातल की बनावट व मिट्टी की उर्वरता** का जनसख्या के घनत्व पर बहुत प्रभाव पडता है। जो स्थान पहाडी हैं या जिस स्थान की मिट्टी उपजाऊ नही है, उन स्थानो पर जनसख्या का घनत्व कम होता है। इसके विपरीत जो स्थान समतल, नीचे और उपजाऊ होते हैं वहा अधिक व्यक्ति आकर बस जाते हैं। इसी कारण प० बगाल मे जहा कि भूमि बहुत उपजाऊ है और धरातल बहुत समतल है, जनसख्या का घनत्व ८७५ है और राजस्थान मे जहा भूमि रेतीली है या मध्य प्रदेश मे जहा ककरीली और पथरीली भूमि है जनसख्या का घनत्व क्रमश ११६ और १६२ है।

> **जनसख्या के घनत्व मे भिन्नता के कारण :—**
> १ भूमि के गुण।
> २ जलवायु एव वर्षा।
> ३ सिचाई।
> ४ सुरक्षा।
> ५ औद्योगिक उन्नति।
> ६ यातायात की सुविधायें।
> ७ आवास व प्रवास।

(२) जलवायु व वर्षा —जहा जलवायु अच्छी नही होती वहा व्यक्ति रहना पसन्द नही करते चाहे वहा की भूमि उपजाऊ ही क्यो न हो, जैसे हिमा-

लय की तराई और आसाम म इसके विपरीत स्वास्थ्यवर्धक प्रदेश की जन-सख्या घनी रहने की प्रवृति रखती है जैसे कि गगा–सिन्ध का मैदान। इसके साथ-साथ वर्षा का भी जनसख्या पर वहुत प्रभाव पडता है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहा की कृषि वर्षा पर निर्भर है। यहा पर वर्षा की कमी है खेती करना कठिन होता है, अत वहा जनसख्या भी कम है जैसे राजस्थान। ज्यों ज्यों वर्षा की मात्रा बढती जाती है त्यो-त्यों जनसख्या भी बढती जाती है। यही कारण है कि जैसे-जैसे हम यू० पी० से बगाल की ओर बढते हैं जनसख्या का घनत्व भी बढता जाता है।

(३) **सिचाई :**—सिचाई का प्रभाव भी वर्षा के समान ही होता है। जहा सिचाई की सुविधायें पर्याप्त होती हैं, वहा अच्छी प्रकार से खेती की जा सकती है। साल मे दो फसलें उगाई जा सकती हैं। ऐसे स्थानो पर जन सख्या अधिक पाई जाती है। उदाहरणार्थ यद्यपि पजाब में वर्षा कम होती है, परन्तु वहाँ पर नहरो का जाल सा बिछा होने के कारण जनसख्या का घनत्व बहुत अधिक है।

(४) **सुरक्षा :**—जिन स्थानों मे जन-धन की सुरक्षा नही होती वहा से मनुष्य ऐसी जगह चले जाते हैं जहा इनका समुचित प्रबध होता है। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान से, इसी कारण, लाखों व्यक्ति भारत मे आकर बस गये हैं।

(५) **औद्योगिक उन्नति** —जनसख्या का घनत्व उन स्थानो पर भी अधिक होता है जहा बहुत से उद्योग खुल जाते हैं। मुख्य उद्योग के साथ बहुत से अन्य सहायक उद्योग खुल जाते हैं। इन सबो में काम करके लाखो व्यक्ति अपनी आजीविका कमाते हैं। इसीलिये एसे स्थानो पर जनसख्या का घनत्व अधिक हो जाता है। बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, दिल्ली, कलकत्ता आदि नगरों की जनसख्या इसलिये अधिक है। कुछ नगरो जैसे टाटा नगर मोदी नगर, बिलडा नगर, डालमिया नगर आदि की जनसख्या तो अधिकांश श्रमिकों की है जो वहाँ के कारखानों मे काम करते हैं।

(६) **यातायात की सुविधायें** —जनसख्या का घनत्व अपेक्षाकृत उन क्षेत्रों मे अधिक होता है जहा यातयात व स देश वाहन की सुविधायें अधिक होती हैं। जहा ये सुविधायें नहीं होतीं वहाँ न औद्योगिक विकास हो सकता है और न व्यापार की उन्नति हो सकती है और न वहाँ कोई रहना ही पसद करेगा। देहली, बम्बई, कलकत्ता, कानपुर आदि इसके उदाहरण हैं।

(७) **आवास प्रवास :**—आवास-प्रवास से भी जनसख्या के घनत्व

मे परिवर्तन हो जाता है। देश का विभाजन होने के पश्चात लाखो व्यक्ति पूर्वी पजाब और पश्चिमी बगाल मे आकर बस गये। इसी कारण इन दोनो प्रदेशो की जनसख्या का घनत्व बढ गया है।

प्रश्न ६५—क्या भारत की जनसख्या अधिक है ? यदि है तो उसके रोकने के उपाय लिखिये।

(Is India over population ? If so suggest measures to check the growth of population in India)

उत्तर :—

भारत की बढती हुई जनसख्या को देखकर यह प्रश्न उठता है कि क्या भारत मे जनाधिक्य है ? अर्थात क्या भारतीय जनसख्या आदर्श जनसख्या से ज्यादा है ? इस सम्बन्ध मे दो विचारधारायें हैं —प्रथम **निराशावादी** विचारधारा जो कि यह मानते हैं कि भारत में जनाधिक्य है तथा माल्थस के सिद्धान्तानुसार यदि जनसख्या को बढने से न रोका गया तो महामारी, अकाल युद्ध आदि प्राकृतिक प्रकोपो से जनसख्या स्वय कम हो जायेगी। दूसरी विचारधारा **यथार्थवादियो** की है। जिनके अनुसार भारत मे जनाधिक्य नही है। यदि प्राकृतिक साधनो का पूर्णतया से उपयोग किया जाय तो जनसख्या के बढने की गुन्जायश है। अब हम इन दोनो विचारधाराओ के तर्क विस्तार मे देखेंगे।

निराशावादी विचारधारा —भारत मे निराशावादी विचारधारा के समर्थन मे समय समय पर कितने ही तर्क दिये गये है जिनमें मुख्य निम्न लिखित हैं —

(१) **जनसंख्या मे वृद्धि खाद्य सामिग्री से अधिक हुई है** :—इस मत के समर्थको का कहना है कि भारत मे जनसख्या में वृद्धि खाद्य सामिग्री की तुलना में अधिक हुई है। जो कि माल्थस के जनसख्या के सिद्धात के अनुसार है। इस मत की पुष्टि करते हुए डा० राधाकमल मुकर्जी ने सन् १९३८ मे कहा कि साधारण वर्षो मे खाद्य सामग्री की पूर्ति केवल ८८% व्यक्तियो को हो सकी है। इसी प्रकार १९४८ मे खाद्य मन्त्री ने जब खाद्य सामिग्री की पूर्ति का अनुमान लगाया तो ६० लाख टन का घाटा आया। इस बात का समर्थन राष्ट्रीय योजना कमीशन ने प्रथम पचवर्षीय योजना की रिपोर्ट मे भी किया। जबकि उन्होंने बताया कि साधारणत ८% या ९% खाद्य सामिग्री की पूर्ति की कमी रहती है। इससे स्पष्ट है कि काफी समय

से भारत मे खाद्य सामिग्री विदेशो से आ रही है। इन बातो से स्पष्ट है कि भारत मे जनाधिक्य है।

(२) **प्रतिबन्धक रोकों का अभाव** —समर्थको का कहना है कि भारत मे जनसख्या की वृद्धि के बिना प्रतिबन्धक रोको को प्रयोग मे ला ही रही है। भारत मे प्रतिबन्धक रोको का प्रयोग नही के समान है। जिससे जनसख्या म लगातार वृद्धि हो रही है। भारत म विवाह कम आयु मे हो जाता है। बच्चे पैदा करना अच्छा समझते हैं जिससे जनसख्या के बढने को प्रोत्साहन मिलता है, जिसके कारण भारत मे जनाधिक्य की अवस्था पैदा हो गई है।

(३) **नैसर्गिक प्रतिबन्धो का होना** —समर्थको का कहना है कि माल्थस के सिद्धांत के अनुसार भारत में समय-समय नैसर्गिक प्रतिबन्ध प्रकृति की ओर जनसख्या को कम करने के लिए होते रहते हैं। जैसे बाढ़, महामारियों एव दुर्भिक्ष आदि का होना। जो जनाधिक्य को सिद्ध करते हैं।

(४) **जन्म दर का मृत्यु दर से अधिक होना** —समय-समय पर होने वाले जनगणना इस बात को सिद्ध करते हैं कि भारत में जन्म दर मृत्यु दर से अधिक है, जिस कारण से जनसख्या अधिक तेजी से बढ रही है। इसी प्रकार भारत मे स्त्री एवं बाल मृत्यु दर भी विदेशो की तुलना में सबसे अधिक है एव भारतीयो की औसत आयु भी कम है। इससे भारत में जनाधिक्य की स्थिति स्पष्ट होती है।

(५) **नीचा जीवन स्तर** —समर्थको का कहना है कि भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है जिसके कारण भारतीय निर्धन हैं तथा उनका जीवन स्तर भी नीचा है। यह बात जनाधिक्य की ओर सकेत करती है।

उपर्लिखित तथ्यो के आधार पर निराशावादी विचारधारा के समर्थको का कहना है कि *माल्थस का सिद्धात भारत पर पूर्णरूप से लागू होता है। भारत* में जनाधिक्य है। अब हम यथार्थवादी विचारधारा क तर्कों को ओर देखेंगे।

यथार्थवादी विचारधारा —इस विचारधारा से सम्बन्धित मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं।

(१) **भारत प्राकृतिक साधनो की अधिकता एव कम जनसख्या का घनत्व** :—समर्थको का कहना है कि भारत में जनाधिक्य नही है क्योंकि भारत में जनसख्या का घनत्व अन्य देशो की तुलना में बहुत कम है तथा भारत में प्राकृतिक साधनो की अधिकता है और उनका कहना है कि भारत वर्तमान जनसख्या से दुगनी जनसख्या को रखने की क्षमता रखता है।

(२) **आय प्रति व्यक्ति बढ़ रही है :**—केनन के अनुसार यदि जनसंख्या की वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है तो उस देश में जनाधिक्य नहीं है। यह बात भारत के लिए भी ठीक है, क्योंकि प्रत्येक अनुमान के साथ भारत में प्रति व्यक्ति आय बढ़ती जा रही है और उनका कहना है कि भारत मे अभी "अधिकतम उत्पत्ति की सीमा" नही आई है।

(३) **देश मे श्रमिकों की कमी :**—कुछ समर्थकों का कहना है कि देश में श्रमिकों की कमी है। इस कारण से भारत में जनाधिक्य नही है क्योंकि जनाधिक्य वाले देशों में श्रमिकों की पूर्ति अधिक होती है।

दोनों विचारधाराओं के तर्कों के अध्ययन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि भारतीय सरकार द्वारा जो आकडे इकट्ठे किये गये हैं वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारत में जनाधिक्य की दशायें हैं लेकिन इसके साथ इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि भारत के प्राकृतिक साधनों का अभी तक पूर्ण रूप से उपयोग नहीं हुआ है। इसलिए इस समय आवश्यकता इस बात की है कि देश में कृषि, औद्योगिक, एवं खनिज व वन सम्पत्ति का पूर्ण रूप से उपयोग किया जाय।

साथ ही देशवासियों के रहन-सहन को बढ़ाने के लिए उनकी आय की वृद्धि करने के लिए तथा देश की पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या को अधिक न बढ़ने दिया जाय और इस कारण से सरकार को एक उचित जनसंख्या की नीति को अपनाना चाहिये।

जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के उपाय—भारत मे जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं —

(१) **देश के आर्थिक विकास द्वारा जीवन स्तर मे वृद्धि**—किसी देश का आर्थिक विकास औद्योगीकरण द्वारा हो सकता है। इसी कारण से भारत मे नियोजन द्वारा यह कार्य किया जा रहा है, जिनके द्वारा कृषि, औद्योगिक व सभी क्षेत्र मे विकास होगा तथा प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ेगी। जिससे जीवन स्तर मे वृद्धि होगी तथा जनसंख्या की समस्या का हल होगा।

जनसंख्या की वृद्धि के रोकने का उपाय :—
१. जीवन स्तर मे वृद्धि।
२ शिक्षा का प्रसार।
३ प्रवासन की सुव्यवस्था।
४ स्त्रियों की स्वतन्त्रता।
५ परिवार नियोजन।

(२) **शिक्षा का प्रसार**—देश मे शिक्षा का प्रसार होना चाहिये। इससे श्रमिकों की कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है तथा जीवन के प्रति दृष्टि

कोण बदल जाता है। वे प्रतिबन्धक रोकों के उपयोग को समझते हैं तथा उनको प्रयोग में भी लाते हैं। ऐसा होने से जनाधिक्य की समस्या नहीं रहेगी।

(३) **प्रवासन की सुविधा**—एक देश से दूसरे देश में बसने की सुविधा द्वारा भी जनसंख्या की समस्या का हल हो सकता है। यह कार्य एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है परन्तु इस सुझाव में व्यवहारिकता नहीं पाई जाती है।

(४) **स्त्रियों को आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता**—यदि स्त्रियों को आर्थिक मुक्ति मिल जाये तो जनसंख्या की वृद्धि कम हो जायेगी क्योंकि ऐसी दशा में कम आयु में शादी या शादी करना आवश्यक नहीं रहेगा। इसी प्रकार सामाजिक रीति रिवाजों एवं रूढ़िवादिता में परिवर्तन से भी जनसंख्या की वृद्धि कम होगी।

(५) **परिवार नियोजन का सहारा**—योजना कमीशन ने परिवार नियोजन का समर्थन किया है और इसकी आवश्यकता पर बल दिया है। परिवार नियोजन द्वारा जन्म दर कम होगी, बाल मृत्यु दर कम होगी तथा स्त्रियों का स्वास्थ्य सुधरेगा। इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि परिवार नियोजन की समुचित व्यवस्था की जाय एवं जनता भी इस ओर अपना सहयोग दे। क्योंकि परिवार नियोजन के कार्य में व्यय अधिक होता है, इस कारण से यह कार्य भारतवासियों के व्यक्तिगत व्यय के बाहर है। इसके लिए सरकार को पूर्ण सुविधायें प्रदान करनी होंगी।

इस प्रकार यदि उपलिखित सुझावों के अनुसार एक उचित जनसंख्या की नीति देश में अपनाई गई तो यह सत्य है कि फिर भारत में जनसंख्या के आधिक्य का भय नहीं रहेगा।

——

अध्याय ३१

जनसंख्या के सिद्धाँत

प्रश्न ६६—माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत क्या है? इसकी आलोचना कीजिये। यह सिद्धांत भारतवर्ष पर कहाँ तक लागू होता है?

(What is Malthusian theory of Population ? Examine it critically. How far is this theory applicable to India ?)

उत्तर —

जनसख्या के प्रश्न पर विचार करने वालो मे माल्थस का नाम प्रमुख है। वह एक पादरी था। उसने अपनी समकालीन परिस्थितियो का अध्ययन करके जनसख्या सम्बन्धी कुछ निष्कर्ष निकाले। उस समय नैपोलियन के साथ इगलैंड का युद्ध छिडा हुआ था, बाहर से सामान न आ सकने के कारण खाद्य सामिग्री बडी कठिनाई से ऊचे मूल्यो पर मिल पाती थी, औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बेरोजगारी बड रही थी। उधर जनसख्या बढती जा रही थी। जनता बडी दुखी थी। माल्थस ने जनसख्या सम्बन्धी अपने निष्कर्षों को अपनी पुस्तक **"An essay on the Principles of Population"** में प्रगट किया। ये निष्कर्ष ही माल्थस के जनसख्या सिद्धात कहे जाते है, उसकी मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं —

(१) **जनसंख्या की वृद्धि** —जनसख्या बहुत तेजी से बढती है। यदि कोई रुकावट न आये तो एक देश की जनसख्या हर २५ वर्ष में दुगनी हो जाती है। उसने बतलाया कि जनसख्या ज्योमीतिक अनुपात (**Geometric Progression**) मे बढती है, जैसे १, २, ४, ८, १६, ३२ आदि।

(२) **खाद्य सामिग्री की वृद्धि** —खाद्य सामिग्री जनसख्या की अपेक्षा धीमी गति से बढती है। दूसरे शब्दो मे खाद्य-सामिग्री की मात्रा उस अनुपात मे नही बढती जिस अनुपात मे जनसख्या बढती है। खाद्य-सामिग्री की वृद्धि अकगणितीय अनुपात (**Geometric Progression**) मे होती है जैसे १ २, ३, ४, ५, ६ आदि।

उक्त दोनो तथ्यो से माल्थस ने यह निष्कर्ष निकाला कि बहुत शीघ्र ही एक देश की जनसख्या वहा पर उपलब्ध खाद्य सामिग्री की अपेक्षा अधिक हो जायेगी। प्रारम्भ मे जनसख्या चाहे कितनी ही कम हो वह धीरे-धीरे बढती रहगी और एक समय ऐसा आयेगा जबकि वह खाद्य सामिग्री से अधिक बढ जायगी। अतः सीमित भोजन के लिये लोगो मे लडाइया होंगी, लोग भूखे मरगे, दुर्बल हो जायेंगे, बीमारिया फैलेंगी, अकाल पडेंगे और अतिरिक्त जन सख्या नष्ट हो जायगी। फिर कुछ दिन बाद यह क्रम चालू होगा क्योकि खाद्य सामिग्री के उत्पादन मे उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है इस प्रकार माल्थस ने कहा कि **"मनुष्य जाति का भविष्य अन्धकारमय है"** माल्थस ने कहा कि यदि मनुष्य इन दैवी प्रकोपों से बचना चाहते हैं तो उनको स्वयं

जनसंख्या कम करनी चाहिए। मनुष्यों को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये, विवाह देर से करने चाहिये परिवार का आकार सीमित रखना चाहिये आदि।

अत जनसंख्या कम करने के दो उपाय हैं —

(१) नैसर्गिक रोक (Positive Checks)

(२) प्रतिबंधक रोक (Preventive Checks)

नैसर्गिक रोक:—जनसंख्या के खाद्य सामिग्री की अपेक्षा अधिक बढ़ जाने पर प्रकृति स्वयं कुछ रोक लगा देती है। इन्हे नैसर्गिक रोक कहते हैं जैसे हैजा, महामारी, भूकम्प, युद्ध, बाढ़, अकाल आदि। इनसे मृत्यु दर में वृद्धि हो जाती है और जनसंख्या कम हो जाती है।

प्रतिबंधक रोक —ये वे प्रतिबंध होते हैं जो जनसंख्या कम रखने के लिये मनुष्य द्वारा स्वयं लागू किये जाते है। जैसे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, देर से विवाह करना, परिवार में बच्चों की संख्या सीमित रखना व सन्तान निग्रह (Birth control) के साधनों का प्रयोग आदि। इनसे जन्म दर में कमी करके, जनसंख्या को सीमित रखा जा सकता है।

माल्थस के सिद्धांत की आलोचना :—

अर्थशास्त्रियों और विद्वानों द्वारा माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की कटु आलोचना की गई है जो निम्न प्रकार है —

(१) माल्थस का यह कहना सर्वथा गलत सिद्ध हुआ है कि हर पच्चीस वर्ष में एक देश की जनसंख्या दुगनी हो जाती है। इतिहास से यह बात सिद्ध नही होती।

(२) माल्थस की यह धारणा है कि खाद्य सामिग्री अंकगणितीय अनुपात में और जनसंख्या ज्योमितिक अनुपात मे बढ़ती है दोषपूर्ण है। जनसंख्या या खाद्य सामिग्री की वृद्धि का इतना नितांत निश्चित वेग कहीं भी नहीं मिलता।

(३) माल्थस ने इस बात पर विचार नही किया कि प्रत्येक प्राणी संसार मे केवल एक ही मुंह लेकर नही आता बल्कि दो हाथ भी लेकर आता है। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ साथ श्रम की भी वृद्धि होती है जो देश के साधनों का उचित उपयोग करके देश में धनोत्पादन को बढ़ा देती है।

(४) माल्थस ने खाद्य-सामिग्री पर अनावश्यक रूप से बल दिया। उसने जनसंख्या और देश के सभी प्रकार के कुल उत्पादन के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। जो देश कृषि की अपेक्षा औद्योगिक दृष्टि से अधिक विकसित है, अपनी उत्पादित वस्तुओं के विनिमय मे विदेशों से खाद्य सामिग्री

आयात करके, जनता की खाद्य सामिग्री की आवश्यकता को पूर्ण करते हैं जैसे इंगलैंड।

(५) माल्थस को यह भी आभास नही हुआ कि यातायात के साधनो मे इतनी वृद्धि और विकास हो सकता है कि दूर २ के देशो से अन्न आयात करके कमी के क्षेत्रों मे अन्न की मांग को पूरा किया जा सकता है जैसे भारतवर्ष।

(६) शिक्षा व सभ्यता की वृद्धि लोगो को जीवन स्तर ऊंचा करने के उपायों को अमल मे लाने के लिये प्रोत्साहित करती है। इस भय से कि परिवार वृद्धि से जीवन स्तर गिर जाता है, लोग अपने परिवारो के आकार को सीमित रखते हैं। यदि नये विवाहित दम्पत्ति के समक्ष मोटरकार और शिशु के बीच चुनाव करने का प्रश्न उपस्थित किया जाये तो, निश्चय ही कार का चुनाव होगा। जीवन स्तर के बनाये रखने की लालसा का अनुमान शायद माल्थस नहीं लगा पाया था इसीलिये उसके निष्कर्ष आधुनिक समाज में लागू नही होते।

यद्यपि माल्थस के सिद्धान्त की बहुत सी बातें आजकल नही मानी, पर इस सिद्धान्त में काफी सच्चाई है।

भारत और माल्थस का सिद्धांत —

भारत की जनसंख्या तेजी से बढ रही है। प्रतिवर्ष ५० लाख व्यक्ति देश मे बढ जाते हैं। खाद्य सामिग्री की बहुत ही कमी है। अनुमानतः १०० करोड रु० प्रतिवर्ष का अनाज विदेशो से मगाया जाता है। देश मे घोर गरीबी है लोगों का जीवन स्तर बहुत नीचा है। अधिकांश लोगो को न पेट भर भोजन मिलता है न पहनने को कपडा और न रहने के लिये मकान। यहां मृत्यु दर ससार मे सबसे अधिक है। हैजा, प्लेग, चेचक मलेरिया, क्षयरोग, आदि से लाखो व्यक्ति प्रतिवर्ष मर जाते हैं। नदियो मे बाढें प्रतिवर्ष ही आती रहती। यहां सार्वभौमिक विवाह (Universal Marriage) की प्रथा है—प्रत्येक व्यक्ति विवाह करता है, लोगो को सतति निग्रह के साधनो का बहुत ही कम ज्ञान है और न वे इनको उपयुक्त ही समझते। सक्षेप मे भारत मे जनसंख्या खाद्य सामिग्री की अपेक्षा बहुत तेजी से बढ रही है, मनुष्यो का जीवन स्तर गिरता जा रहा है, नैसर्गिक रोक देश मे अपना काम कर रहे हैं और प्रतिबन्धक उपायो का ज्ञान सीमित है आदि। अतः हम कह सकते हैं कि माल्थस का सिद्धात भारत पर पूर्णतया लागू होता है।

प्रश्न ६७—सर्वोत्तम जनसंख्या सिद्धांत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(Write a short note on Optimum Theory of Population)

उत्तर :—

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने माल्थस के निराशावादी जनसंख्या सिद्धांत का खंडन करके सर्वोत्तम या आदर्श जनसंख्या के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धांत के अनुसार देश की **जनसंख्या का प्रश्न देश की खाद्य-सामिग्री से नहीं बल्कि देश मे कुल धन उत्पादन से सम्बन्धित है।** माल्थस के अनुसार जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि अवांछनीय है। परन्तु सर्वोत्तम जनसंख्यावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अगर साथ ही साथ देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग बढ़ जाये तो जनसंख्या की वृद्धि वांछनीय है। 'साधनों के पूर्ण उपयोग' की सीमा से आगे जनसंख्या में वृद्धि ठीक नहीं होगी क्योंकि नवागन्तुक बेरोजगार रहेंगे, प्रति व्यक्ति की आय कम हो जायगी और जीवन स्तर गिर जायगा। इसके विपरीत अगर जनसंख्या साधनों के पूर्ण उपयोग की सीमा से कम है तो बहुत से साधन अशोषित पड़े रहेंगे, कुल उत्पादन कम हो जायगा और आय प्रति व्यक्ति कम हो जायगी। अत हम कह सकते हैं कि **किसी देश मे किसी समय विशेष पर सर्वोत्तम जनसंख्या वह है जिससे प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो जिसमे तनिक भी वृद्धि या कमी होने पर प्रति व्यक्ति आय मे कमी हो जाये"** (कारसान्डर्स)। जब किसी देश की जनसंख्या न ज्यादा है और न कम बल्कि केवल उतनी है जितनी कि देश में उसके साधनों को देखते हुए होनी चाहिए, तो इस जनसंख्या को सर्वोत्तम जनसंख्या कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार अति जनसंख्या और न्यून जनसंख्या सापेक्षिक है। यदि देश मे नये-नये साधनों को उपयोग में ले लिया जाय तो सर्वोत्तम जनसंख्या न्यून जनसंख्या से कम हो जायगी और यदि साधनों को नष्ट कर दिया जैसा कि युद्धकाल मे या बाढ़ में होता है तो वही सर्वोत्तम जनसंख्या अति जनसंख्या हो जायगी।

अध्याय ३२

श्रम की कार्य क्षमता

प्रश्न ६८—श्रम की कार्य क्षमता क्या है ? श्रम की कार्य क्षमता को प्रभावित करने वाली बातों को बताइये।

(What is meant by efficiency of Labour ? What are the factors that govern the efficiency of Labour ?)

उत्तर :—

श्रम की कार्य क्षमता का अर्थ —

"निश्चित समय व समान परिस्थितियों मे अधिक या श्रेष्ठतर या दोनो ही प्रकार के कार्य करने की योग्यता को श्रमिक की कार्य-क्षमता या कार्य कुशलता कहते है।' हम साधारणत देखते हैं कि एक ही काय को करने म एक व्यक्ति को कम समय लगता है दूसरे को अधिक या समान समय के भीतर एक व्यक्ति अधिक और दूसरा कम काम करता है या एक व्यक्ति श्रेष्ठ वस्तुय तैयार करता है और दूसरा घटिया आदि। पहले प्रकार के व्यक्ति दूसरे प्रकार क व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक कार्य कुशल कहे जायेंग। अत **स्पष्ट है कि श्रम की कार्य क्षमता एक तुलनात्मक (relative) शब्द है और इसके अन्तर्गत कार्य की मात्रा या उत्तमता या दोना ही गुण समाविष्ट हैं।**

कार्य क्षमता को प्रभावित करने वाली बातें —

(१) जलवायु (Climate) —जलवायु का श्रमिक की शारीरिक शक्ति व काय की आवश्यकता पर प्रभाव पडता है। गम देशों म मनुष्य शीघ्र ही थक जाता है वह अधिक और लगातार काम नही कर पाता। इसी प्रकार अधिक ठण्ड देशो मे मनुष्य अधिक काम नही कर सकता। शीतो षण जलवायु डट कर काय करने के लिये श्रेष्ठ है। इसीलिये एक बगाली और मद्रासी की अपेक्षा एक पजाबी श्रमिक अधिक कुशल होता है। दूसरे, गम देशो के व्यक्तियो की अनिवार्यतायें कम होती हैं और ये सुगमता पूवक सतुष्ट की जा सकती है परन्तु ठडे देशो मे अनिवार्यताय अधिक होन क कारण व्यक्तियो को इनकी पूर्ति क लिये अधिक काम करना पडता है। इसीलिये एक पहाडी एक मैदानी निवासी की अपेक्षा अधिक कुशल होता है।

(२) जातीय तथा पैतृक गुण (Racial and Hereditary qualities) —श्रमिक की जातीय और पैतृक गुणों का उसकी कार्य क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत में जाट तथा राजपूत बड़े शक्तिशाली होते हैं। एक बढ़ई का लड़का एक अच्छा बढ़ई बन जाता है जबकि दूसरे व्यक्ति को यह काम सीखने में अधिक मेहनत और समय लगेगा।

कार्य क्षमता को प्रभावित करने वाली बातें —

१ जलवायु।
२ जातीय तथा पैतृक गुण।
३ मजदूरों का जीवन स्तर व स्वास्थ्य।
४. नैतिक गुण।
५. सामान्य बुद्धि।
६ शिक्षा।
७ कार्य की दशायें।
८ कार्य के घन्टे।
९ कार्य की स्वतन्त्रता।
१० उन्नति व लाभ की आशा।
११ मजदूरी।
१२ श्रम संगठन।
१३ राजनैतिक व सामाजिक दशायें।
१४ व्यवस्थापक का व्यवहार।

(३) मजदूरों का जीवन स्तर व स्वास्थ्य (Standard of Living and Health of the Workers) – जिन मजदूरों का जीवन स्तर ऊंचा और स्वास्थ्य अच्छा होता है वे अधिक शारीरिक कार्य कर सकते हैं, उनकी मानसिक कार्य क्षमता भी अधिक होती है। दुर्बल और रुग्ण श्रमिक अधिक और उत्तम कार्य कभी नहीं कर सकता।

(४) नैतिक गुण (Moral Qualities) :—श्रमिक के नैतिक गुणों और उसकी कार्य शक्ति में गहरा सम्बन्ध है। जो मजदूर सच्चा और ईमानदार होता है और अपने कर्तव्य को समझता है, वह कमजोर होते हुए सामने भी अधिक काम कर लेता है। लापरवाह बेईमान मजदूर केवल मालिक के ही काम करते हैं और उसके जाते ही काम कम या बन्द कर देते हैं। जब मजदूर मालिक के काम को अपना समझकर तत्परता और लगन से करता है तो उसकी कार्य क्षमता बढ़ जाती है।

(५) सामान्य बुद्धि (General Knowledge) .—जिस श्रमिक में सामान्य बुद्धि होती है वह प्रत्येक कार्य को विधिवत करने में समर्थ होता है, वह अपनी रुचि के ही व्यवसाय को छांटता है और उसमें काम करता है वह कार्य को बिना कोई निरीक्षण के ही कर डालता है। ऐसा श्रमिक अधिक

कार्य कुशल होता है। सामान्य बुद्धि एक जन्मजात गुण है परन्तु शिक्षा तथा वातावरण से इसका पर्याप्त विकास हो सकता है।

(६) **शिक्षा (Education)** :—कार्य क्षमता को प्रभावित करने में शिक्षा का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा दो प्रकार की होती है— साधारण व टैक्नीकल। उचित शिक्षा मनुष्य की सोती हुई योग्यता को जगाती है, दृष्टिकोण को विस्तृत बनाती है और मानसिक शक्तियों का विकास करती है। उसकी कार्य करने की इच्छा और कर्तव्य परायणता बढ जाती है। साधारण शिक्षा के अतिरिक्त किसी व्यवसाय विशेष के लिये टेक्नीकल शिक्षा भी आवश्यक है। शिल्प शिक्षा मजदूर को कार्य विशेष के करने में प्रवीण बना देती है। ऐसी शिक्षा के अभाव में मजदूर कुशल नही हो पाते।

(७) **काम करने की दशायें (Working Conditions)** —यदि काम करने का स्थान स्वच्छ, हवादार व प्रकाशयुक्त है तथा मजदूरो के लिये साफ पानी पीने आदि की सुविधायें उपलब्ध हैं तो श्रमिकों का स्वास्थ्य ठीक रहेगा, उसका काम करने में मन लगेगा और वे अधिक कार्य कर सकेंगे। इसके विपरीत यदि काम करने का स्थान गंदा, अन्धकारमय और श्रमिकों की रुचि के अनुकूल नही है तो श्रमी कार्य करने में आलस्य अनुभव करेंगे, उनका स्वास्थ्य गिर जायेगा और अन्त में उनकी कुशलता कम हो जायेगी। सरकार, इसीलिये देश में काम की दशायें सुधारने का प्रयत्न कर रही है।

(८) **काम के घंटे (Working Hours)** —कुछ पूंजीपतियों की यह धारणा है कि यदि मजदूर से ज्यादा घंटे काम लिया जाय तो वह अधिक उत्पादन कर सकेगा। परन्तु ऐसा नही है। ज्यादा घंटे काम करने से मजदूर शीघ्र ही थक जाता है और उसकी कार्य क्षमता घट जाती है। इसी प्रकार लगातार काम करते रहने से श्रमिक शीघ्र ही थक जाता है और बाद के घंटों में उसकी कार्य क्षमता बहुत ही कम हो जाती है। यदि कुछ घंटे काम करने के पश्चात मजदूर को कुछ समय आराम करने को मिल जाये तो वह अपनी थकान को दूर करके अपनी खोई हुई कार्य शक्ति को पुन प्राप्त कर लेता है और बाद के घंटों में पुन बिल्कुल ताजा और शक्तिशाली होकर पहिले से अधिक माल बना लेता है।

(६) **कार्य करने की स्वतन्त्रता :—(*Freedom of Work*) :—** यदि श्रमिक कार्य करने में स्वतन्त्र है तो वह मन लगाकर कार्य करेगा। यदि वह स्वतन्त्र नही है, बार-बार टोका जाता है, बेगार करने को मजबूर किया जाता है तो यह अधिक कार्य न करेगा।

(१०) उन्नति और लाभ की आशा :—उन्नति और लाभ की आशा से काम करने की प्रेरणा मिलती है। जिस मजदूर को यह आशा होती है कि उसे अच्छा काम करने पर तरक्की मिल जायेगी या वेतन बढ़ जायेगा, वह मन लगाकर उत्तम कार्य करता है। ऐसे मजदूर की कार्यक्षमता उस मजदूर की अपेक्षा जिसे इस बात का प्रलोभन नहीं है, अधिक होती है।

(११) मजदूरी (Wages) :—श्रमिक को उसके कार्य का उचित प्रतिफल मिलना चाहिये। साथ ही साथ यह प्रतिफल तुरन्त और प्रत्यक्ष रूप में होना चाहिये। यदि मजदूर का शोषण किया जायगा, तो वह असन्तुष्ट रहेगा। वह अपनी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पायेगा, फलतः उसकी कार्यक्षमता गिर जायेगी।

(१२) श्रमिकों का संगठन (Labour Organisation) :—व्यक्तिगत रूप से मजदूरों की सौदा करने की शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है। पूंजीपतियों द्वारा उनका शोषण किया जाता है। परन्तु श्रम संघ (Trade Union) मजदूरों के हित रक्षा के लिये कार्य करते हैं। वे उनकी सामूहिक रूप में सौदा करने की शक्ति बढ़ा देते हैं। मजदूर का शोषण नहीं होता, उसका उचित पुरस्कार मिलता है और उसकी कार्य क्षमता बढ़ जाती है।

(१३) राजनैतिक और सामाजिक दशायें (Political and Social conditions) :—जिस देश में शान्ति और सुव्यवस्था होती है, वहाँ के श्रमिक लगन से कार्य करते हैं। जहाँ जन-धन की कोई सुरक्षा नहीं होती वहां लोग भविष्य की ओर से निश्चिंत रहते हैं और अधिक धन उत्पत्ति नहीं करते। यदि समाज में प्रत्येक को प्रगति के समान अवसर प्राप्त हैं, तथा प्रत्येक को सभी व्यवसाय चलाने और कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है, वहां प्रत्येक औरों से अधिक कुशल बनने की कोशिश करता है।

एक गुलाम देश के मजदूरों की मनोवृत्ति निराशामूलक होती है अतः वे अधिक कार्य नहीं करते हैं। स्वतन्त्र देश में देश हित की इच्छा से प्रेरित होकर प्रत्येक व्यक्ति अधिक कार्य करता है।

(१४) व्यवस्थापक का व्यवहार व योग्यता (Organisers ability and treatment) :—यदि एक सफल व्यवस्थापक श्रमिकों को उनकी योग्यता और रुचि अनुसार कार्य देता है। मजदूरों को उचित प्रकार के यन्त्र व औजार प्रदान करता है और उनके साथ में उचित व्यवहार करता है तो श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ जायेगी। इसके विपरीत यदि संगठनकर्ता मजदूरों के साथ अनुचित व्यवहार करता है, उनको उनकी रुचि के प्रतिकूल

काम देता है और काम करने को पुराने और टूटे-फूटे औजार आदि प्रदान करता है तो मजदूरों की कार्य क्षमता गिर जाती है।

अतः श्रम की कार्य क्षमता व्यवस्थापक की कुशलता व योग्यता से बहुत अधिक प्रभावित होती है।
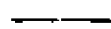
प्रश्न ६६—भारतीय श्रम की कार्य क्षमता की हीनता के मुख्य कारण कौन से हैं ? उसकी कार्य क्षमता मे किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है।

(What are the causes of the inefficiency of Indian labour? How can their efficiency be increased ?)

उत्तर —

भारतीय श्रमिक पाश्चात्य देशो के श्रमिको से बहुत कम कुशल हैं। सर क्लीमेट सिम्पसन के मतानुसार लकाशायर की सूती मिल का मजदूर भारतीय सूती कपडे की मिल के श्रमिक से २ ६७ गुना काम करता है। सर अलैकजैंडर मैकराबर्ट के अनुसार एक अग्रेज मजदूर एक भारतीय मजदूर की अपेक्षा ३ ४ से ४ गुना तक अधिक काम करता है। परन्तु इस प्रकार के कथन भ्रातिमूलक हैं। कार्य क्षमता की तुलना तभी सभव है जबकि परिस्थितिया समान हो। इगलैंड और भारत की आर्थिक अवस्थायें समान नही हैं। फिर भी कुछ ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से भारतीय श्रमिकों की कार्य क्षमता कम है। वे कारण निम्नलिखित हैं —

भारतीय श्रमिक की कार्य क्षमता कम होने के कारण —

(१) भारतवर्ष की जलवायु बहुत उष्ण है। गम जलवायु श्रमिक को अधिक देर तक और लगातार काम नही करने देती। वह शीघ्र ही थक जाता है।

(२) औसतन भारतीय मजदूर का जीवन स्तर नीचा है। वह केवल जीवन के आवश्यक पदार्थों को ही मुश्किल से जुटा पाता है। उसका स्वास्थ्य कमजोर है। ये समस्त बातें उसको अयोग्य मजदूर बना देती हैं।

(३) भारतवर्ष मे मजदूरो को बहुत कम पारिश्रमिक दिया जाता है। मजदूर सघो का अभी पूर्ण और सुचारू रूप से विकास नहीं हुआ है। अत मिल मालिको द्वारा श्रमिको का शोषण किया जाता है। असतुष्ट मजदूर अच्छा और अधिक काम नही कर सकता।

(४) भारतीय औद्योगिक नगरो मे मजदूरो के लिये साफ, स्वच्छ,

हवादार व प्रकाशयुक्त मकानो की कमी है। मजदूर अपने पास अपने परिवारों को भी नहीं रख पाते हैं वे ऐसे घरो मे रहते हैं जहा एक सभ्य व्यक्ति कुछ देर रुकना भी उचित नहीं समझेगा। ऐसे मकानो म श्रमिको का स्वास्थ्य गिर जाता है। उनम बहुत सी कुटेवें जैसे वेश्या वृति, जुआ खेलना, शराब पीना आदि पैदा हो जाती हैं। यह स्थिति मजदूरो की योग्यता को बहुत ही गिरा देती है।

(५) अशिक्षा, अज्ञानता व रूढिवादिता भी भारतीय श्रमिकों की हीन कार्य क्षमता के मुख्य कारण हैं। अशिक्षा के कारण वे अपने कर्तव्य को नहीं समझते हैं वे अन्धविश्वासी, भाग्यवादी व निरुत्साही हैं।

(६) भारतीय मिलो मे अन्य योरोपियन देशो की अपेक्षा काम करने के घण्टे ज्यादा हैं। गर्म जलवायु मे अधिक घण्टे काम करने से उनकी कार्य–क्षमता कम हो जाती है।

(७) मिल मालिक अभी कारखानो के वातावरण को सुख कर स्वास्थ्य-वधक व रुचिकर बनाने के प्रति उदासीन हैं। श्रमिको को बहुत ही प्रतिकूल वातावरण मे काम करना पडता है। उनको न स्वच्छ स्थान, न स्वच्छ पानी न हवादार काम करने के स्थान ही दिये जाते है। अत उनकी कार्यक्षमता गिर जाती है।

(८) भारतीय श्रमिको की अकुशलता का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण उनका गमनशील स्वभाव (Migratory character) है। भारतीय मजदूरो का मिलो स कोई स्थाई सम्बन्ध नही रहता। जब गाव म काम नही मिलता तो श्रमिक शहरो म आकर काम करने लगते हैं। जब उनके पास कुछ पैसा इकट्ठा हो जाता है या उनको गाव मे ही काम मिल सकता है तो वे शहरो को छोडकर गाँव को चले आते हैं। इस आवागमन के कारण मजदूर न तो गाव के धन्धे म ही निपुण हो पाते है और न शहर की फैक्टरी के काम मे। अत उनकी कार्य क्षमता कम हो जाती है।

(९) भारतीय श्रमिको को शराब पीने की बुरी आदत है। मनोरजन के साधनो के अभाव म उनको यह लत लग जाती है। यह उसकी कार्य-क्षमता पर बुरी तरह से प्रभाव डालती है।

(१०) भारतीय कारखानो मे व्यवस्था तथा प्रबन्ध सतोषजनक नहीं है। बहुत से कारखानो म विदेशी मैनेजर कार्य करते हैं जो कि भारतीय श्रमिक को नहीं समझ पाते। श्रमिको को उनकी योग्यता, व रुचि के अनुसार काम नहीं मिल पाता। अत उनकी कार्य क्षमता गिर जाती है।

भारतीय श्रमिको की कार्य क्षमता बढाने के उपाय —

भारत सरकार राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिये महान प्रयत्न कर रही है। औद्योगीकरण की सफलता के लिये देश मे कुशल श्रमिको का होना अति आवश्यक है। भारतीय श्रमिकों की कार्य क्षमता को निम्न उपायो द्वारा बढाया जा सकता है —

श्रमिको को साधारण व टैक्नीकल शिक्षा प्रदान की जाये। मजदूरो के बच्चो के लिये श्रमिक बस्तियो मे स्कूल खोले जायें, वयस्क श्रमिकों के लिये रात्रि पाठशालाओ का प्रबंध होना चाहिये। शिक्षा मजदूरो के दृष्टिकोण को बदलेगी। वे जाति और धर्म के बधनो से ऊपर उठ कर अपने आप को योग्य नागरिक बना सकेंगे। टैक्नीकल शिक्षा के लिये अधिक सस्थाये खोली जानी चाहिये।

देश मे मजदूर सघो का विकास होना चाहिये। मजदूर सघ मजदूरो के हितो की रक्षा करते है, उनको पूँजीपतियो के शोषण से बचा कर मजदूरो की सौदा करने की शक्ति को बढाते है। कारखानो मे कार्य करने की दशाओं को सुधारने और उन पर नियन्त्रण रखने के लिये राज्य की ओर से श्रम कल्याण अधिकारी (Labour Welfare Officers) नियुक्त होने चाहिये। मजदूरो को उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिये। मजदूरो और मिल मालिको मे अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्न करने चाहिये। श्रमिको की साझेदारी (Labour Co-partnership) इस ओर एक ठोस प्रयत्न है। स्वच्छ, हवादार व प्रकाशयुक्त स्थानो में मजदूर बस्तियो का निर्माण किया जाय जहाँ मजदूर अपने परिवार सहित रह सकें।

अध्याय ३३

पूँजी

प्रश्न ७०—पूजी शब्द की परिभाषा कीजिये। आधुनिक युग मे पूँजी का क्या महत्व है ? चल तथा अचल पूंजी का भेद स्पष्ट कीजिये।

(Define the term 'Capital'. What is its importance in the

modern times? Distinguish clearly between circulating and fixed capital.)

उत्तर—

साधारण बातचीत मे पूंजी का अर्थ रुपये-पैसे और धन-सम्पत्ति से लिया जाता है किन्तु अर्थशास्त्र मे इसका विशिष्ट अर्थ होता है जो इसके साधारण अर्थ से भिन्न है। **प्रो० टामस के अनुसार "पूंजी भूमि को छोड कर व्यक्तिगत तथा सामूहिक सम्पत्ति का वह भाग है जो और अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करने के काम आता है।"** प्रत्येक व्यक्ति अपनी समस्त आय को वर्तमान आवश्यकताओ की पूर्ति मे ही व्यय नहीं कर देता। वह थोडा सा भविष्य के लिये भी बचा कर रखता है। इस बचाये हुये धन का दो प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। उस धन को जमीन मे गाडकर या सदूक में बन्द करके या गहने बनाकर रखलें या उस धन को किसी उत्पादक कार्य मे लगा दें, जैसे व्यापार मे प्रयोग करना, बैंक को उधार देना या कम्पनी के हिस्से आदि खरीदना। इस अन्तिम प्रकार के धन को ही पूंजी कहते है क्योकि यह और अधिक धन उत्पादन के लिये प्रयोग किया गया है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि **सब सम्पत्ति पूंजी नहीं है परन्तु सब पूजी सम्पत्ति है (All Wealth is not capital but all capital is wealth)**

केवल द्रव्य ही पूंजी नही है अन्य वस्तुयें भी पूंजी हो सकती हैं। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि एक किसान के यहा १०० मन चना पैदा होता है इसमे मे वह १० मन बीज के लिये रख लेता है और शेष का कुछ भाग वह उपभोग कर लेता है और कुछ बाजार मे बेच देता है। १० मन चना उस किसान की पूंजी है क्योकि इसका प्रयोग और अधिक चनें (धन) उत्पन्न करने मे किया जायगा। अत **पूजी होना किसी वस्तु का जन्म सिद्ध गुण नहीं है, यदि किसी वस्तु का प्रयोग सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिये किया जाता है तो वह पूजी है अन्यथा नहीं।** यदि उपरोक्त उदाहरण मे किसान १० मन चनो का भी उपभोग कर डाले तो वह उसकी पूंजी नहीं रहेंगे।

समस्त वस्तुयें जो और अधिक धन उत्पादन मे प्रयोग की जाती हैं पूजी नहीं कहलातीं। पूजी मे केवल मनुष्यकृत सम्पत्ति ही समाविष्ट होती है। भूमि या प्रकृतिदत्त वस्तुये पूंजी नही मानी जाती हैं। पूजी के अन्तर्गत कच्चा माल, मशीनें, औजार, कारखानों की इमारतें, श्रमिको के मकान,

श्रमिकों के वेतन, किसानों के हल, बैल और बीज आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

उपरोक्त विवरण से पूंजी पदार्थ मे तीन गुण पाये जाते हैं :—

(१) पूंजी सदा मनुष्यकृत होती है।

(२) पूंजी मे वही वस्तुयें शामिल होती हैं जो धन हैं।

(३) सारा धन पूंजी नही होता है, धन का केवल वही भाग पूजी होता है जो और अधिक धनोत्पत्ति मे सहायक होता है।

पूंजी का महत्व :—आधुनिक युग को 'पूजीवादी युग' कहा जाता है। इससे पूंजी का आधुनिक युग मे महत्व स्पष्ट हो जाता है। यह बात सत्य है कि बिना पूंजी के भी उत्पत्ति हो सकती है परन्तु यह उत्पत्ति उस उत्पत्ति की तुलना मे बहुत ही कम होगी जो पूजी की सहायता से होती है। यही कारण है कि उत्पत्ति मे पूजी का महत्व बढता ही जा रहा है। आधुनिक युग मे तो बिना पूंजी के किसी भी प्रकार के उत्पादन की बात सोची भी नही जा सकती है। बडे पैमाने की उत्पत्ति पूजी के कारण ही सम्भव है। यही नहीं वस्तु के उत्पादन के लिये उसके प्रारम्भिक प्रयत्न और अन्तिम प्रयत्न मे काफी समय लगने लगा है। इस बीच पूंजी की सहायता से ही उत्पादन के साधनों को पारिश्रमिक दिया जाता है। पूंजी के अभाव मे भूमि मे उन्नति नहीं की जा सकती, कच्ची सामिग्री व मशीनें प्राप्त नही की जा सकती हैं, यातायात व सवाद वाहन के साधनो मे उन्नति नही हो सकती। पूजी के अभाव मे किसी प्रकार का उद्योग धधा सरलता पूर्वक नही चलाया जा सकता है।

अचल तथा चल पूंजी (Fixed & Circulating Capital) :—

अचल पूंजी :—जो पूंजी उत्पादन कार्य मे बार-बार बहुत समय तक काम आती है, जिसे अचल पूंजी (Fixed Capital) कहते हैं जैसे हल, बैल, औजार, मशीनें, कारखाने की इमारतें, आफिस का टाईप राईटर आदि। प्रोफेसर मार्शल के अनुसार "**अचल पूंजी वह है जो टिकाऊ होती है और जिससे आमदनी कुछ समय तक निरंतर प्राप्त होती रहती है।**

चल पूंजी :—जो पूंजी धन की उत्पत्ति मे एक ही बार मे, थोडे ही समय मे काम आ जाती है और फिर दूसरी बार काम मे लाये जाने के लिये नहीं रहती उसे चल पूंजी कहते हैं। जैसे बीज, कच्चा माल, कोयला, मशीन का तेल आदि। प्रोफेसर मार्शल के अनुसार '**चल पूंजी वह है जो उत्पादन सम्बन्धी तमाम कार्य एक ही बार में पूरा कर देती है।"**

चल पूजी और अचल पूंजी शब्दो का प्रयोग सापेक्षिक दृष्टि से किया

जाता है। स्थिति भेद के कारण चल पूंजी अचल हो सकती है और अचल पूंजी चल हो सकती है। जैसे कोल्हू बनाने के कारखाने मे कोल्हू चल पूंजी है क्योंकि इन्हे बेच कर एक ही बार आमदनी प्राप्त की जा सकती है, परन्तु तेल निकालने की मिलो मे कोल्हू अचल पूजी है क्योंकि वहां इनका प्रयोग अनेक बार बहुत समय तक होता है।

प्रश्न ७१—पूजी की परिभाषा दीजिये तथा इसके उत्पादन के कार्यों की व्याख्या करो।

(Define Capital' and explain its various functions in production)

उत्तर .—

"पूंजी की परिभाषा" के लिए कृपया **प्रश्न ७०** देखियेगा।

पूंजी के उत्पादक कार्य --'पूंजी का आज उत्पादन कार्य म विशेष महत्व है और विशेषकर पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के अन्दर इसका महत्व और भी अधिक है। आज के समय मे बडे पैमाने का उत्पादन बिना पूंजी के सहयोग के असम्भव है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि पूंजी आधुनिक उत्पादन प्रणाली का आधार एव प्रारम्भ है। पूजी के द्वारा ही देश के उत्पादन मे वृद्धि होती है तथा अनेक विकास कार्य किये जाते हैं। इस कारण यदि किसी देश मे पर्याप्त पूंजी का अभाव है तो वह देश आर्थिक क्षेत्र मे विकास नही कर सकता है। इसी कारण से भारत अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिए विदेशो से पूंजी की सहायता प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार हम देखते है कि पूजी का आधुनिक उत्पादन प्रणाली मे विशेष महत्व है। इसी कारण से प्रो० टामस ने पूंजी के अनेक कार्यों की व्याख्या की है, जिनमे से मुख्य निम्न प्रकार से हैं :—

पूजी के उत्पादक कार्य :—

१ उत्पादन के साधनो के प्रतिफल के रूप मे।
२ कच्चे माल की व्यवस्था मे।
३ यन्त्रो की व्यवस्था।
४ उत्पादित वस्तुओ की बिक्री मे सहायता।
५. पूजी पर ब्याज की आय।

(१) पूंजी का प्रयोग उत्पादन के साधनो के प्रतिफल के रूप मे :—यह बात सत्य है कि जब कोई उत्पादन कार्य शुरू किया जाता है तो उत्पादित वस्तु कुछ समय के बाद ही तैयार हो पाती है। इस कारण से इस

समय के मध्य जो उत्पादन के साधन उत्पत्ति कार्य म सहयोग प्रदान करते हैं उनको पूंजी मे से ही प्रतिफल दे दिया जाता है क्योकि वे अधिक समय तक उत्पादित वस्तु की बिक्री मे प्राप्त आय की प्रतीक्षा नही कर सकते है। जैसे कोई कारखाना कागज तैयार करता है तो कागज के तैयार होकर बाजार मे बिकने में काफी समय लगेगा। इस कारण से जो श्रमिक इस कार्य म लगे हुए हैं वे मजदूरी मागेंगे। उनको यह मजदूरी व्यवस्थापक पूंजी मे से ही दे देगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूजी का प्रयोग उत्पादन के साधनो को प्रतिफल देने म भी होता है।

(२) पूंजी का प्रयोग कच्चे माल की व्यवस्था करने मे — उत्पादन कार्य मे कच्चे माल की व्यवस्था भी पूजी के द्वारा की जाती है क्योकि बिना कच्चे माल के कोई भी उत्पादन कार्य नही हो सकता है और उत्पादन मे कच्चे माल को ही रूप परिवर्तन प्रदान करके अधिक उपयोगी बनाया जाता है। कच्चे माल को उसके स्थान से पूजी के द्वारा ही कारखानो तक पहुचाया जाता है लेकिन यह कार्य आधुनिक उत्पादन व्यवस्था मे अधिक जटिल हो गया है। जिसके लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी उत्पादन कार्य मे कच्चे माल की व्यवस्था करने के लिये भी पूंजी की आवश्यकता होती है।

(३) पूंजी के द्वारा यन्त्रो की व्यवस्था —आज के युग म प्रत्येक प्रकार के उत्पादन मे यन्त्रो का सहयोग लिया जाता है जिसके द्वारा कार्य कम समय मे, कम व्यय पर तथा अच्छा हो जाता है। इन यन्त्रो की प्राप्ति के लिए पूजी की आवश्यकता होती है और इसी कारण स यन्त्रो को पूजी का एक स्वरूप मानते है। इसलिए पूंजी का उपयोग यन्त्रो की व्यवस्था करने मे प्रमुख रूप से होता है।

(४) पूंजी द्वारा उत्पादित वस्तुओ की बिक्री मे सहायता — आज के युग म उत्पादन पहले हो जाता है तथा माग बाद म उत्पन्न की जाती है। इस कारण स यदि उत्पादक अपनी उत्पादित वस्तुओ की माग अधिक चाहता है, तथा उन्हे उचित मूल्य पर बेचना चाहता है तो उसे कुछ पूंजी विज्ञापन आदि पर व्यय करनी होगी। विज्ञापन क अन्तर्गत सिनेमा रेडियो, समाचार पत्रो तथा एजेन्टो की व्यवस्था आदि का व्यय आता है। इस प्रकार पूंजी का प्रयोग उत्पादित वस्तुओ की बिक्री म सहायता देने के कार्य मे भी होता है।

(५) पूंजी पर ब्याज की आय —पूंजी क द्वारा भी आय प्राप्त

होती है क्योंकि जिस व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक पूंजी है वह उसका किसी भी प्रकार से विनियोग कर सकता है। वह उसे बैंक में जमा कर सकता है, उधार दे सकता है किसी कम्पनी के शेयर खरीद सकता है सरकारी प्रतिभूति खरीद सकता अथवा किसी व्यापारिक व्यवसाय मे अपनी पूंजी का विनियोग करके आय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार पूंजी के स्वामी को बिना किसी परिश्रम के ही आय प्राप्त होती है जो कि साधारणतः ब्याज के रूप मे प्राप्त होती है जिसे त्याग या प्रतीक्षा का प्रतिफल कहा जाता है। इस प्रकार पूंजी के द्वारा पूंजीपति को इसके विनियोग से आय भी प्राप्त होती है।

प्रश्न ७२—किसी देश मे पूंजी का संचय किन-किन बातों पर निर्भर करता है ? भारत मे पूंजी संचय की क्या स्थिति है ?

(On what factors does the accumulation of capital in a country depend ? What is the position in India in this respect ?)

उत्तर —

किसी देश मे पूंजी का संचय मुख्यत तीन बातो पर निर्भर करता है —

(१) संचय की शक्ति —संचय की शक्ति का तात्पर्य **धन की उत्पत्ति का उपभोग से अधिक होना है।** यदि व्यक्ति जितना धन उत्पन्न करते हैं उतना ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करदें, तो राष्ट्र की बचत करने की शक्ति बिल्कुल नहीं होगी। संचय की शक्ति निम्न बातों पर आधारित है :—

(i) प्राकृतिक साधन —जिस देश मे प्राकृतिक साधन बहुत अधिक होते हैं, वहां धनोत्पत्ति भी अधिक होती है। वहा के निवासियों की संचय-शक्ति प्रायः अधिक होती है और जिस देश में प्राकृतिक साधनो का अभाव होता है वहां के निवासियों की संचय शक्ति कम होती है।

(ii) श्रम और पूंजी की कार्य क्षमता :—देश के प्राकृतिक साधन स्वयं कोई उत्पत्ति नही करते हैं। वे तो निष्क्रय हैं। उनके उचित उपयोग के लिये कुशल श्रम, उत्तम प्रकार की पूंजी, व्यवस्था व साहस आवश्यक हैं। इनके अभाव से देश की प्राकृतिक सम्पत्ति अशोषित **(Untapped)** पड़ी रहेगी देश का उत्पादन कम होगा और बचत करने की शक्ति भी कम होगी।

(iii) समाज मे धन का वितरण :—सम्पत्ति और आय के वितरण का भी सचय शक्ति पर प्रभाव पडता है। प्राय: जहा सम्पत्ति के वितरण मे असमानता होती है, सचय शक्ति अधिक होती है। थोडे मे धनिक लोग अवश्य ही बचा लेते हैं। परन्तु यदि धन का वितरण समान है तो समाज मे सब ही मध्यम श्रेणी के व्यक्ति होगे जिनकी बचत करने की योग्यता बहुत ही कम होती है।

(iv) राज्य की कर नीति — यदि व्यक्तियो पर कर-भार अधिक है तो उनकी आय का एक बडा भाग राज्य के पास करों के रूप मे चला जायगा और वे कम धन बचा पायेंगे। यदि कर भार थोडा है तो व्यक्तियो की सचय की शक्ति भी अधिक होगा।

(२) संचय की इच्छा — पूंजी सचय केवल व्यक्तियो की सचय की योग्यता पर ही निर्भर नही करता। यदि व्यक्ति म धन बचाने की इच्छा ही नही है तो वह आय अधिक होने पर भी कोई बचत नही करेगा। सचय की इच्छा को निम्न बातें प्रभावित करती हैं —

पूजी के सचय की निर्भरता —

१—सचय की शक्ति —
- १ प्राकृतिक साधन।
- २ श्रम और पूंजी की कार्य क्षमता।
- ३ समाज मे धन का वितरण।
- ४ राज्य की कर नीति।

२—सचय की इच्छा —
- १ दूरदर्शिता।
- २ कुटुम्ब प्रेम।
- ३ स्वभाव।
- ४ आर्थिक कारण।
- ५ सामाजिक सम्मान।
- ६. राजनैतिक कारण।

३—सचय की सुविधायें :—
- १ शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था।
- २ पूजी विनियोग की सुविधायें।
- ३ सुयोग्य व्यवसायी।
- ४. ब्याज की दर।
- ५ मुद्रा व्यवस्था।

(i) दूरदर्शिता —भविष्य अनिश्चित है। जीवन में सुख दुख अच्छे और बुरे दिन साथ-साथ रहते हैं। मनुष्य का स्वास्थ्य भी सदा एकसा नहीं रहता रोग अथवा दुर्बलता कभी भी मनुष्य को अपना शिकार बना सकते हैं। ऐसे समय के लिये मनुष्य धन बचाता है। वृद्धावस्था मे मनुष्य की कमाने की शक्ति क्षीण हो जाती है। मनुष्य स्वभाव से दूरदर्शी होता है। अत: वह इन सब बातों के लिये धन सचय करता है।

(ii) **कुटुम्ब प्रेम** —कुछ लोगों का रुपया बचाने का ध्येय यह होता है कि वे अपने बाल बच्चों के लिए कुछ रुपया छोड़ जायें। मनुष्य का यह प्रयत्न रहता है कि उसके मरने के बाद उसके परिवार को किसी प्रकार का आर्थिक संकट न हो। इस विचार से मनुष्य अपनी आय में से अधिक से अधिक बचाने की चेष्टा करता है।

(iii) **स्वभाव** —कुछ मनुष्यों में स्वभाव से ही धन संग्रह की प्रवृत्ति होती है। वे अनिवार्यताओं का त्याग कर भी कुछ धन बचा लेते हैं चाहे उनकी आय कितनी थोड़ी क्यों न हो। कुछ लोगों का सिद्धांत ही कम खर्च करना होता है। वे 'सादा जीवन उच्च विचार' (**Simple living and high thinking**) के अनुयायी होते हैं।

(iv) **आर्थिक कारण** —बहुत से लोग रुपये को ब्याज पर उठाने के लिये बचाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जब ब्याज की दर अधिक होती है तब धन संचय की प्रेरणा अधिक होती है। व्यापार में सफलता प्राप्त करने की लालसा से भी कुछ लोग बचत करते हैं।

(v) **सामाजिक सम्मान** —आधुनिक समाज में पैसे वाले का सम्मान होता है। गरीबों की इज्जत नहीं होती। अत आदर पाने और प्रभावशाली बनने के लिये बहुत से व्यक्ति रुपया बचाते हैं।

(vi) **राजनैतिक कारण** —राजनैतिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा एवं पद प्राप्त करने के लिये धन बहुत सहायक सिद्ध होता है। धन-बल पर ही बहुत से व्यक्ति विधान सभाओं के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं। अत राजनैतिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर कुछ व्यक्ति धन-संचय करते हैं।

(२) **संचय की सुविधायें** —संचय की सुविधाओं से तात्पर्य है कि देश में कुछ ऐसी सुविधायें और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हों जिनके द्वारा संचित किया हुआ धन उत्पादन में लगाया जा सके। ये सुविधायें निम्नलिखित हैं :—

(i) **शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था** —मनुष्य धन तभी बचायेगा जब उसे यह विश्वास होगा कि संचित धन का वह स्वयं उपभोग कर सकेगा। यदि देश में शान्ति, सुरक्षा की व्यवस्था न हो, चोर, डाकुओं, उपद्रवों और बाहरी आक्रमणों का डर लगा रहेगा तो कोई व्यक्ति धन संचय नहीं करेगा।

(ii) **पूंजी विनियोग की सुविधायें** :—यदि देश में पूँजी विनियोग करने के सुरक्षित तथा लाभदायक साधन न हों तो लोगों को अपनी बचत अनुत्पादक रूप में अपने पास रखनी पड़ेगी। इसीलिये जिन स्थानों पर बैंक

बीमा कम्पनी, डाकखाने, सहकारी समितियां आदि होती हैं वहां लोग बहुत धन बचा लेते हैं। जहां ये सुविधायें नहीं होती, वहां पूंजी का सचय नहीं हो सकता।

(iii) **सुयोग्य व्यवसायी :**—विश्वासनीय, सुयोग्य और ईमानदार उद्योगपति पूंजी सचय को बड़ा प्रोत्साहन देते हैं। ऐसे उद्योगपतियों को लोग निडर होकर अपना पैसा उधार दे देते हैं। अतः पूंजी का सचय भी होता है। इसके विपरीत जहां ऐसे व्यक्तियों का अभाव होता है वहाँ व्यक्ति अपने धन को अनुत्पादक ही रहने देते हैं क्योंकि उनको अपना पैसा मारे जाने का डर रहता है।

(iv) **ब्याज की दर** —यदि देश में ब्याज की दर ऊंची है तो साधारणतः अधिक पूंजी का सचय होगा क्योंकि कुछ व्यक्ति केवल ऊंची ब्याज की दर होने पर ही बचत करते हैं। ब्याज की दर कम होने पर, पूंजी का सचय कम हो जाता है।

(v) **मुद्रा व्यवस्था :**—मुद्रा का प्रचलित होना सचय की बहुत बड़ी सुविधा है जब द्रव्य नहीं था तो धन को वस्तुओं के रूप में सचित किया जाता था जिनके मूल्यों में परिवर्तन हो जाया करता था। वस्तुये नष्ट हो जाया करती थीं। परन्तु सोना, चांदी तथा दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं की मुद्रा-चलन पद्धति होने के कारण, अब मुद्रा के रूप में धन का सचय सुगम हो गया है। इन वस्तुओं का मूल्य लगभग स्थिर रहता है और न ये कभी नष्ट होते हैं।

भारतवर्ष में पूंजी का सचय :—

यद्यपि देश में प्राकृतिक साधन बहुत अधिक हैं परन्तु उनका पूर्ण उपयोग नहीं किया गया है इसलिये राष्ट्रीय आय बहुत कम है। जनसंख्या अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का भाग भी कम है। देश में औद्योगिक विकास अभी अपनी शिशु अवस्था में ही है। इसलिये भारतीयों की बचाने की योग्यता कम है। जहां तक सचय की इच्छा का सम्बन्ध है भारतीयों में वे सब गुण हैं जो सचय की इच्छा को प्रमाणित करते हैं। परन्तु आय कम होने के कारण वे अपनी धनमान की आवश्यकताओं को ही कठिनाई से पूर्ण कर पाते हैं। अतः भविष्य के लिये केवल कुछ ही व्यक्ति बचा पाते हैं। सचय की सुविधायें भारत में बहुत ही कम हैं। यद्यपि देश में शान्ति व सुव्यवस्था है, ब्याज की दर भी ऊंची हैं परन्तु बैंक, बीमा कम्पनियों व देश में योग्य व्यवसायियों की कमी पूंजी निर्माण में बाधक है। डाकखाने के बचत

बैंक ग्रामीणों तक का पूर्ण रूप से नहीं पहुँच पाये हैं। सहकारी समितियों का विकास भी सीमित ही है। इसलिये बहुत सा धन अनुत्पादक ही रह जाता है।

परन्तु अब राष्ट्रीय सरकार के नेतृत्व मे देश का सर्वांगीण आर्थिक विकास हो रहा है। कृषि, उद्योग व व्यापार सभी के लिये पूजी की मांग बढ़ रही है, पूजी विनियोग की सुविधाओं का विकास किया जा रहा है। आशा है कि भविष्य मे पूजी का निर्माण और तीव्र गति से होगा।

अध्याय ३४

मशीनों का प्रयोग

प्रश्न ७३—मशीनो के प्रयोग से लाभों व हानियों को बताइये ?

(Discuss the advantages and disadvantages of the use of machinery.)

उत्तर :—

उत्पत्ति मे मशीनों का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। उत्पादन मे ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हम किसी न किसी रूप में मशीनों का प्रयोग करते हैं। मशीनो का प्रयोग बडे पैमाने के उद्योगों तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि लघुस्तरीय व कुटीर उद्योग धधों मे भी मशीनों का प्रयोग बढता जा रहा है। इसीलिये वर्तमान युग को 'मशीन युग' (Machine age) कहा जाने लगा है। मशीनो के प्रयोग से अनेकों लाभ व हानिया हुई।

मशीनों से लाभ (Advantage of Machine) :—

(१) **कठिन और भारी काम करना :—**बहुत से कठिन और भारी काम जिन्हें मनुष्य नहीं कर सकता अथवा कठिनाई से कर सकता है, अथवा जिनमे बहुत शक्ति लगानी पडती है, मशीनो द्वारा बडी सुगमतापूर्वक हो जाते हैं। 'क्रेन' द्वारा बडे भारी बोझो को उठाया जा सकता है। रेल की पटरी से गिरे हुये इजन को उठाना एक समस्या है परन्तु क्रेन यह कार्य बडी आसानी से कर देती है।

(२) नीरस, गंदा व थकाने वाला कार्य करना :—नीरस कार्य में मनुष्य शीघ्र ही ऊब जाता है, जैसे अखबारों को मोड़ना, गंदा काम करने में मनुष्य घृणा मानता है जैसे चमड़ा साफ करना। परन्तु ऐसे कार्यों को मशीनों द्वारा किया जाता है। केवल थोड़ी सी व्यक्तिगत देखभाल करनी पड़ती है।

मशीनों से लाभ :—
1. कठिन एवं भारी कार्य करना।
2. नीरस व थकाने वाला कार्य करना।
3. अधिक उत्पादन।
4. कार्य तेजी से होता है।
5. कम उत्पादन व्यय।
6. समान उत्पादन।
7. बारीक व नाजुक कार्य का करना।
8. समय व दूरी पर विजय।
9. कार्य क्षमता व मजदूरी में वृद्धि।
10. गतिशीलता में वृद्धि।
11. अकुशल श्रमिकों का प्रयोग।

(३) अधिक उत्पादन —मशीनों के प्रयोग से श्रम विभाजन सम्भव होता है। एक काम को कई छोटे २ भागों में बाँट दिया जाता है उनमें से कुछ को पूरा करने के लिये मशीनों का प्रयोग होता है। व्यक्तियों को भी वही कार्य करने को दिये जाते हैं जिनके लिये वे विशेष रूप से योग्य होते हैं। अतः उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। बड़ी मात्रा की उत्पत्ति मशीनों के प्रयोग द्वारा ही सम्भव हो सकी है।

(४) काम तेजी से होता है :—एक मशीन एक व्यक्ति से कई गुना अधिक कार्य करती है। मशीनों को भाप-शक्ति अथवा विद्युत शक्ति से चलाया जाता है। अतः काम तेजी से होता है। आधुनिक छापेखाने की मशीन ८०,००० अखबार एक घन्टे में छाप देती है।

(५) उत्पादन व्यय-कम —मशीनों के प्रयोग से प्रति इकाई उत्पादन व्यय कम हो जाता है। मशीनें कम समय में अधिक माल तैयार करती हैं। यही कारण है कि मशीनों द्वारा तैयार माल की कीमतें कुटीर उद्योगों में तैयार माल की कीमतों की अपेक्षा बहुत कम होती हैं और वे कुटीर उद्योगों को स्पर्धा में पीछे छोड़ देते हैं। अनेकों वस्तुयें जो पहले महंगी थीं अब जनसाधारण के लिये सुलभ हो गई हैं।

(६) समान उत्पादन :—मशीनों द्वारा समस्त वस्तुयें एक सी उत्पन्न होती हैं जबकि एक हाथ के दस्तकार की बनाई हुई दो चीजें एक सी कदापि

नहीं हो सकती। मशीनों द्वारा उत्पादन की इसी विशेषता के कारण टूटी मशीनों के पुर्जों की बदली की जाती है क्योंकि एक मशीन के एक ही समान नाप के पुर्जे तैयार किये जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रमापीकरण के कारण नमूने अथवा विवरण द्वारा क्रय विक्रय कर व्यापार-वृद्धि की सुविधायें बढ़ गई हैं।

(७) **बारीक व नाजुक कार्य करना**—बहुत से बारीक, महीन व नाजुक कार्य मशीनों द्वारा किये जाते हैं जैसे घड़ियों के सूक्ष्म पुर्जों का निर्माण, बालों के व्यास की माप। यह कार्य व्यक्ति द्वारा कदापि नहीं किये जा सकते।

(८) **समय व दूरी पर विजय**—मशीनों के प्रयोग से मनुष्य ने समय व दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है। प्राचीनकाल में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में बड़ी कठिनाई होती थी और समय भी अधिक लगता था। आज द्रुतगामी वायुयानों और कृत्रिम उपग्रहों ने इस समस्या को बिल्कुल सरल बना दिया है। अब तो पृथ्वी वासी चन्द्रमा तक पहुँचना बड़ा ही आसान समझने लगे हैं।

(९) **श्रमिक की कार्य क्षमता व मजदूरी में वृद्धि**—मशीनों के द्वारा मजदूरों की उत्पादनशीलता बढ़ती है क्योंकि एक ही मशीन पर कार्य करते करते श्रमिक उस मशीन का स्वामी हो जाता है, कम समय में अधिक उत्पादन करने लगता है। कार्य क्षमता बढ़ जाने के फलस्वरूप, उसकी मजदूरी भी बढ़ जाती है जिससे उसका जीवन स्तर ऊँचा हो जाता है।

(१०) **गतिशीलता में वृद्धि**—सभी कारखानों में लगभग समान मशीनें होने के कारण, मजदूर एक व्यवसाय अथवा स्थान को छोड़ कर दूसरे व्यवसाय अथवा स्थान को आसानी से चला जाता है। सभी कारखानों में मशीनों के संचालन के सामान्य सिद्धांत एक से ही हैं अतः उसको नये कारखाने में काम सीखने में अधिक समय नहीं लगता।

(११) **अकुशल श्रमिकों का प्रयोग**—मशीनें तो स्वयं कार्य करती हैं उनको तो केवल एक बार चला देना होता है। परन्तु उनके ऊपर देखभाल व निरीक्षण के लिये कुछ व्यक्तियों को रखना पड़ता है। इस कार्य के लिये साधारण ज्ञान वाले अकुशल श्रमिकों का प्रयोग हो सकता है। कुछ साधारण कार्यों पर बच्चों व स्त्रियों को भी लगाया जा सकता है।

मशीनों द्वारा हानियाँ (Disadvantages of Machinery)

(१) **बेकारी फैलती है**—यह सही है कि जहाँ पहले १० या २०

आदमी मिलकर किसी कार्य को करते थे वह कार्य अब मशीन की सहायता से एक या दो व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। अत मशीनें बेकारी को बढ़ाती हैं। परन्तु यह मशीनों के प्रयोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही होता है। दीर्घकाल में तो मशीनों से बेकारी दूर होती है। मशीनों का बना माल सस्ता होता है, जिससे उसकी माग बढ़ जाती है, फलत कच्चे माल के उत्पादन व पक्के माल के उत्पादन के लिये मजदूरों की मांग भी बढ़ जाती है।

(२) हस्त कला की हानि व कुटीर उद्योगों का विनाश —यद्यपि हाथों का बनाया माल कभी-कभी अधिक मजबूत और कलात्मक दृष्टि में उत्तम होता है परन्तु महगा होने के कारण मशीनों के सस्ते माल के सामने नहीं बिक पाता और उसकी मांग घट जाती है। इसलिये हस्त-कला को बड़ी हानि होती है और दस्तकार कारखानों में वेतन प्राप्त मजदूरों के रूप में कार्य करने को बाध्य हो जाते हैं। हमारे देश में कुटीर-उद्योगों के विनाश का एक मुख्य कारण मशीनों द्वारा उत्पन्न माल की स्पर्धा था।

मशीनों से हानियाँ :—

१ बेकारी फैलती है।
२ कुटीर उद्योगों का—विनाश।
३ औद्योगीकरण की सामाजिक व नैतिक बुराइयां।
४ अति उत्पादन का डर।
५ वर्ग संघर्ष व सम्पत्ति का असमान वितरण।
६. अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति।

(३) **औद्योगीकरण की सामाजिक व नैतिक बुराइयाँ :**—मशीनों द्वारा उत्पादन बड़े पैमाने पर, बड़े २ औद्योगिक केन्द्रों में होता है। बड़े शहरों में जहां अनेकों प्रकार के कारखाने स्थापित हो जाते हैं, लाखों मजदूर आकर रहने लगते हैं। इन शहरों में सुन्दर व साफ घरों, सफाई, पानी व रोशनी आदि की समस्यायें उत्पन्न की जाती है। श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाता है। उनमें शराब पीना, जुआ खेलना, वेश्या-गायन, चोरी आदि अनेकों कुटेवें पड़ जाती हैं।

(४) **अति उत्पादन का डर :**—आज के मशीन युग में माग के पूर्वानुमान के आधार पर ही उत्पादन किया जाता है। अत सदैव अति-उत्पादन (Over-production) अर्थात माग से अधिक उत्पत्ति का डर बना रहता है। अति उत्पादन से आर्थिक क्षेत्र में मंदी आ जाती है, साहसियों को

हानि होने लगती है और उत्पादन कम होने के फलस्वरूप श्रमिकों को काम से अलग कर दिया जाता है।

(५) वर्ग संघर्ष और सम्पत्ति का असमान वितरण :— मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन कुछ बड़े पूंजीपतियों के हाथ में आ जाता है, अधिकांश व्यक्ति केवल मजदूरों के रूप में रह जाते हैं। समाज पूंजीपति व श्रमिकों (Capitalists and labourers) के दो वर्गों में बट जाता है जिनमें सदैव संघर्ष चलता रहता है। तालेबंदी व हड़ताल की घटनायें आये दिन होती रहती हैं। सम्पत्ति का वितरण भी असमान हो जाता है क्योंकि पूंजीपति और अधिक अमीर और श्रमिक और अधिक गरीब होते जाते हैं।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध व अशान्ति — मशीनों द्वारा शीघ्र, सस्ता व अधिक मात्रा में उत्पन्न माल को बेचने के लिये मंडियों पर प्रभुत्व करने के लिये भिन्न भिन्न राष्ट्रों में प्रतिद्वंदिता होती है और उनमें पारस्परिक द्वेष और संघर्ष और युद्ध की प्रवृतियां चलती रहती हैं।

अध्याय ३५

भारत में पूँजी

प्रश्न ७४—भारत में सिंचाई के साधनों की आवश्यकता के महत्व को समझाते हुए सिंचाई के विभिन्न साधनों का वर्णन करिये।

(Showing the need and Importance of the Irrigation facilities in India explain the various means of Irrigation)

उत्तर —

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा कृषि कार्य के लिए पानी की अति आवश्यकता होती है। यदि वर्षा हर स्थान पर ठीक प्रकार से हो जाये तो अन्य साधनों से पानी देने की आवश्यकता न रहे। लेकिन वर्षा कहीं अधिक और कहीं कम होती है। जहां वर्षा कम होती है वहां बनावटी साधनों से पानी पहुँचाया जाता है। इन्हीं साधनों को सिंचाई के साधन कहते हैं।

सिंचाई की आवश्यकता — भारत में सिंचाई के साधनों की आवश्यकता अनेक कारणों से होती है जिनमें से मुख्य निम्न हैं —

(१) वर्षा की अनिश्चितता :—भारत मे वर्षा की अनिश्चितता है। वर्षा वर्ष मे केवल ४ महीने होती है। खरीफ की फसल वर्षा पर ही निर्भर करती है लेकिन रबी की फसल के लिये उचित सिचाई के साधनो की आवश्यकता होती है अन्यथा दुभिक्ष पड़ने का डर रहता है।

सिचाई की आवश्यकता :—
१. वर्षा की अनिश्चितता।
२. अधिक पानी की आवश्यकता।
३. अधिक फसलें।
४. बजर भूमि का प्रयोग।

(२) कुछ फसलों को अधिक पानी की आवश्यकता .—कुछ फसलो के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है जैसे गन्ना, चावल आदि। कुछ फसलों को ठीक समय पर पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है। जैसे गेहूं तथा कपास। अतः कुछ फसलो को अधिक पानी की आवश्यकता एव कुछ फसलों को निश्चित समय पर पर्याप्त पानी की आवश्यकता केवल सिचाई के साधनों के विकास द्वारा पूरी हो सकती है।

(३) अधिक फसलें —सिचाई के विकास से दो या तीन फसलें तक पैदा हो सकती हैं। अब गर्मी के मौसम मे यदि वर्षा न हो तो सिचाई की सुविधा द्वारा गन्ना व कपास भी बोई जा सकती है।

(४) बंजर भूमि का प्रयोग :—सिचाई के साधनो के विकास से बजर भूमि पर भी कृषि सम्भव हो सकी है जिसके द्वारा कृषि उत्पादन मे वृद्धि हो सकती है, बजर भूमि को उपजाऊ बनाने मे नहरों का प्रमुख हाथ रहा है।

अतः उपलिखित विवरण से स्पष्ट है कि सिंचाई के साधनो का देश के आर्थिक जीवन में विशेष महत्व है। इसके विकास द्वारा कृषि मे पानी की आवश्यकता की पूर्ति होगी तथा वर्षा की अनिश्चितता का भय भी समाप्त होगा। इसलिए देश मे सिचाई के साधनो का विकास होना अति आवश्यक है।

सिचाई के साधन :—सिचाई के प्रमुख साधन तीन हैं—(१) कुए (२) तालाब एवं (३) नहरें। अब हम प्रत्येक के विषय मे विस्तार से देखेंगे।

(१) कुए :—सिचाई के दृष्टिकोण से कुए दो प्रकार के होते हैं। (१) कच्चे कुए एव (२) पक्के कुए।

भारतवर्ष मे कच्चे कुए बहुत अधिक मिलते हैं परन्तु इनका प्रयोग गंगा, यमुना के बेसिन में, मध्य प्रान्त, राजस्थान और बिहार मे अधिक होता है।

क्योंकि पक्के कुओं के निर्माण में धन का व्यय अधिक होता है। इसलिए अधिकतर गावों में कच्चे कुएं ही मिलते हैं परन्तु अब सरकार ने **ट्यूब वैल** बनवाने शुरू कर दिये हैं जो कि बिजली की सहायता से पानी फेंकते हैं। *'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन में प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने ट्यूब वैल के* विकास पर जोर दिया है। इस समय उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक ट्यूब वैल हैं जिनकी संख्या ४,७०० है। प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में भी इसके विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था। सरकार भविष्य में भी इसके विकास के लिए योजनायें बना रही है।

(२) **तालाब** —दक्षिणी भारत में सिंचाई तालाबों द्वारा की जाती है। तालाबों में पानी वर्षा ऋतु में भर जाता है और इसका प्रयोग अन्य ऋतुओं में सिंचाई के लिए *किया जाता है। परन्तु गर्मी में अधिकांश ये* तालाब सूख जाते हैं। सबसे अधिक तालाब मद्रास प्रान्त में पाये जाते हैं। वैसे तालाबों का प्रयोग दक्षिणी राजस्थान, मध्य भारत, मैसूर, मद्रास, उदयपुर राज्य में भी होता है। तालाबों के द्वारा लगभग ४० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(३) **नहरें** :—भारत में नहरों द्वारा सिंचाई का ढंग भी प्राचीन है। नहरें दो प्रकार की होती हैं —(१) सदा बहने वाली तथा (२) बरसाती नहरें। *सदा बहने वाली नहरें वे नहरें हैं जिनमें वर्ष भर पानी रहता है। ऐसी नहरें* उत्तर प्रदेश सिन्ध एवं पंजाब में अधिक हैं और इन नहरों के द्वारा लगभग ५ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। दूसरी बरसाती नहरें वे नहरें हैं जिनमें या तो बाढ़ का या बरसात का पानी बहता है और शेष महीनों में वे सूख जाती हैं। इस प्रकार इन नहरों से वर्ष भर सिंचाई नहीं की जा सकती है। इस प्रकार की नहरें दक्षिणी पठार एवं मध्य प्रान्त में पाई जाती हैं। भारतीय नहरों में कुल ८० करोड़ रुपये से अधिक की पूंजी लगी हुई है। भारतीय सरकार देश में नहरों के विकास पर अधिक महत्व दे रही है और आशा है कि भविष्य में नहरों के विकास हो जाने पर भारत में सिंचाई की समस्या हल हो जायेगी तथा कृषि उत्पादन में अधिक सहायता मिलेगी।

प्रश्न ७५—भारत में विभिन्न यातायात के साधनों का वर्णन कीजियेगा।

(Describe the various means of transport in India.)

उत्तर :—

भारत मे व्यापार दो प्रकार से होता है। (१) आन्तरिक व्यापार तथा (२) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार। इस कारण से दोनों ही प्रकार के व्यापारों के विकास के लिए सभी प्रकार के यातायात के साधनो का विकास होना आवश्यक है। आजकल भारत मे निम्नलिखित यातायात के साधन प्रयोग में आते हैं :—

(१) रेल मार्ग (२) सडकें (३) जलमार्ग। (४) वायुमार्ग। अब हम प्रत्येक के विषय मे विस्तार से वर्णन करेंगे।

रेल मार्ग :—भारत मे सबसे पहले रेले १८५३ मे बिछाई गई। इनकी शुरुआत कलकत्ता तथा बम्बई के बंदरगाहो से हुई। सन् १९१५ तक लगभग रेलें सारे देश मे फैल गईं और आज हम देखते हैं कि देश मे रेलों का जाल सा बिछा हुआ है। भारत की सबसे बडी रेल ईस्ट इण्डिया रेलवे है। अब इसका नाम बदल कर नोरदर्न रेलवे हो गया है। दूसरी लम्बी रेलवे ग्रेट इन्डियन पेनिनशुला रेलवे है। इसका नाम भी बदल कर सैन्ट्रल रेलवे हो गया है। तीसरी मुख्य रेलवे बम्बई बडौदा एण्ड सैन्ट्रल रेलवे है जो दो प्रकार की है—(१) छोटी लाइन तथा (२) बडी लाइन। इस रेलवे का नाम भी बदल कर ईस्टर्न रेलवे हो गया है। इन रेलो के अतिरिक्त छोटी-छोटी रेलो का भारत मे जाल सा बिछा हुआ है।

सडकें :—भारत में सडकें दो प्रकार की हैं। (१) कच्ची तथा (२) पक्की। प्राचीन भारत में अधिकाश व्यापार कच्ची सडको से होता था लेकिन आज पक्की सडको की सख्या दिन पर दिन बढती जा रही है। भारत मे लगभग २ लाख ५० हजार मील लम्बी सडकें हैं जिनमे ४०% पक्की है और शेष कच्ची है। पचवर्षीय योजनाओं मे पक्की सडको के निर्माण पर महत्व दिया जा रहा है। भारत की मुख्य पक्की सडक ग्राड ट्रक रोड है। अन्य मुख्य सडक ग्रेट डेक्टन रोड, बम्बई आगरा रोड और मद्रास बम्बई रोड आदि हैं। सरकार को पक्की सडको की मरम्मत तथा विस्तार के लिए हमेशा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

जलमार्ग :—प्राचीन समय से नदियो से भी व्यापार होता आया है। भारत मे उत्तरी भाग की नदिया सदा बहने वाली होने के कारण व्यापार के योग्य है। इसलिए कलकत्ता, पटना और इलाहाबाद का अधिकांश व्यापार अब भी नदियो द्वारा होता है। वैसे हमारे देश मे नदियो का व्यापारिक महत्व अधिक नहीं है। भारत मे नदियो की कुल लम्बाई लगभग ४२००

मील है। तटीय व्यापार मे भी भारत ने कोई विशेष उन्नति नहीं की है क्योंकि विदेशी व्यापार सारा अंग्रेजों के द्वारा होता था और उसका शासन भी उन्हीं के हाथों में था। लेकिन अब स्वतन्त्रता के बाद भारत इस ओर प्रगति कर रहा है तथा जहाज के ठीक करने, बनाने आदि की शिक्षा का प्रबन्ध भारत में ही हो रहा है। अब भारतीय जहाज लगभग सभी देश के बन्दरगाहों को जाते हैं तथा भारत का लगभग ७०% विदेशी व्यापार इन्ही बन्दरगाहों द्वारा होता है।

वायु मार्ग :— इस मार्ग का प्रयोग युद्ध काल से शुरू हुआ। युद्ध के बाद जहाज आवागमन के साधन बन गये। भारत में प्रमुख वायुयान कम्पनी टाटा एयरवेज है। जिसका नाम अब एअर इन्डिया कर दिया गया है। भारत की अन्य कम्पनियों मे इन्डियन नेशनल एअरवेज, भारत एअरवेज डेकन एअर-वेज, इन्डियन ओवरसीज, एअर लाइन्स, एअरवेज इन्डिया आदि मुख्य हैं। इन कम्पनियों के भारत मे हवाई अड्डे फैले हुए हैं इन कम्पनियों का कार्य यात्री का लाना ले जाना, डाक भेजना और व्यापार करना है। अब भारतीय सरकार वायुमार्ग के विकास की ओर प्रयत्नशील है।

देश के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि सरकार यातायात के सभी साधनों के विकास पर ध्यान दें। यातायात के साधनो के विकास मे कृषि, औद्योगिक एव व्यापारिक सभी प्रकार की उन्नति होगी।

प्रश्न ७६—भारत में रेलों से (अ) दस्तकारी (आ) खेती तथा (इ) बड़े उद्योग धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(What are the economic effects of the Railways in India on (a) Indian handicrafts (b) Agriculture & (c) Long Scale Industries ?)

उत्तर :—

यातायात के साधनों के विकास का फल अच्छा ही होता है। लेकिन इससे हानि भी हो जाती है जबकि विकास बिना सोचे समझे किया जाता है। हमारे देश में रेलों का विकास अंग्रेजी व्यापार को बढाने की दृष्टि से किया गया था। उस समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया था कि इसका भारतीय आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इस कारण से भारत में रेलों के विकास से अधिक लाभ नहीं हुआ। अब हम रेलों के विकास का भारतीय दस्तकारी, कृषि एव बडे उद्योग धन्धों पर प्रभाव विस्तार में देखेंगे।

रेल एवं दस्तकारी :—भारतीय दस्तकारी अपनी कला-कौशल एव सुन्दरता के लिए विदेशों मे प्रसिद्ध थी लेकिन इंगलैंड की औद्योगिक क्रांति के बाद जब वस्तु मशीनो की सहायता से सस्ती बनने लगी तो वह भारत में भी आयी और उस समय की सरकार ने इनके बाजार को बढ़ाने के लिए जगह-जगह पर रेलें खुलवाई जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी सस्ती वस्तुयें बाजार मे बिकने लगीं तथा भारतीय दस्तकारी को स्पर्धा में पीछे हटना पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलो के विकास से दस्तकारी को अधिक हानि हुई।

रेल एव खेती :—रेल के विकास का प्रभाव खेती पर भी पड़ा। जब दस्तकारी समाप्त होने लगी तो व्यक्तियो ने खेती करना शुरू कर दिया। जिससे खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये तथा खेती की उन्नति में परेशानी हुई। दूसरे आने जाने की सुविधा हो जाने से गाव के श्रमिक शहरों मे आने लगे जिससे कृषि कार्य मे श्रमिको की कमी होने लगी। रेलों के विकास से भारतीय खेती स्थानीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गई लेकिन खेती का ढग वही पुराना रहा। भारतीय कृषि मे मशीनो का प्रयोग नहीं बढ़ा जिस कारण से विदेशों की तुलना मे भारतीय कृषि अविकसित दशा मे ही रही है।

रेलों के विकास के साथ भारतीय कृषि को लाभ भी हुआ। रेलो के विकास के कारण ही भारत से जूट, कपास, तिलहन, चाय आदि वस्तुयें विदेशों को जाने लगीं और जिनके बदले मे भारत ने विदेशो से आवश्यक सामान खरीदा। रेलो के विकास के कारण ही कृषि मे विशिष्टीकरण पैदा हुआ जैसे बंगाल मे जूट, आसाम मे चाय, दक्षिणी भारत म कपास आदि। जिससे इनके उत्पादन मे अधिक वृद्धि हुई। आजकल रेलो के द्वारा ही कृषि कार्य के लिए बीज, खाद, मशीनें आदि भेजी जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलों के विकास से खेती को जहां हानिया हुई वहा लाभ भी हुए हैं।

रेल एवं उद्योग धन्धे :—उद्योग धन्धो को रेलो के विकास से अधिक लाभ हुआ है। रेलो की सहायता से ही औद्योगिक क्षेत्र मे श्रम, कोयला एव कच्चा माल पहुँचाया जाता है। इससे उनके विकास में बहुत सहायता मिली है। रेलो की सहायता से ही पक्का माल दूर दूर के बाजारो में भेजा जाता है जिससे उत्पत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

परन्तु हमारे देश में रेलो का विकास कुछ स्थानो पर केन्द्रित था जैसे कलकत्ता, बम्बई आदि। जिस कारण से ऐसे स्थानों पर अत्यधिक श्रम की समस्या पैदा हुई।

इस प्रकार उपलिखित विवरण से स्पष्ट है कि रेलो के विकास से भारत को लाभ व हानियाँ दोनो हुई। हानियां केवल इस कारण से हुई कि रेलों के विकास के पीछे अंग्रेजी शासन की स्वार्थ सिद्धि पूरी करने की इच्छा छिपी हुई थी। अब भारतीय सरकार रेलो का विकास देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर कर रही है और आशा है कि रेलो के विकास से भारतीय कृषि एव लघु एव बडे उद्योग धन्धों सभी को विकास का अवसर प्राप्त होगा।

अध्याय ३६

व्यवस्था

प्रश्न ७७—'व्यवस्था' का अर्थ समझाइये तथा व्यवस्था के मुख्य कार्यो का वर्णन करिये। क्या व्यवस्थापक एक श्रमिक है ?

(Define 'Organisation' and explain the various functions of organiser. Is an organizer is equal to a Labourer ?)

उत्तर :—

"व्यवस्था का अर्थ" :—'व्यवस्था' उत्पत्ति के साधनों में से एक महत्वपूर्ण साधन है और यह कहना अनुचित न होगा कि आज के युग मे उत्पादन की सफलता अधिकांश कुशल व्यवस्थापक पर निर्भर होती है। **व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पत्ति के सभी साधनों को उचित मात्रा मे एकत्रित करके उत्पादन कार्य को क्रियाशील करने का कार्य आता है।** प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है और यह तभी सम्भव है जबकि उत्पादन व्यय कम हो तथा उत्पादन भी अधिक मात्रा मे हो रहा है। उसकी माग भी बाजार मे दिन प्रति दिन बढ रही हो। इसी कारण से व्यवस्थापक अपना ध्यान हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति की ओर रखता है। बड़े पैमाने की उत्पत्ति एव श्रम विभाजन के कारण व्यवस्थापक के कार्य की महत्ता और भी अधिक बढ गई है।

व्यवस्थापक के मुख्य कार्य —उत्पत्ति कार्य मे व्यवस्थापक का विशेष

महत्व है। उत्पादन कार्य की सफलता व्यवस्थापक की कार्य कुशलता पर ही निर्भर है। उत्पादन कार्य मे व्यवस्थापक निम्न मुख्य कार्य करना है —

व्यवस्थापक के कार्य —
१ उद्योग एवं स्थान का चुनाव।
२ उत्पत्ति के विभिन्न साधनो की व्यवस्था करना।
३ प्रतिस्थान के नियम का पालन।
४ अनुसन्धान की व्यवस्था।
५ विज्ञापन की व्यवस्था।
६ बाजार की व्यवस्था।

(१) उद्योग एवं स्थान का चुनाव :—किसी विशेष उद्योग एव उस उद्योग के लिए किसी विशेष स्थान का चुनाव करना व्यवस्थापक का प्रमुख कार्य होता है। इस प्रकार के चुनाव के लिए व्यवस्थापक म अनुभव एव दूरदर्शिता के गुणों का होना परम आवश्यक है क्योंकि यदि उद्योग एव स्थान का चुनाव ही ठीक नही होगा तो फिर उद्योग की सफलता की कोई आशा नही रहती है। उद्योग के चुनाव मे व्यवस्थापक इस ओर ध्यान देता है कि उस वस्तु के उत्पादन का देश एव विदेश मे बाजार है तथा उसके लिये सभी सुविधायें मिल सकती या नही और वस्तु टिकाऊ है या नही। क्योंकि यदि माग कम हो जाय तो वस्तु का stock किया जा सकता है या नही। इन सब बातो का ध्यान व्यवस्थापक किसी विशेष उद्योग के छाटने मे रखता है। इसी प्रकार स्थान के चुनाव के प्रश्न पर वह जलवायु कच्चे माल की प्राप्ति, श्रमिकों की सुविधा, बाजार की समीपता, यातायात एव सवादवाहन की सुविधा आदि बातो को ध्यान म रखकर स्थान का चुनाव करता है।

इस प्रकार व्यवस्थापक का उद्योग एव स्थान के चुनाव करने का काय बहुत ही महत्वपूर्ण है।

(२) उत्पत्ति के विभिन्न साधनो की व्यवस्था करना —व्यवस्थापक का कार्य उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को एकत्रित करके उनको उचित अनुपात म उत्पादन कार्य मे लगाना है। उद्योग के लिये उचित भूमि का प्रबन्ध करना, कच्चे माल को खरीदना, कुशल एव अकुशल श्रमिकों की व्यवस्था करना, उचित ब्याज पर पूजीपतियो से पूजी उधार लेना, उद्योग से सम्बन्धित यन्त्रो को खरीदना, शक्ति के साधनो की व्यवस्था करना साहसी का उत्पादन मे रुचि पैदा करना आदि अनेक सभी कार्य अकेले

व्यवस्थापक को करने पड़ते हैं। व्यवस्थापक को श्रमिकों की व्यवस्था करने बड़ी योग्यता से कार्य करना पड़ता है। वह उनको उनकी योग्यता तथा कार्यकुशलता के अनुसार कार्य करने को देता है तथा श्रम विभाजन के सिद्धान्त का वह पूर्ण रूप से पालन करता है। इस प्रकार व्यवस्थापक का उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की व्यवस्था करने का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण है।

(३) उत्पादन कार्य में प्रतिस्थापन के नियम का पालन करना — व्यवस्थापक का यह भी कार्य होता है कि वह उत्पादन कार्य में प्रतिस्थापन के नियम का अच्छी तरह से पालन करे जिससे वस्तु का उत्पादन व्यय कम हो तथा उत्पादन में समय भी कम लगे और अच्छी किस्म का उत्पादन हो सके। इसके लिये वह प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की सीमान्त इकाई की उत्पादनशीलता की तुलना करता है। यदि श्रम की सीमान्त इकाई की उत्पादनशीलता पूंजी की सीमान्त इकाई से कम है तो व्यवस्थापक यह प्रयत्न करेगा कि कुछ श्रमिकों के स्थान पर उत्पादन कार्य में नई मशीनों का प्रयोग हो जिससे व्यय तथा समय की बचत हो सकेगी। इस प्रकार एक उत्पादन के साधन का दूसरे उत्पादन के साधनों से प्रतिस्थापन सम्भव है। व्यवस्थापक का उद्देश्य इस नियम के पालन करने में यह होता है कि कुल उत्पादनशीलता अधिकतम है तथा कुशल व्यवस्थापक ही इस नियम तथा उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो पाते हैं।

(४) उत्पादन कार्य में अनुसन्धान की व्यवस्था करना —व्यवस्थापक को उत्पादन कार्य में अनुसन्धान की भी व्यवस्था करनी होती है जिससे वस्तु विशेष का आकार, गुण आदि में यथायोग्य परिवर्तन किये जा सकें। उपभोक्ताओं की मांग उस वस्तु के लिए बढ़ सके। व्यवस्थापक को समय के फैशन, रुचि आदि पर विशेष ध्यान देना होता है। उसी के अनुसार उत्पादन कार्य करता है अन्यथा वह इस प्रतियोगिता के काल में अपनी वस्तु के उत्पादन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी कारण से हम देखते हैं कि बड़ों के उत्पादक डिजाइन के लिए अपने-अपने कारखानों में एक अनुसन्धान शाला रखते हैं जिससे वह बाजार में अनेक प्रकार का सामान भेज सकें।

(५) वस्तु की अधिक मांग के लिए विज्ञापन की व्यवस्था करना — आज उत्पादन व्यवस्था में विज्ञापन की व्यवस्था करना भी अत्यन्त आवश्यक है। विज्ञापन के द्वारा ही उपभोक्ता को वस्तु विशेष का ज्ञान कराया जाता है

तथा उसे खरीदने के लिए उत्साहित किया जाता है। इसलिए व्यवस्थापक को विज्ञापन कला मे भी कुशल होना चाहिये। उसे विज्ञापन के विभिन्न साधनों का उचित प्रयोग करना चाहिये। विज्ञापन के विभिन्न साधनों में रेडियो, सिनेमा, समाचार पत्र, एजेन्ट आदि साधन आते हैं। यह देखा जाता है कि वास्तविक जीवन मे बहुत सी वस्तुओ का बाजार केवल विज्ञापन के आधार पर ही स्थापित हो जाता है। जैसे स्याही, दवाईयां, साबुन, सिगरेट आदि। इस कारण विज्ञापन पर उचित ध्यान देना भी० व्यवस्थापक का प्रमुख कर्तव्य हो जाता है।

(६) वस्तु की बिक्री के लिए बाजार की व्यवस्था करना :— व्यवस्थापक का कार्य केवल वस्तु के उत्पादन करने तक ही सीमित नहीं रह जाता वरन उसका यह भी कार्य होता है कि वह वस्तु की बिक्री के लिए बाजार की व्यवस्था भी करे। वास्तव मे व्यवस्थापक वस्तु का उत्पादन, उस वस्तु की अनुमानित माग के आधार पर करता है। वह यह भी सोच कर चलता है कि वस्तु को कहां बेचा जायेगा फिर भी वह हमेशा नये बाजार की खोज में रहता जिससे उस वस्तु की खपत अधिक से अधिक हो सके। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यवस्थापक को उत्पादन के साथ-साथ बाजार की भी व्यवस्था करनी होती है।

क्या व्यवस्थापक एक श्रमिक है ? —अब यह प्रश्न उठता है कि क्या व्यवस्थापक एक श्रमिक है ? कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि व्यवस्थापक भी एक श्रमिक की भाति अपना श्रम बेचता है। इस कारण से उसे एक श्रमिक ही समझना चाहिये। लेकिन जब हम उसके अनेक कार्यों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि उसका कार्य एक साधारण श्रमिक से भिन्न होता है तथा उसके ऊपर उत्पादन एव बिक्री का सारा भार होता है। उत्पादन की सफलता और असफलता उसी की कुशलता पर निर्भर है। ऐसी दशा में आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है कि व्यवस्थापक को उत्पत्ति का एक पृथक साधन मानना ही उचित होगा।

अध्याय ३७

श्रम विभाजन

प्रश्न ७८—श्रम विभाजन क्या है ? इसके लाभों तथा हानियो की विवेचना कीजिये ।

(What is Division of Labour ? Discuss its advantages and disadvantages)

उत्तर :—

श्रम विभाजन का अर्थ —

आदि काल में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की समस्त वस्तुओं को स्वय उत्पन्न करता था। बाद में ज्ञान और सभ्यता की वृद्धि के साथ मनुष्यो की आवश्यकतायें और अधिक बढ़ गईं और यह असम्भव हो गया है कि एक व्यक्ति अपनी समस्त आवश्यक वस्तुयें स्वय उत्पन्न कर सकें। अब यह आवश्यक समझा गया कि प्रत्येक व्यक्ति वही वस्तु उत्पन्न करे जिसे उत्पन्न करने मे वह विशेष निपुण है। इस प्रकार कोई लुहार बना कोई बढ़ई, कोई कृषक इत्यादि इत्यादि। बाद म मनुष्य ने यह सोचा कि एक कार्य से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं को यदि अलग व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों द्वारा किया जाय तो उत्पादन और अधिक और कम लागत पर हो सकता है। काम को इस प्रकार बांट कर करने की क्रिया को ही श्रम विभाजन कहते हैं। अत **किसी एक कार्य को कई भागों अथवा उपविभागों मे विभाजित करके प्रत्येक भाग अथवा उपविभाग का अलग अलग व्यक्तियों द्वारा उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार किये जाने की क्रिया को अर्थशास्त्र मे श्रम विभाजन कहते हैं।**

श्रम विभाजन के प्रकार (Kinds of Division of Labour) —

(१) पेशेवर श्रम विभाजन (Occupational Division of Labour)

(२) पूर्ण क्रिया श्रम विभाजन (Division of Labour into complete processes)

(३) अपूर्ण क्रिया श्रम विभाजन (Division of Labour into incomplete processes)

(४) प्रादेशिक श्रम विभाजन (Territorial Division of Labour)

(१) **पेशेवर श्रम विभाजन** —इस प्रकार के श्रम विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति सब कार्यों के करने के बजाय अपनी रुचि, योग्यता, सुविधा और परिस्थिति के अनुसार किसी एक व्यवसाय को चुन लेता है। जैसे कोई खेती करता है, कोई बढ़ई है, कोई मोची है तो कोई अध्यापक का काम करता है। भारत में वर्ण व्यवस्था इसी प्रकार के श्रम विभाजन का रूप था।

(२) **पूर्ण क्रिया श्रम विभाजन** —इसके अन्तर्गत एक पेशे को कई विभागों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक विभाग पृथक व्यक्तियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति समूह एक कार्य के एक भाग को करता है, जो कि स्वतः एक पूर्ण क्रिया होती है। जैसे कपड़ा बुनने का काम अब कई व्यक्ति करते हैं। किसान कपास उगाता है, एक व्यक्ति कपास ओटता है, दूसरा उसे धुनता है, तीसरा रुई कातता है और चौथा कपड़ा बुनता है।

(३) **अपूर्ण क्रिया श्रम विभाजन** —इसके अन्तर्गत एक पूर्ण क्रिया को कई छोटी २ अपूर्ण क्रियाओं में बाट दिया जाता है। मशीनों के प्रयोग से इस प्रकार का श्रम विभाजन बहुत ही सूक्ष्म हो गया है। प्रत्येक उप क्रिया अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा की जाती है। अमेरिका में जूतों के कारखानों में जूते बनाने का काम कोई ८० उप क्रियाओं में विभाजित है।

(४) **प्रादेशिक श्रम विभाजन** —कुछ प्रदेश कुछ विशेष अनुकूल परिस्थितियों-वश किसी वस्तु की उत्पत्ति के लिये उपयुक्त होते हैं। वहाँ केवल वही वस्तु उत्पन्न की जाती है जैसे आसाम में चाय, बगाल में जूट, यू० पी० और बिहार में गन्ना। इसको प्रादेशिक श्रम विभाजन या उद्योगों का स्थानीयकरण कहते हैं।

श्रम-विभाजन से लाभ (Advantages of Division of Labour) –

(१) **योग्यतानुसार काम मिलना** —प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता व रुचि के अनुसार कार्य दिया जा सकता है। जो कार्य अधिक शारीरिक परिश्रम चाहते हैं उन्हें बलिष्ट व्यक्तियों को देते हैं, जो काम मानसिक शक्ति का प्रयोग चाहते हैं उन्हें बुद्धिमान व्यक्तियों को दिया जाता है। योग्यतानुसार कार्य मिलने पर, हर व्यक्ति अपना काम जी लगा कर करता है।

(२) **निपुणता पर वृद्धि :—** निरन्तर एक कार्य के किसी उपविभाग

को करते २ एक समय पश्चात श्रमिक अपने काम में विशेष दक्षता प्राप्त कर लेता है उसे उस कार्य के करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

श्रम विभाजन से लाभ —

१ योग्यतानुसार कार्य मिलना।
२ निपुणता में वृद्धि।
३ मशीनों का अधिक उपयोग।
४ शारीरिक श्रम में कमी।
५ आविष्कारों की संख्या में वृद्धि।
६ समय की बचत।
७ पूजी की बचत।
८ वस्तु की किस्म में सुधार।
९ काय सीखने के समय में बचत।
१० धन्धों का भेद मिटाना व गतिशीलता में वृद्धि।
११ स्त्री बच्चों का काय।
१२ उत्पत्ति में वृद्धि।
१३ लागत में कमी।
१४ श्रमिकों में सहयोग की भावना।

(३) **मशीनों का अधिक उपयोग** —एक कार्य को बहुत सी छोटी छोटी क्रियाओं में बांटने से मशीनों का प्रयोग सम्भव हो जाता है। हो सकता है कि पूरे काम को एक मशीन न कर सके परन्तु उसके कुछ भागों को मशीनों द्वारा किया जा सकता है।

(४) **शारीरिक श्रम में कमी** —श्रम विभाजन ने मशीनों का प्रयोग सम्भव बना दिया है। मशीनें भारी कामों को पूरा कर देती हैं इस प्रकार श्रमिक को बहुत ही कम शारीरिक श्रम करना पड़ता है।

(५) **आविष्कारों की संख्या में वृद्धि** —जब श्रमिक सदैव एक ही मशीन पर काम करता है तो उस उसको सूक्ष्म रूप से निरन्तर देखने का अवसर मिलता है। वह उसको उन्नत बनाने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार आविष्कारों की संख्या में वृद्धि होती है।

(६) **समय की बचत** —श्रम विभाजन में एक श्रमिक एक ही काम में लगा रहता है। अत उसे एक जगह से दूसरी स्थान जाने या औजारों को बदलने इत्यादि में समय नष्ट नहीं करना पड़ता। अत समय की बचत हो जाती है।

(७) **पूजी की बचत** —जब एक व्यक्ति स्वय ही पूरे काम को करता है तो वह एक या दो औजारों को ही एक समय में प्रयोग करता है बाकी औजार बेकार रखे रहते हैं। परन्तु यदि कई व्यक्ति मिलकर उस काय को

कर तो सारे औजार एक साथ प्रयोग मे आ सकते हैं वे एक जोड़ी औजारों से भी काम कर सकते हैं इस प्रकार औजारों की आवश्यकता कम होती है और औजारों का पूर्ण उपयोग भी हो जाता है।

(८) **वस्तु की किस्म मे सुधार** —जब एक वस्तु के विभिन्न भाग विशिष्ट प्रकार की मशीनो और निपुण कारीगरो द्वारा बनाये जाते हैं तो निश्चित ही उत्पादित वस्तु होती है।

(९) **काम सीखने के समय मे बचत** —श्रम विभाजन के अन्तगत श्रमिक पूरे काम को न करके काय के एक भाग को करता है। इसलिये उस उत्पत्ति के काम का केवल एक भाग ही सीखना पडता है अत काम सीखने के समय म और व्यय म बचत हो जाती है।

(१०) **धधों का भेद मिटना और गतिशीलता मे वृद्धि** —जब उत्पत्ति को बहुत सी सूक्ष्म क्रियाओ मे बाँट दिया जाता है तो प्रत्येक व्यवसाय की कुछ क्रियाय एक सी हो जाती हैं। अत श्रमिक को एक पेशे को छोड़ कर दूसरे पेशे को अपना लेना सरल हो जाता है। इस प्रकार श्रम की गतिशीलता में वृद्धि होती है।

(११) **स्त्री बच्चो आदि को काम** —श्रम विभाजन में एक काय का कितनी ही उपक्रियाओ म बांट दिया जाता है। कठिन और भारी कामो को तो पुरुष कर लेते हैं और हलका काम श्रमिका की स्त्रियां और बच्चे कर लेते हैं।

(१२) **उत्पत्ति मे वृद्धि** —श्रम विभाग द्वारा मशीनो के प्रयोग तथा प्रत्येक मजदूर को अपनी योग्यतानुसार काम मिलने से कुल उत्पादन मे वृद्धि हो जाती है।

(१३) **लागत मे कमी** —श्रम विभाजन के कारण थोडी पूजी के पूर्ण उपयोग से कम समय मे बहुत अधिक उत्पादन होता है। अत प्रति व्यक्ति लागत कम हो जाती है।

(१४) **श्रमिकों मे सहयोग की भावना** —श्रम विभाग बिना सहयोग के नही हो सकता। एक काम को बहुत से मजदूर एक जगह मिलकर करते हैं। उनमे सहयोग व भाई चारे की भावना आ जाती है। वे मजदूर सघ (Trade Union) बना लेते है और सामूहिक रूप से अपनी दशा सुधारने के लिये प्रयत्न करते हैं।

श्रम विभाजन की हानियां (*Disadvantages of Division of Labour*) —

(१) **नीरसता तथा अरुचि** :—निरन्तर एक ही कार्य को करते रहने से श्रमिक का काम से मन ऊब जाता है, उसकी उसमें कोई रुचि नहीं रहती है। श्रमिक एक मशीन के समान हो जाता है।

(२) **बुद्धि का सकुचित विकास** —एक व्यक्ति जो अपने सारे जीवन काल में कुछ सादे काम ही करता रहता है, उसको अपनी बुद्धि पर जोर डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह और कोई काम नहीं सीख सकता, इसलिये उसकी बुद्धि का विकास सकुचित ही रह जाता है।

श्रम विभाजन से हानियाँ —

१ नीरसता तथा अरुचि।
२ बुद्धि का सकुचित—विकास।
३ उत्तरदायित्व का ह्रास।
४ स्त्री व बच्चों से कार्य लेना।
५ बेरोजगारी का भय।
६ श्रमिकों व मिल मालिकों में कम सम्पर्क।
७ औद्योगिक नगरों की हानियाँ

(३) **उत्तरदायित्व का ह्रास** - बहुत से श्रमिक मिलकर एक वस्तु का निर्माण करते हैं। यदि वस्तु खराब हो जाय तो यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कार्य किसके कारण खराब हुआ है।

(४) **स्त्री व बच्चों से काम लेना** —श्रम विभाजन के कारण ही कारखानों में स्त्रियों और बच्चों को काम मिलता है। कारखानों में काम करने से उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। देश की भावी सतान दुर्बल हो जाती है।

(५) **बेरोजगारी का भय व गतिशीलता में कमी** —जो श्रमिक केवल एक ही काम को जानता है। वह उस काम से अलग हो जाने पर अन्य किसी कार्य को नहीं कर सकता। अत श्रमिकों को बेरोजगारी का भय लगा रहता है। इसी कारण उसकी गतिशीलता भी कम हो जाती है।

(६) **श्रमिकों और मिल मालिकों में सम्पर्क कम** —श्रम विभाजन के कारण हजारों व्यक्ति एक जगह काम करते हैं। उनमें और मालिक में व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं रहता। इसके कारण हड़ताल और तालेबदी प्राय हो जाया करती हैं।

(७) **औद्योगिक नगरों की हानियाँ** —श्रम विभाजन के फलस्वरूप उत्पत्ति का पैमाना बड़ा हो जाता है, हजारों की सख्या में मजदूर शहरों में आकर बस जाते हैं। जब इन स्थानों की जनसंख्या बढ़ जाती है तो मजदूरों

को रहने के लिये साफ, व हवादार मकान व मनोरंजन की सुविधायें आदि नही मिल पातीं। चिमनियो के धुयें उनके स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं। अत मजदूरो की कार्यक्षमता भी कम हो जाती है।

प्रश्न ७९—श्रम विभाजन के लाभ हानियो का विवेचन कीजिए। इसकी क्या सीमायें हैं ?

(Discuss the advantages and disadvantages of *division* of Labour. What are its limitation ?)

उत्तर :—

प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न ७८ का उत्तर पढिये।

श्रम विभाग की सीमायें (Limitations of Divison of Labour)

प्रोफेसर मार्शल के अनुसार श्रम विभाजन की दो निम्न सीमायें हैं —

(१) बाजार का विस्तार (Extent of the market) :—जिस वस्तु का बाजार विस्तृत होता है अर्थात जिस वस्तु की मांग अधिक होगी, उसी वस्तु का उत्पादन बडे पैमाने पर किया जाता है और उसी वस्तु की उत्पत्ति में श्रम—विभाजन काम आ सकता है। जितना अधिक बाजार का विस्तार बढता जाता है उतना ही अधिक और सूक्ष्म श्रम-विभाजन किया जा सकता है। सकुचित बाजार वाली वस्तुओ के निर्माण मे श्रम विभाजन का प्रश्न ही नही उठता जैसे गाव के बढई का काम।

(२) व्यवसाय का स्वभाव (Nature of occupation) :—श्रम विभाजन की मात्रा व्यवसाय के स्वभाव पर निर्भर करती है। श्रम विभाग उन व्यवसायों में सम्भव है जहा समस्त क्रियायें व उप-क्रियायें साथ २ चल सकती हो। जूते बनाने के कारखाने में सब उप-क्रियायें साथ साथ चल सकती हैं, परन्तु लेखक व न्यायाधीश के कार्य का विभाजन नही हो सकता। इसी प्रकार खेती में हल चलाने के पश्चात ही बीज बोते है। यह दोनों क्रियाये साथ साथ नही चल सकती है।

अध्याय ३८

उद्योग धन्धों का स्थानीयकरण

प्रश्न ८०—उद्योगों के स्थानीयकरण से क्या अर्थ है ? इसके कारणों, लाभों तथा हानियों का वर्णन कीजिये।

(What is meant by Localisation of Industries ? Discuss its causes, advantages and disadvantages)

उत्तर :—

स्थानीयकरण का अर्थ :—किसी स्थान विशेष में कुछ विशेष सुविधाओं के कारण किसी उद्योग के सब कारखाने या भिन्न-भिन्न उद्योगों के एकत्रित हो जाने की प्रवृत्ति को उद्योगो का स्थानीयकरण कहते हैं, जैसे बम्बई में सूती वस्त्र व्यवसाय, यू० पी० व बिहार में चीनी व्यवसाय, कलकत्ता में जूट व्यवसाय, अलीगढ़ में ताले, मेरठ में कैंची, चाकू व खुर्जा में चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के व्यवसाय केन्द्रित हैं। **उद्योगो के स्थानीयकरण को भौगोलिक श्रम विभाजन भी कहते हैं।** क्योंकि जिस प्रकार श्रम विभाग में कुछ मनुष्य किसी विशेष व्यवसाय या उसके किसी भाग को करने वाले हो जाते हैं उसी प्रकार कुछ स्थान किसी व्यवसाय के मुख्य उत्पादन केन्द्र बन जाते हैं।

स्थानीयकरण के कारण (Causes of Localisation) :—

> **स्थानीयकरण के कारण —**
>
> १ कच्चे माल की प्राप्ति।
> २. शक्ति की प्राप्ति।
> ३ जलवायु।
> ४. कुशल श्रमिको की प्राप्ति।
> ५ बाजार की निकटता।
> ६ यातायात की सुविधा।
> ७ उद्योग का पूर्वारम्भ।
> ८ राजनैतिक कारण।
> ९ अन्य कारण।

(१) कच्चे माल का मिलना (Availability of Raw Materials)—उद्योगों के स्थानीयकरण में यह एक महत्वपूर्ण कारण है। जहां जिस उद्योग से सम्बन्धित कच्चा माल पाया जाता है, वे उद्योग उसी स्थान पर खुलने लगते हैं। इससे उनके यातायात व्यय में कमी हो जाती है और अच्छी किस्म का माल पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। बगाल में जूट के, बम्बई मे सूत के और उत्तर प्रदेश व बिहार मे चीनी के कारखाने इसी कारण केन्द्रित हैं।

(२) शक्ति का मिलना (Availability of Power).—कारखानों को चलाने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। अतः जहां शक्ति के साधन उपलब्ध होते हैं उद्योग धंधे वहीं खुलने लगते हैं। टाटानगर का लोहे का कारखाना कोयले की खानों के पास केन्द्रित है। इसी प्रकार सूती मिलों का बम्बई प्रदेश में केन्द्रियकरण, जल विद्युत की उपलब्धता के कारण भी है।

(३) जलवायु (Climate) :—कुछ उद्योग ऐसे हैं जो विशेष प्रकार की जलवायु चाहते हैं। उदाहरणार्थ कपड़ा व्यवसाय के लिये नम जलवायु चाहिये, ऊन वस्त्र व्यवसाय के लिये सूखी जलवायु चाहिए। इसीलिये सूती वस्त्र व्यवसाय नम जलवायु के कारण बम्बई मे और ऊन व्यवसाय सूखी जलवायु के कारण पंजाब मे केन्द्रित है।

(४) कुशल श्रमिकों का मिलना (Availability of skilled Labour):—जिस स्थान पर किसी उद्योग के लिये आवश्यक कुशल श्रमिक पर्याप्त मात्रा मे मिल जाते हैं, वह उद्योग वहीं केन्द्रित हो जाता है। फिरोजाबाद मे काँच का उद्योग व खुर्जा मे चीनी मिट्टी के बर्तनों के उद्योग इसी कारण केन्द्रित हैं।

(५) बाजार की निकटता (Nearness to Market) :—उत्पादन बाजार के लिये किया जाता है। यदि वस्तु का बाजार दूर है तो यातायात व्यय बहुत हो जायेगा और वस्तु की लागत बढ़ जायेगी। बाजार दूर होने पर उत्पादनकर्ता उपभोक्ताओं की रुचि, स्वभाव व फैशन का अध्ययन भी नही कर पाते हैं। अतः उद्योग बाजारों के निकट ही खुलने लगते हैं। कानपुर, मोदीनगर, दिल्ली मे सूती मिल खुलने का यही कारण है।

(६) यातायात की सुविधायें (Transportation facilities) :—बाजारों की दूरी की समस्या यातायात द्वारा हल की जा सकती है। यातायात सस्ती व पर्याप्त मिलने पर कच्चा माल मगाने और तैयार माल बाजारों मे भेजने में काफी बचत हो जाती है। इसी कारण समस्त औद्योगिक केन्द्र यातायात के भी प्रमुख केन्द्र है जैसे बम्बई, कानपुरर, दिल्ली, कलकत्ता आदि।

(७) उद्योग का पूर्वारम्भ (Momentum of early Part) :—कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी स्थान पर सयोगवश ही कोई उद्योग स्थापित कर दिया जाता है। कालान्तर मे वहाँ उस उद्योग सम्बन्धी इतनी सुविधायें एकत्रित हो जाती हैं कि नये साहसी भी अपने कारखानो को वहीं खोलने लगते हैं।

(८) राजनैतिक कारण (Political factor) —जिन स्थानों मे राजा या सरकार द्वारा किसी उद्योग तथा कला को संरक्षण तथा प्रोत्साहन प्राप्त होता है, वहा उस उद्योग का स्थानीयकरण स्वाभाविक है।

(९) इनके अतिरिक्त सस्ती भूमि, साफ पानी का मिलना, बैंकों व बीमा कम्पनियो का होना आदि भी उद्योगो के स्थानीयकरण को प्रभावित करते हैं।

स्थानीयकरण के लाभ (Advantages of Localisation) :—

उद्योगो के स्थानीयकरण के निम्न मुख्य लाभ हैं :—

स्थानीयकरण से लाभ :—
१. कुशलता की वृद्धि।
२ कुशल श्रमिको का बाजार।
३ ख्याति।
४ अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग।
५ पूरक उद्योगो का विकास।
६ व्यापारिक यन्त्रो का विकास।
७ साहसियो मे सहयोग।

हानियाँ :—
१. निपुणता का सीमित विकास।
२ आर्थिक सकट का भय।
३ युद्ध कालीन भय।
४. औद्योगिक केन्द्रों के दोष।

(१) कुशलता की वृद्धि :— स्थानीयकरण होने से उस स्थान के श्रमिक उस धधे मे निपुण हो जाते हैं क्योकि उनको बार बार एक ही श्रम करना पडता है। एक बार कुशलता प्राप्त कर लेने से वह पैतृक हो जाती है और पिता से पुत्र को स्वय ही प्राप्त हो जाती है।

(२) कुशल श्रमिकों का बाजार :—स्थानीयकरण होने से वहाँ के श्रमिकों की उस व्यवस्था विशेष मे कार्यकुशलता बढ़ जाती है। अब यदि कोई नया साहसी किसी अन्य स्थान पर उस व्यवसाय को स्थापित करना चाहे तो वह आवश्यक श्रमिक माँग को ऐसे स्थानों से ही पूरा करेगा। काँच के सामान का कारखाना अन्यत्र खोलने के लिये, साहसी को फिरोजाबाद से श्रमिक बुलाने पड़ेंगे।

(३) ख्याति —एक स्थान पर किसी धंधे के स्थानीयकरण हो जाने से वह स्थान उस वस्तु के लिये प्रसिद्ध हो जाता है। वहाँ की बनी हुई वस्तुयें

केवल उस स्थान के नाम से ही बिक जाती है जैसे मेरठ की कैंचिया, फिरोजाबाद की चूड़ियाँ आदि।

(४) **अवशिष्ठ पदार्थों का उपयोग** :—प्रत्येक उद्योग मे मुख्य वस्तु बनाने मे कुछ निरर्थक पदार्थ (waste product) बच रहता है। यदि कारखाने अलग २ स्थानों पर हो तो इसको यों ही फैंक दिया जाता है। क्योंकि बेकार पदार्थ की मात्रा कम होने के कारण उसका कोई आर्थिक उपयोग नहीं हो सकता। परन्तु बहुत से कारखाने एक ही स्थान पर होने से निरर्थक पदार्थ का सामूहिक उपयोग करने के लिये एक कारखाना स्थापित किया जा सकता है। जैसे चीनी मिलों के पास शीरे से शराब व अल्कोहल बनाने के कारखाने लोहे के कारखाने के पास सीमेंट बनाने के कारखाने आदि।

(५) **पूरक उद्योगों का विकास** —जिन स्थानो पर उद्योगो का स्थानीयकरण हो जाता है वहा कुछ ऐसे भी उद्योग खुल जाते हैं। जिनम श्रमिकों की स्त्री व बच्चो को काम मिल जाता है जिससे मजदूरों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती है।

(६) **व्यापारिक यन्त्रों का विकास** :—जहा उद्योग धन्धों का स्थानीयकरण हो जाता है वहा बैंक, बीमा कम्पनियाँ, डाकखाने, तारघर, टैलीफोन, यातायात, पूजी व बाजार आदि सुविधाओं की भी उन्नति हो जाती है।

(७) **साहसियों मे सहयोग** :—जब एक ही स्थान पर एक वस्तु के बहुत से उत्पादनकर्ता होते हैं तो उनमे मिलजुल कर कार्य करने की भावना बलवती हो जाती है। वे सामूहिक विज्ञापन करते हैं अपना संघ बनाकर सामूहिक रूप से कच्चा माल खरीदते हैं, व तैयार माल बेचते हैं, व वैज्ञानिक शोध व अनुसधान कराते हैं। अलग-अलग रह कर, उत्पादनकर्ताओं को ये लाभ प्राप्त नहीं हो सकते।

स्थानीयकरण की हानियां (Disadvantages of Localisation)

(१) **निपुणता का सीमित विकास** :—स्थानीयकरण के फलस्वरूप श्रमिकों की कुशलता केवल एक ही व्यवसाय तक सीमित रह जाती है। वे अन्य कार्यों से अपरिचित रहते हैं। इसलिये वे किसी दूसरे स्थान या उद्योग धधो में कार्य करने के अयोग्य होते हैं।

(२) **आर्थिक संकट का भय** :—स्थानीयकरण हो जाने से, उस स्थान के श्रमिक केवल एक ही उद्योग पर निर्भर रहते हैं। यदि वह उद्योग

सकट मे पड जाये तो वहा के निवासियो को बडा आर्थिक सकट भोगना पडता है। माँग कम हो जाने पर या कच्चा माल न मिलने आदि पर कारखाने बन्द होने लगते हैं, मजदूर बेकार हो जाते हैं और उन्हे दूसरा काम नहीं मिल पाता।

(३) **युद्ध कालीन भय** —युद्धकाल मे शत्रु सदा ही यह प्रयत्न करता है कि वह देश के उद्योगो को नष्ट करदे। इसलिये वह औद्योगिक केन्द्रो पर बम गिरा कर उनको नष्ट कर देता है। यदि उद्योग से सम्बन्धित कारखाने समस्त देशो मे फैले हो तो एक दो कारखानो के नष्ट होने से देश को कोई विशेष हानि नही होती।

(४) **औद्योगिक केन्द्रो के दोष :** —उन स्थानो म जहाँ बहुत से उद्योग केन्द्रित हो जाते हैं, अनेको आर्थिक, सामाजिक व भौतिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। आबादी अधिक हो जाने के कारण, मजदूरो को न रहने के लिये साफ व हवादार मकान ही मिल पाते हैं, और न खेलने के लिये खुले मैदान पार्क, आदि। कारखानो का शोर गुल व धुआ बडा ही हानिप्रद प्रभाव करता है। इसलिये मजदूरो का स्वास्थ्य गिर जाता है, उनमे शराब पीना, वैश्या-वृति, जुआ खेलना आदि की कुटेवें पड जाती हैं।

प्रश्न ८१—आधुनिक समय मे उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण की प्रवृति के मुख्य कारण बताइये।

(Explain the factors which are responsible for decentralisation of industries in modern times)

उत्तर—

आधुनिक समय में स्थानीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रीयकरण की प्रवृति दिखाई पडती है। विकेन्द्रीयकरण का अर्थ अर्थशास्त्र मे उद्योग धधो के एक स्थान पर एकत्रित न होने से वरन समस्त क्षेत्र बिखरे होने से है जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास हो सके। अब हम यह देखेंगे कि आधुनिक युग मे इस विकेन्द्रीयकरण की प्रवृति के मुख्य कारण क्या हैं ?

विकेन्द्रीयकरण की प्रवृति के मुख्य कारण —विकेन्द्रीयकरण की प्रवृति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं —

(१) **सुरक्षा की दृष्टि से विकेन्द्रीयकरण का पक्ष** —ऐसा देखा गया है कि युद्धकाल मे यदि किसी उद्योग के स्थानीयकरण के स्थान पर बम्ब वर्षा हो गई तो उत्पादन तथा देश की अर्थ व्यवस्था को काफी परेशानी

का सामना करना पड़ता है। ऐसी परेशानी से बचने के लिए अब उद्योगों को देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित किया जाता है। इस प्रकार से सुरक्षा की दृष्टि से विकेन्द्रीयकरण की नीति उचित है।

विकेन्द्रीयकरण के कारण :—

१ सुरक्षा।
२. आर्थिक विकास।
३ स्थानीयकरण के दोषों का अन्त।
४ स्थानीयकरण के स्थान पर नये उद्योगों की स्थापना में अधिक व्यय।
५. विद्युत शक्ति का—विकास।
६. यातायात के साधनों का विकास।
७ बैंकिंग एवं बीमा सुविधायें।

(२) सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था का आर्थिक विकास :—देश के सभी क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए तथा देश में धन के समान वितरण के लिए भी विकेन्द्रीयकरण की नीति को प्रोत्साहन मिला है। इसी कारण से आज प्रत्येक देश की सरकार ने उद्योगों के क्षेत्रवर्ती वितरण (**Regional Distribution of Industries**) की नीति का पालन किया है, वास्तव में इस प्रकार की नीति से देश के विभिन्न भागों में श्रमिकों को रोजगार मिल जाता है तथा देश की गरीबी कम होती है।

(३) स्थानीयकरण के दोषों से बचने के लिए :—विकेन्द्रीयकरण की नीति स्थानीयकरण के दोषों से बचने के लिए भी अपनाई गई है क्योंकि स्थानीयकरण के कारण श्रमिकों को मकान, अच्छे वातावरण आदि का अभाव रहता था जिससे उनके स्वास्थ्य एवं नैतिक उन्नति का विकास नहीं हो पाता था। लेकिन विकेन्द्रीयकरण कर देने से श्रमिकों को यह सब सुविधायें प्राप्त हो सकती है। तथा वे अपना स्वास्थ्य एवं नैतिकता की उन्नति भी कर सकते हैं।

(४) स्थानीयकरण के स्थान पर नये उद्योग स्थापित करना और अधिक व्यय का कार्य :—ऐसा भी पाया गया है कि जिन स्थानों पर उद्योगों का स्थानीयकरण है वहा यदि कोई नया कारखाना खोला जाय तो कारखाने के स्थापित करने का व्यय अधिक होता है क्योंकि इन स्थानों पर भूमि के दाम बढ़ जाते हैं। वस्तुओं के दाम अधिक होने के कारण श्रमिक वेतन अधिक मागते हैं तथा स्थानीय संस्थाओं के कर भी अधिक होते है। इस कारण से यदि वही कारखाना और किसी स्थान पर स्थापित किया जाय

तो स्थापित करने का व्यय कम होगा। इस विचारधारा के आधार पर भी विकेन्द्रीयकरण की नीति अपनाई जाती है।

(५) **विद्युत शक्ति का विकास** —स्थानीयकरण का प्रमुख कारण यह था कि उद्योग धन्धों को उन स्थानों पर स्थापित किया जाता था जहां पर कि शक्ति के साधन 'कोयला' आसानी से प्राप्त हो सके। क्योंकि यदि कोई कारखाना कोयला बाहर से मंगाये तो यातायात व्यय अधिक होता था लेकिन अब विद्युत शक्ति के विकास के कारण यह समस्या नहीं रही है, विद्युत कम व्यय पर आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाई जा सकती है और इसी कारण से विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

(६) **यातायात एवं सवादवाहनो के साधनो का विकास** —प्राचीन समय में कोई उद्योग उस स्थान पर स्थापित होता था जहां कि यातायात एवं सम्वादवाहनों के साधन मौजूद हों जिससे कच्चा माल एवं उत्पादित वस्तु के लाने-लेजाने में बाधा न हो लेकिन आज यह समस्या नहीं रही है। आज हर स्थान पर यातायात एवं सम्वादवाहनों के साधनों का विकास हो रहा है जिससे विकेन्द्रीयकरण की नीति को काफी सहयोग प्राप्त हुआ है।

(७) **बैंकिंग एवं बीमा सम्बन्धी सुविधाओं का विकास** :—आज के समय में बैंकिंग एवं बीमा सम्बन्धी सुविधायें देश के प्रत्येक क्षेत्र में फैल रही हैं जिससे उद्योगों को अधिक सहायता मिली है। इसी कारण से विकेन्द्रीयकरण की नीति अधिक सफल हो रही है।

इस प्रकार उपलिखित कारण से आज प्रत्येक देश की सरकार विकेन्द्रीयकरण की नीति का पालन कर रही है तथा स्थानीयकरण की प्राचीन प्रणाली को कम कर रही है।

अध्याय ३९

उत्पादन का पैमाना

प्रश्न ८२—बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लाभ तथा हानियों को समझाइये। उत्पत्ति का पैमाना किस सीमा तक बढ़ाया जा सकता है?

(Explain the advantages and disadvantages of Large scale Production What are the limitations of the scale of Production ?)

उत्तर :—

किसी वस्तु की उत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है—(१) छोटी मात्रा मे व (२) बड़ी मात्रा मे। जब किसी व्यवसाय मे उत्पत्ति के साधनो को थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे जुटा कर उत्पत्ति की जाती है तब इसको छोटे पैमाने की उत्पत्ति कहते हैं। इसके विपरीत जब उत्पत्ति के साधनो को बहुत बड़ी मात्रा मे एकत्रित करके उत्पत्ति की जाती है तब इसे बड़े पैमाने की उत्पत्ति कहते हैं। गाव का जुलाहा छोटे पैमाने की उत्पत्ति करता है क्योंकि उसको थोडी सी पूजी, थोड़े से श्रमिक व अन्य वस्तुओ की आवश्यकता होती है। आधुनिक चीनी मिल म बड़े पैमाने की उत्पत्ति होती है क्योकि यह बड़ी मात्रा मे भूमि, श्रम व पूँजी का प्रयोग करती है। करोडो रुपये विनियोग करके, हजारो श्रमिको द्वारा, कुशल मैनेजरो के नियत्रण म बडी पूरी जोखिम लेकर चीनी का उत्पादन किया जाता है।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लाभ (Advantages of Large-scale Production) —

बड़े पैमाने की उत्पत्ति के फलस्वरूप प्रति इकाई वस्तु की लागत कम हो जाती है क्योंकि इस ढग से उत्पादन करने वालो को निम्न दो प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं :—

(१) बाह्य बचतें (External economies)
(२) आंतरिक बचतें (Internal economies)

बाह्य बचते (External economies) —बाह्य बचतें किसी उद्योग विशेष को ही नहीं बल्कि समस्त उद्योगो को समान रूप मे प्राप्त होती है। औद्योगिक केन्द्रो मे यातायात व सदेशवाहन के साधनो के विकास, बीमा कम्पनी व बैंकों की स्थापना, विज्ञापन की सुविधायें व उद्योगो के स्थानीयकरण के अन्य लाभो आदि के कारण, उत्पादन व्यय मे कुछ बचत हो जाती है। जो कि छोटे और बडे सभी उत्पादको को समान रूप से प्राप्त होती हैं। ये बचतें उद्योग के आंतरिक सगठन से सम्बन्धित न होने क कारण ही बाह्य बचतें कहलाती हैं।

आंतरिक बचतें (Internal Economies) —किसी उत्पादन इकाई को उसके आंतरिक सगठन की श्रेष्ठता के कारण जो बचतें होती हैं उन्हे

'आंतरिक बचतें' कहते है। बड़े पैमाने के उत्पादकों को छोटे उत्पादकों की अपेक्षा अधिक आतरिक बचत प्राप्त होती है। इन बचतों को हम तीन भागों में बाट सकते हैं —

(१) प्रारम्भिक व्ययों मे बचत।
(२) निर्माण व्यय मे बचत।
(३) बिक्री व्यय मे बचत।

(१) प्रारम्भिक व्ययो मे बचत :—उत्पादन कार्य प्रारम्भ करने के लिए व्यवस्थापक को भूमि, कच्चा माल, यंत्र, औजार, इमारतें तथा ईंधन आदि की आवश्यकता होती है। बड़े पैमाने का उत्पादनकर्ता इन चीजों को बड़ी मात्रा में खरीदता है। अतः इन्हें थोक भावों पर प्राप्त किया जा सकता है। यातायात ऐजेंसियाँ भी बडी मात्रा मे सामान ढोने के लिये किराये मे छूट कर देती हैं।

(२) निर्माण व्यय मे बचत :—

(i) इंजन व्यय की बचत —बड़े कारखानों में भारी-भारी मशीनों को चलाने के लिये चालक शक्ति की आवश्यकता होती है। जितनी ही अधिक शक्ति उत्पन्न की जाती है उतनी ही कम उसकी लागत पडती है क्योंकि बड़े इंजनों मे इंधन, स्थान व इन्जीनियरों का व्यय अनुपात से कम बढता है।

(ii) निर्माण शाला के व्ययों मे बचत —बड़े पैमाने की उत्पत्ति मे नई २ मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है। अति सूक्ष्म श्रम विभाजन करके उसके समस्त लाभों को उठाया जा सकता है, मशीनों की मरम्मत के लिये निज का वर्कशाप भी खोला जा सकता है जिससे मशीनों की मरम्मत मे समय और धन दोनों की बचत हो जाती है।

(iii) अनुसंधान व सुधार आदि की सुविधा —बड़े उत्पादनकर्ता उत्पादन-विधियों मे सुधार व नई २ मशीनों के आविष्कार हेतु अनुसधान पर काफी पैसा व्यय कर सकते हैं। वे श्रेष्ठ मशीनों व आधुनिक उत्पादन प्रणालियों का प्रयोग करके अपनी लागत कम कर लेते हैं।

(iv) अवशिष्ट पदार्थ का उपयोग :—छोटे उत्पादक कारखाने के निरर्थक पदार्थ (Waste Products) को बहुधा फेंक देते है क्योंकि यह इतना थोड़ा होता है कि इसका कोई आर्थिक उपयोग (Economic use) नही हो सकता। परन्तु बड़े उत्पादक उसका उपयोग करके, बहुत बचत कर लेते हैं।

(४) **आफिस व्यय मे बचत** :—जिस अनुपात मे उत्पादन बढाया जाता है उसी अनुपात मे आफिस के क्लर्कों की सख्या व अन्य आवश्यक सामान की मात्रा नहीं बढानी पडती। बहुत काम होने पर जोडने, घटाने व गुणा, भाग आदि करने के लिये मशीनो का प्रयोग किया जा सकता है।

(३) **वस्तु विक्रय में बचत** —

(i) **यातायात व्यय मे बचत** :—बड़े पैमाने के उत्पादनकर्ता को बहुत वडी मात्रा मे तैयार माल दूर-दूर तक मडियो मे अपने ग्राहको व ऐजेंटो को भेजना पडता है। अधिक सामान को यातायात कम्पनिया रियायती किरायो पर ले जाती हैं। उत्पादनकर्ता स्वय भी यातायात की व्यवस्था अपने हाथ मे लेकर, यातायात व्यय मे बचत कर लेते हैं।

(ii) **विज्ञापन व ऐजेन्टों की नियुक्ति आदि के व्यय में बचत** :—बडे पैमाने की उत्पत्ति के अन्तर्गत प्रति वस्तु विज्ञापन लागत बहुत कम पडती है परन्तु छोटी उत्पत्ति मे यह काफी अधिक होती है। बडे उत्पादक अपने ऐजेंटो की नियुक्ति करके, बिक्री व्यय मे बचत कर लेते हैं।

(iii) **पैंकिंग व्यय मे बचत** —बडा उत्पादक अपना पृथक पैंकिग विभाग खोलकर, थोक भावो पर पैकिंग सामिग्री खरीदकर, पैकिग विशेषज्ञो की नियुक्ति करके व पैकिग मशीनो का प्रयोग करके, पैंकिग व्यय मे बचत कर लेता है।

बढे पैमाने की उत्पत्ति की हानिया (Disadvantages of Large-scale Production) —

(i) **छोटे उत्पादको का विनाश** —बडी मात्रा के उत्पादक बाह्य व आतरिक बचतो के कारण सस्ता माल बेच सकते हैं इसलिये छोटे पैमाने के व्यवसायी जिनकी लागत अधिक होती है इनकी स्पर्धा मे नहीं ठहर सकते। धीरे-धीरे बाजार मे केवल कुछ बडे उत्पादक रह जाते हैं जो ट्रस्ट या कार्टल बनाकर बाजार के ऊपर एकाधिकार प्राप्त कर लेते हैं इससे उपभोक्ताओं के शोषण का भय बना रहता है।

(ii) **अति उत्पत्ति (Over Production) का डर** :—बडे पैमाने की उत्पत्ति मे उत्पादन माग का पूर्व अनुमान (**inanticipation of demand**) करके किया जाता है। यदि उत्पत्ति माग से अधिक हो जाय तो उत्पादको को हानि रहती है, कभी-कभी उद्योग बन्द भी हो जाते हैं और श्रमिको मे बेरोजगारी फैलने का डर रहता है।

(iii) **वर्ग संघर्ष** :—बडे पैमाने की उत्पत्ति के अन्तर्गत हजारो श्रमिक

एक ही स्थान पर कार्य करते हैं। स्वामी और सेवक में सीधा सम्बन्ध नहीं रहता। दोनों वर्ग एक दूसरे के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाते। अत आय दिन हड़ताल व ताले बन्दी की घटनायें होती रहती हैं।

(iv) धन का असमान वितरण :—ज्यों-ज्यों बड़े पैमाने पर उत्पत्ति करने वाले कल-कारखाने खुलते हैं, छोटे उत्पादनकर्ता समाप्त होते जाते हैं, धन कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है। धनी और धनी निर्धन और निर्धन होते जाते हैं।

(v) युद्धों की सभावना —बड़ी मात्रा की उत्पत्ति को देश म ही नही बल्कि विदेशी बाजारों में बेचा जाता । देशों मे आपस में प्रतियोगिता होने लगती है और कभी कभी इस प्रयत्न मे युद्ध तक हो जाया करते हैं।

(vi) हस्तकला की हानि —मशीनों द्वारा बने सामान के सामने हाथ के कारीगर की वस्तुयें नहीं टिक पाती हैं। वे अपना काम बन्द करके कारखानों में श्रमिकों के रूप मे काम करने को बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार देश में हस्तकला-कौशल की हानि होती है।

(vii) श्रम-विभाजन की हानियां —बड़े पैमाने की उत्पत्ति श्रम-विभाजन द्वारा ही सम्भव है। श्रम-विभाजन की समस्त हानियां बड़े पैमाने की उत्पत्ति के साथ पैदा हो जाती हैं।

बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सीमायें (Limitations of Large-scale Production) :—

बड़े पैमाने की उत्पत्ति एक सीमा तक ही हो सकती है, इससे अधिक मात्रा मे उत्पादन होने पर व्यवसाय मे प्रति वस्तु लागत घटने के स्थान पर बढ़ने लगती है। नीचे हम बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सीमाओं का उल्लेख करते हैं —

(१) बाजार का विस्तार (Extent of the market) :—किसी वस्तु की उत्पत्ति का पैमाना बाजार पर निर्भर है। जिस वस्तु का बाजार बिस्तृत होता है। उसकी माग भी अधिक होती है अत वे बड़ी मात्रा में उत्पन्न की जाती हैं जैसे मोटरें, साईकिल इत्यादि। इसके विपरीत जिस वस्तु का बाजार सकुचित है, उस वस्तु का उत्पादन छोटे पैमाने पर ही किया जायगा जैसे गांधी टोपियां।

(२) व्यवसाय का स्वभाव :—कुछ व्यवसाय बड़े पैमाने पर चलाये नही जा सकते हैं जिन व्यवसायों मे उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि का ख्याल रखना पड़ता है जैसे कपड़े सीने का व्यवसाय, अथवा वे व्यवसाय जो

कलात्मक वस्तुओं का निर्माण करते हैं जैसे चित्र बनाना, कालीन बुनना आदि छोटे ही पैमाने पर चलाये जाते हैं।

(२) **व्यवस्थापक की योग्यता** —प्रत्येक मैनेजर की व्यवस्था सम्बन्धी योग्यता सीमित होती है। ज्यों ज्यों उत्पत्ति का पैमाना बढ़ता जाता है त्यों २ व्यवसाय की समस्यायें अधिक और जटिल होती जाती हैं, उसी अनुपात में प्रबन्धक का उत्तरदायित्व बढ़ता जाता है। यदि वह इतने बड़े व्यवसाय की पूर्णतया देखभाल नहीं कर सकता तो व्यापार में हानि होने लगेगी। इसलिये व्यवसाय को उस सीमा से आगे नहीं बढ़ाया जायेगा जिससे आगे कि व्यवस्थापक उसका प्रबन्ध न कर सके।

प्रश्न ८३—उन कारणों का वर्णन कीजिये जो बड़े पैमाने की उत्पत्ति के मुकाबले मे छोटे पैमाने की उत्पत्ति को जीवित रखने मे सहायक होते हैं।

(Explain the causes which help the small scale production to exit in competition to the Large scale production now-a-days)

उत्तर .—

मशीनों का आविष्कार और उसके प्रयोग से श्रम विभाजन एव विशिष्टीकरण की प्रणाली से बड़े पैमाने की उत्पत्ति को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला है। इसी कारण से आज प्रत्येक देश में बड़े पैमाने की उत्पत्ति को बढ़ावा दिया जा रहा है। बड़े पैमाने की उत्पत्ति से उत्पादक को उत्पादन की आतरिक एव बाह्य बचत तथा अन्य प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं जिससे उत्पादक को उत्पादन बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलता है। इन बड़े पैमाने के उत्पादन के सामने छोटे पैमाने के उद्योगो को अत्यधिक स्पर्धा का सामना करना पड़ता है। फिर भी प्रत्येक देश म छोटे पैमाने के उद्योग का आर्थिक जीवन मे महत्व आज भी समाप्त नहीं हुआ है। इसके मुख्य कारण निम्न हैं :—

(१) **छोटे पैमाने का उत्पादन अधिक मितव्ययितापूर्वक** किया जाता है। छोटे पैमाने के उत्पादन मे अधिक वेतन पाने वाले व्यक्ति नहीं होते हैं। उत्पादन माग को ध्यान मे रख कर किया जाता है। नियन्त्रण एव उत्पादन किया बहुत आसान होती है। इसी कारण से छोटे पैमाने के उद्योगो का जोखिम भी कम हो जाता है।

(२) छोटे पैमाने के उत्पादन के लिए **थोडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता** होती है जो कि आसानी से एकत्रित की जा सकती है। परन्तु दूसरी ओर बडे पैमाने के उत्पादन के लिए अधिक मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है। इसलिए जो उत्पादक अधिक पूजी का प्रबन्ध नही कर सकते वे छोटे पैमाने के उद्योग को ही स्थापित करते हैं।

(३) कुछ **वस्तुओ की मांग स्थानीय, अस्थिर एवं सीमित** होती है। उस दशा म बडे पैमाने का उत्पादन सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता और छोटे पैमाने के उत्पादन को कार्य मे सफलता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार वस्तु के माग के स्वभाव के कारण भी कभी कभी छोटे पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है।

(४) कुछ वस्तुओ के उत्पादन मे **उपभोक्ता की रुचि** अधिक महत्व-पूर्ण होती है। जैसे दर्जी का कार्य, कढाई बुनाई का कार्य, हीरे मोती का कार्य, आभूषण का कार्य इत्यादि। ये कार्य उत्पादक की हस्तकला से सम्बन्धित होते हैं। इस कारण से इन कार्यों मे बडे पैमाने का उत्पादन सफलता प्राप्त नही कर सकता है। इसलिए ये कार्य प्राय छोटे पैमाने पर किये जाते हैं।

(५) कुछ छोटे पैमाने के उद्योग आज भी इसी कारण चल रहे हैं क्योंकि वे **पैतृक व्यवसाय** हैं जिनको व आसानी से छोडना नही चाहते हैं चाहे उससे होने वाले लाभ की मात्रा कम ही क्यो न हो।

(६) प्राय. छोटे पैमाने का उत्पादन घर पर ही किया जाता है जिससे **परिवार के सदस्यो का सहयोग** प्राप्त हो जाता है। बाहर के श्रमिको को रखने की आवश्यकता कम हो जाती है जिससे उत्पादन व्यय कम हो जाता है।

(७) वैज्ञानिक उन्नति के कारण अब छोटे पैमाने के उत्पादन मे भी **मशीनो का प्रयोग** होने लगा है जिस कारण से वे बडे पैमाने के उद्योग के सामने अपना उत्पादन करने मे सफल हो सकते हैं।

(८) **जल विद्युत शक्ति के विकास** से भी छोटे पैमाने के उद्योगो को काफी प्रोत्साहन मिला है क्योंकि विद्युत आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाई जा सकती है।

(९) **सहकारिता के प्रचार** के कारण भी छोटे पैमाने के उद्योगो को अधिक सहायता मिली है और वे सहकारिता के आधार पर बडे पैमाने के उत्पादन से प्राप्त होने वाले लाभो को प्राप्त कर सकते हैं तथा उत्पादन कार्य म आने वाली समस्याओ का सामना आसानी से कर सकते हैं।

(१०) छोटे पैमाने के उत्पादन को सरकार भी प्रोत्साहन दे रही है क्योंकि इसके विकास से देश मे बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या का हल आसानी से हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपलिखित कारणों से अब भी छोटे पैमाने की उत्पत्ति बड़े पैमाने की उत्पत्ति के सामने जीवित है तथा यदि सरकार का सहयोग रहा तो छोटे पैमाने की उत्पत्ति ही प्रत्येक देश में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या के हल करने का एक मात्र साधन होगा।

अध्याय ४०

उत्पादन की बचतें

प्रश्न ८४—उत्पादन की बचतें क्या हैं ? ये प्रति इकाई वस्तु की लागत किस भांति कम कर देती हैं ?

(What are the economies of Production ? How do they reduce the cost per unit of a commodity ?)

उत्तर —

उत्पादन की बचत दो प्रकार की होती हैं —

(१) वाह्य बचतें (External economies)

(२) आंतरिक बचतें (Internal economies)

इनके उत्तर के लिये प्रश्न ८२ का उत्तर पढ़िये।

उपरोक्त बचतों के कारण कुल उत्पादन की लागत कम हो जाती है और इसलिये प्रति इकाई वस्तु की लागत कम होती है। यही कारण है कि एक जुलाहा एक मिल की अपेक्षा महगा कपड़ा बेचता है।

अध्याय ४१

उत्पत्ति के नियम

प्रश्न ८५—क्रमागत-उत्पत्ति ह्रास नियम की पूर्णतया व्याख्या कीजिये। इसकी सीमायें भी बताइये।

(Discuss fully the Law of Diminishing Returns and also give its limitations)

उत्तर :—

यह प्रत्येक किसान का अनुभव है कि यदि वह अपने खेत से अधिक उपज प्राप्त करने के लिये उस पर श्रम और पूंजी की मात्रा मे वृद्धि करता है तो उसकी कुल उपज तो बढ़ जाती है परन्तु अतिरिक्त श्रम और पूंजी की इकाईयो की सीमान्त उपज घट जाती है। दूसरे शब्दो मे **उसकी कुल उपज घटती हुई दर पर बढती है या अनुपात से कम दर पर बढ़ती है।** अर्थशास्त्र मे इस प्रवृति को क्रमश उत्पत्ति ह्रास नियम के नाम से पुकारते हैं। इस प्रवृति को प्रत्येक किसान जानता है, इसके ज्ञान से लाभ उठाता है यद्यपि वह अशिक्षित होने के कारण अपनी इस जानकारी को नियम के रूप मे व्यक्त नही कर सकता।

यदि श्रम और पूंजी की प्रत्येक अगली इकाई से बढती हुई उपज प्राप्त होती तो यह सम्भव था कि समस्त विश्व की अन्न की आवश्यकता को एक ही खेत से पूर्ण कर लिया जाता, परन्तु ऐसा नही होता क्योकि खेती म क्रमश: उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। यह नियम शी तो शीघ्र या देर म प्रत्येक व्यवसाय में लागू होता है, परन्तु इसका कृषि से विशेष सम्बन्ध है। मार्शल ने इस नियम की इस प्रकार व्याख्या की है **"यदि कृषि काल मे साथ ही साथ उन्नति न हो तो भूमि पर उपयोग की गई पूंजी और श्रम की मात्रा मे वृद्धि होने से, सामान्यतया, कुल उपज मे अनुपात से कम वृद्धि होती है।"** **(An increase in the capital and labour employed in the cultivation of land, causes in general, a less than proportionate increase in the amount of produce raised, unless it happens to coincide with an improvement in the art of agriculture)**

यह बात ध्यान रखनी चाहिये कि नियम की परिभाषा म 'कुल उपज' का अर्थ उपज की मात्रा से है न कि उपज के मूल्य से।

नियम क्यों लागू होता है :—घटती हुई सीमांत-उत्पत्ति के प्रकट होने का कारण यह है कि भूमि की उत्पादन-शक्ति सीमित है और उसका क्षय होता जाता है। जब किसी भूमि के टुकड़े पर श्रम और पूंजी की पहली इकाई लगाई जाती है तो यह भूमि की उत्पादन-शक्ति का कुछ अंश प्रयुक्त कर डालती है। पहली इकाई की अपेक्षा दूसरी इकाई को शोषण के लिये कम उत्पादन-शक्ति मिलती है, अतः दूसरी इकाई की उपज अधिक नहीं होती जितनी कि पहली इकाई की होती है। यह क्रम उत्तरोत्तर जारी रहता है और हर अगली इकाई से उत्पादन गिरता जाता है।

उदाहरण :—मान लीजिये कि एक खेत पर श्रम और पूंजी की पहली इकाई लगाकर सोहन किसान १० मन चना उत्पन्न करता है। क्योंकि प्रत्येक अगली इकाई के शोषण के लिए कम उर्वराशक्ति बचती जाती है, उसको दूसरी, तीसरी, व चौथी इकाईयों से ८, ५ व २ मन चना प्राप्त होता है। पांचवीं इकाई उसकी कुल उपज में कोई वृद्धि नहीं करती है। अतः अब वह और इकाईयों का प्रयोग नहीं करेगा। इस बात को निम्न तालिका द्वारा दिखाया गया है :—

श्रम व पूंजी की इकाई	कुल उपज (मनों में)	उपज प्रति इकाई (सीमान्त उपज) मनों में
१	१०	१०
२	१८	८
३	२३	५
४	२५	२
५	२५	०

ऊपर के उदाहरण को रेखाचित्र द्वारा भी दिखाया जा सकता है :—

अब रेखा क्रमशः उत्पत्ति ह्रास नियम की वक्र रेखा है। यह निरंतर अ क की ओर झुकती गई है जिससे यह प्रगट होता है कि प्रत्येक अगली इकाई की उपज कम होती गई है।
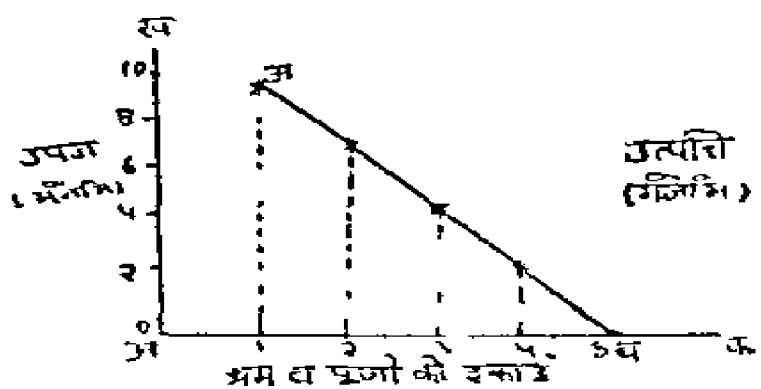
उत्पत्ति ह्रास नियम की सीमायें (Limitations of the Law of deminishing Returns) :—

इस नियम की मार्शल द्वारा दी गई परिभाषा में दो वाक्यांश बहुत ही महत्वपूर्ण हैं :—

(१) सामान्यत: और (२) यदि कृषि कला में साथ ही साथ उन्नति न हो। ये ही इस नियम की दो सीमायें हैं।

(१) **सामान्यत** —यह नियम तभी क्रियाशील होता है जबकि एक भूमि के टुकड़े की उत्पादन-शक्ति को पूर्णतया शोषित करने के लिये सामान्यत: जो श्रम और पूंजी की मात्रा आवश्यक है वह उस खेत पर लगाई जा चुकी है। यदि भूमि पर लगी श्रम और पूंजी की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम है जिसके कारण भूमि का पूर्ण उपभोग नही हो सकता तो यह नियम लागू नही होगा अर्थात श्रम और पूंजी की मात्रा म वृद्धि करने से प्रारम्भ मे बढ़ती हुई सीमात उपज प्राप्त होगी। परन्तु उत्पादन-शक्ति का पूर्ण उपयोग हो जाने के पश्चात अगली इकाईयों की सीमांत उपज घटने लगेगी।

(२) **यदि कृषि कला मे साथ ही साथ उन्नति न हो** :—यह नियम तभी लागू हो सकता है कि जब किसी प्रकार या विधि से अभी तक खेती की जा रही है उसमे परिवर्तन न हो यह अचलावस्था का नियम है और उन्नतिशील कृषि पर लागू नही होता। यदि श्रम और पूंजी की इकाईयों की वृद्धि के साथ आधुनिक ढंग से खेती की जाने लगे, उत्तम यन्त्रों और बीजों का प्रयोग किया जाय तो कुल उपज मे अनुपात से अधिक वृद्धि सम्भव है।

क्रमश उत्पत्ति ह्रास नियम को क्रमश लागत वृद्धि नियम (Law of Increasing cost) भी कहते हैं क्योंकि अधिक व्यय करके पहले से कम उत्पत्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न ८६—उपज के क्रमश: घटने का नियम क्या है ? इस नियम का क्षेत्र स्पष्ट कीजिये। उद्योग धन्धों पर यह नियम लागू क्यों नहीं होता ?

(What is the Law of Diminishing Returns ? State its scope Why is it not applecable to manufacturing indus-tries ?)

उत्तर—

प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न ८५ का उत्तर पढ़िये।

नियम का क्षेत्र (Scope of the Law)

क्रमश. उत्पत्ति ह्रास नियम विशेषकर कृषि पर लागू होता है परन्तु यह नियम अन्य उद्योगों पर भी लागू होता है जैसे खान खोदना, मछली पकड़ना इमारत बनाना, मिट्टी के बरतन बनाना व उद्योग धंधे इत्यादि ।

(१) **खान खोदना** —प्रारम्भ मे खान के कम गहरी होने के कारण, कम लागत पर अधिक खनिज पदार्थ निकलते हैं। परन्तु ज्यो-ज्यो श्रम और पूँजी का उपयोग बढता है वैसे ही वैसे और गहरा खोदना पड़ता है। गहरी खुदाई मे प्रकाश, शुद्ध वायु व धातु को ऊपर लाने के प्रबन्ध करने मे बहुत व्यय करना पडता है। अत जिस अनुपात मे श्रम और पूजी की इकाईयो पर व्यय होता है, धातु उस अनुपात से कम ही प्राप्त होती है।

(२) **मछली पकडना :**—यह एक साधारण अनुभव है कि प्रत्येक पकड (catch) के बाद तालाब, झील या नदी मे मछलियाँ कम हो जाती हैं और फलस्वरूप प्रत्येक अगली पकड उतनी सफल नही होती। कुछ लोगो का मत है कि समुद्री मछलिया इतनी तेजी से बढती हैं कि उन पर यह नियम लागू नही होता परन्तु यह बात नही है। अधिक मछलिया पकडने के लिये समुद्रो पर ज्यादा दूर जाना पडेगा और मछली पकडने का व्यय बढ़ जायेगा। अत यह नियम लागू हो जाता है।

(३) **इमारत बनाना** —मकानो की मांग को पूरा करन के लिये यदि एक मजिल के ऊपर मजिलें बनाई जाय तो प्रत्येक अगली मजिल बनाने मे व्यय अधिक होगा क्योकि सामान लाने ले जाने मे समय अधिक लगेगा और क्षति भी अधिक होगी। परन्तु चढने उतरने की कठिनाई के कारण ऊपर की मजिलो का किराया कम होता जाता है। अत खर्च की अपेक्षा किराया कम मिलता है और यह नियम लागू हो जाता है। यही बात शहर से दूर स्थानो मे मकान बनाने के सम्बन्ध मे सही है।

(४) **मिट्टी के बर्तन बनाना** —बर्तन बनान के लिये मिट्टी खोदकर प्राप्त की जाती है, जितने नीचे से मिट्टी खोदकर निकाली जाती है, उतनी ही लागत बढती जाती है। अतः व्यय की अपेक्षा उपज कम प्राप्त होती है।

(५) **उद्योग धन्धे** —कहा जाता है कि उद्योग धन्धो पर क्रमश उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नही होता परन्तु यह सही नही है। वहाँ यह देर से लागू होता है। जैसे ही इस नियम के लागू होने की प्रवृति दिखाई देती है, व्यवस्थापक अपनी योग्यता से साधनो के अनुपात को बदलकर नये आवि-

प्कारों का प्रयोग आदि कर इस नियम को कुछ दिन के लिये टाल देता है। जब कारखाने का विस्तार इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यवस्थापक उस पर नियन्त्रण न रख सके तो उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और यह नियम लागू हो जाता है।

प्रश्न ८७—क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम की व्याख्या कीजिये। क्या कारण है कि यह नियम पक्का माल बनाने वाले उद्योग धन्धों पर लागू होता है?

(State and explain the Law of Increasing Returns Why is it that the law applies to manufacturing industries ?)

उत्तर :—

श्रम और पूजी की मात्रा म वृद्धि करने से कुल उपज मे अनुपात से अधिक वृद्धि होने अथवा प्रत्येक इकाई की सीमांत उत्पत्ति बढने की प्रवृत्ति को क्रमश: उत्पत्ति वृद्धि नियम कहते हैं। यह नियम प्राय: उद्योग धन्धों और कारखानों में लागू होता है। अनुभव मे यह पता चला है कि यदि किसी कारखाने म श्रम और पूँजी की इकाईया बढायें, तब उत्तरोत्तर इकाई से सम्बन्धित उपज बढती चली जाती है। प्रोफेसर मार्शल (Marshall) ने इस नियम की इस प्रकार परिभाषा दी है—'**श्रम और पूंजी में वृद्धि करने से, सामान्यत अच्छी व्यवस्था हो जाती है जिसके फलस्वरूप श्रम और पूजी की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।**" **(An increase of labour and capital leads generally to improved organisation which increase the efficiency of the work of labour and capital)**

उदाहरण—निम्न तालिका मे एक कपडे की मिल का उत्पादन दिखाया गया है।

श्रम व पूजी की इकाई	कुल उत्पत्ति (गजों मे)	सीमान्त उत्पत्ति (गजों में)
१	२५०	२५०
२	६००	३५०
३	१०००	४००
४	१५००	५००
५	२२००	७००

अत. स्पष्ट है कि श्रम व पूंजी की मात्रा में वृद्धि करने से कुल उपज अनुपात से अधिक बढ रही है। प्रति इकाई सीमांत उत्पत्ति भी बढ़ रही

इस नियम को क्रमश लागत ह्रास नियम (Law of Diminishing cost) भी कहते हैं क्योंकि समान व्यय करने पर, उत्पादन प्रति इकाई अधिक होता है।

चित्र द्वारा निरूपण
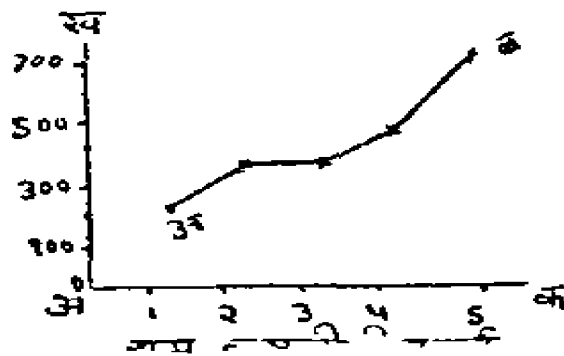
चित्र मे अ ब उत्पत्ति-वृद्धि नियम की वक्र रेखा है।

उद्योग धन्धों मे नियम के लागू होने के कारण :—

(१) कृषि मे उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है क्योंकि वहाँ उत्पत्ति के अन्य साधन तो बढ जाते हैं परन्तु भूमि सीमित रहती है परन्तु उद्योग धन्धो मे उत्पत्ति के समस्त साधनो को घटा बढ़ा कर ठीक-ठीक आदर्श अनुपात मे जुटाया जा सकता है और अनुपात मे अधिक उत्पत्ति प्राप्त करली जाती है।

(२) उद्योग धन्धो मे उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है जिसके कारण उद्योग को अनेको बाहरी व भीतरी बचतें प्राप्त होने लगती हैं और प्रति इकाई उत्पादन व्यय कम हो जाता है।

(३) उद्योग धन्धो के क्षेत्र मे नई नई उत्पादन प्रणालियो, नई-नई मशीनो का प्रयोग व नये नये आविष्कारों का ज्ञान व्यवस्थापकों को प्रतिदिन ही प्राप्त होता रहता है। ज्योही किसी कारखाने मे उत्पत्ति ह्रास नियम की प्रवृति दृष्टिगोचर होती है त्यो ही आविष्कारों को नई मशीनो तथा नई उत्पादन प्रणालियों द्वारा उसको पीछे हटा दिया जाता है। यह क्रम सदैव चलता रहता है। अत यहा उत्पत्ति वृद्धि नियम ही लागू होता है।

मार्शल ने कहा भी है उत्पादन मे जहां प्रकृति का हाथ होता है वहाँ उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है और जहां मनुष्य का हाथ होता है वहा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

प्रश्न ८८—"उत्पत्ति का क्रमागत समता नियम" की व्याख्या कीजियेगा।

(Explain fully the "Law of constant Returns".)

उत्तर :—

"उत्पत्ति का क्रमागत समता नियम"—इस नियम का केवल सैद्धान्तिक महत्व है। यह नियम व्यवहारिक जीवन मे लागू होता नही पाया जाता है। यह माना जाता है कि क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के मध्य कुछ समय के लिए उत्पत्ति का क्रमागत समता नियम लागू होता है। इस कारण से इस नियम का कुछ महत्व बढ जाता है।

इस नियम के अनुसार **जब उत्पादन कार्य मे एक साधन को निश्चित करके अन्य साधनो मे वृद्धि की जाती है तो उत्पादन मे वृद्धि साधनो की वृद्धि के ठीक अनुपात मे होती है। इस प्रकार जब उत्पादन ठीक अनुपात मे बढता है तो सीमान्त उत्पत्ति की प्रवृत्ति समान होने की पाई जाती है।** इस सिद्धात को हम निम्न उदाहरण से भी स्पष्ट कर सकते हैं :—

माना कि अलीगढ के एक ताले के कारखाने मे १०० श्रमिक तथा १० हजार की पूंजी लगी है और वे प्रतिवर्ष १००० तालों का निर्माण कर पाते हैं। इस दशा मे उत्पत्ति कार्य मे लगे हुए श्रम और पूंजी को हम उत्पत्ति के साधन की एक इकाई मान लेते हैं। अब यदि इसी उत्पादन कार्य मे श्रम और पूंजी की दूसरी इकाई का प्रयोग किया जाय और उत्पादन २००० ताले हो जायें तो सीमान्त उत्पादन १००० ताले होगा। इसी प्रकार यदि तीसरी चौथी तथा अन्य श्रम और पूंजी की इकाईयो के प्रयोग करने से उत्पादन ठीक अनुपात में बढता है तथा सीमान्त उत्पादन समान रहता है तो यह कहा जायेगा कि इस कारखाने मे क्रमागत उत्पत्ति समता नियम लागू हो रहा है। इस उदाहरण को हम निम्न तालिका से भी स्पष्ट कर सकते हैं :—

श्रम और पूंजी की इकाई	कुल उत्पादन (तालों का)	सीमान्त उत्पादन (तालो का)
१	१०००	१०००
२	२०००	१०००
३	०००	१०००
४	४०००	१०००
५	५०००	१०००
६	६०००	१०००

उपलिखित तालिका को निम्न चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है :—
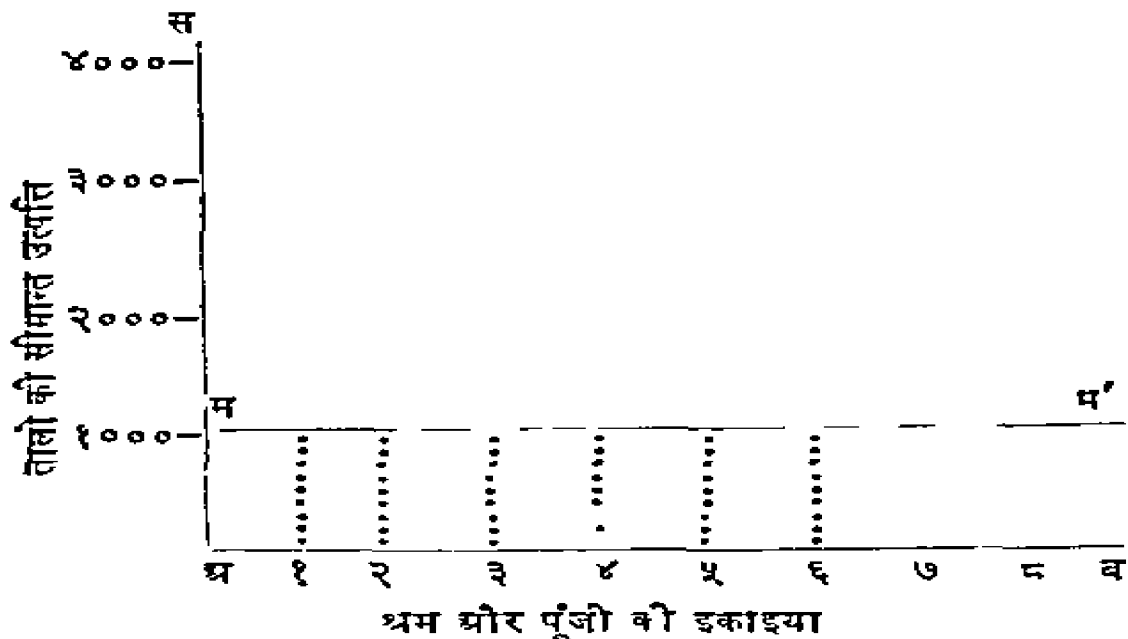
उपरोक्त चित्र मे अ ब रेखा पर श्रम और पूंजी की इकाईया तथा अस रेखा पर तालो की सीमान्त उत्पत्ति दिखाई गई है तथा मम' रेखा उत्पत्ति के क्रमागत समता नियम को स्पष्ट करता है जो यह दिखाती है कि श्रम और पूंजी की इकाईयो की वृद्धि करने से क्रमागत उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत सीमान्त उत्पादन हमेशा समान रहता है।

प्रश्न ८६—"उत्पत्ति में जो कार्य प्रकृति द्वारा किया जाता है वह उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार होता है और जो कार्य मनुष्य द्वारा किया जाता है वह उत्पत्ति वृद्धि नियम के अनुसार होता है।" इस कथन की व्याख्या कीजियेगा।

("We say broadly that which the part while Nature plays **in production conforms to the law of 'Diminishing Returns the part which man plays conforms to the law of Increasing Returns". Explain this statement fully.)**

उत्तर :—

उपलिखित कथन द्वारा मार्शल क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम का क्षेत्र निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम वहा लागू होता है जहा पर कि भूमि का प्रयोग उत्पादन कार्य मे अधिक होता है और यह भूमि प्रकृति द्वारा मनुष्य को निःशुल्क प्राप्त

हुई है। मार्शल भूमि का क्षेत्र कृषि कार्य तक ही सीमित नही रखता वरन भूमि के अन्तर्गत खाने खोदने का उद्योग, मछली पकड़ने का उद्योग, पशु चराने का उद्योग आदि सभी उद्योगो को शामिल करता है क्योकि इन सब कार्यों मे भूमि का महत्व अधिक है और इसी कारण इन सब उद्योगो में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

इसी प्रकार क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के विषय म मार्शल का मत है कि यह वहा लागू होता है जहा कि उत्पादन कार्य मे मनुष्य का हाथ, श्रम, पूजी, व्यवस्था एव साहस के रूप मे अधिक होता है। इस प्रकार जिन उद्योगो मे भूमि का महत्व कम तथा अन्य साधनो का महत्व अधिक होता है वहा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

अब यह प्रश्न होता है कि वे कौन २ से कारण हैं जिनके कारण कृषि कार्य म क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उद्योगो मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है। वे मुख्य कारण निम्न हैं :—

(१) उत्पादन कार्य का क्षेत्र :—कृषि कार्य बहुत अधिक क्षेत्र पर किया जाता है जिस कारण से उसकी उचित प्रकार से देख-भाल नहीं हो पाती है परन्तु उद्योग कार्य एक सीमित क्षेत्र म किया जाता है जहा पर उत्पादन कार्य की देखभाल आसानी से की जा सकती है। इसी कारण से कृषि कार्य मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उद्योगो के क्षेत्र मे क्रमागतः उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

(२) उत्पादन मे यन्त्रो के प्रयोग की सीमा :—कृषि कार्य के अन्दर श्रम विभाजन एव विशिष्टीकरण के लिए क्षेत्र सीमित होता है जिस कारण से मशीनो एव यन्त्रो का अधिकतम प्रयोग नही किया जा सकता है और इसी कारण से बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनेक लाभ कृषि क्षेत्र मे नही मिल पाते हैं। परन्तु उद्योगो के क्षेत्र मे मनुष्य ने इस ओर अधिक विकास कर लिया है और श्रम विभाजन एव मशीनो का प्रयोग अधिकतम रूप मे होता है जिस कारण से उत्पादन म बाह्य एव आतरिक बचतें प्राप्त होती हैं। इस कारण से भी कृषि क्षेत्र म क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उद्योगो के क्षेत्र में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

(३) प्रकृति का प्रभाव :—कृषि कार्य म प्रकृति का काफी अधिक प्रभाव होता है क्योकि वर्षा एव जलवायु कृषि उत्पादन को अधिक प्रभावित करती है, परन्तु उद्योगो के क्षेत्र म प्रकृति का प्रभाव बहुत ही कम हो जाता है। इसी कारण से भी कृषि क्षेत्र म क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा उद्योग क्षेत्र मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

और इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है कि कृषि क्षेत्र मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है क्योकि मनुष्य का प्रकृति पर पूर्ण अधिकार नहीं है और इसी कारण से कृषि कार्य प्राकृतिक प्रभावो से अधिक प्रभावित होता है।

परन्तु उपरोक्त दोनो सिद्धान्त प्रारम्भ मे या अन्त मे प्रत्येक व्यवसाय में लागू होते हैं। और वास्तव म देखा जाय तो ये दोनो सिद्धात एक ही सिद्धात के दो रूप हैं जिसे हम समानुपातिक सिद्धात (Law of Proportionality) कहते हैं। इस प्रकार मार्शल का उपलिखित कथन किसी सिद्धांत विशेष की व्याख्या नही करता वरन यह तो केवल क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम के सिद्धान्तो के कार्यशील होने का क्षेत्र निर्धारित करता है जो क्रमशः कृषि एव उद्योग है।

अध्याय ४२

संगठन

प्रश्न ६० —संगठन औद्योगिक इकाईयों का प्राण है' इस कथन की विवेचना कीजिये और सगठनकर्ता के लिये अपेक्षित गुणों का उल्लेख कीजिये।

("Organisation is the life—essence of industrial units" Explain this statement and give the qualities that a good organiser should posses.)

उत्तर :—

उत्पत्ति के विभिन्न साधनो म सर्वोत्तम सयोग और सहकारिता स्थापित करने के कार्य को 'सगठन' अथवा 'प्रबन्ध' कहते हैं। उत्पत्ति के साधनो मे 'सगठन' साधन का विशेष महत्त्व है और बडी मात्रा की उत्पत्ति के साथ इसका महत्त्व बढता ही जा रहा है। कोई भी उत्पादन कार्य तब तक असम्भव है जब तक कि उत्पत्ति के अन्य साधनो को उचित प्रकार से एक कुशल सगठनकर्ता द्वारा इस प्रकार सगठित न किया जाय कि वे अधिकतम उत्पत्ति कर सकें अन्यथा उत्पत्ति तो होने लगेगी परन्तु वह बहुत ही अलाभ प्रद होगी। आधुनिक युग मे उत्पत्ति बडे बडे कारखानो म माँग के पूर्वानुमान के आधार पर की जाती है। औद्योगिक इकाईयो मे बडी मात्रा मे कच्चे माल का प्रयोग होता है, हजारो श्रमिक एक ही जगह एक साथ कार्य करते हैं, करोडों की पूंजी का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य मे अपार जोखिम

होती है—कौन जाने कि इस सबका फल लाभ होगा या हानि। इन चारों साधनों को उचित प्रकार से सगठित करने का कार्य सगठनकर्ता अथवा मैनेजर का होता है। उसकी जरा सी भूल से या निरीक्षण की छूट से स्थिति बिल्कुल बदल सकती है। लाभ हानि मे परिणित हो सकता है। अत सगठनकर्ता का कार्य बड़ा ही जटिल और उत्तरदायित्व पूर्ण है। वह उद्योग का कप्तान (Captain of the Industry) कहलाता है। वह उपरोक्त कार्यों को अपनी कुशलता शिक्षा ज्ञान व अनुभव के आधार पर सम्पन्न करता है। आधुनिक सगठन समस्याओं की शिक्षा देने व उचित प्रकार के प्रबन्धक उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक देश मे व्यापार व्यवस्था की शिक्षा (Bussness management and Administration) के लिये शिक्षालय स्थापित हो रहे हैं।

संगठनकर्ता के गुण (Qualities of a good organiser) :—

वही सगठनकर्ता अधिक योग्य कहलाता है जो उत्पादन कार्य का सचालन अधिकतम मितव्यता से कर सके और उत्पादन कार्य विधिवत चालू रख सके। इसलिये *आवश्यक है कि उस व्यक्ति मे कुछ विशेष गुण होना चाहिये अन्यथा* वह उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति नही कर सकता। एक योग्य प्रबन्धक को निम्न गुणो से युक्त होना चाहिये।

सगठनकर्ता के गुण :—
१ दूरदर्शिता।
२ शिल्प ज्ञान।
३ उच्च शिक्षा।
४. मनोविज्ञान का ज्ञान।
५ विश्वासनीयता।
६ अनुभव।
७ सूचना।

(१) **दूरदर्शिता** :—आज के औद्योगिक युग मे उत्पादन मांग के पूर्व-अनुमान के आधार पर होता है। अत सगठनकर्ता को दूरदर्शी होना आवश्यक है, उसको उपभोक्ताओं की मांग, रुचि व फैशन का सही अनुमान लगाना पडता है। बाजार की भावी स्थिति का भी अनुमान करना होता है। उसके अनुमान गलत हो जाय तो व्यवसाय को हानि होगी।

(२) **शिल्प ज्ञान** :—कारखाने की मशीनों तथा अन्य यन्त्रादियों का भी कुछ ज्ञान सगठनकर्ता को होना चाहिये। अन्यथा वह व्यापार की मशीनो की माग का अनुमान, उनको चलाने के लिये उपयुक्त कार्यकर्ताओं की नियुक्ति व उनके काम की उचित देखभाल न कर पायेगा।

(३) **उच्च शिक्षा** :—शिक्षित व्यक्ति का ज्ञान, विवेक व निर्णयशक्ति बड़े तेज होते है। उसका दृष्टि कोण भी बडा विस्तृत होता है। श्रम समाधान के साधन के लिये इन गुणो का होना अनिवार्य है। सगठनकर्ता को विभिन्न

विषयों जैसे गणित, बुक-कीपिंग, अर्थशास्त्र व व्यापार व्यवस्था आदि का ज्ञान होना आवश्यक है।

(४) **मन विज्ञान का ज्ञान** —श्रमिकों की प्रवृतियों और मनोवृत्तियों का अध्ययन करके ही श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। जो श्रमिक जिस कार्य के योग्य होता है उसको वही कार्य दिया जाता है। इस गुण के अभाव में श्रमिकों की शक्ति का उचित शोषण नहीं हो पायगा और न श्रमिक सतुष्ट रहेंगे और न उद्योग का उत्पादन ही बढ़ेगा।

(५) **विश्वासनीयता :**– सगठनकर्ता को ईमानदार व वचन का पालक होना अनिवार्य है अगर उसमे ये बात नही हैं तो उस पर कोई विश्वास नही करेगा, बाजार म उसकी साख कम होगी और कोई व्यक्ति अपनी पूंजी उसके हाथ मे सौंपने को तैयार नही होगा। अत. सगठनकर्ता में विश्वासनीयता का गुण होना अनिवार्य है।

(६) **अनुभव :**—योग्य सगठनकर्ता बनना एक सरल कार्य नहीं है। योग्यता व साथ २ बढ़ती है। वह अनेको समस्याओ, व कठिनाइयो को अनुभव के व्यापार व्यवस्था-क्षमता अनुभव के आधार पर ही दूर कर देना है। यह सत्य है कि सगठन क्षमता जन्म जात होती है परन्तु इसको अनुभव से बढ़ाया जा सकता है।

(७) **सूचना** —सगठनकर्ता को व्यापार का परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से प्रभावित करने वाली समस्त घटनाओं से अपने आप को सूचित रखना चाहिये। उपभोक्ता वर्ग, साथी उत्पादन कर्ताओं की स्पर्धा व स्थिति, राज्य की नीति, विदेशो मे माँग की स्थिति आदि बातो का ज्ञान सदैव अनिवार्य है।

अध्याय ४३

साहस

प्रश्न ६१—साहसी के कार्यों एवं गुणों का वर्णन करियेगा।

(Explain the functions and Qualities of an Enterpriser.)

उत्तर :—

प्रत्येक व्यवसाय मे कुछ न कुछ जोखिम एवं अनिश्चितता होती है और इस प्रकार की जोखिम तथा अनिश्चतता को उठाने वाले को ही साहसी कहते हैं। साहसी का उत्पत्ति कार्य मे विशेष महत्व है। उसकी

योग्यता एवं दूरदर्शिता पर ही व्यवसाय विशेष की सफलता निर्भर होती है। इसी कारण से ही इसे उत्पत्ति का पृथक साधन माना है।

साहसी के कार्य —साहसी के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) **उद्योग की छांट** —सर्वप्रथम साहसी को यह विचारना होता है कि वह किस उद्योग विशेष को प्रारम्भ करे। इसके लिये उसको उस उद्योग से सम्बन्धित मांग, पूर्ति, कच्चे माल की सुविधायें, बाजार की समीपता आदि बातों का ज्ञान करके निर्णय करना होता है।

(२) **उत्पत्ति का पैमाना :**— उत्पत्ति का पैमाना निश्चित करना भी साहसी का कार्य है। साहसी का उद्देश्य अधिकतम प्राप्त करना होता है। इस कारण से वह उत्पत्ति उस स्थान तक बढ़ायेगा जहां सीमांत लागत व सीमांत आय समान होगी क्योंकि साहसी इसी दशा में अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

> **साहसी के कार्य —**
> १. उद्योग की छांट।
> २. उत्पत्ति का पैमाना।
> ३. उत्पत्ति के साधनों का सहयोग।
> ४. स्थान का चुनाव।
> ५. वितरण कार्य।
> ६. जोखिम सहने का कार्य।

(३) **उत्पत्ति के साधनों का आदर्श संयोग करना :**—साहसी का यह भी कार्य है कि विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को प्रतिस्थापन के नियम के अनुसार उत्पत्ति कार्य मे ऐसे लगाये कि प्रत्येक साधन से प्राप्त सीमांत उत्पत्ति समान हो। तभी साहसी कम लागत पर अधिक उत्पादन करने मे सफल हो सकता है।

(४) **स्थान का चुनाव** .—साहसी को यह भी निश्चय करना पड़ता है कि उद्योग विशेष को जिस स्थान पर स्थापित किया जाय। इसके लिए वह जलवायु, कच्चे माल की प्राप्ति, श्रमिकों की प्राप्ति, यातायात के साधनों की सुविधा, बाजार की समीपता आदि बातों पर ध्यान देता है। साथ ही वह विज्ञापन तथा सरकारी नीति पर भी अपना निर्णय करता है।

(५) **वितरण कार्य :**—संयुक्त उत्पत्ति को उत्पत्ति के विभिन्न साधनों मे बांटना भी साहसी का कार्य है। इस कार्य में वह सीमांत उत्पत्ति के सिद्धांत की सहायता लेता है। शेष उसका लाभ या हानि होती है।

(६) **जोखिम सहने का कार्य :**—उद्योग से सम्बन्धित जोखिम को सहन करने का कार्य भी साहसी को करना पड़ता है जिसमे उसके व्यक्तिगत गुण अधिक सहायक होते हैं। साहसी के गुण हम आगे विस्तार से देखेंगे।

साहसी के गुण :—साहसी में व्यवसाय विशेष की सफलता के लिए निम्न गुणों का होना आवश्यक है :—

(१) साहसी में श्रमिकों को उनकी कार्य कुशलता के अनुसार कार्य सौंपने का गुण होना चाहिये।

(२) साहसी मे दूरदर्शिता, विश्वास एवं दृढ़ प्रतिज्ञा के गुण होने चाहिये जिससे उसे आसानी से कम ब्याज पर पूँजी उधार मिल सके।

(३) साहसी में कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति होनी चाहिये जिससे हानि के समय वह चिन्तित होकर व्यवसाय न छोड़ बैठे।

(४) साहसी में व्यवसायिक ज्ञान होना चाहिये जिससे वह किसी विषय या निर्णय शीघ्र व ठीक कर सके।

(५) साहसी को नवीनतम आविष्कारों का ज्ञान होना चाहिये जिनको वह अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सके।

जिस साहसी में उपर्लिखित गुण होंगे वही उत्पादन कार्य को सफलता-पूर्वक चला सकता है तथा अन्य उत्पादकों से स्पर्धा करने मे समर्थ हो सकता है।

अध्याय ४४

कुटीर उद्योग धंधे

प्रश्न ६२—कुटीर उद्योग धंधे किसे कहते हैं ? भारत मे इनकी क्या-क्या समस्यायें हैं ? उनका किस प्रकार समाधान किया जा सकता है ?

(What are cottage industries ? What are their problems and how can they be solved in India ?)

उत्तर :—

कुटीर उद्योग क्या हैं :—

कुटीर उद्योग वे उद्योग होते हैं जिन्हे कारीगर स्वयं अपने घरो मे अपने आप तथा अपने बाल बच्चो की सहायता से चलाते हैं। इनमे जो थोड़ी बहुत पूँजी होती है वह भी प्राय. इन्हीं की होती है परन्तु कभी-कभी बाहरी श्रमिकों व पूँजी का प्रयोग भी किया जाता है। उत्पादन के प्रबन्ध व लाभ-हानि का उत्तरदायित्व भी इन्हीं के कंधो पर होता है। सन १९४९-५० के

तट कर आयोग (Fiscal Commission) के अनुसार '**यदि कोई कारीगर स्वय अथवा अपने समस्त परिवार की सहायता से मुख्य धधे के रूप मे अथवा सहायक धधे के रूप मे किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो उसे कुटीर उद्योग कहते हैं?** बम्बई की आर्थिक व औद्योगिक निरीक्षण समिति (Bombay Economic and Industrial investigation Committee) के अनुसार '**वे धधे कुटीर धधे हैं जिनमे आधुनिक शक्ति साधनों का प्रयोग नहीं होता और उत्पादन का काम आमतौर पर कारीगर के घर पर ही अथवा कभी कभी छोटे छोटे वर्कशाप मे अधिक से अधिक नौ व्यक्तियों के सहयोग से किया जाता है।**" हाथ करघे के काम, तेल पेरना, मिट्टी व धातु के बर्तन बनाना, कागज बनाना, लोहार व बढई का काम कुटीर उद्योग ही हैं। कुछ कुटीर उद्योग ऐसे हैं जो फुरसत के समय में सहायक धधे के रूप मे चलाये जाते हैं, जैसे रस्सी बटना, टोकरी बनाना, चरखा कातना, चटाई बनाना इत्यादि। कुछ प्रमुख कुटीर उद्योगो मे छोटी २ शक्ति सचालित मशीनो का प्रयोग होने लगता है।

महत्व —भारत में कुटीर उद्योग धधा का विशेष महत्व है। भारत की जनसख्या के कोई १०% व्यक्ति इनमे लगे हुए हैं जबकि मिल उद्योगा मे केवल २०% ही हैं। भारत मे **कृषक साल के कई महीने खाली रहते हैं** कुटीर उद्योग उनको जीविका उपार्जन करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। भारत मे **कृषि पर जनसख्या का भार बहुत अधिक है** उसको कम करने के लिये हम कुटीर उद्योगो का विकास करना आवश्यक है जिससे कृषि मे हट कर व्यक्ति इनमे लग सकें। देश मे **बेरोजगारी फैली हुई है।** यह बडे उद्योगो द्वारा दूर नहीं हो सकती। अत कुटीर उद्योगों का विकास ही एक महत्वपूर्ण उपाय है। कुटीर उद्योग ही सहायक धधों के रूप मे **गरीब भारतीयों की आय मे वृद्धि** कर सकते हैं। अत भारत सरकार इनके विकास की ओर पूर्ण ध्यान दे रही है।

भारत मे कुटीर उद्योगों की समस्याये (Problems of Indian cottage industries) —आजकल हमारे कुटीर उद्योगों के सामने अनेकों कठिनाइया व उनके कार्य करने के ढग मे बडे दोष हैं जिनको दूर करे बिना इनका पूरा विकास नही हो सकता है ये **समस्याये निम्नलिखित हैं** —

(१) कच्चे माल की समस्याये —कुटीर उद्योगो मे लगे कारीगरो को सस्ते व श्रेष्ठ कच्चे माल के प्राप्त करने में बडी कठिनाई उठानी पडती है। धनाभाव के कारण वे गाव के महाजन अथवा शहर के दुकानदारों से उधार माल खरीदता है जो कि प्राय उत्तम किस्म का नही होता है।

(२) अपर्याप्त पूंजी :—अधिक दस्तकार गरीब हैं। उनके पास कुटीर उद्योग स्थापित करने और उसे चलाने लायक पैसा नहीं होता। इनको महाजनो व बनियो इत्यादि से ऊंची ब्याज की दर पर रुपया उधार लेना पडता है। इस कारण अधिकाश दस्तकार ऋणी होते हैं।

कुटीर उद्योग धधों की समस्यायें :—
१. कच्चे माल की समस्या।
२. अपर्याप्त पूंजी।
३ अशिक्षा व अज्ञानता।
४ प्राचीन पद्धति।
५. बिक्री की समस्या।
६ मिल उद्योगो से प्रतियोगिता।

(३) **अशिक्षा व अज्ञानता :—** कारीगर बहुधा अशिक्षित होत है और उन्हे आधुनिक वैज्ञानिक विकासो व उत्पादन प्रणालियो का ज्ञान नही होता। वे आधुनिक नवीन आविष्कारो से बिलकुल अपरिचित हैं। साधारण शिक्षा व ज्ञान के अलावा कारीगरो की दस्तकारी की शिक्षा देने की सुविधायें व साध. हमारे देश मे बहुत ही अपर्याप्त हैं।

(४) **प्राचीन उत्पादन प्रणालियो व पुराने ढंग के औजार :—** अधिकांश कारीगर पुराने औजारो व पुराने तरीको स काम करते हैं। फलस्वरूप उत्पादन कम और घटिया होता है जो कि आधुनिक मशीनो द्वारा निर्मित माल की स्पर्धा मे नही बिक पाता। .

(५) **माल की बिक्री की समस्या :—** ज्यादातर कारीगर तैयार सामान को उन्ही महाजनो को बेच देते हैं जिससे कि वे ऋण लेते हैं। महाजन दस्तकारो को उनकी वस्तु का उचित व पूरा पैसा नहीं देते। कारीगरो को यह पता नही होता कि उनके माल की माग कहाँ पर है,. उनके ग्राहको की रुचि क्या है, इत्यादि वे अपने माल का विज्ञापन व प्रदर्शन नही कर पाते।

(६) **मिल उद्योगों से प्रतियोगिता :—** यह समस्या कुटीर उद्योगो के अस्तित्व की समस्या है। भारत के उद्योग इसी प्रतियोगिता के कारण नष्ट हो गये थे और आज भी सरकारी प्रोत्साहन के बावजूद वे पनप नही रहे। मिल की वस्तुयें सस्ती होती हैं अत कुटीर उद्योगो का सामान इनके सामने नही बिकने पाता।

कुटीर उद्योगों के विकास के लिये सुझाव (Substitution for development of the cottage industries) :—

(१) **साधारण व टैक्नीकल शिक्षा का प्रबन्ध —** साधारण शिक्षा कारीगरो को अधिक उत्तरदायी बनाकर उसके दृष्टिकोण को विस्तृत कर देती

है, वे भाग्य पर न रहकर अपने कर्म में विश्वास करने लगते हैं। टैक्नीकल शिक्षा के लिये प्रमुख २ केन्द्रों में टैक्नीकल स्कूल खोले जाने चाहियें। जिससे वे नवीन औजारों का ज्ञान व उनको चलाना सीख सकें।

(२) **सहकारी समितियों का निर्माण** —दस्तकारों को अपनी सहकारी समितियाँ बनानी चाहिये। ये समितियाँ कारीगरों के लिये पूंजी की व्यवस्था करें, कच्चा माल खरीदें व सुव्यवस्था के पक्के माल को बेचने का प्रबन्ध करें। सहकारी समितियों के जिला स्तर पर संघ बनाये जायें जो शहरों में बिक्री केन्द्र व प्रदर्शन गृह (Sales depots and show Rooms) खोलें। इस प्रकार कारीगरों को उनके माल का उचित मूल्य प्राप्त हो सकेगा।

विकास के सुझाव :—

१. टैक्नीकल शिक्षा का प्रबन्ध।
२. सहकारी समितियों की स्थापना।
३. कच्चा माल व यन्त्रों की पूर्ति।
४. सस्ती शक्ति की व्यवस्था।
५. औद्योगिक मेला का आयोजन।
६. विज्ञापन व प्रचार।
७. राज्य द्वारा संरक्षण।
८. क्षेत्र निर्धारण।
९. सरकारी सहायता।

(३) **कच्चा माल व नवीन औजारों की पूर्ति** —कच्चे माल की प्राप्ति के लिये राज्य को निजी दुकानें खोलनी चाहिये जहाँ नियन्त्रित मूल्य पर उचित मात्रा में कच्चा माल मिल सके। सरकार को नवीन औजारों को **'किराया बिक्री प्रणाली'** (Hire Purchases System) पर कारीगरों को देना चाहिये।

(४) **सस्ती शक्ति की व्यवस्था** —कुटीर उद्योगों में छोटी छोटी बिजली से चलाने वाली मशीनों के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिये, राज्य को कुटीर कारीगरों को प्राथमिकता देकर सस्ती विद्युत शक्ति का प्रबन्ध करना चाहिये।

(५) **औद्योगिक मेले व प्रदर्शनियों का आयोजन** —राज्य की ओर से औद्योगिक मेले व प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाना चाहिये जिनमें देश की प्रमुख कुटीर उद्योगों की वस्तुयें प्रदर्शित की जावें। इनमें नवीन औजारों, यन्त्रों व उत्पादन-प्रणालियों का भी प्रचार होना चाहिये।

(६) **विज्ञापन व प्रचार** —राज्यों के उद्योग विभागों द्वारा अपने २ राज्यों में राज्य की वस्तुओं का विज्ञापन करना चाहिये। केन्द्रीय सरकार

ममस्त देश की कुटीर वस्तुओ का विज्ञापन विदेशो में कर सकती है। प्रमुख व्यापारिक नगरो मे प्रदर्शन ग्रह व विक्री कन्द्र खुलने चाहिये।

(७) **राज्य द्वारा सरक्षण** —देश के कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार को चाहिये कि वह इनसे प्रतियोगिता करने वाले विदेशी माल पर भारी आयात कर लगा दें, ताकि ये कुटीर उद्योग उनकी स्पर्धा मे टिक सकें।

(८) **क्षेत्र निर्धारण** —सरकार यह निश्चित कर सकती है कि किन किन क्षेत्रो मे कुटीर उद्योग कार्य करेंगे और किन किन मे बड़े उद्योग। इस प्रकार इनमे आपस मे प्रतियोगिता का अवसर कम हो जाता है।

(९) **सरकारी सहायता** —यह सत्य है कि कुटीर कारीगर असगठित हैं और अभी काफी समय तक वे मिल की स्पर्धा मे नहीं टिक सकते, वे अनेको सुविधायें स्वय उपलब्ध नहीं कर सकते। अत राज्य की सहायता अपेक्षित है। टैक्नीकल ज्ञान को सुलभ करके, पूजी की व्यवस्था करके, कच्चे माल की प्राप्ति व तैयार माल की बिक्री की व्यवस्था करके, सरकार इन धन्धो को प्रोत्साहित कर सकती है।

हर्ष का विषय है कि उपरोक्त सभी सुझावो के आधार पर हमारी सरकार देश मे कुटीर उद्योगो का विकास कर रही है।

—o—

प्रश्न ६३—उत्तर प्रदेश के मुख्य कुटीर उद्योग मे कौन-कौन धधे है? उनके विकास के लिए आप किन उपायो का सुझाव देंगे।

(What are the principle cottage industries of U P ? Give suggession to improve their condition)

उत्तर :—

उत्तर प्रदेश के मुख्य कुटीर उद्योग धन्धे निम्नलिखित हैं —

(१) **हाथ करघे का काम** —यह राज्य का सर्वोन्नत उद्योग है। खेती के बाद इसी धधे का स्थान है। टाडा मऊ, फैजाबाद अकबरपुर, बाराबकी अलीगढ़, हाथरस, मेरठ पिलखुआ सडीला इत्यादि इसके मुख्य केन्द्र हैं। इसमे कोई १० लाख व्यक्ति कार्य करते है।

(२) **रेशमी कपडा बुनना** —इसके लिये बनारस व मिर्जापुर प्रमुख स्थान है। बनारस की रेशमी साडिया व कीमखाब की साडिया विदेशों तक मे भेजी जाती हैं।

(३) **चमडे का काम** —वैसे तो यह कार्य राज्य के प्रत्येक गाव मे होता है पर सगठित रूप मे यह कानपुर आगरा व दयालबाग मे होता है। यहा के कारीगर जूते, जीन, पेटी सूटकेस इत्यादि बनाते हैं। हाल ही मे रूस की कोई लाख जोडी जूतो का आडर आगरा से सप्लाई किया गया था।

(४) **सोने-चाँदी की कढ़ाई का काम** :—यह काम बनारस मे बहुत पुराने समय मे होता चला आया है। यहा पर सोने-चादी के धागे बनाये जाते हैं। इनमें बहुत सुन्दर कढाई होती है और स्त्रियो की साड़ियों के किनारे (Boarders) बनाये जाते हैं। ऐसी साडियो की माग अब विदेशो मे बढती जा रही है।

(५) **धातु के बतन बनाना** :—यह काम मुरादाबाद, बनारस हाथरस अनरौली, मोदीनगर, हापुड इत्यादि स्थानो पर विशेष रूप से होता है। मुरादाबाद व मोदीनगर म कलई के बर्तन बनाये जाते हैं। मुरादाबाद मे बतनो के ऊपर खुदाई और जुडाई का काम बहुत सुन्दर होता है। बनारस मे पीतल व ताँबे के बर्तन व खिलौने बनाये जाते हैं।

(६) **चीनी मिट्टी के बतन बनाना** :—मिट्टी के बर्तन तो राज्य के प्रत्येक गाँव व शहर मे कुम्हारों द्वारा बनाये जाते हैं परन्तु हाल ही मे चीनी मिट्टी के बतन बनाने का धन्धा राज्य मे पनप चला है। इसके मुख्य केन्द्र खुर्जा, चुनार, गाजियाबाद किठौर, बनारस इत्यादि हैं।

(७) **काँच के बर्तन बनाना** —काच की चूडियां, चिमनी, गिलास, माला के दाने व कांच का अन्य साधारण सामान इस उद्योग की प्रमुख उत्पत्ति हैं फिरोजाबाद भारत की चूडियो की ३/५ भाग को पूरा करता है। इसके प्रमुख केन्द्र सरायछबीला, फिरोजाबाद, सासनी, बहजोई, नैनी, बनारस व बालावली हैं।

(८) **लकड़ी पर चित्रकारी का काम** —यह काम अधिकतर सहारनपुर नगीना, मैनपुरी मे किया जाता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त मेरठ मे चाकू व कैंचियाँ बनाने का उद्योग, अलीगढ मे ताले बनाने का उद्योग, आगरे मे दरियां व कालीन बुनने का उद्योग, मुजफ्फरनगर मे कम्बल बुनने का उद्योग, बनारस मे लकडी के खिलौने बनाने का उद्योग व मिर्जापुर म गलीचे बुनने का उद्योग आदि बहुत ही विकसित कुटीर उद्योग हैं। सहायक धन्धो के रूप मे, मिट्टी व लकडी के खिलौने बनाना, गुड बनाना, मूढा, चटाई, रस्सी, टोकरी आदि बुनना, साबुन बनाना, रगाई छपाई दरी बुनना, चमडा कमाना, शहद की मक्खी पालना आदि भी प्रान्त भर म किये जाते हैं।

उत्तर प्रदेश के कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सुझाव :—

उत्तर प्रदेश के कुटीर उद्योगो की समस्यायें एवं कठिनाइयां और विकास के सुझाव लगभग वही हैं जो कि साधारण भारतीय कुटीर उद्योगो की हैं। अतः प्रश्न के इस भाग के उत्तर के लिये कृपया प्रश्न ६६ का उत्तर देखिये।

———

राजस्व
(PUBLIC FINANCE)

अध्याय ४५

सार्वजनिक वित्त

प्रश्न ६४—राजस्व किसे कहते हैं ? निजी और राजकीय अर्थ व्यवस्था में भेद कीजियेगा।

(What is Public Finance ? And differenciate between Private and Public Finance.)

उत्तर :—

राजस्व का अर्थ :—'राजस्व' अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्वपूर्ण भाग है। इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि सरकारी आय किस प्रकार प्राप्त की जाती है तथा उसका किस प्रकार व्यय किया जाता है। आज राजस्व के अन्तर्गत सार्वजनिक ऋण का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार राजस्व का क्षेत्र दिन पर दिन बढता जा रहा है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाल्टन ने राजस्व की परिभाषा देते हुए कहा है कि **'राजस्व सरकार के आय, व्यय और एक दूसरे के अनुरूप लाने की प्रक्रिया का अध्ययन है। (Public Finance deals with the income and expenditure of public authorities and with the manner in which one is adjusted to the other)** इसी प्रकार सिडनी चेपमेन ने राजस्व के विषय में कहा है कि, **"राजस्व अर्थशास्त्र का वह विभाग है जो सरकार के आय प्राप्त करने और उसे व्यय करने की प्रक्रिया की विवेचना करता है।" (Public finance is that part of Political economy which discusses the way in which government obtain revenues and manages them)**

इस प्रकार राजस्व के अन्तर्गत सरकारी आय, व्यय एवं सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित बातों का अध्ययन किया जाता है।

राजकीय और व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था में भेद :—राजकीय और व्यक्तिगत दोनों ही अर्थ व्यवस्था का उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति होता है तथा आय और व्यय में सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है। फिर भी राजकीय और व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था में कुछ भिन्नतायें पाई जाती हैं जिसको तालिका के रूप में निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—

भिन्नता का दृष्टिकोण	व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था	राजकीय अर्थ व्यवस्था
१. आय व्यय का समायोजन।	१. इस दशा मे व्यय आय से अधिक नहीं होने पाता है।	१. पहले व्यय का अनुमान लगाया जाता है तथा बाद मे आय के साधनों मे आय प्राप्त की जाती है।
२. ऋण तथा आय के साधन।	२. वह केवल दूसरे व्यक्ति से ऋण ले सकता है और उसके आय के साधन सीमित होते हैं।	२. सरकार वाहन तथा आन्तरिक दोनो ही साधनो से ऋण प्राप्त कर सकती है तथा नोट छाप कर अपनी आय के साधन मे वृद्धि कर सकती है।
३. बजटों की अवधि।	३. व्यक्तिगत दशा मे यह अल्प—कालीन होता है। साधा—रणत. प्रतिमास।	३. परन्तु राजकीय अर्थ व्यवस्था में बजट की अवधि एक वर्ष की होती है।
४. सीमान्त उपयोगिता की समानता।	४. व्यक्ति प्रत्येक व्यय को सतर्कता से व्यय करता है तथा अधिकतम उपयोगिता की प्राप्ति की कोशिश करता है।	४. परन्तु सरकारी व्यय में इतनी सतर्कता नहीं पाई जाती है। वे वर्तमान सीमान्त उपयोगिता के साथ २ भविष्य की सीमान्त उपयोगिता का भी ध्यान रखते हैं।
५. बजटों में बचत।	५. व्यक्तिगत रूप मे बचत को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा अच्छा माना जाता है।	५. परन्तु राजकीय अर्थ-व्यवस्था में बचत को दोष पूर्ण माना जाता है क्योंकि यह बचत व्यक्तियों के त्याग से प्राप्त होती है। इसलिए राजकीय अर्थ

भिन्नता का दृष्टिकोण	व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था	राजकीय अर्थ व्यवस्था
		व्यवस्था मे सतुलित बजट को ही अच्छा माना जाता है।
६. प्रयोग विधि।	६. इस दशा मे प्रत्येक बात छिपा कर रखो जाती है।	६. परन्तु राजकीय अर्थ व्यवस्था मे प्रत्येक बात को प्रचार का रूप दिया जाता है।
७. परिवर्तनशीलता।	७. व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था में किसी भी प्रकार का परिवर्तन सुगम नही है।	७ परन्तु राजकीय अर्थ व्यवस्था मे परिवर्तन आसानी से किये जा सकते है।
८. दृष्टिकोण।	८. व्यक्तिगत अर्थ व्यवस्था स्वार्थहित के दृष्टिकोण से प्रभावित होती है।	८. परन्तु राजकीय अर्थ-व्यस्था का उद्देश्य हमेशा अधिकतम सामाजिक लाभ की की प्राप्ति होनी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तिगत तथा राजकीय अर्थ व्यवस्था का उद्देश्य एक होते हुए भी व्यवहारिक दृष्टिकोण से इन दोनो अर्थ व्यवस्थाओं मे अनेक भिन्नतायें पाई जाती हैं।

प्रश्न ६५—सार्वजनिक व्यय किन सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिये। क्या भारत मे सार्वजनिक व्यय इन सिद्धांतों के आधार पर होता है ?

(Explain fully the various cannos of public expenditure. Is public expenditure in India based on these canons.)

उत्तर—

आज प्रत्येक राज्य का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। इसके लिए प्रत्येक राज्य जनता से कर वसूल करती है तथा प्राप्त आय को सार्वजनिक कल्याण के कार्यों पर व्यय करती है जिससे सामाजिक लाभ अधिकतम हो सके। यह लाभ अधिकतम तभी होगा जबकि राज्य व्यय करते

समय कुछ नियमो का पालन करे। यह नियम ही सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत कहलाते हैं। प्रोफेसर फिन्डले शिरास ने चार मुख्य निम्न सिद्धांतो का वर्णन किया है :—

(१) लाभ सिद्धांत :—इस सिद्धांत के अनुसार सार्वजनिक व्यय से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त होना चाहिये जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा व्यक्तिगत आय मे वृद्धि होगी तथा कर-दाता को कर देने की योग्यता में वृद्धि होगी। इस सामाजिक लाभ की कोई अधिकतम सीमा तो निश्चित नहीं की जा सकती लेकिन फिर भी इसकी न्यूनतम सीमा निश्चित कर सकते हैं और वह यह है कि सार्वजनिक व्यय से करदाता को इतना लाभ अवश्य प्राप्त होना चाहिये जितना कि वह कर के न देने पर प्राप्त करता। इस सिद्धांत के अनुसार इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि समाज मे धन का वितरण समान हो। इसके लिए अधिकांश व्यय निर्धन वर्ग के व्यक्तियों पर किया जाता है।

सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत :—

१. लाभ सिद्धांत।
२. मितव्ययिता सिद्धांत।
३. स्वीकृति सिद्धांत।
४. बचत सिद्धांत।
५. लोच सिद्धांत।
६. उत्पत्ति एवं वितरण पर अच्छा प्रभाव।
७. व्यय मे पुनरावृति न हो।

(२) मितव्ययिता सिद्धांत :—इस सिद्धांत के अनुसार राज्य को प्रत्येक व्यय मितव्ययितापूर्वक करना चाहिये। सार्वजनिक व्यय में फिजूलखर्ची नही होनी चाहिये। इसके निरीक्षण के लिए सरकार को उचित प्रबन्ध करना चाहिये। साथ ही व्यय ऐसी मदों पर भी होना चाहिये जिससे भविष्य मे राष्ट्रीय आय बढ़े। इस प्रकार यहाँ मितव्ययता का अर्थ यह नहीं है कि व्यय किया ही न जाये बल्कि जो भी व्यय हो उसका सदुपयोग होना चाहिये। तभी जनता के पैसे का अच्छा उपयोग हो सकता है।

(३) स्वीकृति सिद्धांत :—इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यय पहले उचित अधिकारी द्वारा स्वीकृत होना चाहिये तथा उसी के अनुसार व्यय किया जाना चाहिये। सरकार को इसके निरीक्षण की भी व्यवस्था करनी चाहिये। आजकल प्रत्येक राज्य मे व्यय की स्वीकृति धारासभा द्वारा होती है तथा धारासभा द्वारा ही कोई व्यय कम या अधिक किया जा सकता है। ऋणों से प्राप्त आय के व्यय में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है

क्योंकि इसके भुगतान की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। स्वीकृति लेने का उद्देश्य यही होता है कि व्यय में अपव्यय न होने पावे।

(४) बचत सिद्धांत :— इस सिद्धांत के अनुसार सरकार को बजट इस प्रकार बनाना चाहिये जिससे व्यय आय से हमेशा कम रहे तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा न लेना पड़े। लेकिन यह सिद्धात आज के समय मे उचित नही कहा जा सकता है क्योंकि सरकार को अनेक कार्यों को पूरा करने के लिये व्यय-आय से अधिक करना पड़ता है तथा साथ ही आन्तरिक एव बाह्य ऋणो तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सरकार को सन्तुलित बजट की स्थिति प्राप्त करना अपना उद्देश्य समझना चाहिये।

फिन्डले शिराज के उपर्लिखित सिद्धान्तो के अतिरिक्त आधुनिक अर्थशास्त्री व्यय के सिद्धांतो मे निम्न सिद्धातो की भी व्याख्या करते है।

(५) लोच सिद्धांत :—इस सिद्धांत के अनुसार सार्वजनिक व्यय मे देश की परिस्थितियो को देखते हुए घटने और बढ़ने का गुण होना चाहिये। इसी को व्यय का लोच सिद्धांत कहते हैं।

(६) उत्पत्ति एवं वितरण पर अच्छा प्रभाव :—सार्वजनिक व्यय का उत्पत्ति एव वितरण पर बुरा प्रभाव नही पड़ना चाहिये। सार्वजनिक व्यय से समाज मे उत्पादन बढ़ना चाहिये तथा धन की असमानता भी दूर होनी चाहिये। इसके लिए सरकार को निर्धन वर्ग के व्यक्तियो पर अधिक व्यय करना चाहिये।

(७) व्यय में पुनरावृत्ति न हो—देश की केन्द्रीय, प्रान्तीय एव स्थानीय सस्थाओ द्वारा किये गये व्यय मे पुनरावृत्ति नही होनी चाहिये। प्रत्येक सस्था का व्यय का क्षेत्र पृथक-पृथक होना चाहिये।

उपर्लिखित सिद्धांत सार्वजनिक व्यय की सीमा निर्धारित करते हैं तथा प्रत्येक राज्य इन्ही सिद्धांतों के आधार पर व्यय करने का प्रयत्न करती है। भारत मे सभी सिद्धातो का तो पालन नही होता फिर भी लाभ सिद्धांत, स्वीकृति सिद्धांत तथा वितरण के समान होने के सिद्धातो का पूर्ण रूप से पालन होता है। भारत मे मितव्ययिता सिद्धात एव बचत सिद्धात का उल्लंघन पाया जाता है। इसलिए हम भारत के सार्वजनिक व्यय को श्रेष्ठतम नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न ६६--कर लगाने के सिद्धात क्या हैं ? पूर्ण व्याख्या कीजिये। भारतीय करों मे इन सिद्धांतों का कहां तक समावेश किया गया है ?

(What are the cannons of taxation? Explain fully. To what extent the Indian taxes satisfy these principles?)

उत्तर :—

सरकार जनता से किस प्रकार कर प्राप्त करे, इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों ने कुछ नियम प्रतिपादित किये हैं जिन्हे कर लगाने के सिद्धांत कहते हैं। सर्वप्रथम आडम स्मिथ (Adam Smith) ने अपनी पुस्तक (Wealth of Nation) मे निम्न चार सिद्धांतो को बतलाया है :—

(१) *समानता या न्याय का सिद्धांत* (*Cannon of Equality or Equity*) :—इस नियम का आशय यह है कि कर इस प्रकार लगाये जावें कि प्रत्येक करदाता को समान स्वार्थ त्याग करना पडे और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सामर्थ्य के अनुसार कर देना पडे। गरीबो की टैक्स देने योग्यता कम होती है और अमीरो की अधिक। त्याग की समानता के लिये यह आवश्यक है कि गरीबो से टैक्स बहुत कम और अमीरो से बहुत अधिक लिया जाय। अत करदाता की आय जितनी अधिक हो उतनी ही अधिक दर से उसमे कर वसूल किया जाय अर्थात वर्द्धमान टैक्स प्रणाली (Progressive system of taxation) को अपनाया जाय।

कर लगाने के सिद्धांत :—

१ समानता का सिद्धात।
२ निश्चतता का सिद्धात।
३. सुविधा का सिद्धात।
४ मितव्ययिता का सिद्धात।
५ लोच का सिद्धांत।
६ सरलता का सिद्धात।
७ उत्पादकता का सिद्धात।

(२) **निश्चितता का सिद्धांत (Cannon of certainty)** —इसका आशय यह है कि किसी व्यक्ति को जो कर देना पडे वह निश्चित हो, अन्धा धुन्ध न हो, कर देने वाले तथा अन्य आदमियो को कर देने का समय, ढग व कर की मात्रा स्पष्ट रूप से ज्ञात होनी चाहिये। यदि कर म अनिश्चितता है तो व्यक्ति को कर देने मे कठिनाई होगी और राज्य का बजट भी सफल नहीं हो सकता है।

(३) **सुविधा का सिद्धात (Cannon of Convenience)** —प्रत्येक कर ऐसे समय मे और ऐसी विधि से वसूल किया जाना चाहिये कि न तो करदाता को उसके देने म कठिनाई हो और न राज्य को उसके वसूल करने में ही कोई असुविधा हो। करदाता को कर देने मे सुविधा तब अधिक होती है जब उसके पास पैसा होता है जैसे भारत मे भूमि कर, अन्यथा करदाता और

राज्य दोनों को ही असुविधा होगी। परोक्ष करों में सुविधा का गुण पाया जाता है।

(४) मितव्ययिता का सिद्धांत :—(Cannon of Economy) :— कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिये कि कर की आमदनी का अधिक भाग सरकारी कोष मे जमा हो जाये अर्थात कर वसूल करने का व्यय कम से कम हो। इस सिद्धांत का यह भी अर्थ है कि कर का देश के उत्पादन पर कोई प्रभाव नही पड़ना चाहिये।

उपरोक्त कर-सिद्धांतों के अतिरिक्त निम्न तीन कर सिद्धांत और प्रचलित हैं :—

(५) लोच का सिद्धांत (Cannon of Elasticity) :— कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिये कि जब राज्य को अधिक धन की आवश्यकता हो तो कर सरलतापूर्वक बढ़ाये जा सकें। आय कर इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। कर की दर में थोड़ी सी वृद्धि या कमी करके राजकीय कोष में करोड़ों की आय बढ़ाई या घटाई जा सकती है।

(६) सरलता का सिद्धांत (Cannon of Simplicity) :— कर और कर लगाने का तरीका सीधासादा होना चाहिये जो साधारण व्यक्ति की समझ में आ जाये, आय कर मे यह गुण नहीं पाया जाता है।

(७) उत्पादकता का सिद्धांत (Cannon of Productivity) :— कर ऐसे होने चाहियें कि सरकार को उनसे पर्याप्त आय हो जाय। ऐसा न हो कि कर से थोड़ी ही आय प्राप्त हो और छोटे-छोटे अनेकों कर लगाने पड़ें। एक बार कर देने मे कर दाताओं को इतना बुरा नही लगता जितना कि बार-बार देने मे।

भारत मे इन सिद्धांतों का कहाँ तक पालन किया जाता है :—

भारत मे आय कर, भूमि कर, बिक्री कर, आयात-निर्यात कर व वस्तुओं के उत्पादन पर कर आदि ही मुख्य कर हैं। आय कर में समानता का गुण पाया जाता है। एक निश्चित आय वाले व्यक्ति कोई टैक्स नहीं देते और फिर टैक्स की दर आमदनी के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। आय कर व भूमि कर में निश्चितता का भी गुण है। राज्य को यह ज्ञात हो जाता है कि इन करों से कितनी आमदनी होगी परन्तु आयात-निर्यात कर व बिक्री करों में यह गुण नहीं पाया जाता है। सुविधा के दृष्टिकोण से भूमि कर और वस्तुओं पर लगे कर जैसे बिक्री कर, उत्पादन कर आदि श्रेष्ठ कर हैं। भूमि कर ऐसे समय वसूल किया जाता है जब किसान की फसल कट कर तैयार

हो जाती है। बिक्री कर प्रत्येक उपभोक्ता वस्तु की कीमत के साथ ही थोड़ी थोड़ी मात्रा में अदा कर देता है। आय कर की वसूली में बहुत व्यय होता है, एक पूरा विभाग ही इस कार्य के लिये देश में फैला हुआ है परन्तु आयात कर में मितव्ययिता का गुण पाया जाता है। इसी भांति उत्पादकता और लोच के दृष्टिकोण से आय कर श्रेष्ठ कर है परन्तु इसमें सरलता का गुण नहीं पाया जाता है, यह इतना जटिल है कि विशेषज्ञ भी बहुत सी बातों पर एक मत नहीं हो पाते। परोक्ष करो मे सरलता का गुण तो विद्यमान है ही परन्तु लोच और उत्पादता नही पाई जाती है।

अत देश की कर प्रणाली को सतुलित और आदर्श बनाने के लिये उसमें विभिन्न प्रकार के करों का समावेश किया जाता है।

प्रश्न ६७—प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों का अन्तर स्पष्ट कीजिये। प्रत्येक के लाभ व हानियों की विवेचना कीजिये।

(Distinguish clearly between direct and Indirect taxes Discuss the merits and demerits of each.)

उत्तर :—

प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) :—

प्रत्यक्ष कर वह कर है जो उसी आदमी से मांगा जाता है जिस पर उसका भार डालने की सरकार की इच्छा हो। यह कर करदाता स्वय देता है, इसे वह दूसरों पर टाल नहीं सकता। इसका भार करदाता को स्वय झेलना पड़ता है। आय कर, मालगुजारी, सम्पत्ति कर इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

परोक्ष कर (Indirect Tax) :—

परोक्ष कर उस कर को कहते हैं जो किसी व्यक्ति से इस उद्देश्य या इच्छा से मांगा जाता है कि वह कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर डाल कर क्षति पूर्ति कर लेगा। यह करदाता स्वय ही नहीं देता, इसे वह दूसरों पर टाल देता है। इसका भार किसी अन्य व्यक्ति को झेलना होता है। ऐसे कर सामान्यतः वस्तुओं पर लगाये जाते हैं और वस्तुओं की कीमत मे जोड़ कर ग्राहकों से वसूल कर लिये जाते हैं जैसे सेल्स टैक्स, उत्पादन कर, आयात-निर्यात कर आदि।

प्रत्यक्ष कर के लाभ (Merits of direct Taxes) :—प्रत्यक्ष करो के निम्न लाभ हैं :—

(१) ये न्यायपूर्ण होते हैं :—इनको इस प्रकार लगाया जाता है कि निर्धन लोगों पर इनका बोझा कम पड़े और धनिक लोगों पर अधिक। जिस व्यक्ति मे कर देने की जितनी शक्ति होती है उससे उतना ही कर वसूल किया जाता है। अतः ये कर न्यायपूर्ण होते हैं।

(२) ये निश्चित होते हैं :—करदाता यह जानते हैं कि उन्हें निश्चित रूप में कितनी रकम किस समय देनी है और सरकारी अधिकारी भी जानते हैं कि कुल कितना धन टैक्सों के रूप में वसूल होगा।

(३) ये मितव्ययी होते हैं :—करदाता स्वयं सरकार को कर चुकाता है, बीच में कोई मध्यस्थ नहीं होता। इसलिये इनको एकत्र करने का व्यय भी कम होता है।

(४) ये लोचदार होते हैं :—आर्थिक संकट के समय प्रत्यक्ष कर की थोड़ी सी दर बढ़ा कर काफी आमदनी वसूल की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे आबादी और देश की सुख समृद्धि बढ़ती है, वैसे ही वैसे इन करो की आय अपने आप बढ़ती जाती है। अतः ये कर लचकीले होते हैं।

(५) ये नागरिक चेतना उत्पन्न करते हैं। करदाता कर देते समय इस बात का अनुभव करता है कि वह राष्ट्र के लिये धन दे रहा है। अतः वह उसके सदुपयोग में दिलचस्पी लेने लगता है। करदाता सरकारी खर्च तथा अन्य राज्य के कामो की आलोचना करते हैं।

प्रत्यक्ष कर के दोष (Demerits of direct Taxes) :—

(१) ये असुविधा पूर्ण हैं :—करदाता को अपने हिसाब-किताब विशेष ढंग से रखने पड़ते हैं, उसका पूरा विवरण व अनेकों फार्म आदि भर कर अधिकारियों को भेजने पड़ते हैं और टैक्स तय कराने के लिये स्वयं दफ्तरों मे जाना पड़ता है। इनको एक साथ अदा करना भी बड़ा असुविधाजनक होता है।

(२) इनसे बचने की चेष्टा की जाती है :—प्रत्यक्ष करों के बचन के लिये करदाता हिसाब-किताब गलत बना दिया करते हैं और कर बचा लेते हैं परन्तु जो लोग ईमानदार होते हैं उनको सब कर देना पड़ता है।

(३) कभी-कभी सरकार जनता की कर देने की सामर्थ्य का सही अनुमान नहीं लगा पाती और इच्छानुसार कर लगा देती है। इस कारण देश के किसी वर्ग विशेष के साथ अन्याय की संभावना बढ़ जाती है।

परोक्ष कर के लाभ (Merits of Indirect Tax) —परोक्ष करों में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं —

(१) **ये सुविधाजनक होते हैं** —परोक्ष कर वस्तुओं की कीमतों में मिले रहते हैं। अत करदाता इनको अनुभव नहीं करता। ये थोडी थोड़ी मात्रा में वस्तुओ को खरीदते समय दिये जाते हैं। राज्य भी इनको थोडे से व्यक्तियों से इकट्ठा वसूल कर लेता है।

(२) **ये प्रत्येक से वसूल किये जाते हैं** —गरीब और अमीर सभी वस्तुओ का एक ही कीमत पर क्रय करते हैं। अत प्रत्येक को समान टैक्स देना पडता है।

(३) **इनसे आसानी से बचा नहीं जा सकता है** —ऐसे कर वस्तुओं की कीमत म शामिल रहत हैं। अत जो भी व्यक्ति वस्तु खरीदता है उसको ये कर अवश्य ही देने पडते हैं। वह इनसे बचने का प्रयत्न भी नहीं करता।

(४) हानिकारक वस्तुओं के ऊपर कर लगा कर उनके उपभोग को कम किया जा सकता है और सामाजिक हित की वृद्धि की जा सकती है।

(५) कुछ **परोक्ष कर लोचपूर्ण** भी होते हैं। अनिवार्यताओं पर लगे कर ऐसे ही कर हैं। कर लगान स इनकी माग कम नही होती। अत ऐसी वस्तुओं पर कर दर बढा कर अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

परोक्ष कर के अवगुण (Demerits of Indirect Taxes) —

(१) **ये मितव्ययतापूर्ण नहीं होते** —अंतिम करदाता और राज्य के बीच म अनेकों मध्यस्थ आ जात हैं जो वस्तु के मूल्य को कर की मात्रा से अधिक बढा देते हैं।

(२) **ये न्याय पूर्ण नहीं होते** —निर्धन व धनिक वर्ग सबको ही समान कर देना पडता है जबकि निधनो की कर देय शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है। अत निधनो को अधिक त्याग करना पडता है।

(३) **ये अनिश्चित होते हैं।**—किसी वस्तु के उपयोग की कुल मात्रा का सही सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अत इनकी आय अनिश्चित होती है।

(४) अनिवार्यताओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर लगाये गये कर **लोचदार नहीं होने** क्योंकि कर लगाने स, कीमतें बढ़ती हैं और वस्तु की बिक्री कम हो जाती है।

(५) ये नागरिकता की भावना जाग्रत नहीं करते :—करदाता राज्य को सीधे ही कर नहीं देता बल्कि यह भी अनुभव नहीं करता कि वह कोई कर दे रहा है। कर तो वस्तु की कीमत के साथ अदा कर दिया जाता है। अतः वह राज्य की आय-व्यय मे कोई दिलचस्पी नही लेता।

आवश्यक यह है कि प्रत्येक देश मे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार के कर होने चाहिये।

प्रश्न ६८—एक कर तथा अनेक कर प्रणाली का वर्णन करियेगा तथा एक अच्छी कर पद्धति की विशेषताओं का वर्णन करियेगा।

(Explain fully the single and multiple tax system and also the main characteristics of a good tax system)

उत्तर :—

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि राज्य को एक कर प्रणाली या अनेक कर प्रणाली अपनानी चाहिये। इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों मे भी बहुत मतभेद रहा है। अब हम प्रत्येक के विषय मे विस्तार से अध्ययन करेंगे।

एक कर प्रणाली :—एक कर प्रणाली उस प्रणाली को कहते हैं जिसमे राज्य की तमाम आय एक कर के लगने से प्राप्त होती है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने सरलता के आधार पर एक कर प्रणाली को उचित बताया तथा इसका समर्थन किया था। इसी कारण से समय-समय पर विभिन्न प्रकार के करो के आरोपण पर विशेष महत्व दिया और भूमि कर, आय कर, सम्पत्ति के पूँजी मूल्य पर कर आदि। परन्तु इस कर प्रणाली में एक मुख्य दोष यह है कि कर केवल समाज के एक वर्ग पर ही लगेगा तथा समाज के अन्य व्यक्ति कर भार से बचे रहेंगे तथा एक कर के द्वारा राज्य की तमाम आय भी प्राप्त आसानी से नही हो सकेगी। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्री एक कर प्रणाली के पक्ष मे नही हैं।

अनेक कर प्रणाली :—अनेक कर प्रणाली वह कर प्रणाली है जिसमे करो का भार थोड़ा थोड़ा करके अनन्त मदों में बाँट दिया जाता है तथा इस प्रणाली मे कर भार किसी विशेष मद पर अधिक नहीं होता है। ऐसा करने से कर का भार समाज के सभी व्यक्तियो पर पडेगा तथा राज्य को आवश्यकतानुसार आय आसानी से प्राप्त हो सकेगी। परन्तु यह कर प्रणाली भी व्यवहारिक दृष्टिकोण से भी उचित नही है क्योंकि अनेक प्रकार

के कर होने के कारण इसकी वसूली मे अधिक व्यय होगा तथा करदाताओं को भी असुविधा का सामना करना पड़ेगा।

उचित प्रणाली :—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यवहारिक दृष्टिकोण से न तो एक कर प्रणाली और न अनेक कर प्रणाली उचित हैं। वरन देश में बहुरूपी कर प्रणाली होनी चाहिये।

बहुरूपी कर प्रणाली :—बहुरूपी कर प्रणाली वह प्रणाली है जिसमे कुछ तो बड़े-बड़े कर होते हैं जिनका भार केवल धनी व्यक्तियों पर पड़ता है और जिनसे आय का एक बड़ा अंश प्राप्त होता है और कुछ छोटे छोटे कर होते हैं जिनका भार समाज के लगभग प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। इस प्रकार बहुरूपी कर प्रणाली को ही एक अच्छी कर प्रणाली कहा जा सकता है।

अच्छी कर पद्धति की विशेषतायें

किसी देश की कर पद्धति अच्छी है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है। इसके लिए हमे देखना होगा कि उस देश की कर पद्धति में एक श्रेष्ठ कर पद्धति के गुण हैं या नहीं। एक अच्छी कर पद्धति की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों का समावेश :—एक अच्छी कर प्रणाली में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही प्रकार के कर होने चाहिये। दोनों ही प्रकार के करों के लगाने से समाज के सभी वर्गों पर कर का भार आता है। प्रत्यक्ष कर का भार धनी वर्ग पर तथा परोक्ष कर का भार निर्धन व्यक्तियों पर अधिक होता है। इसलिए कर को न्यायसगत बनाने के लिये समाज मे दोनों ही प्रकार के कर होने चाहिये।

(२) बहुरूपी कर प्रणाली होनी चाहिये :—वास्तविक जीवन में न तो एक कर प्रणाली और न अनेक कर प्रणाली वरन इन दोनों के मध्य का रास्ता अपनाना चाहिये। देश की कर प्रणाली मे कुछ कर ऐसे होने चाहिये जिनका प्रभाव धनी वर्ग के व्यक्तियो पर पड़े तथा कुछ कर ऐसे होने चाहिये जिनका प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर पड़े। इस दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनो ही प्रकार के कर समाज मे लागू होने चाहिये। तभी देश में एक उचित बहुरूपी कर प्रणाली स्थापित हो सकती है।

(३) कर प्रणाली मे सभी कर सिद्धांतों का समावेश :—एक अच्छी कर प्रणाली वही है जिसमे कर के सभी सिद्धान्त पाये जाते हैं। जैसे उत्पादकता, लोचकता, निश्चितता, विविधता, सरलता आदि के गुण। कर

प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे राज्य को आवश्यकतानुसार आय प्राप्त हो सके तथा नागरिकों को देश के प्रति सद्‌भावना बनी रहे। कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिसका देश की आर्थिक उन्नति पर बुरा प्रभाव न पड़े तथा साथ ही कर प्रणाली के द्वारा देश में धन संचय में भी कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक अच्छी कर प्रणाली वही है जिससे देश के आर्थिक विकास में कोई बाधा न हो तथा राष्ट्रीय आय आवश्यकतानुसार प्राप्त हो सके। कर आरोपण के समय अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum social Advantages) की ओर ध्यान रखना भी एक अच्छी कर प्रणाली की विशेषता है।

अध्याय ४६

भारत में केन्द्रीय राजस्व

प्रश्न ६६—भारत की केन्द्रीय सरकार की आय-व्यय की मुख्य मदों की विवेचना कीजिये।

(*Discuss the main heads of Income and Expenditure of the central Government of India*)

उत्तर :—

भारत में गणतन्त्र का नया संविधान २६ जनवरी सन् १६५० से लागू किया गया। इस संविधान के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के आय तथा व्यय के साधनों को भी निश्चित किया गया। इस प्रकार के विभाजन का आधार उनसे सम्बन्धित कार्य थे।

भारत की केन्द्रीय सरकार की आय की मुख्य मदें निम्नलिखित हैं —

(१) **आयात निर्यात कर (Customs Duties)** :—भारत से जो वस्तुयें बाहर भेजी जाती हैं उन पर सरकार निर्यात कर (Export Duty) लेती है और जो वस्तुयें विदेशों से भारत में आती हैं, उन पर सरकार आयात (*Import duty*) लेती है यह कर या तो माल के मूल्यानुसार या माल की मात्रानुसार (Specific) लगाया जाता है। ब्रिटिश शासन

जब तक काश्मीर समस्या का हल नहीं हो जाता, पाकिस्तान से हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं हो जाते, भारत सरकार को अपनी फौजों के ऊपर यह व्यय करते रहना पड़ेगा।

केन्द्रीय सरकार के व्यय के साधन :—

१. सुरक्षा पर व्यय।
२. शासन पर व्यय।
३. निर्माण कार्य पर व्यय
४. कर वसूली पर व्यय।
५. ब्याज।
६. निर्वासित सहायता पर व्यय।
७. अन्न आयात पर व्यय।
८ अन्य व्यय।

(२) नागरिक शासन पर व्यय (Civil administration) :—देश का शासन चलाने मे राज्य को बहुत बडी रकम व्यय करनी पडती है, इसके अन्तर्गत राज्य-ससद, लोकसभा व दूतावास सम्बन्धी व्यय शामिल हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इस मद पर व्यय और अधिक बढ गया है, क्योकि विदेशो मे नये नये दूतावास खोले गये हैं और देश मे नये-नये विभागों मे अफसरों की नियुक्ति की गई है। मितव्ययिता पूर्वक व्यय करके इस मद पर कुछ बचत आवश्यक है। १९५८ ५९ मे इस मद पर २०० करोड रुपये का व्यय अनुमानित था।

(३) निर्माण कार्य पर व्यय (Nation Building Expenditure) :—शिक्षा, स्वास्थ्य, सरकारी इमारतें, कर्मचारियों के मकान, रोशनी, सडक, आदि के उचित प्रबंध व देखभाल पर सरकार को काफी धन खर्च करना होता है।

(४) कर वसूली पर व्यय :—विभिन्न प्रकार के करों को वसूल करने के लिये देश में लाखों कर्मचारी नियुक्त हैं। उनके वेतन भत्ते आदि का व्यय इस मद में आता है। गतवर्ष इस मद पर ८५ करोड का व्यय हुआ।

(५) ब्याज (Interest) :—भारत सरकार जनता से और विदेशी सरकारों और सस्थाओं से ऋण लेती है जिस पर उसे ब्याज देना पड़ता है गतवर्ष ४० करोड रुपये के व्यय का अनुमान था।

(६) निर्वासित सहायता पर व्यय (Expenditure on Rehabilitation) :—देश के विभाजन के बाद से भारत सरकार शरणार्थियों को बसाने और उन्हें काम पर लगाने का सतत प्रयत्न कर रही है। इस कार्य पर सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है।

(७) अन्न आयात पर व्यय (Expenditure on food grains import) :—पिछले कई वर्षों से बाढ आ जाने और फसल नष्ट हो जाने के कारण देश में अन्न की कमी है। भारत सरकार प्रतिवर्ष कोई १०० करोड़ रुपये व्यय करके विदेशों से अन्न आयात करती है।

(८) अन्य व्यय (Miscellanious) —राज्यों को सहायता, कर्मचारियों को पेंशन, मुद्रा व टकसाल, आदि मदों पर भी भारत सरकार को व्यय करना पड़ता है।

—०—

अध्याय ४७

भारत में प्रान्तीय राजस्व

प्रश्न १००—उत्तर-प्रदेशीय सरकार की आय-व्यय की मुख्य मदें क्या हैं? राज्य के बढ़ते हुए खर्चों को पूरा करने के लिये आय प्राप्ति के लिये अपने सुझाव दीजिये।

(What are the principle heads of income and expenditure of the U. P. Government? Suggest measures to increase revenues to meet increasing State Expenditure.)

उत्तर .—

नये विधान के अनुसार राज्य सरकारों को कुछ कार्य सौंपे गये हैं तथा उनके आय तथा व्यय के साधन भी निश्चित किये गये हैं। आलोचकों का कहना है कि प्रान्तीय सरकारो की आय बेलोचदार है और व्यय की सीमा अनिश्चित है क्योंकि राज्य सरकारो को अनेक राष्ट्र निर्माण के कार्य करने पड़ते हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार की आय के मुख्य साधन :—

(१) मालगुजारी (Land Revenue) :—राज्य सरकारों की आय का एक प्रमुख साधन भूमि कर अथवा मालगुजारी है। इस मद में साधारण मालगुजारी, सरकारी स्टेट की बिक्री, जमीन का महसूल आदि सम्मिलित रहता है। इस मद से आय निश्चित रहती है। यू० पी० मे भूमि कर की दरो में परिवर्तन केवल ३० या ४० वर्ष मे होता है क्योंकि यहां स्थाई बंदोबस्त प्रचलित है। राज्य में जमींदारी उन्मूलन होने के पश्चात से इस मद से आय घटती जा रही है।

(२) कृषि आय कर :—यू० पी० मे कृषि आय कर १९४८—४९ में लगाया गया था यह कर उन्हीं किसानों पर लगाया जाता है जिनकी ५० एकड से अधिक भूमि और ३००० रु० से अधिक आय है। इस कर मे अभी कोई विशेष आय नहीं होती।

राज्य सरकार के आय के साधन :—

१. मालगुजारी।
२. कृषि आय कर।
३. संघीय आय कर का भाग।
४. आबकारी कर।
५. बिक्री कर।
६. मनोरंजन कर।
७. अन्य कर।
८ नागरिक शासन।
९ सिचाई से आय।
१०. बस यातायात से आय।

(३) संघीय आय कर का भाग :—प्रत्येक राज्य को केन्द्रीय सरकार द्वारा आय कर का एक निश्चितभाग दिया जाता है। उत्तर-प्रदेश सरकार को भी इससे काफी आय प्राप्त हो जाती है।

(४) आबकारी कर (Excise Duties) :— भाग, चरस, गांजा, शराब आदि नशीली वस्तुयें बनाने पर राज्य का एकाधिकार है। इन वस्तुओं के उत्पादन पर कर लगता है और इनके बेचने वालों से लाइसेंस शुल्क लिया जाता है। अत: राज्य को काफी आमदनी हो जाती है। राज्य की सरकार द्वारा मद्य निषेध नीति (Probibition) अपनाई जाने के कारण इस मद से आय धीरे-धीरे गिरती जा रही है।

(५) बिक्री कर (Sales Tax) :—सर्वप्रथम १९४८—४९ में यू० पी० सरकार ने राज्य मे बिक्री कर लागू किया। आज यह राज्य की आय का एक प्रमुख साधन है। यह एक परोक्ष कर और ग्राहकों पर टाल दिया जाता है। अत: विशेषतया अनिवार्यताओं के ऊपर यह नहीं लगाना चाहिये।

(६) मनोरंजन कर :—सिनेमा, थियेटर इत्यादि देखने वालों से सरकार मनोरजन (Entertainment Tax) वसूल करती है। राज्य में इसकी दर ५० नया पैसा प्रति रुपया है। यह कर बड़ा सुविधाजनक है। राज्य को इसके वसूल करने मे और उपभोक्ता को इसे अदा करने में कोई विशेष कठिनाई नही होती।

(७) स्टाम्प, जगल, रजिस्ट्री व मोटर कर —स्टाम्प में कर्कों पर लगाये गये टिकट, कोर्ट फीस तथा रसीदी टिकट की आय सम्मिलित है। जगलो की लकडी बेचकर तथा पशुओं को चराने से आय प्राप्त होती है।

मोटर चलाने की लाइसैंस फीस, मकान, दुकान व जमीनों की रजिस्ट्री, फीस से भी राज्य को आय प्राप्त होती है।

(८) **नागरिक शासन** :—इसमे न्यायालयों, जेल, पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, सहकारिता तथा उद्योग धन्धों मे प्राप्त होने वाली आय सम्मिलित है।

(९) **सिंचाई से आय** :—सरकार को नहरों और ट्यूबवैलों द्वारा सिंचाई करने मे सिंचाई कर मिलता है। यह आय इस मद मे शामिल की जाती है।

(१०) **बस यातायात से आय** :—राज्य मे सवारी यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है मुख्य सड़कों पर राज्य की बसें चल रही हैं। इससे भी राज्य को काफी आय हो जाती है।

उत्तर प्रदेश सरकार की व्यय की मदें :—

(१) **शांति व्यवस्था तथा सुरक्षा** :—राज्य मे शान्ति स्थापित करने के लिये सरकार को पुलिस, जेल, न्यायालय आदि रखने पड़ते हैं। इन सब पर राज्य सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है।

(२) **राष्ट्र निर्माण कार्य** :—राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी व्यय के अन्तर्गत स्वास्थ्य व चिकित्सा, शिक्षा, कृषि विकास, सहकारिता का विकास, ग्रामीण विकास, कुटीर उद्योग धन्धों के विकास आदि का व्यय सम्मिलित होता है। इन सब सुविधाओं के ऊपर राष्ट्र के लोगों का जीवन निर्भर करता है। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मे इन मदो पर व्यय बढ़ता जा रहा है लेकिन इन सुविधाओं के महत्व और इनकी राज्य में आवश्यकता को देखते हुए इन पर व्यय अधिक होना चाहिये।

> **राज्य सरकार के व्यय के साधन** :—
> १ शांति व्यवस्था एवं सुरक्षा।
> २. राष्ट्र निर्माण कार्य।
> ३ कर वसूली मे व्यय।
> ४. सिंचाई।
> ५. सूद।
> ६ सार्वजनिक निर्माण।

(३) **कर वसूली में व्यय** :—राज्य द्वारा लगाये गये करों को वसूल करने मे भी सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है।

(४) **सिंचाई** :—नहरो, ट्यूबवैलों व तालाब आदि के बनवाने मे जो व्यय होता है वह इस मद के अन्तर्गत आता है।

(५) **सूद** —राज्य जनता से व केन्द्रीय सरकार से ऋण लेता है उस ऋण का ब्याज भी व्यय की एक प्रमुख मद है।

(६) **सार्वजनिक निर्माण** —राज्य मे सडक, पुल, सरकारी इमारतें व राज्य कर्मचारियो के मकान आदि बनवाने मे राज्य को प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये व्यय करने पडते हैं। सार्वजनिक निर्माण विभाग (P. W. D.) के कर्मचारियों के वेतन, भत्ते आदि का व्यय भी इस मद मे सम्मिलित हैं।

राज्य की आय बढ़ाने के सुझाव (Measures to enhance state revenues)

राज्य के बढते हुए व्ययो को पूरा करने के लिये राज्य की आय बढ़ाना आवश्यक है। यह निम्न प्रकार से हो सकता है:—

(१) आमदनी के नये साधन ढूढ कर

(२) पुराने साधनो की आय बढा कर

(३) व्यय मे मितव्ययिता करके।

राज्य मे विकास कर (*Development levy*) लगाया जाना चाहिये। राज्य मे बहुत सी विदेशी बिजली कम्पनियाँ काम कर रही है। उनका राष्ट्रीयकरण करके राज्य की आय बढाई जा सकती है। पुराने करों की दरो मे वृद्धि की कोई जगह नही है। मनोरजन कर की दर देश म सबसे ऊची है, स्टाम्प ड्यूटी, रसीद टिकट, रजिस्ट्रेशन फीस आदि भी काफी ऊची हैं। अत राज्य को चाहिये कि वह अपने व्यय मे मितव्ययता बरते, कर प्राप्ति व्यय को घटाये, सुरक्षा शासन आदि पर व्यय कम करे। सघ सरकार अपना व्यय कम करके राज्य सरकारो को अधिक सहायता दे सकती है।

अध्याय ४८

भारत में स्थानीय राजस्व

प्रश्न १०१—नगरपालिकाओं के आय व्यय के साधनो की विवेचना कीजिये।

(Discuss the source of the income and expenditure of Municipalities)

उत्तर :—

नगरपालिका एक स्थानीय संस्था है जिसका कार्य क्षेत्र नगर होता है। इस पर स्थानीय समस्याओं के हल करने का कार्य-भार होता है।

नगरपालिका की आय की मदें :—

(१) व्यापार कर —जब किसी नगर में कुछ माल बिकने आता है अथवा नगर से कुछ माल बाहर भेजा जाता है तो नगरपालिकायें उस माल पर कर लगाते हैं। चुंगी (Octroi Duty) सीमा कर (Terminal Tax) और राहदारी कर (Toll Tax) आदि इस प्रकार के कर हैं। ये भारतवर्ष की नगरपालिकाओं की आय के मुख्य साधन हैं। चुंगी एक परोक्ष कर है। अतः अनिवार्यताओं पर आरामदायक और विलासिता के पदार्थों की अपेक्षा कम चुंगी लगाई जाती है। इसके वसूल करने में काफी व्यय होता है। अतः चुंगी की अपेक्षा आजकल राहदारी और सीमा कर पसन्द किया जाता है।

> **नगरपालिका के आय के साधन —**
> १ व्यापार कर।
> २ मकान या सम्पत्ति कर।
> ३. निजी सम्पत्ति से आय।
> ४. मूल्य या महसूल।
> ५. सरकारी सहायता।
> ६ फीस और लाइसेंस।
> ७ अन्य कर।

(२) मकान या सम्पत्ति कर :—शहरों में मकान, दुकान व अन्य सम्पत्ति पर नगरपालिकायें उसके स्वामी पर कर लगाती हैं। यह एक प्रत्यक्ष और अनुपातिक कर है परन्तु मकानों की पूर्ति बेलोच होने के कारण यह गरीब किरायेदारों पर टाल दिया जाता है।

(४) निजी सम्पत्ति से आय :—इसमें नगरपालिकाओं की भूमि मकानों व धर्मशालाओं का किराया बाजारों व कसाई खानों से प्राप्त आय तथा नगरपालिका द्वारा किये गये व्यवसाया जैसे दूध, घी का काम, ट्राम चलाना, आदि की आय शामिल है।

(४) मूल्य या महसूल (Rates) :—कुछ नगरों में नगरपालिकायें नागरिकों को कुछ सेवायें प्रदान करती हैं। जैसे बिजली व पानी सप्लाई करना। इन सेवाओं के उपभोग करने वालों से कुछ मूल्य चार्ज करके, आय प्राप्त की जाती है।

(५) सरकारी सहायता —नगरपालिकाओं को राज्य सरकार द्वारा

शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण व अन्य साधारण कार्यों के लिए सहायता भी दी जाती है।

(६) **फीसें और लाइसेंस** —नगरपालिकायें अपनी सीमा मे चलने वाले तांगे, इक्के, रिक्शे, साइकिलो आदि के स्वामी से कुछ कर लेती हैं जो लाइसेंस फीस कहलाती हैं। शराब व दवाई बेचने वालो को भी लाइसेंस लेना पडता है। कुत्ते व अन्य जानवरो आदि पर भी कर लगाया जाता है।

(७) **अन्य कर** :–कुछ नगरपालिकायें व्यक्तियो से धन हैसियत कर, यात्री कर, व्यवसाय कर (खांडसारी, तेल के कोल्हू, रुई ओटने की मशीनें आदि पर) भी वसूल करती हैं। तीर्थ स्थानो की नगरपालिकाओं को यात्री कर से काफी आय प्राप्त होती है।

नगरपालिकाओं के व्यय की मदे .—

(१) **कर वसूली का व्यय** :—नगरपालिका के साधारण प्रबन्ध और कर वसूल करने के लिये दफ्तर और चुगी-घरो के कर्मचारियो के वेतन भत्ता, पेंशन आदि का व्यय इसमे सम्मिलित है।

नगरपालिका के व्यय के भेद —
१ कर वसूली पर व्यय।
२ जनरक्षा।
३ जन स्वास्थ्य।
४ जन सुविधा।
५ जन शिक्षा।
६ सार्वजनिक निर्माण।

(२) **जन रक्षा** —यह व्यय सडको और गलियो मे रोशनी, पुलिस या चौकीदारी या आग बुझाने की मोटर, जगली जानवरो व सांपो को मारने का इनाम आदि की व्यवस्था पर होता है।

(३) **जन-स्वास्थ्य** —नगर मे सफाई का प्रबन्ध कराने, अस्पताल खुलवाने, छूत आदि बीमारियो के फैलने पर टीके लगवाने, साफ व स्वच्छ पानी का प्रबन्ध करने आदि पर नगरपालिकाओ को व्यय करना पडता है। खाद्य पदार्थों की शुद्ध बिक्री का प्रबन्ध आदि के लिये भी कर्मचारियो पर व्यय किया जाता है।

(४) **जन-सुविधा** —जनता की सुविधा के लिये नगरपालिकायें धर्मशालायें, विश्राम-गृह, तागा व रिक्शा-स्टैंड, पार्क, बाजार व छायादार वृक्षो आदि के प्रबन्ध पर काफी व्यय करती है।

(५) **जन शिक्षा** .—जनसाधारण की शिक्षा के लिये, स्कूल, पाठशालायें

रात्रि-पाठशालायें, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था पर काफी व्यय किया जाता है। उत्तर प्रदेश मे प्राइमरी स्कूल स्तर तक अनिवार्य व मुफ्त शिक्षा है। इसका प्रबन्ध नगरो मे ये नगरपालिकाओं द्वारा किया जाता है।

(६) **सार्वजनिक निर्माण** —सड़कें नाले, नालियाँ, पुल, इमारतें व अन्य नगरपालकीय भवनो को बनवाने का व्यय इस मद मे शामिल किया जाता है।

प्रश्न १०२—उत्तर प्रदेश मे जिला बोर्डों के आय व्यय की मुख्य मदों को बताइये।

(Discuss the main heads of income and expenditure of District Boards in Uttar Pradesh.)

उत्तर —

जो कार्य नगरपालिकायें नगरो में करती हैं प्राय वही कार्य जिला बोर्ड गावो में करते हैं। उत्तर प्रदेश म जिला बोर्डों को समाप्त कर दिया गया है अब उनकी जगह अन्तरिम जिला परिषदें (**Interim District Councils**) जिला बोर्डों के कार्यों को कर रही हैं —

जिला बोर्ड की आय के साधन —

(१) **अबवाब** —जिला बोड की आय का मुख्य साधन अबवाब (**Land cess**) है जो मालगुजारी के साथ ही राज्य द्वारा वसूल कर लिया जाता है और राज्य वे जिला बोर्डों मे बाट दिया जाता है। जिला बोर्ड की आय का यह सर्वप्रमुख साधन है।

(२) **हैसियत कर** —गाँव के व्यक्तियों से उनकी आय के अनुसार वसूल किया जाता है।

(३) **सम्पत्ति कर** —जिला बोर्ड भी गांव की सम्पत्तियों पर कर लगाती है।

(४) **निज सम्पत्ति से आय** —जिला बोर्ड को कुछ आय अपनी सरायों, व इमारतों से होती है जिनको किराये पर उठा दिया जाता है।

(५) **राज्य से सहायता** —राज्य सरकार बहुत से जनहित व जन-निर्माण सम्बन्धी कार्यों के लिये जिला बोर्डों को सहायता देती है।

(६) **मार्ग शुल्क** —अपनी सीमा से होकर गुजरने वाली नदियों के ऊपर घाट शुल्क चार्ज किया जाता है। नदियों के ऊपर अस्थाई पुल बनवा-

कर उनके ठेके उठा दिये जाते हैं। इससे जिला बोर्डों को कुछ आय हो जाती है।

(७) कांजी हौस (Cattle House)——इनमे आवारा घूमने वाले पशुओ को बन्द कर दिया जाता है जिनको कुछ जुर्माना अदा करने के पश्चात ही उनके मालिकों को वापिस किया जाता है। इससे भी जिला बोर्ड को आय होती है।

(८) खेती के बीज व औजारो की बिक्री से आय व गाव मे लगाने वाले हाट, बाजार, मेले व प्रदर्शनियो मे दुकानो के किराये से आय आदि भी जिला बोर्ड की आय के मद हैं।

जिला बोर्ड के आय के मद

जिला बोर्ड अपनी आय को निम्न मदो पर व्यय करते हैं :—

(१) गाँवों में प्राइमरी स्कूल व पुस्तकालयो की व्यवस्था।
(२) अस्पताल खुलवाना, टीके लगवाना व मलेरिया की रोकथाम।
(३) जानवरों के इलाज के लिए पशु चिकित्सालय खोलना।
(४) हाट, बाजार, मेले व प्रदर्शिनियो का प्रबध।
(५) सड़क, पुल, घाट, सार्वजनिक स्थान व अन्य इमारतें बनवाना।
(६) चरागाह का प्रबन्ध, वृक्ष व बाग लगवाना।
(७) कर वसूल करना।
(८) ऋणों पर ब्याज देना।

विनिमय
(EXCHANGE)

अध्याय ४६

विनिमय

प्रश्न १०३—विनिमय का अर्थ स्पष्ट कीजिये। विनिमय से दोनों पक्षों को किस प्रकार लाभ होता है ?

(Explain the meaning of the term 'Exchange' Show how the two parties are benefitted by Exchange ?)

उत्तर :—

विनिमय का अर्थ :—

'दो पक्षों अथवा दो व्यक्तियों के बीच होने वाले धन अथवा सम्पत्ति के पारस्परिक, ऐच्छिक तथा वैधानिक परिवर्तन को विनिमय कहते हैं।" साधारणतया विनिमय का अर्थ वस्तुओं व सेवाओं का अदल-बदल है परन्तु यदि यह धन का हस्तातरण ऐच्छिक वैधानिक व पारस्परिक नहीं है तो इस क्रिया को विनिमय नहीं कह सकते। यदि राम ५ रु० का एक फाउनटेनपैन एक पुस्तक विक्रेता के यहां से खरीदता है तो यह क्रिया विनिमय कहलायेगी क्योंकि यह दोनों पक्षों (खरीददार व विक्रेता) की इच्छानुसार, वैधानिक ढग से की गई है। मान लीजिये कि एक विद्यार्थी कालिज मे जुर्माना देता है, यह कार्य वैधानिक तो है पर ऐच्छिक नहीं। इसी प्रकार यदि चोरी किसी की किताब चुराले तो किताब की यह अदल-बदल भी विनिमय नहीं होगी क्योंकि यह वैधानिक नहीं है। अतः धन का पारस्परिक, ऐच्छिक व वैधानिक हस्तातरण ही विनिमय कहा जायेगा।

विनिमय की निम्न शर्तें है :—

(१) दो व्यक्तियों अथवा पक्षों का होना।

(२) धन का हस्तांतरण।

(३) हस्तांतरण पारस्परिक, इच्छानुसार व वैधानिक होना।

विनिमय के प्रकार (*Forms of Exchange*) :—

विनिमय के दो तरीके हैं :—(१) अदल बदल और (२) क्रय विक्रय अदल-बदल प्रथा (Barter system) के अन्तर्गत एक वस्तु या सेवा का दूसरी वस्तु या सेवा से सीधे ही परिवर्तन होता है, जैसे एक किसान का गेहूं के बदले में कपड़ा लेना, एक जुलाहे का कपड़े के बदले मे जूता लेना आदि। **क्रय-विक्रय** प्रणाली (Purchase and Sale) के अन्तर्गत विनिमय द्रव्य के माध्यम द्वारा

होता है। पहले वस्तुओं को द्रव्य से बदला जाता है फिर उस द्रव्य से अपनी आवश्यक वस्तुयें खरीदी जाती हैं। प्रथम क्रिया को क्रय (Purchase) और द्वितीय क्रिया को विक्रय (Sale) कहते हैं।

विनिमय द्वारा दोनों पक्षों को लाभ होता है —

यह कहा जाता है कि एक व्यक्ति का लाभ दूसरे की हानि द्वारा होता है (**One man's gain is another man's loss**), इसी दृष्टिकोण के कारण लोगो मे यह भ्रमात्मक विचार पाया जाता है कि विनिमय से दोनो पक्षों को लाभ नहीं होता। यदि एक पक्ष को लाभ होता है तो दूसरे पक्ष को हानि। परन्तु यदि ऐसी बात है तो विनिमय होता क्यों है? वस्तुत यह बात गलत है। विनिमय द्वारा दोनो पक्षों को लाभ होता है।

विनिमय द्वारा मनुष्य ऐसी वस्तु प्राप्त करना चाहता है जो उसके पास नहीं है परन्तु वह उसकी कोई आवश्यकता पूर्ति करती है अर्थात उसकी उस उपयोगिता है। उसके बदले मनुष्य अपनी वह वस्तु देता है जो उसके पास अधिक है और जो उसकी आवश्यकता पूर्ति के काम नहीं आती। अर्थात जिसकी उसे उपयोगिता कम है। अत विनिमय द्वारा व्यक्ति अपने लिये कम उपयोगिता की वस्तु देकर अधिक उपयोगिता की वस्तु ले लेता है और उस उपयोगिता का लाभ होता है। दूसरे पक्ष के मन मे भी ठीक यही विचारधारा काम करती है। दोनों पक्ष समझते हैं कि विनिमय में वे देते कम और लेते अधिक हैं। अत **विनिमय से दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ होता है।**

प्राचीन अर्थशास्त्री 'लाभ' का अर्थ उपयोगिता के लाभ से नही बल्कि 'द्रव्य के लाभ' से लगाते थे। इसीलिये उनका मत था कि विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ नही होता। विनिमय या तो समान मूल्य वाली या असमान मूल्य वाली वस्तुओं का ही होता है। मान लीजिये, राम के पास एक फाउन्टेनपेन है जिसकी कीमत ५ रु० है। राम इस फाउन्टेनपेन को बेकार समझता है और उसके बदले एक किताब लेना चाहता है। सुरेश के पास वह किताब है जो राम चाहता है परन्तु उसके लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। किताब की कीमत ३ रु० है। वह इस किताब के बदले मे एक फाउन्टेनपेन लेना चाहता है। दोनो अपनी अपनी वस्तुओं का विनिमय कर लेते हैं। इस विनिमय मे राम को २ रु० की हानि होगी और सुरेश को २ रु० का लाभ। परन्तु वर्तमान अर्थशास्त्री कहेंगे कि राम और सुरेश दोनों को ही लाभ हुआ है। राम कम उपयोगिता की वस्तु (फाउन्टेनपेन) देकर अधिक उपयोगिता वाली वस्तु (किताब) प्राप्त करता है और सुरेश भी कम उपयोगिता की वस्तु

(किताब) के बदले में अधिक उपयोगिता की वस्तु (फाउन्टेनपेन) प्राप्त करता है। अत. दोनों को ही उपयोगिता का लाभ होता है। इसका कारण यह है कि एक ही वस्तु के लिए द उपयोगितायें होती हैं—एक उस व्यक्ति को जो उसे लेता है और दूसरी उसे देता है। लेने वाले को वस्तु की उपयोगिता देने वाले की अपेक्षा अधिक होती है।

इसलिये यह कहना भी सत्य है कि विनिमय में अपेक्षाकृत अतिरिक्त पदार्थों का अपेक्षाकृत आवश्यक पदार्थों से अदल-बदल किया जाता है, **(Exchange is the barter of the comparatively superflous for the comparatively necessary)** जिस व्यक्ति पर जितनी चीजें अपनी आवश्यकताओं से अधिक होती हैं उसके अतिरिक्त चीज को वह दूसरे व्यक्ति की अतिरिक्त चीज से बदल लेता है जिसकी उसको अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक होती है। यह बात दोनों ही पक्षों के साथ लागू होती है।

उदाहरण —मान लीजिये अ के पास गेहूं और ब के पास चावल हैं। मान लीजिये दोनों का स्वभाव एक ही प्रकार का है। उनके लिये गेहूं और चावल की विभिन्न इकाईयों की उपयोगिता इस प्रकार है —

वस्तु की इकाइयाँ	गेहूं (अ)	चावल (ब)
१	३०	३२
२	२४	२५
३	२०	२१
४	१६	१६
५	११	१२
६	८	६

अ गेहूं की अन्तिम इकाई जिसकी उपयोगिता ८ है देकर चावल की पहली इकाई जिसकी उपयोगिता ३२ है, खरीद लेता है। अत उसको ३२—८=२४ इकाई उपयोगिता का लाभ होगा। इस प्रकार ब चावल की अन्तिम इकाई जिसकी उपयोगिता ६ है देकर गेहूं की पहली इकाई जिसकी उपयोगिता ३० है, प्राप्त कर लेगा। अत उसको ३०—६=२१ इकाई की उपयोगिता का लाभ होगा। अत हम कह सकते हैं कि विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ होता है। जब दोनों में से किसी एक अथवा दोनों को विनिमय से हानि होने लगेगी तो विनिमय रुक जायगा। उपरोक्त उदाहरण में अ और ब चावल और गेहूं की ४ इकाइयाँ ही खरीदेंगे। पाँचवीं इकाई खरीदने पर दोनों को हानि होगी।

प्रश्न १०४—अदल-बदल की परिभाषा लिखिये। इसके दोषों का उल्लेख करो और बताओ कि किस प्रकार द्रव्य द्वारा ये दोष दूर हो गये हैं ?

(Define Barter. Discuss its incovenfences and state how the use of money has removed these difficulties ?)

उत्तर :—

जब किसी वस्तु या सेवा का विनिमय किसी अन्य वस्तु या सेवा से किया जाय तो उसे वस्तु विनिमय या अदल बदल (Barter) कहते हैं। आर्थिक जीवन के विकास के आरम्भ मे श्रम-विभाजन के साथ ही साथ 'अदल-बदल' प्रथा का जन्म हुआ था मानवीय आवश्यकतायें बहुत ही सीमित और साधारण थी। एक दूसरे की वस्तुओं का आपस मे आदान-प्रदान करके आवश्यकतायें सतुष्ट कर ली जाती थी। लेकिन आर्थिक जीवन के विकास और सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ वस्तु परिवर्तन प्रणाली मे अनेक कठिनाइयाँ अनुभव की जाने लगीं और द्रव्य के प्रयोग से धीरे-धीरे अदल-बदल का स्थान क्रय-विक्रय (Purchase and Sale) ने ले लिया।

अदल बदल की कठिनाइयां (Incovencience of Barter) :—

अदल-बदल की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) आवश्यकताओं के दोहरे संयोग का अभाव (Lack of Double coincedence of wants) :—अदल-बदल के लिये यह आवश्यक है कि हम ऐसे व्यक्ति को खोजें जो न केवल हमे अपनी वस्तु को देने को तैयार है बल्कि बदले में हमारी वस्तुयें लेने को भी तैयार है। दूसरे शब्दों मे दो ऐसे व्यक्तियों का होना आवश्यक है जिनकी आवश्यकताओं का एक दूसरे से मेल खाता हो। मानलीजिये एक व्यक्ति ऐसा तो मिल जाता है जो अपनी वस्तु देने को तैयार है परन्तु बदले में हमारी वस्तु स्वीकार नहीं करता तो अदल बदल नहीं होगा। दोनों व्यक्ति मिलकर अब एक ऐसे व्यक्ति को खोजेंगे जो पहले व्यक्ति की वस्तु को चाहता हो और बदले में वह वस्तु देने को तैयार हो जिसे दूसरा आदमी चाहता है। जब तक ऐसा व्यक्ति न मिलेगा, वस्तु-विनिमय नहीं हो सकती।

> अदल बदल की कठिनाइयां :—
> १. आवश्यकताओं के दोहरे संयोग का अभाव।
> २. मूल्य के मापक का अभाव।
> ३. विभाजन की कठिनाइयाँ।

यदि राम कपडा देकर जूता लेना चाहता है तो उसे ऐसे व्यक्ति को ढूढना पड़ेगा जो जूता देकर कपडा लेने को तैयार हो। मानलीजिये सोहन जूता तो देना चाहता है पर बदले में तेल चाहता है, तो राम और सोहन मिलकर ऐसे व्यक्ति की तलाश करेंगे जो कपडा लेकर तेल दे दे। इस प्रकार इच्छाओं के दोहरे संयोग के अभाव मे बडी कठिनाई होती है और वस्तु परिवर्तन नही हो पाता।

द्रव्य के प्रयोग से यह कठिनाई दूर हो गई है। अब राम को यह आवश्यक नही कि वह ऐसा व्यक्ति ढूंढे जो कपडा लेकर जूता देदे। अब वह एक ऐसा व्यक्ति ढूढेगा जो कपडा लेने को तैयार है। उसको घडी देकर बदले मे द्रव्य मिलेगा और द्रव्य मे जूता व अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुयें खरीद लेगा।

(२) मूल्य के मापक का अभाव :—(Want of a common Measure of Value) :—अदल-बदल प्रणाली के अन्तर्गत बहुत सी वस्तुओ और सेवाओ के विषय मे यह याद रखना पडता है कि अमुक वस्तु के बदले मे दूसरी वस्तुयें कितनी लेनी या देनी हैं। एक सेर तेल के बदले मे कितना गुड, कितना कपडा, कितना गेहू, कितना चना आदि चाहिये, यह सब हर समय याद रखना पडता है। कोई ऐसा सर्वमान्य माप नहीं होता जिसको आधार मान कर सब वस्तुयें एक दूसरे से बदली जा सकें। अतः वस्तु परिवर्तन मे बडी असुविधा उत्पन्न हो जाती है।

द्रव्य के प्रयोग से यह कठिनाई भी दूर हो गई है। आजकल प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा मे याद रखना पडता है जो अपेक्षाकृत बहुत ही आसान कार्य है। विनिमय मुद्रा के माध्यम से किया जाता है। अतः यह कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

(३) विभाजन की कठिनाई (Difficulty of sub-division) :— अदल-बदल की तीसरी कठिनाई यह है कि कुछ वस्तुओं का विभाजन नहीं किया जा सकता और यदि उनका विभाजन कर भी दिया जाये तो वे बेकार हो जाती हैं। मानलीजिये ५ मन गेहू के बदले १ घोडा प्राप्त हो सकता है यदि किसी व्यक्ति के पास १$\frac{1}{4}$ मन गेहू है तो क्या वह १/४ घोडा प्राप्त कर सकता है? नहीं—क्योंकि घोडा बांटा नहीं जा सकता और यदि बांट दिया जाये तो वह बेकार हो जाता है।

इसी प्रकार मानलीजिये एक गाय के बदले मे तीन बकरियाँ मिलती हैं। यदि गाय वाला १ बकरी लेनी चाहे तो गाय की अविभाज्यता के कारण वह उसको नहीं ले सकता।

परन्तु द्रव्य के चलने ने अदल बदल की इस असुविधा को भी दूर कर दिया है। अब गाय वाला उसके टुकड़े नहीं करता वह बाजार में गाय के बदले द्रव्य प्राप्त कर लेता है। प्राप्त द्रव्य मे से कुछ से वह बकरी खरीद लेता है और शेष द्रव्य का उपभोग अन्य आवश्यक वस्तुओं के खरीदने में करता है।

प्रश्न १०५—अदल बदल की प्रमुख असुविधाओं का उल्लेख करो? क्या यह प्रणाली अब पूर्णतया समाप्त हो चुकी है?

(Discuss the principle inconveniences of Barter Has it been completely finished in the modern times ?)

उत्तर :—

प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न १०४ का उत्तर पढिये।

वर्तमानयुग मे वस्तु परिवर्तन —अदल बदल की प्रथा एक ऐसे समाज मे सफल हो सकती है जहा के व्यक्तियों की आवश्यकतायें बहुत ही सीमित और साधारण होती हैं, जहा विनिमय का क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है और जहाँ समाज आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है। अत. ससार के उन भागों मे जहा उपरोक्त दशायें पाई जाती हैं। अदल बदल की प्रथा अब भी प्रचलित है। भारतीय गावों मे व्यक्तियो की आवश्यकतायें थोडी सी और साधारण हैं जीवन की अनेकों अनिवार्यतायें इसी प्रथा के द्वारा प्राप्त की जाती हैं। फसल काटने के समय श्रमिको की सेवाओ का मूल्य अन्न देकर चुकाया जाता है। अन्न के बदल ग्रामीण व्यक्ति बहुत सा वस्तुयें गाव के बनियों, फेरीवालों व पैंठ आदि के दुकानदारो से प्राप्त कर लेते हैं। शहरों में कहीं-कहीं गली कूचो म शाक-सब्जी आज भी इस प्रकार बिकती हैं।

वस्तु परिवर्तन प्रथा का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आज भी प्रयोग होता है। एक देश ससार के दूसरे देशों से जितने मूल्य का माल मगाता है उतने ही मूल्य का माल ससार के दूसरे देशो को बेच देता है। इस प्रकार जब माल का माल द्वारा भुगतान होता है तो इसको हम वस्तु परिवर्तन ही कह सकते हैं। परन्तु इनसे और प्राचीन वस्तु परिवर्तन में काफी अन्तर है। प्राचीन काल मे सौदो को तय करने के लिये आजकल के समान कोई सर्वमान्य माप न था परन्तु आजकल द्रव्य द्वारा यह कार्य सरलता से हो जाता है।

अध्याय ५०

बाजार

प्रश्न १०६—अर्थशास्त्र में 'बाजार' शब्द का क्या अर्थ है? उन कारणों को स्पष्ट कीजिये जो किसी वस्तु के बाजार के विस्तार पर प्रभाव डालते हैं?

(What is meant by the term 'Market' in Economics? State and explain the causes which effect the extent of the market for a commodity?)

उत्तर :—

'बाजार' शब्द से साधारणतया हमारा अर्थ उस स्थान से होता है जहा *एक या बहुत सी वस्तुओं के खरीदार व बेचने वाले एकत्रित होकर वस्तुओं* को देखभाल कर क्रय-विक्रय करते हैं। जैसे सब्जी बाजार, सर्राफा बाजार। यह बाजार शहर के किसी विशेष स्थान मे होते हैं और इनमे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का विक्रय होता है। परन्तु अर्थशास्त्र में बाजार शब्द की यह परिभाषा बडी संकुचित और अवैज्ञानिक मानी जाती है। यातायात व *सवादवाहन के साधनों के विकास के फलस्वरूप बाजारो का अर्थ बदल गया* है। अधिकांश वस्तुयें आज भी किसी स्थान विशेष पर बिकती हैं परन्तु उनका बिक्री-क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है, सोने, चांदी, गेहूं, पटसन के खरीदने व बेचने वाले वाले समस्त संसार में फैले हुये हैं। वे तार, टेलीफोन इत्यादि से आपस में प्रति-स्पर्धा करते रहते हैं। अर्थशास्त्री बाजार का अर्थ इसी व्यापक रूप मे लगाते हैं।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री कूरनो (Cournot) के अनुसार **'अर्थशास्त्र मे 'बाजार' शब्द का अर्थ किसी ऐसे स्थान विशेष से नहीं होता जहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जाता है वरन उस तमाम क्षेत्र से होता है जिसमें वस्तु के तमाम खरीदार व बेचने वालों में इस प्रकार का स्वतन्त्र व प्रतियोगिता पूर्वक सम्बन्ध हो कि वस्तु के मूल्य की प्रवृति शीघ्रता व सुगमता से समान होने की पाई जाय" (Economicsts understand by the term 'market', not any particular market place in which things are bought and sold, but the whole of any region in which buyers and sellers are in such**

free inter course with one another that the prices of the same goods tend to equality easily and quickly") इस परिभाषा के अनुसार बाजार के लिये न वस्तुओ की भौतिक उपस्थिति आवश्यक है और न क्रेताओ और विक्रेताओ का किसी स्थान विशेष पर एकत्रित होना ही आवश्यक है क्रेताओ और विक्रेताओ मे इस प्रकार का सम्बन्ध होना कि वस्तु की कीमत बाजार के समस्त क्षेत्र मे समान हो जावे।

अत बाजार के **चार** आवश्यक गुण हैं :—

(१) एक वस्तु का होना।
(२) वस्तु के क्रेताओ का होना।
(३) वस्तु के विक्रेताओ का होना।
(४) क्रेताओ और विक्रेताओ मे आपस मे स्पर्धा होना।

आर्थिक बाजार के दृष्टिकोण से एक ही वस्तु की भिन्न भिन्न किस्म या विभिन्न ट्रेड–मार्क, अलग-अलग वस्तुयें मानी जायेंगी क्योंकि प्रत्येक के अपने अपने क्रेता व विक्रेता हैं और अपना-अपना मूल्य है। जैसे कमल, हनुमान, रथ, वनसदा ब्रांड आदि वनस्पति घी ये एक वस्तु नही हैं इन सबका बाजार अलग-अलग है।

बाजार का क्षेत्र (*Extent of the market*) :—यदि किसी वस्तु के खरीदार व बेचने वाले बहुत बडे क्षेत्र मे फैले हुए हैं तो वस्तु का बाजार विस्तृत (wide) कहा जायगा और यदि छोटे से ही क्षेत्र मे फैले हुए हैं तो वस्तु का बाजार सकुचित (Narrow) कहा जायगा। उन कारणो को जो किसी वस्तु के बाजार के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं दो भागा म बाट सकते हैं।

(१) वाह्य परिस्थितिया या देश मे पाई जाने वाली बातें (Internal conditions of a country)

(२) वस्तु के गुण (Qualities of a commodity)

देश की आंतरिक व्यवस्था :—

(१) शांति व सुरक्षा (Peace and Security) :— यदि देश में शाति, सुरक्षा, विश्वास व सुव्यवस्था है तो बाजार का विस्तार हो जाता है क्योकि व्यापारियो को अपना रुपया मारे जाने अथवा माल लूटे जाने का भय नही रहता और वे निर्भीक होकर व्यापार करते हैं। शातिकाल मे व्यापारी दूर-दूर के स्थानों से माल मगाते हैं और दूर दूर स्थानों को माल भेजते हैं। युद्धकाल मे वस्तुओ का आवागमन रुक जाता है और बाजार का क्षेत्र भी सकुचित हो जाता है।

(२) यातायात व संवाद वाहन के साधन (Means of transportation and communication) :— यातायात के साधन जैसे रेल, मोटर, हवाई जहाज, समुद्री जहाज आदि के उन्नत होने पर वस्तुओं का दूर-दूर तक आना-जाना आसान, सस्ता व शीघ्र हो जाता है। व्यापारी दूर देशों को अपना माल भेजते हैं और मगाते हैं। इसमे बाजार की सीमा बढ जाती है। इसी प्रकार डाकखाना, तार, टेलीफोन, इत्यादि के साधन अच्छे होने पर, एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार भेजना व मगाना शीघ्र, सरल व सस्ता हो जाता है। इनकी सहायता से व्यापारी घर बैठे ही बैठे वस्तुओं का क्रय-विक्रय कर लेते हैं। परन्तु यातायात व संवादवाहन के साधनों के उत्तम व सस्ते न होने पर, वस्तुओं का बाजार विस्तृत नहीं होता, क्योंकि दूर-दूर के व्यापारी एक दूसरे से स्पर्धा नहीं कर पाते। ज्यों ज्यों यातायात के साधनों मे विकास हो रहा है त्यों त्यों वस्तुओं के बाजार स्थानीय के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय होते जा रहे हैं। आजकल भारतवर्ष व आम लदन और न्यूयार्क के बाजारों मे यातायात की सस्ती व शीघ्र सुविधाओं के विकास के कारण ही बिकते है।

(३) चलन व बैंकिंग प्रणाली (Money of Banking) — यदि देश मे मुद्रा का मूल्य स्थिर व बैंकिंग व साख सुव्यवस्थित होती हैं तो उस देश मे सभी देशों के व्यापारी अपना व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाते हैं परन्तु यदि देश मे भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्रा हो या उसका मूल्य अस्थिर रहे, तो व्यापारी वर्ग उस देश मे व्यापार करना पसन्द नहीं करेंगे, उन्हे सदैव हानि की सम्भावना बनी रहेगी। अच्छी बैंकों के अभाव मे पर्याप्त पूंजी का निर्माण नहीं होगा, उचित ब्याज पर ऋण प्राप्त नहीं होगा। परिणाम-स्वरूप वस्तुओं का बाजार विस्तृत नहीं होगा।

(४) व्यापार के वैज्ञानिक ढंग (Scientific Business Methods) .— यदि क्रेता स्वय वस्तु को देख परख कर सौदा तय करें या स्वय गोदाम तक जाना पडे तो ऐसी वस्तु का बाजार सीमित रहता है परन्तु वैज्ञानिक ढग से व्यापार करने मे व्यापार अधिक हो जाता है। माल का वैज्ञानिक विज्ञापन नमूनों तथा श्रेणियों के आधार पर माल बचना, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों मे माल का प्रदर्शन, आदि द्वारा वस्तुओं का बाजार धीरे धीरे बढता जाता है।

वस्तु के गुण (Qualities of the commodity) :—

बाजार का विस्तृत व सकुचित होना वस्तु-विशेष के स्वय के गुण पर

भी निर्भर करता है। विस्तृत बाजार होने के लिये एक वस्तु में निम्नलिखित गुण होने चाहियें।

(१) **विस्तृत मांग (Wide Demand)**—जितनी विस्तृत किसी वस्तु की मांग होती है उतना ही विस्तृत उसका बाजार होता है। गेहूं, कपास, लोहा, सोना, चांदी इत्यादि वस्तुओं की मांग सर्वव्यापी है और संसार भर में अनुभव की जाती है, अतः उनके बाजार अन्तर्राष्ट्रीय हैं। धोती व टोपी की मांग अधिकांश भारतवर्ष तक ही सीमित है अतः इनका बाजार राष्ट्रीय है। केवल मांग विस्तृत होना ही विस्तृत बाजार के लिये आवश्यक नहीं बल्कि मांग का निरन्तर (Regular) होना भी आवश्यक है। यही नहीं कि आज मांग है और कल नहीं है।

(२) **पर्याप्त पूर्ति (Adequate Supply)**—केवल वस्तु की अधिक मांग से ही उसका बाजार विस्तृत नहीं हो जाता। साथ ही साथ वस्तु की पूर्ति भी मांग को पूरा करने के लिये काफी होनी चाहिये। हस्तलिखित पुस्तकें व कलात्मक चित्रों का बाजार संकुचित ही रहता है क्योंकि इनकी पूर्ति बड़ी मात्रा में नहीं होने पाती।

(३) **टिकाऊपन (Durability)**:—शीघ्र नष्ट हो जाने वाली और कोमल वस्तुयें जैसे साग, फल, दूध, दही, मांस, मछली इत्यादि सुरक्षित अवस्था में दूर-दूर तक नहीं भेजी जा सकती और न कुछ समय संग्रहित की जा सकतीं। अतः इनका बाजार सीमित होता है। टिकाऊ वस्तुयें जैसे गेहूं, सोना, लोहा, रुई आदि बगैर किसी हानि के एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकती हैं। अतः इनका बाजार विस्तृत होता है। परन्तु कोल्ड स्टोरेज व यातायात के शीघ्रगामी साधनों आदि की सुविधाओं के विकास के कारण शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का बाजार भी विस्तृत हो गया है।

(४) **वहनीयता (Portability)**—जिन वस्तुओं का वजन व आकार उनके मूल्य के अनुपात में कम होता है, उनका बाजार विस्तृत होता है। इसके विपरीत जो वस्तुयें सस्ती व भारी होती हैं, उनका बाजार संकुचित होता है। इसीलिये घड़ियां, सोना व चांदी आदि का बाजार विस्तृत और ईंटें, घास व रेत आदि का बाजार संकुचित होता है।

(५) **वस्तु का ग्रेड या नमूने बनाने की सुविधा (Facility for grading and Sampling)**—जिन वस्तुओं में यह गुण होता है उनका बाजार बड़ा होता है क्योंकि नमूने अथवा ग्रेड की हुई वस्तु की कुछ मात्रा निकाल कर दूर-दूर व्यापारियों को जांच पड़ताल के लिये भेजी जा सकती

है। इनके आधार पर ही करोडो रुपये के आर्डर प्राप्त कर लिये जाते है। उपभोक्ता अथवा ग्राहक को बाजार मे आने की आवश्यकता नहीं। घर बैठे ही बैठे माल का क्रय–विक्रय हो जाता है। गेहू, मैंगनीज, सोना, चांदी आदि वस्तुओ मे यह गुण पाया जाता है। इसके विपरीत जिस वस्तु का नमूना नही निकाला जा सकता या ग्रेड नही बन सकता उसकी बिक्री दूर देशो के साथ नही हो सकती क्योकि उपभोक्ता को स्वय वस्तु देखने के लिये बाजार मे आना कठिन होता है जैसे गाय-बैल इत्यादि।

—०—

प्रश्न १०७—पूर्ण बाजार से क्या अभिप्राय है? इसकी क्या विशेषतायें हैं? स्पष्ट कीजिये कि "एक ही प्रतियोगिता मूलक मूल्य एक पूर्ण बाजार की विशेषता और परीक्षा है।"

***(What is a perfect market? What are its characteristics?* Explain that "a single competitive price is both the characteristic and the test of a Perfect Market".)**

उत्तर :—

अर्थशास्त्र मे बाजार का वर्गीकरण प्रतियोगिता के अश (Degree of Competition) के आधार पर पूर्ण बाजार (Perfect Market) व अपूर्ण बाजार (Imperfect Market) मे किया जाता है। **जब किसी वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, तो इस दशा में वस्तु का बाजार पूर्ण बाजार कहलाता है।** प्रोफेसर बैनहम के अनुसार **"कोई बाजार उस दशा मे पूर्ण कहलाता है जबकि ग्राहकों और विक्रेताओं को तुरन्त ही उन कीमतों का पता चल जाता है जिन पर सौदा हो रहा है। प्रत्येक ग्राहक और विक्रेता को दूसरों द्वारा दी जाने वाली अथवा मांगी हुई कीमत ज्ञात होती है।"** इन सबका अर्थ है कि बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता होनी चाहिये। पूर्ण प्रतियोगिता के लिये यह आवश्यक है कि वस्तु के बहुत अधिक क्रेता हो, व बहुत अधिक विक्रेता हो। स्पर्धा क्रेता और विक्रेताओ मे ही नही बल्कि क्रेता क्रेता मे व विक्रेता विक्रेता मे भी होनी चाहिये। प्रत्येक क्रेता को यह पता होना चाहिये कि अन्य क्रेता किस भाव पर वस्तु खरीद रहे हैं और विक्रेता किस भाव पर बेचना चाहते हैं। यही बात प्रत्येक विक्रेता को अन्य विक्रेताओ और क्रेताओ के सम्बन्ध मे ज्ञात होनी चाहिये। इसके लिये संदेशवाहन व यातायात के साधनो की पूर्ण सुविधायें होनी आवश्यक

हैं। ऐसा ज्ञान होने पर कोई भी विक्रेता उस मूल्य से कम वसूल न करेगा जिस पर अन्य व्यापारी अपना माल बेच रहे हैं और कोई भी क्रेता उससे अधिक मूल्य न देगा जो अन्य क्रेतागण दे रहे हैं। इन सब बातों का प्रभाव होता है बाजार में एक ही मूल्य रहना। ऐसे बाजार को पूर्ण बाजार कहते हैं।

पूर्ण बाजार की निम्न विशेषतायें होती हैं —

(१) वस्तु के बहुत से क्रेता,

(२) वस्तु के बहुत से विक्रेता,

(३) क्रेता व विक्रेताओं में आपस में प्रतियोगिता,

(४) क्रेताओं में आपस में प्रतियोगिता,

(५) विक्रेताओं में भी आपस में प्रतियोगिता,

(६) प्रत्येक क्रेता व विक्रेता बाजार का पूर्ण ज्ञान,

(७) सन्देशवाहन व यातायात की सुविधाओं का पूर्ण विकास जिससे व्यापारी वर्ग वस्तु के भावों व स्टाकों के विषय में शीघ्र और सस्ते ही सूचना प्राप्त कर सकें।

(८) समस्त बाजार में वस्तु की एक ही कीमत।

एक ही प्रतियोगितामूलक मूल्य पूर्ण बाजार की विशेषता और और परीक्षा है —

हम अभी देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के फलस्वरूप समस्त बाजार में वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित रहती है। यदि स्पर्धा के अभाव में एक वस्तु के दो भाव प्रचलित हैं, तो अर्थशास्त्र की दृष्टि से उस वस्तु के दो बाजार कहे जायेंगे। यदि किसी स्थान पर मूल्य में विभिन्नता होती है तो दूसरे स्थान से माल वहां आ जाता है। माल की पूर्ति बढ़ जाने के फलस्वरूप वस्तु का दाम गिर जाता है और दोनों ही स्थानों पर मूल्य समान हो जाता है। परन्तु मूल्य की समानता में भाड़े की छूट दी जाती है। यदि इलाहाबाद में गेहूं का भाव १८) रु० प्रति मन है और कानपुर में १८।।) रु० प्रति मन है और इलाहाबाद से कानपुर तक एक मन गेहूं लाने का यातायात व्यय ।।) है तो इलाहाबाद और कानपुर में गेहूं का एक ही भाव माना जायगा क्योंकि मूल्य का अन्तर यातायात व्यय के बराबर ही है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पूर्ण बाजार में भी वस्तु के मूल्यों में अन्तर पाया जाता है परन्तु यह अन्तर यातायात व्यय से अधिक नहीं हो सकता। पूर्ण बाजार के अन्तर्गत यातायात व्यय और आयात करों को निकाल कर सारे बाजार में वस्तु की कीमत एक ही रहेगी। अतः **पूर्ण बाजार की विशेषता तथा**

पहिचान यही है कि बाजार के सारे क्षेत्र में वस्तु की एक ही कीमत होनी चाहिये।

पूर्ण बाजार वास्तविकता मे :—वास्तविक जीवन मे पूर्ण बाजार नही पाया जाता है क्योंकि आर्थिक क्षेत्र मे पूर्ण प्रतियोगिता नही पाई जाती। पूर्ण प्रतियोगिता एक कल्पना मात्र है अतः पूर्ण बाजार भी एक कल्पनात्मक विचार मात्र है। साधारणतया क्रेता तथा विक्रेता बाजार की दशा से पूर्ण रूप से परिचित नही होते और एक वस्तु के विभिन्न मूल्य मिलना स्वाभाविक हो गये हैं। परन्तु सदेशवाहन के साधनो की उन्नति होने से अपूर्ण बाजार कुछ कम होते जा रहे है।

प्रश्न १०८—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये :—

(i) चोर बाजार (ii) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार (iii) अल्पकालीन व दीर्घकालीन बाजार।

(Write short notes on (i) Black market (ii) International market and (iii) Short period and Long period markets.)

उत्तर :—

(i) चोर बाजार य काला बाजार (Black market) :—चोर बाजार क्रेताओ व विक्रेताओ के उस दल को कहते हैं जो छिपे-छपे निर्धारित कीमत से ऊची कीमत पर चीजें खरीदते और बेचते हैं। शब्द चोर बाजार द्वितीय महायुद्ध मे प्रचलित हुआ। युद्धकाल मे वस्तुओ की कमी और मांग की वृद्धि से उनकी कीमत बहुत ऊची हो गई। अनिश्चितता और अभाव के भय से लोगों ने वस्तुओ को छिपा कर सग्रह कर लिया। फलस्वरूप कीमतें और अधिक बढ गई। इस स्थिति को सुधारने के लिये सरकार द्वारा वस्तुओं के भाव निश्चित कर दिये गये व कई वस्तुओ का राशनिंग कर दिया गया। सग्रहकर्ता (Hoarders) व्यक्तियो की मजबूरी का लाभ उठाकर, राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य से ऊचे मूल्यो पर उपभोक्ताओ को वस्तुयें बेचने लगे। कानून की पकड से बचने के लिये यह क्रय-विक्रय चोरी छिपे, गैर समय किया जाता था। अतः इस प्रकार के बाजार को चोर बाजार कहा गया।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार (International market) :—जिन वस्तुओ के क्रेता व विक्रेता समस्त ससार मे फैले हुए होते हैं, उनका बाजार विश्वव्यापी या अन्तर्राष्ट्रीय होता है। ऐसी वस्तुओ के खरीदने व बेचने वाले ससार भर मे होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार वाली वस्तुओं के ५ उदाहरण :—

गेहू, सोना, चादी, रुई, पेट्रोल।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार होने के लिए एक वस्तु में वे सब गुण होने चाहिये। जो उसके बाजार के क्षेत्र को विस्तृत करते हैं (देखिये प्रश्न ७० का उत्तर)।

(iii) अल्पकालीन व दीर्घकालीन बाजार (Short and Long period market) —'काल' या 'समय' से तात्पर्य उस अवधि से होता है जो किसी वस्तु की पूर्ति मांग बढ़ने पर शीघ्र ही बढ़ाई जा सकती है और किसी की बहुत समय बाद। जितना समय किसी वस्तु की माँग व पूर्ति को साम्य की अवस्था में आने में लगता है, उसके आधार पर बाजार के चार भेद किये जाते हैं—दैनिक बाजार, अल्पकालीन बाजार, दीर्घकालीन बाजार और अति दीर्घकालीन बाजार।

अल्पकालीन बाजार .—यह वह बाजार होता है जिसमें विक्रेता का इतना समय मिल जाता है कि वह बढ़ी हुई माग की पूर्ति किसी प्रकार कर सके परन्तु माँग के अनुसार नहीं। इस कारण मूल्य निर्धारण में पूर्ति की अपेक्षा मांग का योग अधिक रहता है। पूर्ति केवल वर्तमान साधनों क उचित उपयोग से ही की जा सकती है न कि उत्पत्ति के साधनों को घटा या बढ़ाकर। मानलीजिये किसी कारणवश किसी शहर में किसी वर्ष आमों की माँग बढने की आशा है। *आस-पास के बाग वाले बागों की अधिक देखभाल* करके आमों की उत्पत्ति बढ़ाने की कोशिश करेंगे। उनके पास इतना समय नहीं है कि वे नये पेड लगाकर आमों की पूर्ति वृद्धि कर सकें। इस प्रकार आमों की पूर्ति बढ तो जायगी परन्तु इतनी नहीं कि माँग को पूर्णतया पूरा किया जा सके। अतः आमों के दाम माग अधिक होने के कारण ऊंचे ही रहेंगे।

दीर्घकालीन बाजार (Long Period Market) .—यह वह बाजार होता है जिसमें वस्तु की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने के लिये अल्पकाल की अपेक्षा और अधिक समय मिल जाता है तथा उत्पत्ति के साधनों को घटा या बढाकर माँग के अनुसार उत्पत्ति की जा सकती है। उपरोक्त आमो के उदाहरण में मानलीजिये उस शहर में आमों की माग सदैव के लिये बढ़ जाती है तो बाग वाले पुराने बागों की उचित देखभाल के अतिरिक्त नई जमीन खरीद कर नये बाग लगायेंगे जिससे कुछ वर्षों बाद बढ़ती हुई आमों की माग को पूरा किया जा सके। इस प्रकार के बाजार में माग की पूर्ति की अपेक्षा *अधिक प्रभाव नहीं पड़ता वरन् पूर्ति का प्रभाव माग की अपेक्षा इतना अधिक* होता है कि वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन व्यय के बराबर हो जाने की प्रवृत्ति रखता है।

प्रश्न १०६—बाजार के भेद बताइये तथा निम्नलिखित वस्तुओं का बाजार कैसा है ?

(अ) लंगड़ा आम, (आ) जूट का सामान, (इ) करघे का सामान (ई) कुम्हार के बर्तन।

उत्तर :—

बाजार का भेद कई दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। जैसे क्षेत्रीय, बिक्री की दृष्टि से समयानुसार, प्रतियोगिता की दृष्टि से तथा बाजार के गुण के आधार पर। बाजार के इस प्रकार के वर्गीकरण को हम चार्ट द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं :—
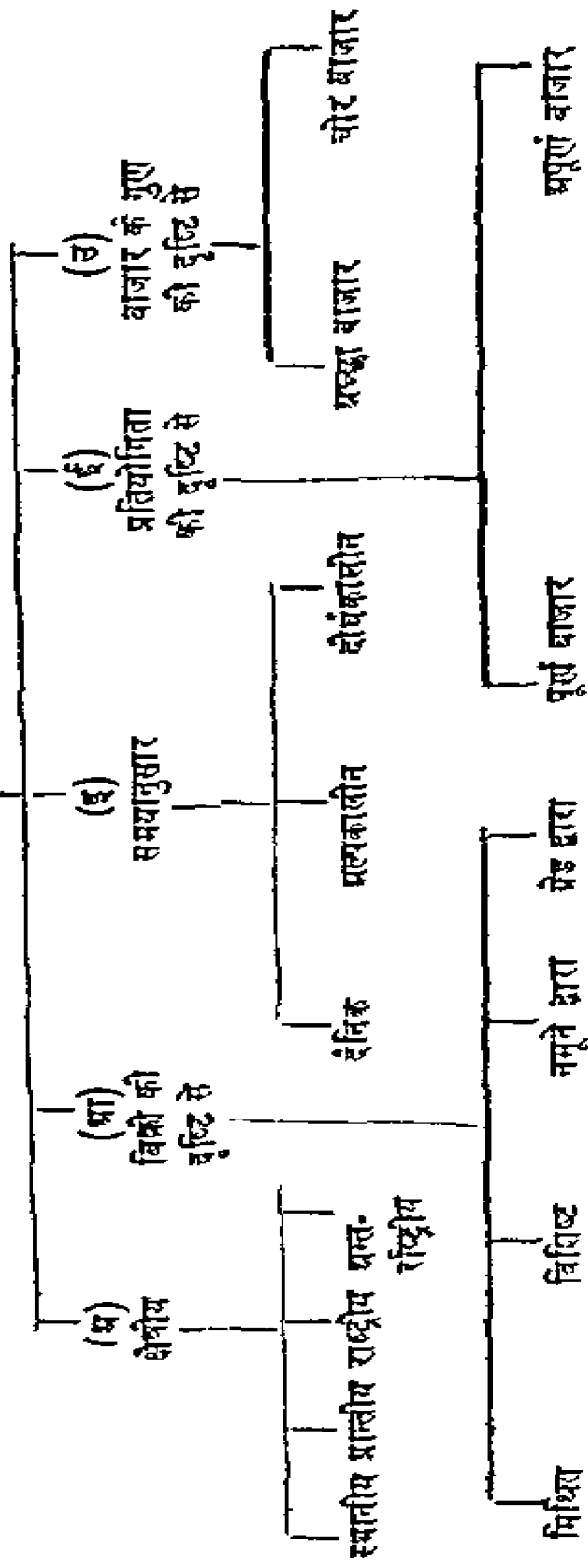
क्षेत्रीय बाजार—क्षेत्रीय बाजार चार प्रकार के होते हैं। (१) स्थानीय (२) प्रान्तीय (३) राष्ट्रीय तथा (४) अन्तर्राष्ट्रीय। इस प्रकार बाजार के क्षेत्र मे विस्तार हो जाने से बाजार का भेद भी बदल जाता है। अब हम प्रत्येक के विषय मे विस्तार से देखेंगे :—

(१) **स्थानीय बाजार** :—जब किसी वस्तु का क्रय विक्रय एक विशेष स्थान पर होता है तो वह उस वस्तु का स्थानीय बाजार उन वस्तुओ का होता है जो कि जल्दी खराब हो जाती हैं, या वजन मे भारी होती हैं या जिनकी माँग स्थानीय होती है जैसे सब्जी, दूध, ईंट आदि। लेकिन वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओ के बाजार मे भी विस्तार हो रहा है। कोल्ड स्टोरेज के प्रयोग से इस कार्य मे बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

(२) **प्रान्तीय बाजार** —कुछ वस्तुयें ऐसी होती हैं जिनका क्रय-विक्रय प्रान्तीय स्तर होता है जिस कारण से उनका बाजार भी प्रान्तीय बाजार कहलाता है। जैसे हापुड के पापड, राजपूताने मे लाख की चूडिया आदि।

(३) **राष्ट्रीय बाजार** :—जब किसी वस्तु का क्रय विक्रय सारे देश मे होता है तो वह उस वस्तु का राष्ट्रीय बाजार कहलाता है जैसे काच की चूडिया, चीनी आदि।

(४) **अन्तर्राष्ट्रीय बाजार** :—इसके लिये कृपया प्रश्न न० ७६ को देखियेगा।

बिक्री की दृष्टि से बाजार —बिक्री की दृष्टि से भी बाजारो को चार भागो मे बाँटा जा सकता है —(१) मिश्रित (२) विशिष्ट (३) नमूने द्वारा तथा (४) ग्रेड द्वारा बाजारो की स्थापना।

(१) **मिश्रित बाजार** —जब किसी बाजार मे एक से अधिक वस्तुओ का क्रय विक्रय होता है तो उसे मिश्रित बाजार कहते हैं। जैसे एक ही बाजार मे कपडा, जूता, गेहू, चीनी, तेल आदि का क्रय-विक्रय होना। प्राय. ऐसे बाजार छोटे-छोटे गावो एव शहरो मे पाये जाते हैं।

(२) **विशिष्ट बाजार** —जब किसी बाजार मे केवल वस्तु विशेष का ही क्रय-विक्रय होता है तो उसे उस वस्तु का विशिष्ट बाजार कहते हैं। जैसे सब्जी मडी मे केवल सब्जी का क्रय-विक्रय तथा सराफे मे केवल सोने, चादी का क्रय-विक्रय आदि। ऐसे बाजार बडे-बडे शहरों में पाये जाते हैं तथा ऐसे बाजारो का विकास दिन पर दिन हो रहा है।

(३) **नमूने द्वारा बिक्री का बाजार** :—इस प्रकार के बाजार में

विक्रेता केवल विभिन्न वस्तुओ के नमूने अपने पास रखता है तथा उन्ही के आधार पर क्रय-विक्रय होता है, ऐसे बाजार को नमूने द्वारा बिक्री का बाजार कहते है। आधुनिक समय मे ऐसे ही बाजारो का अधिक विकास हो रहा है।

(४) ग्रेड द्वारा बिक्री का बाजार :—कुछ वस्तुयें ऐसी होती है जो केवल अपने नाम या ग्रेड के आधार पर ही बिक जाता है। जसे गेहू, वनस्पति घी आदि। ऐसी वस्तुओ के बाजारो को ग्रेड द्वारा बिक्री का बाजार कहते हैं, ऐसी वस्तुओ का बाजार प्राय विस्तृत होता है।

समयानुसार बाजार :—समय की दृष्टि से बाजार तीन प्रकार के होते है—(१) दैनिक (२) अल्पकालीन तथा (३) दीर्घकालीन बाजार। अर्थ-शास्त्र मे बाजार के इस वर्गीकरण को समयानुसार बाजार कहते हैं।

(१) दैनिक बाजार :—दैनिक बाजार मे वस्तु विशेष की पूर्ति निश्चित होती है। इस कारण से वस्तु के माग का मूल्य पर अधिक प्रभाव पडता है। माग अधिक होने पर मूल्य अधिक होगा और इसी प्रकार मांग कम होने पर मूल्य भी कम होगा। दूसरे शब्दो मे दैनिक बाजार की दशा मे वस्तु की उपयोगिता का वस्तु की माग और पूर्ति के समय पर या वस्तु के मूल्य पर अधिक असर पडता है।

(२) अल्पकालीन तथा } इसके लिये कृपया प्रश्न न० ७६
(३) दीर्घकालीन बाजार } को देखियेगा।

प्रतियोगिता की दृष्टि से बाजार :—प्रतियोगिता की दृष्टि से बाजार दो प्रकार का होता है—(१) पूर्ण बाजार तथा (२) अपूर्ण बाजार।

(१) पूर्ण बाजार :—इसके लिए कृपया प्रश्न न० ७८ को देखियेगा।

(२) अपूर्ण बाजार :—वास्तविक जीवन मे बाजार पूर्ण बाजार नही होता है। इसी को ही अपूर्ण बाजार कहते हैं। व्यवहार मे विभिन्न विक्रेता एक ही वस्तु को विभिन्न मूल्यो पर बेचते हैं। क्रेता तथा विक्रेताओ को बाजार का पूर्ण ज्ञान नही होता है। अत: बाजार मे वस्तु का समान मल्य नही पाया जाता है, यही अपूर्ण बाजार की विशेषता है।

गुणों के आधार पर बाजार :—गुणो के आधार पर बाजार दो प्रकार का होता है (१)—अच्छा बाजार तथा (२) चोर बाजार।

(१) अच्छा बाजार :—जब किसी बाजार मे वस्तुयें उचित मूल्य पर या सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर मिलने लगती हैं तो ऐसे बाजार को अच्छा बाजार कहते हैं। सरकार मूल्य निर्धारित करते समय देश की उत्पादन

तथा वितरण की दशा को ध्यान मे रखती है। विकसित समाज के लिये एक अच्छे बाजार की अति आवश्यकता होती है।

(२) **चोर बाजार :**—इसके लिए कृपया प्रश्न ७६ को देखियेगा।

बाजार निर्धारण

(अ) **लँगड़ा आम :**—लगडे आम का बाजार स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय तीनों ही प्रकार का हो सकता है। यदि आम अधिक पका हुआ है तब बाजार स्थानीय होगा और यदि आम ताजा है और ६ या १० दिन तक खराब नही हो सकेगा तो इस दशा मे आम का बाजार राष्ट्रीय होगा। यदि आम बहुत ही अच्छी किस्म का है और कुछ समय तक रक्खा जा सकता है तो वह विदेशो को भी भेजा जाने लगेगा। ऐसी दशा मे इसका बाजार अन्तर्राष्ट्रीय होगा।

(आ) **जूट का सामान :**—जूट के सामान का बाजार स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय तीनों ही प्रकार का होता है।

(इ) **करघे का सामान :**—जुलाहे के करघे के सामान का बाजार प्राय: प्रान्तीय तथा कभी-कभी राष्ट्रीय होता है।

(ई) **कुम्हार के बर्तन :**—कुम्हार के बर्तन का बाजार प्राय: स्थानीय होता है।
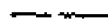
अध्याय ५१

मूल्य निर्धारण करने का सिद्धाँत

प्रश्न ११०—बाजार मूल्य किसे कहते हैं? किसी वस्तु का बाजार मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है?

(What is market price? How is the market Price of a commodity determined?)

उत्तर :—

बाजार मूल्य (Market Price) :—

बाजार मूल्य वह मूल्य है जो किसी समय विशेष पर बाजार मे प्रचलित होता है। यह मूल्य मांग और पूर्ति के अस्थाई सतुलन

(Temporary Equilibrium) द्वारा निर्धारित होता है। अतः यह कभी अधिक समय तक स्थिर नहीं रहता और प्रतिदिन और कभी-कभी दिन में कई बार मांग और पूर्ति के नये साम्य स्थापित होने पर बदलता रहता है। बाजार मूल्य 'अल्पकालीन' मूल्य भी कहलाता है क्योंकि यह अल्पकाल मे ही प्रचलित होता है। अल्पकाल मे किसी वस्तु की पूर्ति को उसकी मांग के अनुरूप नही किया जा सकता है। **अतः बाजार मूल्य के निर्धारण मे पूर्ति की अपेक्षा मांग का अधिक प्रभाव रहता है।** माग बढ़ने पर यह मूल्य बढ जाता है और घटने पर घट जाता है।

बाजार मूल्य का निर्धारण (Determination of market price) –

किसी वस्तु का मूल्य उसकी माग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो द्वारा उस स्थान पर निर्धारित होता है जहाँ वस्तु की पूर्ति उसकी माग के बराबर होती है अर्थात दोनो साम्य की अवस्था मे होती हैं।

उपभोक्ता किसी वस्तु को इसलिये खरीदता है क्योकि वह वस्तु उसकी किसी आवश्यकता को सतुष्ट करने की शक्ति रखती है अर्थात उसके लिये उस वस्तु की उपयोगिता है। वस्तु खरीदने के लिए उपभोक्ताओ को द्रव्य के रूप मे कुछ त्याग करना पड़ता है। घटती उपयोगिता के नियम के अनुसार सीमांत इकाई की उपयोगिता उसके लिये दी जाने वाली कीमत के बराबर होती है। यह उपभोक्ता की अधिकतम सीमा है इससे अधिक मूल्य वह देने को तैयार नहीं होगा। इसी प्रकार प्रत्येक उत्पादनकर्ता की भी एक न्यूनतम सीमा होती है। वह इससे कम मूल्य कभी स्वीकार नहीं करेगा। यह न्यूनतम सीमा वस्तु के उत्पादन व्यय (Cost of Production) द्वारा निर्धारित होती है। दोनो ही पक्षो के बीच स्पर्धा होती है। उपभोक्ता वर्ग (खरीददार) यह चाहता है कि उसको अधिकतम सीमा से कम देना पडे और उत्पादनकर्ता का सदैव यह प्रयत्न रहता है कि उसको उनकी न्यूनतम सीमा से अधिक मूल्य मिले। यह पारस्परिक सौदेबाजी करने की शक्ति पर निर्भर करता है कि वस्तु का मूल्य अधिकतम सीमा के निकट रहेगा या न्यूनतम सीमा के। जिस मूल्य पर खरीददार और बेचने वाले (उत्पादनकर्त्ता) राजी हो जाते हैं, वह उस वस्तु का साम्य मूल्य कहलाता है और उस साम्य बिन्दु पर वह उस वस्तु का बाजार मूल्य कहलाता है।

बाजार मूल्य अस्थायी संतुलन द्वारा तय होता है। वस्तु की मांग बढ़ने से मूल्य भी बढ़ जाता है और कम होने से कम हो जाता है। बाजार मूल्य के निर्धारण मे पूर्ति का प्रभाव कम और माग का प्रभाव बहुत अधिक रहता

है। पूर्ति तो किसी समय विशेष पर उसके स्टाक (Stock) की मात्रा तक सीमित है। अल्पकाल मे मांग में वृद्धि होने या कमी होन से उसको घटाया या बढाया नहीं जा सकता। उपरोक्त का यह अभिप्राय नहीं कि बाजार मूल्य निर्धारण में पूर्ति का कोई भी प्रभाव नही पडता। पूर्ति का प्रभाव माग की अपेक्षा कम होता है। इस दृष्टिकोण से हम वस्तुओ को दो भागो मे बाट सकते हैं :—

(१) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुयें (*Perishable Commodities*)

(२) टिकाऊ वस्तुयें (*Durable Commodities*)

शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओ का बाजार मूल्य .—

यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली है जैसे मछली, साक सब्जी, दूध इत्यादि तो मूल्य निर्धारण मे माग का बहुत ही अधिक प्रभाव रहता है और पूर्ति का बहुत ही कम। एसी वस्तुओ की माग मे वृद्धि होन से मूल्य म काफी वृद्धि होगी और माग मे कमी होने से मूल्य बहुत ही कम हो जायगे क्योंकि वस्तु की बिक्री को स्थगित नही किया जा सकता और व्यापारियो को समस्त माल सस्ते मूल्य पर बेचने को मजबूर होना पडेगा। यदि एकाएक किसी शहर मे चार पाँच बरात आ जाने के कारण दूध की माग बढ जाती है तो दूध के दाम भी बढ जायेंगे क्योंकि दूध की पूर्ति बढने का कोई प्रश्न ही नही है। इसके विपरीत यदि किसी कारणवश दूध की माग एक साथ कम हो जाय तो मूल्य कम हो जायगा। दूध वाले दूध को उठा कर रखने का इरादा नहीं कर सकत क्योकि यह खराब हो जायगा और उनको एक पैसा भी नही मिलेगा। अत' दूध का मूल्य उस स्थान पर निर्धारित होगा जहा इसकी तमाम की तमाम पूर्ति बिक जायगी।

मान लीजिये किसी दिन बाजार मे ३०० सेर दूध की पूर्ति है। निम्न तालिका यह बतलाती है कि विभिन्न मूल्यो पर बाजार मे दूध की कितनी माग होगी। ४ आना प्रति सेर के भाव पर तमाम का तमाम ३०० सेर दूध बिक जाता है। अत. दूध का बाजार मूल्य ४ आना प्रति सेर होगा।

मूल्य प्रति सेर (आनो में)	दूध की मांग (सेरो म)
१६	२०
१२	६०
८	१००
४	३००
२	५००

चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की पूर्ति समान है जो पप' सीधी खडी रेखा द्वारा प्रदर्शित की गई है। माग की रेखा मम इसको स बिन्दु पर काटती है।
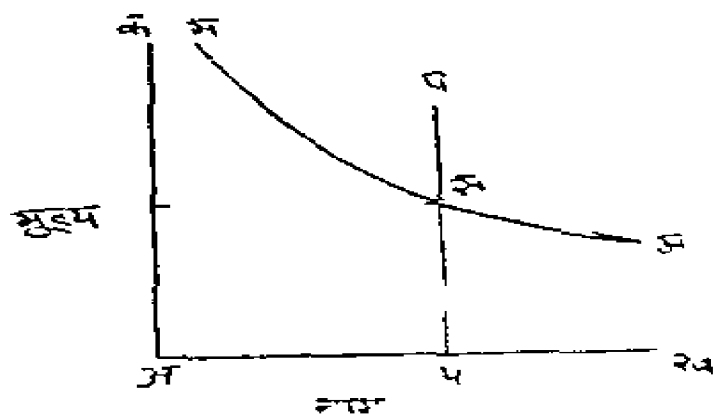
अत ४ आना प्रति सेर के भाव पर ३०० मन दध की माग होगी जोकि पस व अप रेखाओ द्वारा प्रदर्शित की गई हैं।

टिकाऊ वस्तु का मूल्य निर्धारण —

यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली नही है और कुछ दिन क लिये बाजार से हटाई जा सकती है तो माँग मे कमी होने पर इसके मूल्य म शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तु की अपेक्षा कम कमी होगी क्योकि माग मे कमी होने पर उत्पादनकर्त्ता इसकी पूर्ति को भी कम कर दगे। बजाए कम मूल्यो पर आज ही बेचने के वे अधिक मूल्यो पर फिर बेच लगे। अत ऐसी वस्तुओ के मूल्य निर्धारण मे पूर्ति का कुछ प्रभाव होता है किन्तु व्यापारियो का यह निर्णय कि वस्तु को आज ही बेच डाल या फिर बेच, निम्न बातो मे प्रभावित होता है —

(१) द्रव्य को आवश्यकता —यदि विक्रेताओ को द्रव्य की आवश्यकता है तो वे कम मूल्य पर ही अपनी वस्तु बेच डालगे अन्यथा फिर बेचने के लिए बाजार से हटा लेंगे।

(२) भविष्य मे वस्तु की पूर्ति —यदि भविष्य मे वस्तु की पूर्ति अधिक होने की सभावना है तो विक्रेता उसी दिन कम मूल्य पर वस्तु बेच डालेंगे क्योकि हो सकता है कि भविष्य मे पूर्ति अधिक हो जाने पर वस्तु का दाम और नीचा हो जाये।

(३) भविष्य मे वस्तु की माँग —यदि भविष्य मे वस्तु की माग बढने की आशा है तो विक्रेताओ मे वस्तुओ को पूर्ति बचाने की प्रवृत्ति होगी।

गेहू एक टिकाऊ वस्तु का उदाहरण है। इसकी माग मे वृद्धि होने से मूल्य मे काफी वृद्धि हो जायेगी, पर माँग मे कमी होने से मूल्य मे अधिक कमी नही होगी क्योकि विक्रेता बाजार से पूर्ति को हटाने लगते हैं। मान लीजिये

किसी विशेष समय बाजार में गेहूं की माग व पूर्ति की सारिणी निम्न प्रकार है :—

गेहूं का मूल्य (रुपयों में)	गेहूं की माँग (मनों में)	गेहू की पूर्ति (मनों मे)
१६ प्रति मन	५०००	८०००
१४ ,,	६०००	६०००
१२ ,,	७०००	४०००

चित्र द्वारा निरूपण

स्पष्ट है कि १४ रु० प्रति मन के भाव पर गेहू की माग व पूर्ति दोनों ६००० मन हैं—दोनो सतुलन की अवस्था मे हैं। जब मूल्य १२ रु० प्रति मन है तो सम्भवतः कुछ विक्रेताओं ने गेहू को फिर बेचने के लिए बाजार हटा लिया हो अतः उसकी पूर्ति घट गई है।
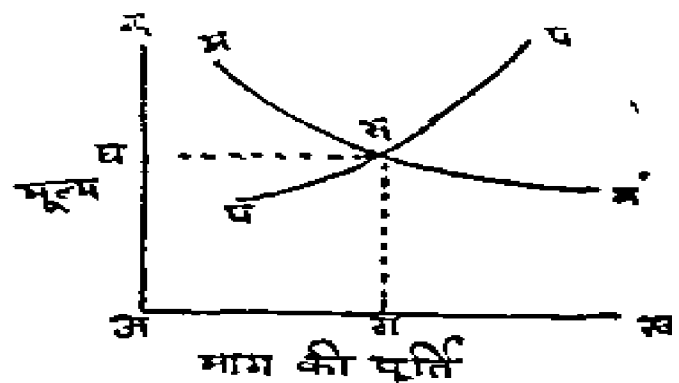
अतः स्पष्ट है कि चाहे वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली हो अथवा टिकाऊ उसके बाजार मूल्य निर्धारण मे माग का प्रभाव अधिक होता है।

प्रश्न १११—"किसी वस्तु का अल्पकालीन मूल्य माँग पर और दीर्घकालीन पूर्ति पर निर्भर रहता है।" इस कथन को समझाइये।

उत्तर :—

मूल्य निर्धारण के सिद्धात पर समय का अधिक प्रभाव पड़ता है। तथा समय की दृष्टि से मूल्य दो भागो मे बाँटा जा सकता है :—(१) अल्पकालीन मूल्य तथा (२) दीर्घकालीन मूल्य। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन समय वस्तु विशेष के गुणों पर निर्भर करता है। इसीलिये एक वस्तु का दीर्घकालीन समय दूसरी वस्तु के लिए अल्पकालीन हो सकता है।

अल्पकालीन मूल्य :—किसी वस्तु का अल्पकालीन मूल्य वह मूल्य है जो किसी समय बाजार मे पाया जावे। अल्पकालीन समय उस समय को कहते हैं जिसके अन्तर्गत माँग की घट बढ़ के अनुसार वस्तु की पूर्ति में घट-

बढ आसानी से न हो सके और ऐसी दशा मे वस्तु का मूल्य माग की दशाओ से अत्यधिक प्रभावित होता है। यदि माग अधिक है तो मूल्य भी अधिक होगा और यदि माग कम है तो मूल्य भी कम होगा। यह मूल्य वस्तु की माँग और पूर्ति के अस्थायी सन्तुलन द्वारा तय होता है जिसमे माग की दशाओ का प्रभाव अधिक होता है।

दीर्घकालीन मूल्य :—किसी वस्तु का दीर्घकालीन मूल्य वह मूल्य है जो उस वस्तु के माग और पूर्ति के अधिक स्थायी सन्तुलन द्वारा तय होता है। दीर्घकालीन समय उस समय को कहते हैं जिसके अन्तर्गत उत्पादक को माँग की घट बढ के अनुसार पूर्ति या पूर्ति के साधनो मे घट बढ करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। इस समय मे वस्तु का मूल्य निर्धारण करने मे उसकी पूर्ति का विशेष प्रभाव पडता है। अर्थात यदि पूर्ति की मात्रा माग से अधिक है तो मूल्य कम होगा और यदि पूर्ति की मात्रा माँग से कम है तो मूल्य अधिक होगा। इस प्रकार दीर्घकालीन मूल्य के निर्धारण मे पूर्ति का अधिक प्रभाव पडता है।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि अल्पकालीन समय मे समय कम होने के कारण पूर्ति सीमित एव निश्चित रहती है। इसलिए अल्पकाल मे वस्तु के मूल्य पर माँग का ही प्रभाव अधिक पडता है। दूसरी ओर दीर्घकाल मे अधिक होने के कारण मूल्य पर माग का प्रभाव बहुत कम पडता है। इस दशा मे पूर्ति का प्रभाव अधिक होता है। इसी बात को ध्यान मे रख कर प्रो० मार्शल ने कहा कि "जितना कम समय होगा उतना ही अधिक हमे अपना ध्यान मूल्य के निर्धारण मे माग के प्रभाव पर विचार करने पर देना होगा और जितना समय लम्बा होगा उतना ही अधिक उत्पादन लागत का प्रभाव मूल्य के निर्धारण पर होगा।" **(Thus we may say that, as a general rule, the shorter the period which we are considering, the greater must be the share of our attention which is givn to the influence of defame on Value and the longer the period the more important will be the influence of cost of production on Value.)**

इसलिए हम यह कह सकते हैं कि "किसी वस्तु का अल्पकालीन मूल्य माँग पर और दीर्घकालीन मूल्य पूर्ति पर निर्भर रहता है।"

प्रश्न ११२—सामान्य मूल्य किसे कहते हैं ? किसी वस्तु का सामान्य मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है ? उत्पत्ति के नियम सामान्य मूल्य को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

(What is Normal Price ? How is the normal price of a commodiry determined ? How do the Laws of Returns affect the Normal Price of a commodity ?)

उत्तर —

सामान्य मूल्य किसी वस्तु का वह मूल्य है जो दीर्घकालीन बाजार मे पाया जाता है दीर्घकाल (Long Period) से हमारा तात्पर्य उस समय मे है जिसमे वस्तु विशेष की पूर्ति को माग के अनुरूप घटने या बढने के लिये पर्याप्त अवसर मिल जाता है अत॰ सामान्य मूल्य निर्धारण मे पूर्ति का प्रभाव निश्चयात्मक होता है। मूल्य निर्धारण तो माग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा उस बिन्दु पर ही होता है जहाँ ये दोनो समय की अवस्था में आ जाती हैं परन्तु यहा मूल्य निर्धारण मे माँग की अपेक्षा पूर्ति का प्रभाव अधिक होता है। सामान्य मूल्य को दीर्घकालीन मूल्य (Long Period Price) भी कहते हैं। दीर्घकाल मे माग और पूर्ति का सतुलन स्थायी (Permanent Equilibrium) होता है। इसीस सामान्य मूल्य को स्थायी सतुलन मूल्य भी कहते हैं। यह मूल्य किसी समय विशेष पर पाया जाने वाला मूल्य नहीं बल्कि यह दीर्घकाल में मूल्य की सामान्य प्रवृति का द्योतक है। इसीलिये यह सामान्य मूल्य कहा जाता है।

सामान्य मूल्य का निर्धारण (Determination of Long Period Price) :—

पूर्ण प्रतियोगिता मे सामान्य मूल्य उस वस्तु के उत्पादन व्यय द्वारा निश्चित होता है। दीर्घकालीन मूल्य कभी भी उत्पादन-व्यय से कम या अधिक नहीं हो सकता क्योंकि जब तक मूल्य और उत्पादन-व्यय समान नहीं होंगे, माग और पूर्ति मे स्थाई सतुलन स्थापित नहीं हो सकता। यदि मूल्य उत्पादन व्यय से अधिक हो जाये तो नये उत्पादको द्वारा या पुराने उत्पादकों द्वारा अधिक मात्रा मे वस्तु का उत्पादन होने से, वस्तु का सामान्य मूल्य कम होने लगेगा, यहाँ तक कि यह उत्पादन व्यय के बराबर हो जायगा। यदि-सामान्य मूल्य उत्पादन व्यय से कम हो जाय तो उत्पादक वस्तु का उत्पादन कम करके, उसकी पूर्ति को घटा देते हैं और मूल्य धीरे-धीरे बढन लगता है और उत्पादन व्यय के बराबर ही आ जाता है। अत॰ पूर्ण प्रतियोगिता में सामान्य मूल्य उत्पादन व्यय के बराबर होता है।

उत्पत्ति के नियमों का सामान्य मूल्य पर प्रभाव
अथवा
माँग के घटने बढ़ने का सामान्य मूल्य पर प्रभाव :—

हम ऊपर देख चुके हैं कि किसी वस्तु का सामान्य मूल्य उसकी उत्पादन लागत के बराबर होता है। अतः जो शक्तिया किसी वस्तु के उत्पादन व्यय को प्रभावित करती हैं वे उसके सामान्य मूल्य को भी अवश्य ही प्रभावित करेंगी। वस्तु के उत्पादन-व्यय पर उत्पत्ति के नियमो का प्रभाव पडता है। दीर्घकाल मे माग के घटने या बढने पर वस्तु का उत्पादन कम या अधिक किया जाता है। ऐसा करने से उस वस्तु का उत्पादन-व्यय उत्पत्ति के नियम विशेष के अनुसार जो उस वस्तु की उत्पत्ति से लागू होता है, परिवर्तित हो जाता है। नीचे हम उत्पत्ति के नियमो का सामान्य मूल्य पर प्रभाव देखते हैं।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम व सामान्य मूल्य :—

इस नियम को क्रमागत लागत वृद्धि नियम (Law of Increasing Cost) भी कहते हैं क्योंकि जिस अनुपात मे उत्पादन की लागत बढती है उस अनुपात मे वस्तु का उत्पादन नही बढता। अत. वस्तु की उत्पत्ति बढाने से प्रति इकाई लागत बढती है और उत्पत्ति कम करने से प्रति इकाई लागत कम होती है। इसलिए वस्तु की माग बढने पर सामान्य मूल्य बढ जाता है और माँग कम होने पर सामान्य मूल्य कम हो जाता है।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम व सामान्य मूल्य :—

इस नियम को क्रमागत लागत ह्रास नियम (Law of Decreasing Cost) भी कहते हैं क्योंकि लागत से अधिक अनुपात मे वस्तु का उत्पादन बढता है। अत. माग बढ़ने पर ज्यो-ज्यो अधिक उत्पादन किया जाता है त्यो-त्यो प्रति इकाई लागत-व्यय व सामान्य मूल्य कम हो जाता है और माग घटने पर ज्यो-ज्यो उत्पादन कम किया जाता है प्रति इकाई लागत बढ़ जाती है और वस्तु का सामान्य मूल्य बढता जाता है।

क्रमागत उत्पत्ति समता नियम और सामान्य मूल्य :—

इस नियम के अनुसार उत्पत्ति घटाने या बढाने का लागत पर कोई प्रभाव नहीं पडता। माँग घटने या बढने पर उत्पादन लागत पूर्ववत रहती है अतः सामान्य मूल्य सदैव समान रहता है। इस नियम को इसी कारण क्रमागत लागत समता नियम (Law of Constant Returns) भी कहते हैं।

प्रश्न ११३—बाजार मूल्य और सामान्य मूल्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए और उनके पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या कीजिये।

(Distinguish between Market Price and Normal Price, and also discuss their mutual relationship)

उत्तर :—

बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य का अन्तर :—

बाजार मूल्य	सामान्य मूल्य
१ यह वह मूल्य है जो किसी समय विशेष पर बाजार में मांग व पूर्ति के अस्थायी सतुलन से निर्धारित होता है।	१. यह वह मूल्य है जो माग व पूर्ति के स्थायी संतुलन द्वारा निर्धारित होता है।
२. यह अल्पकालीन मूल्य है।	२. यह दीर्घकालीन मूल्य है।
३. इसके निर्धारण में पूर्ति की अपेक्षा माग का अधिक योग होता है क्योकि पूर्ति को शीघ्र ही मांग के अनुसार घटाया या बढ़ाया नही जा जा सकता।	३. इसके निर्धारण मे मांग की अपेक्षा पूर्ति का अधिक योग रहता है क्योंकि समय इतना दीर्घ होता है कि वस्तु की पूर्ति को माग के अनुरूप लगाने के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाता है और वस्तु की पूर्ति मूल्य निर्धारण में अधिक प्रभावपूर्ण हो जाती है।
४. यह मूल्य प्रति क्षण, प्रति घण्टा व प्रति दिन बदलता रहता है।	४. यह मूल्य अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है और बाजार मूल्य इसके आस पास मडराया करता है।
५. यह मूल्य व्यवहारिक और वास्तविक है।	५ यह मूल्य काल्पनिक है जो व्यवहार मे नहीं आता, जब बाजार मूल्य सामान्य मूल्य को स्पर्श कर लेता है तो चालू मूल्य सामान्य मूल्य नही बल्कि बाजार मूल्य कहलाता है। यह तो मूल्य की सामान्य प्रवृति का द्योतक है।

बाजार मूल्य	सामान्य मूल्य
६. बाजार मूल्य प्रत्येक वस्तु का होता है चाहे वह पुन उत्पादनीय हो या नही हो।	६. सामान्य मूल्य केवल उन्हीं वस्तुओं का होता है जिन्हे पुनः उत्पन्न किया जा सके। सामान्य मूल्य उत्पादन व्यय से प्रभावित होता है परन्तु जिस वस्तु को दोबारा उत्पन्न नहीं किया जा सके उसका उत्पादन व्यय कैसे मालूम पडे।

बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य का सम्बन्ध (Relation between Market Price and Normal Price) —

किसी वस्तु के बाजार व सामान्य मूल्य में बडा गहरा सम्बन्ध है। **बाजार मूल्य में सदैव सामान्य मूल्य के लगभग रहने की प्रवृति पाई जाती है** अर्थात बाजार मूल्य अधिक समय तक सामान्य मूल्य से अधिक दूर नीचे या ऊपर नही रह सकता। बाजार मूल्य सदैव सामान्य मूल्य के आस पास मडराया करता है। जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है :—
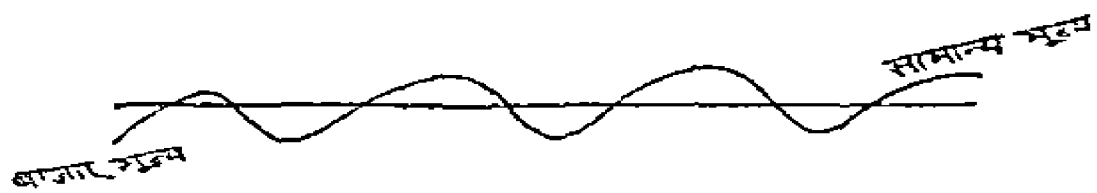
यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से अधिक होता है तो विक्रेताओं को असाधारण लाभ होता है और वे उत्पादन बढा देते हैं। फलस्वरूप पूर्ति बढने से बाजार मूल्य गिरने लगेंगे और उत्पादन व्यय के बराबर आ जायेंगे। इसी प्रकार यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से अधिक नीचा होता है तो विक्रेताओं को हानि होने लगती है। बहुत से सीमांत विक्रेता बाजार से हट जायेंगे। पूर्ति घट जावेगी और फिर कीमत उठकर उत्पादन व्यय के बराबर हो जायेगी। जिस प्रकार घडी का पैमाना (Pendulum) घूमता रहता है किन्तु उसके ठहरने का एक केन्द्रीय स्थान होता है। इसी प्रकार बाजार मूल्य का केन्द्र स्वाभाविक, प्राकृतिक अथवा सामान्य मूल्य होता है।

प्रश्न ११४—"किसी वस्तु का सामान्य मूल्य स्थाई रूप से उसके उत्पादन व्यय से अधिक ऊंचा और न अधिक नीचा रह सकता है" इस कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

"किसी वस्तु का बाजार मूल्य उसके सामान्य मूल्य के इधर-उधर मडराया करता है" इस कथन को समझाइये।

("The Normal Price of a commodity can not permanently remain lower or than higher its cost of production" Discuss this statement.)

Or

("The market Price of a commodity oscillates about its Normal Price" Discuss this statement)

उत्तर—

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न ११२ व ११३ का उत्तर भी पढिये।

हम देख चुके हैं कि किसी वस्तु का सामान्य मूल्य उसके उत्पादन व्यय से निर्धारित होता है और सदैव उत्पादन व्यय के बराबर होने की प्रवृति रखता है। यदि सामान्य मूल्य उत्पादन-व्यय से अधिक है तो विक्रेताओ को असाधारण लाभ प्राप्त होंगे जिसको देखकर अन्य नये उत्पादक भी बाजार मे वस्तु का उत्पादन शुरू कर देंगे और पुराने उत्पादक अपना उत्पादन बढा देंगे। फलस्वरूप बाजार मे वस्तु की पूर्ति पहले की अपेक्षा बढ जायगी। पूर्ति बढने से वस्तु की कीमत गिरने लगगी और शनै शनै उत्पादन व्यय के बराबर आ जायगी। इसी भाति यदि सामान्य मूल्य उत्पादन व्यय से बहुत नीचा है तो उत्पादको को हानि होगी। वे अपना उत्पादन कम कर देंगे बहुत से उत्पादक अपना उत्पादन बद कर देंगे। फलस्वरूप बाजार मे वस्तु की पूर्ति कम हो जायगी और वस्तु के दाम शनैः शनै. बढने लगेंगे और उत्पादन व्यय के बराबर हो जायेंगे। अत यह बात सम्भव है कि थोडे समय के लिये किसी वस्तु का सामान्य मूल्य उसके उत्पादन व्यय से कम या अधिक हो जाय परन्तु स्थायी रूप से ऐसा नही हो सकता।

वस्तु का बाजार मूल्य उसके सामान्य मूल्य के इधर उधर मडराया करता है। बाजार मूल्य ऐसे अस्थाई कारणो से प्रभावित होता है जिनका प्रभाव क्षणिक अथवा अल्पकालीन होता है। इनके प्रभाव मे बाजार मूल्य परिवर्तित होता रहता है लेकिन जब ये अस्थायी कारण समाप्त हो जाते हैं तो

बाजार मूल्य पुन: सामान्य मूल्य के पास आ जाता है साधारणतया: बर्फ २ आने प्रति सेर के भाव पर मिलता है। परन्तु किसी दिन विशेष गर्मी पडने या शहर मे कुछ बरातें आ जाने पर बर्फ का भाव (बाजार मूल्य) ४ आना व ६ आना प्रति सेर तक हो जाता है। ये ऊचे भाव सदैव नहीं रहते क्योंकि इनको कुछ अस्थाई कारणो जैसे बरात का आ जाना अथवा गर्मी अधिक हो जाना इत्यादि ने उत्पन्न किया है। इनके समाप्त हो जाने पर बर्फ का भाव पुन २ आना प्रति सेर हो जायगा। हो सकता है कि किसी दिन विशेष ठड पडने के कारण बर्फ का भाव १ आना प्रति सेर हो जाय परन्तु यह भाव भी अस्थाई है और ठड समाप्त होने के बाद ही बर्फ का दाम पुन २ आना प्रति सेर हो जाने की प्रवृति रखेगा। अत: बाजार मूल्य सदैव सामान्य मूल्य के इधर-उधर मडराया करता है।

अध्याय ५१

द्रव्य

प्रश्न ११५—द्रव्य की परिभाषा लिखिये और इसके कार्यों का पूर्ण विवेचन कीजिये।

(Define money and explain fully its functions)

उत्तर :—

प्रारम्भ मे मनुष्य आत्म-निर्भर था। वह अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुयें स्वय उत्पन्न करता था परन्तु सभ्यता की प्रगति और आवश्यकताओ की वृद्धि ने मनुष्यो को परस्पर निर्भर बना दिया। वे अपनी आवश्यकताओ की समस्त वस्तुयें स्वय न बना कर किसी एक कार्य को करने लगे और अपनी अपनी फालतू वस्तु को अन्य व्यक्तियो से बदलने लगे। अत वस्तु परिवर्तन प्रथा का जन्म हुआ। इस प्रकार के विनिमय की कठिनाइयों के कारण ही एक ऐसी वस्तु खोजी गई जिसके बदले अन्य वस्तुओं का अदल-बदल हो सके। **विनिमय के इस माध्यम को ही द्रव्य का नाम दिया गया।** विभिन्न कालो मे द्रव्य उस वस्तु को माना गया जो उस देश काल मे साधारणतया विनिमय के माध्यम के रूप मे स्वीकार की जाती थी। वर्तमान

युग मे सिक्को और कागजी नोटो के रूप मे द्रव्य का प्रचलन एक बहुत बडा इतिहास है ।

द्रव्य की परिभाषा (Definition of money) —

विभिन्न अर्थशास्त्रियो न द्रव्य की अलग अलग परिभाषायें दी हैं। कुछ विद्वानो न इसको बहुत ही सकुचित अर्थ मे व्यक्त किया है और कुछो ने द्रव्य का बहुत विस्तृत अर्थ लिया है । सकुचित अर्थ मे द्रव्य से अभिप्राय प्रत्येक प्रकार के विनिमय के साधन से होता है और उसमे धातु के सिक्के, कागजी नोट, चैंक, बिल आफ ऐक्सचेंज, हुण्डी आदि सभी शामिल किये जाते हैं। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री उपरोक्त दोनो ही मतो से असहमत हैं, वे बीच का मार्ग अपनाते हैं। उनके अनुसार केवल धातु मुद्रा व कागजी नोट ही द्रव्य के अन्तर्गत शामिल किय जाते हैं। उनके मतानुसार **द्रव्य वह वस्तु है जो ऋण और सौदो के अतिम भुगतान मे साधारणतया स्वीकार की जाती है ।** इस दृष्टिकोण से सिक्को व कागजी नोटो को छोड कर विनिमय के अन्य साधन जैसे बिल, हुण्डी, चैंक आदि द्रव्य नही कह जायेंगे। यद्यपि ये भी विनिमय के माध्यम हैं और व्यापार जगत मे काफी प्रचलित हैं परन्तु द्रव्य नहीं क्योकि इनका कोई कानूनी अस्तित्व नहीं है और न ही ये सब व्यक्तियों द्वारा साधारणतया स्वीकार किये जाते हैं। केवल व्यापारी वग ही विश्वासनीय और साधन सम्पन्न फर्मों के साख पत्रो को स्वीकार करते हैं। *अन्य व्यक्तियो को वे मान्य नही होते । कुछ अथशास्त्री साख पत्रो को* **व्यापारियों का द्रव्य (Business men's Currency)** कहते हैं।

प्रो० कोल (G D H Cole) के अनुसार '**द्रव्य क्रय शक्ति है**' **(Money is purchasing power)** अर्थात द्रव्य वह वस्तु है जिसके द्वारा अन्य वस्तुयें खरीदी जा सकें। यह परिभाषा दोष पूर्ण ह क्योंकि बहुत सी वस्तुओ के बदले अन्य वस्तुयें प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु सब द्रव्य नही होतीं ।

हार्टल विदर्स का कहना है कि '**जो द्रव्य का कार्य करे वही द्रव्य है**' **(Money is what money does)** यह परिभाषा बहुत ही विस्तृत है ।

राबर्टसन के अनुसार "**द्रव्य ऐसी वस्तु का द्योतक है जो माल के बदले मे या अन्य प्रकार के व्यापारिक ऋण आदि के भुगतान मे सर्वत्र स्वीकार की जाती है**' यह परिभाषा अत्यन्त ही सकुचित है और द्रव्य से केवल धातु मुद्रा का ही अर्थ लगाती है ।

उचित मत की परिभाषायें —

वाकर के अनुसार "द्रव्य वह है जो वस्तु का मूल्य देने और ऋण चुकाने के लिये अबाधित रूप से काम आता है" (**Anything that passes freely from hand to hand in full payment of goos and in final discharge of indebetendences is money.)**

कीन्स (Keynes) के अनुसार "द्रव्य वह है जिसके देने से ऋण तथा मूल्य सम्बन्धी प्रसंविदे तय हो जाते हैं और जिसके रूप में सामान्य क्रय शक्ति को इकट्ठा किया जाता है" (**Money is that by the deliving of which debt and price contracts are discharged and in the shape of which general purchasing power is held.)**

प्रो० ऐली के शब्दों मे "द्रव्य वह वस्तु है जो विनिमय के माध्यम के रूप में अबाधित रूप से चलती है और जिसे सामान्यता ऋण के भुगतान में स्वीकार किया जाता है" (**Money is anything that passes freely from hand to hand as a *medium of exchange* and *is generally received in final discharge of debts.)***

द्रव्य के कार्य (Functions of Money) :—

वर्तमान युग मे द्रव्य अनेक कार्य करता है। इन कार्यों को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है :—

(१) मुख्य कार्य **(Primary Functions)**
(२) गौण कार्य **(Secondary Functions)**
(३) सामान्य कार्य **(Contingent Functions)**

(१) **द्रव्य के मुख्य कार्य** :—द्रव्य के मुख्य अथवा प्रारम्भिक कार्य दो हैं :—

(i) विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange) :—यह द्रव्य का मूल कार्य है। 'माध्यम से' तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु का क्रय-विक्रय इसी के द्वारा हो। द्रव्य के आविष्कार ने वस्तु-परिवर्तन प्रथा की समस्त कठिनाइयों को दूर कर दिया है। अब व्यक्ति अपनी वस्तुओं के बदले स्वतन्त्रतापूर्वक द्रव्य स्वीकार करते है और इस द्रव्य के बदले जो भी वस्तु वे चाहे बिना किसी कठिनाई के प्राप्त कर लेते हैं।

(ii) मूल्य का सामान्य माप (A common measure of value) :—द्रव्य का यह कार्य पहले कार्य पर ही आधारित है। प्राचीन

काल म द्रव्य के अभाव से प्रत्येक वस्तु का मूल्य अन्य सभी वस्तुओं म याद रखना पडता था जोकि एक कठिन और असुविधाजनक कार्य था। परन्तु द्रव्य यह कार्य सुगमतापूर्वक कर देता है। प्रत्येक वस्तु का मूल्य द्रव्य मे ही निश्चित किया जाता है। अत द्रव्य मूल्य का सर्वमान्य माप है। सभी देशो म मूल्य की माप द्रव्य द्वारा की जाती है।

द्रव्य के कार्य —

१—मुख्य काय —
- (i) विनिमय का माध्यम।
- (ii) मूल्य का सामान्य माप।

२—सहायक काय —
- (i) सचय का साधन।
- (ii) भावी भुगतान का आधार।
- (iii) विनिमय शक्ति का हस्तान्तरण।

३—सामान्य कार्य —
- (i) राष्ट्रीय आय के वितरण का आधार।
- (ii) श्रम विभाजन का आधार।
- (iii) अधिकतम सतुष्टि का साधन।
- (iv) साख का आधार।
- (v) पूजी की गतिशीलता मे सहायक।

(२) द्रव्य के सहायक कार्य (Subsidiary Functions of Money) —

(i) अर्थ सचय का साधन (Store of Value) —प्रत्येक व्यक्ति भविष्य के लिये कुछ बचाकर रखता है। वस्तुओ के रूप मे अर्थ सचय अल्प काल तक ही किया जा सकता था क्योंकि वस्तुयें नष्ट हो जाती थी और उनके मूल्य म ह्रास हो जाता था। परन्तु वर्तमान द्रव्य ने यह कार्य बडा सरल बना दिया है। अर्थात् मुद्रा अथवा पत्र मुद्रा के रूप मे अर्थ का सचय दीर्घकाल के लिये किया जा सकता है यह द्रव्य न तो शीघ्र नष्ट होता है और न इसका मूल्य ही अधिक अदलता बदलता है।

(ii) भावी भुगतान का आधार (Means of Deferred Payment) —वर्तमान अर्थव्यवस्था म मनुष्य एक दूसरे से ऋण लेते व उनका भुगतान करते रहते हैं। यहा तक कि इस युग को साख युग कहा जाता है। वस्तुओ के रूप म ऋण लेकर वस्तुओ के रूप मे ही भुगतान करने म ऋण दाता अथवा लेनदार दोनों मे से किसी एक को हानि हो जाती थी क्योंकि वस्तुओ के मूल्य बदलते र ते हैं। परन्तु द्रव्य के आविर्भाव के कारण यह कठिनाई दूर हो गई। द्रव्य का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक स्थिर रहता है। अत आजकल ऋणों का लेन देन द्रव्य के रूप मे ही किया जाता है।

(iii) विनिमय शक्ति का हस्तांतरण (Transfer of value) — द्रव्य एक वहनीय वस्तु है। द्रव्य की सहायता से अर्थ (धन) का हस्तान्तरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता से कम व्यय पर किया जा सकता है। वस्तुओं के रूप में धन को लाना लेजाना कठिन, असुविधाजनक व खर्चीला होता है।

(२) द्रव्य के सामान्य कार्य (Contingent Functions of Money) :—

(i) राष्ट्रीय-आय के वितरण का आधार (Basis of Dividing National Income) :—वर्तमान युग मे उत्पादन उत्पत्ति के पाँचो साधनो के सहयोग से होता है। कुल उत्पत्ति को वस्तुओ के रूप मे उत्पत्ति के साधनो मे बाँटना बडा कठिन है परन्तु द्रव्य द्वारा यह कार्य सरल हो गया है। कुल उत्पत्ति को द्रव्य द्वारा बदल लिया जाता है और फिर इस प्राप्त द्रव्य को प्रत्येक साधन मे बाट दिया जाता है।

(ii) श्रम विभाजन का आधार (Basis of Division of Labour) —द्रव्य के कारण ही श्रम विभाजन को अधिक सीमा तक बढाया जा सकता है। आजकल एक व्यक्ति एक कार्य या एक कार्य का कोई छोटा भाग केवल इसीलिये करता है क्योंकि वह जानता है कि उसे उस कार्य के बदले मे जो द्रव्य मिलेगा उससे वह अपनी इच्छित वस्तुओ को प्राप्त कर सकता है।

(iii) अधिकतम संतुष्टि का साधन (Means to achieve maximum satisfaction) :—द्रव्य के द्वारा ही यह सम्भव है कि मनुष्य अपनी आय को समसीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार व्यय करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है।

✓**(iv) साख का आधार (Basis of Credit) :**—साख का विशाल ढाचा द्रव्य की आधार शिला पर ही आधारित है। जिस व्यक्ति के पास द्रव्य नहीं होता उसके लिये साख पत्रो को कोई स्वीकार नही करता। बैंको को भी कुछ द्रव्य अपने स्थायी कोष मे रखना पडता है जिसके बल पर ही बैक ग्राहकों को साख देता है।

(v) पूंजी की गतिशीलता में सहायक (Makes capital Mobile) :—द्रव्य के रूप मे पूँजी एकत्रित करना बडा आसान है। द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर अधिक ब्याज प्राप्त करने की लालच मे शीघ्रता, सरलता और कम व्यय पर भेजा जा सकता है। द्रव्य के अभाव मे, पूजी मे गतिशीलता न आ पाई थी।

प्रश्न ११६—द्रव्य की परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक सभ्य समाज में मुद्रा का क्या महत्व है ?

(Define money and what is the importance of money in a civilized society ?)

उत्तर :—

द्रव्य की परिभाषा —इसके लिए प्रश्न ११५ देखियेगा।

वर्तमान युग मुद्रा का युग कहा जाता है। यदि किसी देश की कृषि उद्योग, व्यापार, यातायात एवं सम्वादवाहनों की तुलना किसी मशीन के पुर्जों से की जाय तो मुद्रा का स्थान इन पुर्जों के चलाने के लिए तेल के समान है। देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्र में मुद्रा का प्रमुख स्थान है। साख संस्थायें भी मुद्रा के आधार पर कार्य करती हैं जो आधुनिक आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं। मुद्रा का महत्व निम्न विवेचन में और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

(१) **मुद्रा वह धुरी है जिसके चारों ओर अर्थशास्त्र चक्कर लगाता है**·—यह विचार प्रो० पीगू ने दिया था। वास्तव में अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय, वितरण एवं राजस्व सभी में प्रत्येक क्रिया का मापदण्ड मुद्रा के द्वारा ही किया जाता है। मुद्रा के प्रयोग से अर्थशास्त्र में निश्चतता पैदा होती है।

(२) **सामाजिक विकास में मुद्रा का हाथ**·—वास्तव में मुद्रा मानव समाज की प्रगति का सूचक है। किसी देश की आर्थिक उन्नति का ज्ञान उस देश की मुद्रा व्यवस्था से हो सकता है। स्वर्ण चलन के समय में किसी देश के स्वर्ण संचय द्वारा उसकी स्थिति आसानी से ज्ञात हो जाती है। आज भी स्वर्ण का अधिक महत्व है परन्तु इसका मुद्रा के रूप में प्रयोग समाप्त हो गया है।

(३) **वर्तमान अर्थ व्यवस्थाओं का आधार :**—आधुनिक समय में पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था सभी का आधार मुद्रा है, क्योंकि मुद्रा के द्वारा ही उत्पादन एवं वितरण की समस्याओं का हल होता है। पूंजीवाद में तो मुद्रा का विशेष महत्व है। पूंजी का संचय भी मुद्रा द्वारा होता है।

(४) **सामाजिक स्वतन्त्रता का आधार** —मुद्रा ने सामाजिक दासता का अन्त किया तथा व्यवसाय स्वतन्त्रता प्रदान की है। श्रमिकों को अब मजदूरी मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है जिससे उनको सामाजिक स्वतन्त्रता

प्राप्त होती है। अब श्रमिक अपने श्रम को कही भी बेचकर मजदूरी प्राप्त कर सकता है तथा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति एव सामाजिक सम्मान बनाये रख सकता है। इस प्रकार मुद्रा सामाजिक स्वतन्त्रता का आधार है।

(५) **राजनैतिक स्वतन्त्रता की वृद्धि** :—वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग है। प्रत्येक सरकार जनता पर कर लगाकर आय प्राप्त करती है तथा उस आय को जन उपयोगी कार्यों पर व्यय करती है। यह सब कार्य मुद्रा के रूप मे ही होता है। करदाता द्वारा कर देने से राजनैतिक चेतना एव स्वतन्त्रता की वृद्धि होती है।

(६) **पूंजी की गतिशीलता मे वृद्धि** :—यहा पूंजी की गतिशीलता का अर्थ मुद्रा के रूप मे तरल पूंजी का किसी भी व्यवसाय एव उद्योग मे प्रयोग करने की क्षमता से है। मुद्रा के प्रयोग से पूंजी की उत्पादकता सभी व्यवसाय मे समान होने की होती है जिससे सभी व्यवसाय एव उद्योगो को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

(७) **अदल बदल प्रथा के दोषों की समाप्ति** :—अदल-बदल द्वारा विनिमय बहुत असुविधा के द्वारा होता था। इन्ही असुविधाओ के दूर करने के लिए मुद्रा का उदय हुआ और अब मुद्रा के प्रयोग से अदल-बदल की सब असुविधायें समाप्त हो गई हैं।

इससे स्पष्ट है कि आधुनिक समय मे भौतिक उन्नति का मुख्य कारण मुद्रा ही है। श्रम विभाजन, पूंजी की गतिशीलता, साख सस्थाओ की उन्नति एव बडे पैमाने की उत्पत्ति के लाभ सभी मुद्रा के कारण प्राप्त होते हैं।

प्रश्न ११७—द्रव्य का कार्य करने के लिये किसी पदार्थ में कौन २ से गुण होने चाहियें? यह गुण मूल्यवान धातुओं में अन्य धातुओं की अपेक्षा कहां तक अधिक पाये जाते हैं?

(What qualities a commodity should posses in order to serve as money. To what extent these qualities are found more in valuable metals than in other metals)

उत्तर :—

विभिन्न देशो मे विभिन्न समयो पर अनेको वस्तुओ ने द्रव्य के रूप मे कार्य किया है परन्तु शनै:-शनै: सब वस्तुयें चलन से हट गईं क्योंकि उनमे वे गुण मौजूद नही थे जो एक आदर्श मुद्रा पदार्थ मे होने अनिवार्य हैं। सोना,

चादी आदि धातुओ मे ये गुण अन्य धातुओ की अपेक्षा अधिक पाये जाते है अत ये ही सबसे अधिक प्रचलित द्रव्य पदार्थ रहे हैं।

द्रव्य का कार्य करने के लिये एक पदार्थ मे निम्न गुण होने चाहिये —

(१) उपयोगिता या सामान्य स्वीकृति (Utility or General acceptability) :—सर्वमान्य स्वीकृति द्रव्य का एक आवश्यक गुण है। व्यक्ति द्रव्य को इसीलिये स्वीकार कर लेते हैं क्योकि वे जानते हैं कि वे द्रव्य को दूसरो को देकर अपनी इच्छित वस्तुयें प्राप्त कर लेंगे। अगर किसी पदार्थ मे निजी उपयोगिता है तो वह द्रव्य के रूप मे आसानी से स्वीकार किया जा सकेगा क्योकि यदि वह पदार्थ द्रव्य के रूप मे चलना बन्द भी हो जाय तो जनता उस धातु को किसी अन्य कार्य मे प्रयोग कर सकेगी।

मूल्यवान धातुओ जैसे सोना, चादी आदि मे यह गुण पाया जाता है। अगर सोना या चादी द्रव्य के रूप मे चलने बन्द हो जाय तो व्यक्ति इनका प्रयोग आभूषण बनाने आदि मे कर लेंगे।

द्रव्य पदार्थ के गुण :—

१ उपयोगिता।
२. वहनीयता।
३. टिकाऊपन।
४. समानता।
५. विभाजकता।
६. ढलाऊपन।
७. परिचयता।
८. मूल्य मे स्थिरता।

(२) वहनीयता (Portability) :—जिन पदार्थों मे वजन कम और मूल्य अधिक होता है, उनमें वहनीयता का गुण पाया जाता है। ऐसे पदार्थों को *एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता से कम व्यय पर ले जाया जा सकता* है। सोना व चादी मे यह गुण भी पाया जाता है। सोने का भाव १२० रु० प्रति तोला है। परन्तु गेहू, घोडे व भैंस आदि मे यह गुण नही होता। पत्र मुद्रा मे वहनीयता का गुण सब धातुओं से भी अधिक है।

(३) टिकाऊपन (Durability) या Or अविनाशता (Indestructibility) — द्रव्य एक हाथ से दूसरे हाथ मे जाता रहता है और सुरक्षित करके रक्खा भी जाता है।

अत द्रव्य पदार्थ ऐसा होना चाहिये जो शीघ्र ही घिस न जाय या नष्ट न हो जाय। प्रो० जीवन्स (Jevons) के अनुसार द्रव्य पदार्थ को "मद्य की भाति उडना नही चाहिये, न मास की भाति सडना ही चाहिये, लकडी की भाति गलना नहीं चाहिये और लोहे की भाति जग नहीं लगना चाहिये"

सोना, चाँदी में यह गुण मौजूद है। सोने का सिक्का ८ हजार वर्ष मे घिस पाता है।

(४) समानता (Homogeneity) —मुद्रा पदार्थ ऐसा होना चाहिये जिसके सभी टुकड़े व नमूने समान गुण वाले और मूल्य वाले हों। सोना, व चादी में यह गुण पाया जाता है। परन्तु सारे बैल व भेड़ें एक सी नही होते। कागजी मुद्रा मे भी यह गुण पाया जाता है। कागज के तमाम नोट एक से बनाये जा सकते हैं।

(५) विभाजकीयता (Divisibility) :—द्रव्य पदार्थ ऐसा होना चाहिये कि उसके छोटे-छोटे टुकडे किये जा सकें और टुकड़े होने के पश्चात समस्त पदार्थ का मूल्य वही रहे जोकि टुकडो मे बांटने से पहले था। सोने व चाँदी मे यह गुण पाया जाता है। चादी की आठ दुअन्नियो को पिघला कर एक चादी का रुपया बनाया जा सकता था। परन्तु हीरे को छोटे-छोटे टुकडो में बाटना आसान नही है और टुकड़े करने पर उसका मूल्य घट जाता है। घोड़े का तो विभाजन हो ही नही सकता।

(६) ढलाऊपन (Malleability) —द्रव्य पदार्थ ऐसा होना चाहिये जो गलाया जा सके, पीटा जा सके और सुविधाजनक आकार मे ढाला जा सके। सोने, चादी मे यह गुण पाया जाता है। हीरे मे यह गुण नही पाया जाता। अतः उसको द्रव्य के रूप मे प्रयोग नही करते।

(७) परिचयता (Cognisibility) :—मुद्रा पदार्थ ऐसा होना चाहिये कि वह जल्दी और आसानी से पहिचाना जा सके और दूसरी धातुओ व वस्तुओं से भिन्न किया जा सके। मिलावट या जालसाजी आसानी से जानी जा सके। अगर ऐसा नही होगा तो देश मे जाली सिक्को की सख्या बढ जायगी। सोने में एक विशेष रंग होता है, चादी मे एक विशेष ध्वनि होती है जिनके कारण इनको आसानी से पहिचाना जा सकता है। सुनार कसौटी पर सोने को रगड कर उसके रंग को देख कर ही यह बतला देता है कि इसमे कोई मिलावट है या नही हीरे मे यह गुण नही पाया जाता।

(८) मूल्य मे स्थिरता (Stability of value) —जो वस्तु द्रव्य के काम आती है उसका मूल्य साधारणतया स्थायी होना चाहिए। द्रव्य द्वारा ही समस्त वस्तुओ का मूल्य आंका जाता है। अगर माप दड (Measuring Rod) का मूल्य ही स्थिर नही है तो वस्तुओ का मूल्य भी स्थिर नहीं रह सकता। और व्यापार बहुत अनिश्चित व जोखिमपूर्ण हो जावेगा। सोने चादी मे यह गुण पाया जाता है। इनका वार्षिक उत्पादन बहुत ही सीमित है और इनकी माग भी लगभग निश्चित है। अतः इनके मूल्यो मे असाधारण

घट बढ नही होती। अनाज के दाम प्रतिवर्ष बदलते रहते है, अत यह द्रव्य के रूप मे प्रयोग नही होता।

नोट :—आदर्श द्रव्य पदार्थ के उपरोक्त गुण C U P D I S H M शब्दो को याद करके वर्णन किये जा सकते हैं। प्रत्येक शब्द एक गुण का बोध कराता है।

C	=	परिचयता	(Cognisibility.)
U	=	उपयोगिता	(Utility)
P	=	वहनीयता	(Portability)
D	=	टिकाऊपन	(Durability)
I	=	अक्षयता	(Indestructibility)
S	=	मूल्य स्थिरता	(Stability of value)
H	=	समानता	(Homogeneity.)
M	=	ढलाऊपन	(Malleability.)

प्रश्न ११८—प्रमाणिक व सांकेतिक सिक्कों पर टिप्पणी लिखिये। क्या रुपया प्रामाणिक सिक्का है ? रुपये की आधुनिक दशा स्पष्टतः समझाइये।

(Write a note on standard and token coins Is Rupee a standard coin ? Clearly discuss the position of Rupee in this connection ?)

उत्तर :—

प्रामाणिक सिक्का (Standard coin) :—

प्रामाणिक सिक्का वह सिक्का होता है जिसका अंकित मूल्य (**Face Value**) उसके वास्तविक या धात्विक मूल्य (**Intrinsic Value**) के बराबर होता है। दूसरे शब्दो मे 'प्रमाणिक सिक्के का' राज्य द्वारा निश्चित मूल्य उसमे लगी हुई धातु के मूल्य के बराबर होता है। इसका धात्विक मूल्य इसके अंकित मूल्य के बराबर होने के कारण इसको **पूर्णकाय सिक्का (Full bodied coin)** भी कहते हैं। यह सिक्का असीमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य होता है और इसकी स्वतन्त्रता ढलाई होती है अर्थात ऋण के भुगतान मे इसको किसी भी सीमा तक दिया जा सकता है और जनता को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह टकसाल मे धातु ले जाकर सिक्कों को ढलवा ले। प्रमाणिक सिक्का देश का प्रमुख सिक्का होता है।

सांकेतिक सिक्का (Token Coin) :—

सांकेतिक सिक्का वह सिक्का होता है जिसका अंकित मूल्य उसके वास्तविक अथवा धात्विक मूल्य से अधिक होता है अर्थात जितने मूल्य की इसमें धातु लगी होती है इसका उससे अधिक मूल्य राज्य द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है। यह देश का सहायक सिक्का होता है और छोटे-छोटे भुगतानों मे प्रयोग किया जाता है। यह सिक्का सीमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य होता है और इसकी परिमित ढलाई (Limited Coinage) होती है। इसीलिये इन सिक्कों को ऋण के भुगतान मे एक निश्चित सीमा तक ही दिया जाता है और जनता को सिक्के ढलवाने की स्वतन्त्रता नहीं होती। ये राज्य देश के बल पर ही चलते हैं अतः इसको आदेश द्रव्य (Fiat money) भी कहते हैं। ऐसे सिक्कों के ढालने से राज्य को कुछ आय प्राप्त होती है। भारत में रुपये के अलावा अन्य छोटे सिक्के सब सांकेतिक हैं।

प्रमाणिक व सांकेतिक सिक्कों की तुलना :—

प्रमाणिक सिक्का	सांकेतिक सिक्का
१. देश का प्रधान सिक्का होता है।	१. देश का सहायक सिक्का होता है।
२. अंकित मूल्य धात्विक मूल्य के बराबर होता है।	२. अंकित मूल्य धात्विक मूल्य से अधिक होता है।
३. इसकी स्वतन्त्र ढलाई होती है।	३. इसकी सीमित ढलाई होती है।
४. यह असीमित कानूनी ग्राह्य मुद्रा है।	४. यह सीमित कानूनी ग्राह्य मुद्रा है।
५. यह पूर्णकाय सिक्का है।	५. यह आदेश द्रव्य है।

क्या रुपया प्रमाणिक सिक्का है :—

भारतीय चलन प्रणाली में रुपये का एक विचित्र स्थान है। इसमें आज कल सांकेतिक व प्रमाणिक दोनों ही प्रकार के सिक्कों की विशेषतायें पाई जाती हैं। १८९३ तक रुपये में १६ आने के बराबर चांदी होती थी और इसमे प्रमाणिक द्रव्य की अन्य सब विशेषतायें थी परन्तु १८९३ के पश्चात टकसाल जनता के लिए बंद करदी गई और इसका अंकित मूल्य इसके वास्तविक मूल्य से अधिक हो गया। धीरे-धीरे इसमें चाँदी की मात्रा (सर्वप्रथम द्वितीय विश्वयुद्ध मे) कम हुई अब यह केवल गिलट का बना हुआ है।

अत. भारतीय रुपये का वास्तविक मूल्य इसके अंकित मूल्य से बहुत ही कम है, जनता को सिक्के ढलवाने का अधिकार नहीं है परन्तु यह देश का प्रमुख सिक्का है। इसके ही रूप में सब वस्तुओं का मूल्य मापा जाता है। यह असीमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य है। अत स्वभावत. यह सांकेतिक है किन्तु कार्य करता है प्रमाणिक सिक्कों का, इसलिये भारतीय रुपये को सांकेतिक प्रमाणिक सिक्का (Token standard Coin) कहा जाता है।

आजकल भारतीय रुपये को कलकत्ता व बम्बई की टकसालों में सरकारी नियन्त्रण में ढाला जाता है। इसके मूल्य को १ शि० ६ पें० पर स्थिर रखा जाता है यह कार्य रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा किया जाता है।

प्रश्न ११९—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

(अ) कानूनी ग्राह्य मुद्रा (ब) मुद्रा ढलाई (स) सिक्को की हीनता।

(Write short notes on the following) :—

(a) Legal tender money (b) Coinage (c) Debasement of coins)

उत्तर :—

(अ) कानूनी ग्राह्य द्रव्य :—

कानूनी ग्राह्य द्रव्य उस द्रव्य को कहते हैं जिसे कानून ऋणों के भुगतान में स्वीकार करना पड़े। ऐसा न करने वाले व्यक्ति कानून की दृष्टि से दड के भागी होते हैं। द्रव्य एक ऐसी वस्तु होता है जो सर्वमान्य हो यह तभी हो सकता है जबकि वह कानूनी या वैधानिक ग्राह्य हो। अतः द्रव्य हमेशा कानूनी ग्राह्य होता है। कागजी नोट, रुपया व अन्य सिक्के कानूनी ग्राह्य द्रव्य के उदाहरण हैं परन्तु चैक या हुँडी नहीं क्योंकि लेने वाला उसके लेने से इंकार कर सकता है। कानूनी स्वीकार्यता की सीमा के आधार पर द्रव्य के दो भाग किये जाते हैं :—

असीमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य (Unlimited legal tender Money)

यह वह द्रव्य होता है जिसको कानूनन किसी भी बड़ी से बड़ी रकम के भुगतान में स्वीकार करना आवश्यक होता है। जैसे भारत मे रुपया, नोट न. प्रठन्नी.।.

सीमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य (Limited legal tender money)

यह वह द्रव्य है जिसे ऋणों के भुगतान में केवल एक निश्चित सीमा तक

ही दिया जा सकता है। जैसे चवन्नी, दुवन्नी व इकन्नी को १०) से अधिक नहीं दे सकते। इसी प्रकार पैसो को १ रु० से अधिक लेने के लिये किसी को बाध्य नही कर सकते।

(ब) सिक्का ढलाई (Coinage) :—

किसी धातु के टुकडे को सिक्के का रूप देना मुद्रा ढलाई कहलाता है। यह मुख्यतः दो प्रकार का होता है —(१) स्वतन्त्र सिक्का ढलाई (Free Coinage) (२) सीमित सिक्का ढलाई (Limited Coinage)

(१) स्वतंत्र सिक्का ढलाई —जब जनता को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वह सोना, चाँदी आदि टकसाल मे ले जाकर सिक्के ढलवाकर ले आवे तो इस प्रकार की मुद्रा ढलाई को स्वतन्त्र सिक्का ढलाई कहते हैं। भारत मे १८९३ तक और इगलैंड मे १९३१ तक ऐसी ही पद्धति प्रचलित थी। भारत में जनता चाँदी ले जाकर टकसाल मे चादी के सिक्के ढलवा सकती थी और इगलैंड मे सोना ले जाकर सौवरेन (Sovereign) ढलवा सकती थी। जब सरकार जनता से मुद्रा ढलाई का कोई शुल्क नही लेती तो इसको निशुल्क मुद्रा ढलाई (Gratuitous Coinage) कहते हैं, यदि ढलाई व्यय के बराबर शुल्क लेती है तो इसको सशुल्क ढलाई (Brassage Coinage) कहते हैं और यदि सरकार लाभ कमाने के दृष्टिकोण से ढलाई व्यय से अधिक शुल्क चार्ज करती है तो इसको सलाभ मुद्रा ढलाई(Seigniorage) कहते हैं।

(२) परिमित मुद्रा ढलाई :—

जब राज्य जनता को यह अधिकार नही देता कि वह धातु ले जाकर टकसाल मे सिक्को को ढलवा सकें तो इस प्रकार की मुद्रा ढलाई पद्धति परिमित मुद्रा ढलाई कहलाती है। टकसालें जनता के लिये बद रहती हैं। मुद्रा ढलाई पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। भारत मे आजकल परिमित मुद्रा ढलाई पद्धति ही प्रचलित है।

(स) सिक्कों की हीनता (Debasement of Coins) :—

सिक्को की तोल अथवा शुद्धता अथवा दोनो को कम करना सिक्को की हीनता या निष्कृष्टता कहलाता है। यह हीनता राज्य अथवा जनता दोनो ही के द्वारा हो सकती है। भारतवर्ष मे १९४१ से पूर्व १८० ग्रेन चादी के रुपये मे १५ ग्रेन खोट था। द्वितीय युद्ध मे इसमे १० ग्रेन खोट कर दिया गया। आजकल यह केवल गिलट का ही है। इस प्रकार १९४१ के बाद रुपये में हीनता होती चली आई है।

जनता भी सिक्कों को हीन बना देती है। यह कार्य अवैधानिक है। यह तीन प्रकार से होता है—(१) सिक्को के किनारे काट कर (clipping) (२) सिक्को को घिस कर (Abrasion) (३) सिक्को को तेजाब मे डालकर (Siveating)। तीनो ही तरीको मे सिक्के की तोल मे कमी हो जाती है।

अध्याय ५३

कागजी द्रव्य और मुद्रा का प्रमाण

प्रश्न १२०—पत्र मुद्रा के विभिन्न प्रकारों तथा उसके गुण-अवगुणो को बताइये। भारत में कागजी द्रव्य का चलन कैसे किया जाता है?

(Give the various kinds of Paper Money Discuss its advantages and disadvantages. How is the paper money issued in India ?)

उत्तर :—

कागज के टुकडे पर छपी हुई मुद्रा को 'कागज द्रव्य' या 'पत्र मुद्रा' या नोट कहते हैं। पत्र मुद्रा से अभिप्राय सरकार द्वारा अथवा सरकार के आदेशानुसार देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रचलित नोटो से है जो देश भर मे राज्यादेश के बल पर स्वतन्त्रतापूर्वक विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते हैं। कागजी मुद्रा का वास्तविक मूल्य नहीं के बराबर होता है। साख-पत्र जैसे चैक, बिल इत्यादि भी कागज के बने होते हैं और विनिमय के माध्यम के रूप मे प्रयोग किये जाते हैं परन्तु कानूनी सर्वग्राह्य न होने के कारण कागजी मुद्रा के अन्तर्गत सम्मिलित नही किये जाते।

पत्र मुद्रा के गुण (Advantages of Paper Money) :—

आजकल के युग मे कागजी मुद्रा बडी लोकप्रिय हो गई है। लगभग सभी प्रगतिशील देशो में धात्विक मुद्रा की अपेक्षा कागजी मुद्रा का अधिक प्रचलन है। इस मुद्रा के अनेकों लाभ हैं, जैसे

(१) **वहनीयता**—यह मुद्रा बहुत हल्की होती है अत: इसको एक स्थान से दूसरे स्थान को बडी सरलता और सुविधापूर्वक ले जाया जा सकता है।

(२) **सस्ती :**—पत्र मुद्रा के प्रचलन मे बहुत कम व्यय होता है। सिक्के ढालने की अपेक्षा नोट छापना बडा सस्ता है। इसी प्रकार जिस कागज पर नोट छापे जाते हैं उसकी कीमत धातु की अपेक्षा कम होती है।

(३) **धातु की बचत** —कागजी द्रव्य के प्रचलन के कारण बहुत सी धातु (सोना, चाँदी इत्यादि) जो सिक्के बनाने मे प्रयोग की जाती, बच रहती है। अब उसका अन्य कार्यों मे प्रयोग किया जा सकता है।

(४) **धातु की घिसाई की बचत :**—कागजी मुद्रा के चलन मे होने के कारण सोना या चादी के सिक्के जो चलन मे होते हैं घिसने से बच जाते हैं।

(५) **लोच .**—धातु-मुद्रा की अपेक्षा कागजी मुद्रा मे बहुत अधिक लोच पाया जाता है। व्यापार की आवश्यकता अथवा सकट के समय इसकी मात्रा को आसानी से बढाया जा सकता है और यदि कम करने की आवश्यकता हो तो कम भी किया जा सकता है। इसको बढ़ाने के लिये पहले उतनी ही धातु की आवश्यकता नहीं होती।

पत्र मुद्रा के गुण —
१. वहनीयता।
२ सस्ती।
३ धातु की बचत।
४ धातु की घिसाई की बचत।
५. लोच।
६. सरलता।

हानियाँ —
१ सीमित क्षेत्र।
२ क्षय हो जाना।
३ मुद्रा प्रसार का भय।
४ अस्थायी मूल्य।

(६) कागजी मुद्रा के द्वारा थोडे आकार मे बहुत सा मूल्य केन्द्रित हो जाता है। छोटे से कागज पर १०० रु० का नोट छाप दिया जाता है।

पत्र मुद्रा की हानियाँ (Disadvantages of Paper money) —

(१) **सीमित क्षेत्र** —कागजी मुद्रा केवल देश-विदेश की सीमाओ म ही चलती हैं। भारतीय रुपयो के नोट भारत से बाहर नहीं चलते।

(२) **क्षय हो जाना** —कडी धातु तो काफी दिनो तक सुरक्षित रह सकती है परन्तु कागज के नोट हाथों मे बदलते बदलते या पानी पड जाने या अन्य कोई लापरवाही करने पर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

(३) **मुद्रा प्रसार का भय** —कागजी द्रव्य की मात्रा अधिक हो जाने से देश मे मुद्रा प्रसार का भय बना रहता है। नोट छापने का व्यय बहुत कम होता है अतः सरकार धन की आवश्यकता के समय काम चलाने के लिये

नोट छापने लगती है। मुद्राप्रसार के कारण देश में वस्तुओं के दाम बढ़ जाते हैं और मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को बड़ी हानि होती है।

(४) **अस्थाई मूल्य** :—पत्र मुद्रा का वास्तविक मूल्य कुछ भी नहीं होता। यह राज्यादेश पर चलती है। इसीलिये इसके चलाने में सरकार को बड़े विवेक से काम लेना पड़ता है अन्यथा इसके मूल्य में परिवर्तन होने लगते हैं जो कि वाछनीय नहीं।

पत्र-मुद्रा के प्रकार (Kinds of Paper money) :—

पत्र मुद्रा के निम्न तीन प्रकार हैं :—

(१) **प्रतिनिधि पत्र मुद्रा (Representative Paper money)** —प्रतिनिधि पत्र मुद्रा उस कागजी द्रव्य को कहते हैं जिसके पीछे नोट छापने वाली संस्था शत-प्रतिशत कोष रखती है। यदि १०० रु० के नोट छापने हैं तो १०० रु० की कीमत का सोना या चादी कोष में सुरक्षित रख दिया जायेगा। नोटों के प्रचलन की प्रारम्भिक अवस्था में जनता में विश्वास उत्पन्न करने के लिये नोटों के पीछे १००% सोना या चादी रखा जाता था। देखा जाय तो द्रव्य तो सोना व चादी ही है परन्तु चलन में कागजी नोट उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। इससे यद्यपि धातुओं की बचत तो नहीं होती परन्तु धातु घिसने से अवश्य बच जाती है।

(२) **परिवर्तनीय पत्र मुद्रा (Convertible Paper money)** —जिस पत्र मुद्रा के बदल में मागने पर सरकार से अथवा नोट निर्गमन करने वाली संस्था से प्रमाणित धातु मुद्रा प्राप्त हो सकें, उस मुद्रा को परिवर्तनीय पत्र मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार के नोटों के पीछे १००% सोना या चाँदी कोष में नहीं रखना पड़ता। नोट निर्गमन संस्था अनुभव से यह पता लगा लेती है कि सामान्यतः नोटों का कितना प्रतिशत किसी भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जाता है। अत नोटों के पीछे इतने ही प्रतिशत के बराबर सोना, चादी आदि सुरक्षित कोष में रख देते हैं। भारत में २, ५, १०, १०० व १००० रुपये क नोट परिवर्तनीय कागजी मुद्रा हैं। जिनके भुगतान के लिय Reserve Bank of India एक निश्चित प्रतिशत सोना, चाँदी व सिक्के आदि सुरक्षित कोष में रखती है। रिजर्व बैंक के नोटों पर गवर्नर की यह प्रतिज्ञा अकित होती है "मैं धारक को मागने पर इसके बदले ....रुपये अदा करने की प्रतिज्ञा करता हू" (I promise to pay the bearer on demand the sum of Rupees .. . ...") इस प्रकार की पत्र मुद्रा से आवश्यक धातु बेकार कोष में पड़े रहने से बच जाती है और उसे अन्य आवश्यक कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। पत्र मुद्रा के जिस भाग के लिये

कोष रखा जाता है। वह रक्षित भाग (Covered Issue) और शेष को अरक्षित (Uncovered Issue) कहते हैं।

(३) अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा (*Inconvertible Paper money*) :— वह पत्र मुद्रा जिसके बदले सरकार अथवा नोट निर्गमन करने वाली संस्था सोना, चाँदी या प्रमाणिक मुद्रा देने को बाध्य न हो, उसे अपरिवर्तनीय पत्र-मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार के नोट केवल राजाज्ञा के कारण चलते हैं। भारतवर्ष मे १ रु० का नोट इसी प्रकार की पत्र मुद्रा के अन्तर्गत आता है। ऐसी मुद्रा के पीछे कोई रक्षित कोष नही रखा जाता है और न नोट के भुगतान के लिये कोई लिखित प्रतिज्ञा ही होती। राज्यानुसार चलने के कारण इसको आदेश द्रव्य (Fait money) भी कहते हैं। साधारणत: युद्ध-काल मे ऐसी मुद्रा छापी जाती है और यह द्रव्य का कार्य भली प्रकार करती रहती है और जनता को इसके बदले मे कोई धातु-द्रव्य लेने की आवश्यकता प्रतीत नही होती और असाधारण स्थिति के पश्चात भी यह नोट इसी प्रकार चलते रहते हैं। भारतवर्ष मे १ रु० का नोट युद्धकाल मे छापा गया और युद्ध पश्चात आज भी अपरिवर्तनीय मुद्रा के रूप मे देश मे चल रहा है।

भारत में नोट प्रचलन का तरीका (*How notes are issued in* India) .—

भारत सरकार ने सन् १९३५ से नोट छापने का अधिकार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को दे दिया है। यह कार्य बैंक के निर्गमन विभाग (Issue Department) द्वारा किया जाता है। बैंक २, ५, १०, १०० व १००० रु० के नोट छापता सन् १९४६ मे १००० रु० के नोटों को बन्द कर दिया गया। ये सब परिवर्तनीय कागजी मुद्रा हैं। इनके ऊपर रिजर्व बैंक के गवर्नर की प्रतिज्ञा छपी रहती है कि धारक को मागने पर नोट पर अंकित मूल्य के बराबर सोना, चादी इत्यादि दे दिया जायगा। १ रु० के नोट को भारत सरकार का वित्त मत्रालय (Ministry of Finance) निर्गमित करता है। यह नोट अपरिवर्तनीय मुद्रा है।

गतवर्ष तक रिजर्व बैंक कुल नोटों के पीछे ४०% का सुरक्षित कोष सोने की धातु, सोने के सिक्के अथवा विदेशी प्रतिभूतियों (Securities) के रूप मे रखता था और शेष ६०% रुपये के सिक्के तथा सरकारी प्रतिभूतियो के रूप मे रखता था अर्थात नोटो का प्रचलन अनुपातिक सुरक्षित कोष पद्धति के आधार पर होता था। इस वर्ष से भारत में नोटों के प्रचलन को न्यूनतम द्रव्य कोष की पद्धति अपनाई गई है। आजकल सुरक्षित कोष मे २०८ करोड रु० का सोना, उसके सिक्के अथवा विदेशी सिक्योरिटियां होनी चाहिये।

प्रश्न १२१—स्वर्ण चलन मान, स्वर्ण धातु मान, स्वर्ण विनिमय मान और स्टर्लिंग मान का अन्तर स्पष्ट कीजिये। भारतवर्ष मे वर्तमान समय मे कौन-सा मान प्रचलित है ?

(Distinguish clearly between Gold Currency Standard, Gold Bullion Standard, Gold Exchange Standard and sterling standard What is the prevailing monetary standard in India ?)

उत्तर :—

स्वर्ण चलन मान (Gold Currency Standard) —

स्वर्ण चलन मान उस प्रणाली को कहते हैं जिसके अन्तर्गत देश मे सोने के बने हुये सिक्के चलन में होते हैं। इसी कारण इसको स्वर्ण मुद्रा मान भी कहते हैं चलन मे सोने के सिक्को के अतिरिक्त कागजी द्रव्य और अन्य साकेतिक द्रव्य भी होते हैं परन्तु उनको सरकार सोने के सिक्को मे बदलने के लिए हर समय तैयार रहती है। सोने के सिक्को की स्वतन्त्र ढलाई होती है अर्थात जनता को यह अधिकार होता है कि वह सोना ले जाकर टकसाल में सिक्के ढलवा सके। इनका अकित मूल्य इनके वास्तविक मूल्य के बराबर होता है और ये अपरिमित कानूनी ग्राह्य द्रव्य होते हैं।

इस मान में यह गुण होता है कि इसमे सोने के सिक्के चलन मे होने के कारण लोगों को इस मान पर विश्वास अधिक रहता है परन्तु इसको केवल धनवान देश ही अपना सकते हैं क्योंकि इस मान मे बहुत बडी मात्रा मे कीमती धातु की आवश्यकता पडती है। सिक्को के रूप मे सोना चलन मे रहकर व्यर्थ मे घिसता रहता है। इसमे लोच भी नही होती है। अत अब यह ससार के किसी देश में नही पाया जाता। इगलैंड मे यह १९१४ तक रहा।

स्वर्ण धातु मान (Gold Bullion Standard) —

प्रथम महायुद्ध के पश्चात सोने की कमी के कारण स्वर्ण मान का एक नया ढग निकाला गया है। इसके अन्तर्गत देश मे अधिकतर कागज के नोटो व चाँदी के सिक्कों का चलन होता है। यह कागजी मुद्रा परिवर्तनशील होती है और सरकार या अधिकारी सस्था नोटो के बदले मे एक निश्चित दर पर सोना खरीदने और सोना देने को तैयार रहती है। सरकार सोने की छडो को राजकीय कोष में इस कार्य के लिए सुरक्षित रखती है। इस मान में सरकार यह नहीं पूँछती कि सोना किस कार्य के लिए लिया जा रहा है।

जनता सोना चाहे अपने निजी कार्यों के लिए ले या विदेशियो को भुगतान के लिए, सरकार इसकी कोई परवाह नही करती ।

इस मान मे स्वर्ण मुद्रा मान के समस्त गुण पाये जाते हैं। साथ ही साथ सिक्के के निर्माण का व्यय और सिक्को की घिसावट बच जाती है । परन्तु सोने की एक बहुत बडी राशि राजकीय कोष मे बेकार पडी रहती है यही इसका सबसे बडा दोष है । यह मान इगलैंड मे १९३१ तक रहा ।

स्वर्ण विनिमय मान (Gold Exchange Standard) .—

इस मान के अन्तर्गत देश मे आतरिक व्यवहार के लिए कागज या किसी सस्ती धातु का चलन होता है यह साधारणतया अपरिवर्तनशील होती है इसके बदले मे आंतरिक कार्यों के लिए सोना नही मिल सकता। परन्तु विदेशी विनिमय और लेन देन के लिए देश की सरकार या कोई अधिकारी सस्था कागजी द्रव्य व सिक्को के बदले मे एक निश्चित दर पर सोना या कोई ऐसी विदेशी मुद्रा जो सोने की बनी हो या स्वर्ण धातु मान पर आश्रित हो, देने का उत्तरदायित्व लेती है । इस प्रकार देश की प्रचलित मुद्रा का स्वर्ण से अपरोक्ष से सम्बन्ध कर दिया जाता है ।

इस धातु मान में सोने की कम आवश्यकता होती है अत: यह गरीब देशो के लिए बहुत उपयुक्त है । परन्तु इस मान पर लोगों को विश्वास कम होता है । इसको चलाने के लिए राज्य को बहुत हस्तक्षेप करना पडता है । भारत में १९३१ तक यही धातुमान था। १ रु० = १ शि० ६ पैं० की दर से विदेशी भुगतान के लिए स्टार्लिग मिल सकता था ।

स्टर्लिग विनिमय मान (Sterling Exchange Standard) —

इस मान के अन्तर्गत देश के अन्दर पत्र मुद्रा चलन मे रहती है जो आतरिक व्यापार के लिए अपरिवर्तनशील होती है । विदेशी भुगतान के लिए आंतरिक पत्र मुद्रा के बदले मे किसी दूसरे देश की मुद्रा को निश्चित अनुपात में दे दिया जाता है और इस विदेशी मुद्रा का भी स्वर्ण से कोई सम्बन्ध नही होता । १९३१ के बाद इगलैंड स्वर्ण मान नही रहा परन्तु भारतीय रुपये का सम्बन्ध १ शि० ६ पैं० की दर पर स्टर्लिग से बना रहा । रुपये का मूल्य स्टर्लिग के मूल्य पर निर्भर हो गया । स्टरलिंग का मूल्य घटने बढने पर रुपये का मूल्य भी घटने बढने लगा । क्योंकि रुपये का सम्बन्ध स्टरलिंग से स्थापित कर दिया गया जो अब स्वर्ण पर नही था। इस मान को स्टरलिंग विनिमय मान कहते हैं ।

भारत मे प्रचलित मुद्रा मान :—

भारत 'अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' का सदस्य है । इस कोष की निधि

डालर म है। रुपये की दर ३·३०८५१९४ रु०=१ अमरीकी डालर निश्चित की गई है। रुपये के अवमूल्यन के पश्चात से १ रु०=२१ अमरीकी सैंट की दर निर्धारित हो गई है। अत: अब रुपया स्टर्लिंग से मुक्त है और प्रचलित मान **'अन्तर्राष्ट्रीय-स्वर्ण डालर विनिमय मान कहा जाता है।'**

—०—

प्रश्न १२२—एक अच्छी मुद्रा पद्धति के आवश्यक गुण क्या हैं ?

(What are the essential of a good Monetary system ?)

उत्तर —

यह कहना कठिन है कि एक अच्छी मुद्रा पद्धति कौन-सी है ? फिर भी एक आदर्श मुद्रा पद्धति में निम्न गुणों का होना आवश्यक है :—

अच्छी मुद्रा पद्धति की विशेषतायें :—

१. मूल्यों मे स्थिरता।
२. सरलता का गुण।
३. परिवर्तनशीलता।
४. निश्चितता।
५. लोचकता।
६. मितव्ययिता।
७. मुद्रा प्रसार से सुरक्षा।

(१) **मूल्यों में स्थिरता** :—किसी देश की मुद्रा पद्धति में सबसे आवश्यक गुण यह होना चाहिये कि उस देश में वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों मे स्थिरता बनी रहे। मूल्यों मे स्थिरता न रहने से समाज के सभी वर्गों, उद्योग, कृषि एव व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(२) **सरलता का गुण** :—एक अच्छी मुद्रा पद्धति मे सरलता का भी गुण होना चाहिये। मुद्रा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिसको प्रत्येक व्यक्ति आसानी से समझ सके। सरलता का गुण जनता का मुद्रा पद्धति मे विश्वास पैदा करता है। स्वर्ण मान में यह गुण पाया जाता है।

(३) **परिवर्तनशीलता का गुण** :—एक अच्छी मुद्रा पद्धति वही है जिसकी मुद्रा सोना, चांदी मे आसानी से बदली जा सके। इससे जनता का उस देश की मुद्रा पद्धति मे विश्वास पैदा होता है।

(४) **निश्चितता का गुण** :—मुद्रा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिसकी प्रत्येक बात स्पष्ट समझ में आ सके। सरकारी दायित्व के विषय में स्पष्टता होनी आवश्यक है। तभी किसी देश की मुद्रा पद्धति में निश्चितता का गुण आ सकता है।

(५) **लोचता का गुण** :—मुद्रा पद्धति मे लोचता का भी गुण होना चाहिये अर्थात आवश्यकतानुसार मुद्रा की मात्रा मे घट-बढ आसानी से हो सके। मुद्रा के मूल्य मे स्थिरता के लिए मुद्रा पद्धति मे लोच का होना आवश्यक है।

(६) **मितव्ययिता का गुण** —एक अच्छी मुद्रा पद्धति मे मितव्ययिता का गुण भी होना चाहिये। मुद्रा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिसमे सोने, चादी का कम से कम प्रयोग हो तभी मुद्रा पद्धति सरल एव लोचदार हो सकती है।

(७) **मुद्रा प्रसार के विरुद्ध सुरक्षा** :—मुद्रा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिसमे मुद्रा प्रसार का दोष न हो अन्यथा देश आर्थिक सकट में पड सकता है। इस कारण से एक अच्छी मुद्रा पद्धति मे मुद्रा प्रसार के विरुद्ध सुरक्षा का गुण भी होना चाहिये।

इसलिए किसी देश की मुद्रा पद्धति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसम उपर्लिखित गुण होने चाहिये। मुद्रा चलन की पद्धति उस देश की आर्थिक दशा, जनसख्या का घनत्व एव सामाजिक प्रथाओ व आदतो के अनुसार उस देश की सरकार द्वारा निश्चित किया जा सकता है।

अध्याय ५४

मुद्रा प्रसार, मुद्रा संकुचन तथा ग्रेशम का नियम

प्रश्न १२३—मुद्रा प्रसार तथा मुद्रा संकुचन को समझाइये। इनसे समाज के विभिन्न वर्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(Explain Inflation and Deflation. How do they affect the different section of the society ?)

उत्तर :—

मुद्रा प्रसार (Inflation) —

मुद्रा प्रसार उस स्थिति को कहते हैं जब देश में द्रव्य की मात्रा उसकी आवश्यकता से अधिक हो जाती है। द्रव्य की आवश्यकता वस्तुओ के क्रय-

विक्रय के लिये होती है जो स्वय देश के उत्पादन पर निर्भर होता है। अतः जब किसी देश मे उत्पादन की अपेक्षा मुद्रा की पूर्ति बढ जाती है तो मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुद्रा की पूर्ति मांग की अपेक्षा अधिक होने के कारण, मूल्य सिद्धात के अनुसार, द्रव्य का मूल्य गिर जाता है अर्थात समाज द्रव्य की इकाई पहले की अपेक्षा कम वस्तुयें और सेवायें खरीद पाता है। अत. वस्तुओं के दाम बढने लगते हैं।

मुद्रा प्रसार साधारणतया युद्ध काल मे होता है जब सरकार को युद्ध सचालन के लिये बहुत मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है। वह नोट छाप कर क्रय शक्ति निर्माण करती है। पिछडे हुए देशो मे आर्थिक विकास के लिये आवश्यक धन प्राप्त करने के लिये भी सरकार मुद्रा प्रसार की नीति को अपनाती है। भारतवर्ष मे आजकल यही हो रहा है। अतः इसी कारण भारतवर्ष मे मूल्य स्तर (General Price level) उठता चला जा रहा है।

मुद्रा संकुचन (Deflation) :—

मुद्रा सकुचन मुद्रा की विपरीत स्थिति है। जब देश मे मुद्रा की मात्रा आवश्यकता से कम रह जाती है तथा देश में विनिमय कार्य के लिये मुद्रा अपर्याप्त रहती है तो ऐसी स्थिति को मुद्रा सकुचन कहते हैं। मुद्रा की पूर्ति माग की अपेक्षा कम होने के कारण, मुद्रा का मूल्य बढ जाता है। अथवा द्रव्य की क्रय-शक्ति (Purchasing Power) बढ जाती है। फलस्वरूप वस्तुओं के दाम गिरने लगते हैं।

मुद्रा प्रसार और मुद्रा संकुचन का प्रभाव .—

जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट है मुद्रा प्रसार अथवा मुद्रा सकुचन दोनों ही सामान्य मूल्य स्तर को प्रभावित करते हैं। मूल्यों मे परिवर्तन का समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग प्रभाव पडता है जो निम्न प्रकार है :—

(१) ऋणी और ऋणदाता (Debtors and Creditors) :—मुद्रा प्रसार के ऋणी को लाभ और ऋणदाता को हानि होती है। मुद्रा प्रसार होने से द्रव्य की क्रय शक्ति कम हो जाती है परन्तु ऋणी ऋणदाता को उतना ही द्रव्य लौटाता है जितना कि उसने उधार लिया था। अर्थात वह पहले की अपेक्षा कम क्रय शक्ति लौटाता है। मुद्रा सकुचन की स्थिति मे विपरीत प्रभाव होता है। ऋणी को हानि ऋणदाता को लाभ। ऋणी को अब पहले की अपेक्षा अधिक क्रय-शक्ति लौटानी पडेगी क्योंकि मुद्रा-सकुचन से मूल्य स्तर गिर जाता है।

(२) **उत्पादक व व्यापारी (Producer and Businessman)** — उत्पादको और व्यापारियो को मुद्रा प्रसार से बडा लाभ होता है। उत्पादन लागत वस्तुओ की कीमतो के अनुपात मे नही बढती हैं अत वे काफी मुनाफा कमाते हैं। व्यापारी लोग मदी के समय माल कोठो मे भर कर रख लेते हैं और मुद्रा प्रसार के बाद ऊची कीमतो पर बेचते हैं। अतिरिक्त लाभ के लालच में उत्पादक व व्यापारी खूब उत्पादन करते हैं।

परन्तु मुद्रा सकुचन का इस वर्ग पर बडा बुरा प्रभाव पडता है। व्यापारियो को हानि होती है क्योकि उनके स्टाक की कीमतें गिरने लगती हैं उत्पादकों का लागत व्यय उस अनुपात मे कम नही होता जिससे कि वस्तुओ की कीमतें कम होती हैं। अत उनको भी हानि होती है। फलस्वरूप उनमे निराशा छा जाती है, उत्पत्ति कम करदी जाती है और देश मे बेकारी फैल जाती है।

(३) **उपभोक्ता (Consumers)** :—मुद्रा प्रसार से उपभोक्ताओ को हानि होती है क्योकि अब उनको पहले की अपेक्षा अधिक मूल्यो पर वस्तुयें मिलेंगी। मुद्रा सकुचन से इस वर्ग को लाभ होता है क्योकि उनकी सीमित आय पहले की अपेक्षा अधिक वस्तुयें क्रय कर पाती है।

(४) **मजदूर वर्ग (Labourers)** — मुद्रा प्रसार बेरोजगार मजदूरो को रोजगार प्रदान करता है क्योकि मुद्रा प्रसार की स्थिति से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये उत्पादकर्ता अपनी उत्पत्ति का पैमाना बढा देते हैं जिससे मजदूरो को अधिक नौकरिया मिलती हैं। परन्तु जो मजदूर काम पर लगे होते हैं, मूल्य बढ जाने से उनको हानि होती है। उनकी आय पहले की अपेक्षा कम वस्तुये खरीद पाती है। यह सही है कि मजदूर श्रम सघो की सहायता से अपनी मजदूरी बढवा लेते हैं परन्तु यह वृद्धि मूल्यो मे वृद्धि के अनुपात से बहुत कम होती है। फलस्वरूप श्रमिको का जीवन-स्तर गिर जाता है और दीर्घकाल मे उनकी कार्यक्षमता भी कम हो जाती है। इसके विपरीत मुद्रा सकुचन से मजदूरो मे बेकारी फैलती है परन्तु जो मजदूर काम पर लगे रहते हैं उनको लाभ होता है क्योकि उनके रहन-सहन का खर्च (Cost of Living) कम हो जाता है।

(५) **निश्चित आय प्राप्त करने वाले व्यक्ति (*Fixed income Earners*)** :—मुद्रा प्रसार से निश्चित आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियो को हानि रहती है क्योकि ज्यो-ज्यो मूल्य बढते हैं इनकी वास्तविक आय (Real income) कम होती जाती है। किराये या ब्याज की आमदनी खाने वाले

व्यक्ति की आय मुद्रा-प्रसार के कारण नहीं बढ़ती है पर वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं। अतः उसको हानि होती है। मुद्रा-सकुचन से इन व्यक्तियों को लाभ होता है। समाज के मध्यम वर्ग के व्यक्तियो को मुद्रा प्रसार से बडी हानि और मुद्रा सकुचन से बडा लाभ होता है।

यद्यपि मुद्रा-प्रसार व मुद्रा सकुचन दोनो ही बुरे हैं परन्तु सामाजिक हित की दृष्टि से मुद्रा-प्रसार वांछनीय बुराई है। मुद्रा सकुचन से केवल निश्चित आय वालो को लाभ होता है परन्तु देश मे निराशा छा जाती है, उत्पादन बद हो जाता है और बेकारी फैल जाती है। मुद्रा-प्रसार यद्यपि निश्चित आय वालो को हानि पहुचाता है पर देश मे आर्थिक क्रिया कलाप तो चलते रहते हैं और देश का उत्पादन बढता है।

प्रश्न १२४—"बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है" इस कथन की पूर्ण व्याख्या कीजिये।

अथवा

ग्रेशम के नियम को समझाइये। इस नियम के क्षेत्र तथा सीमाओं को स्पष्ट कीजिये ?

("Bad money drives good money out of circulation." Explain fully this statement.)

Or

(Explain Greshm's Law of Currency Circulation. Also discuss its scope and limitations)

उत्तर :—

रानी एलिजाबेथ के समय मे इगलैंड मे बहुत पुराने घिसे हुये तथा कम वजन के सिक्के प्रचलित थे। रानी ने पुराने और घिसे पिटे सिक्को को चलने से हटाने के लिये बार-बार नये सिक्को का प्रसार किया परन्तु जैसे ही वे चलन मे आते थे वैसे ही वे गायब हो जाते थे। चलन मे केवल पुराने सिक्के ही रह जाते थे। रानी ने इस सम्बन्ध में अपने आर्थिक सलाहकार सर टामस ग्रेशम (Sir Tomas Gresham) से राय ली। ग्रेशम ने इस स्थिति का अध्ययन करके यह बतलाया कि यदि किसी देश में दो सिक्के स्वतन्त्र रूप से अपरिमित कानूनी द्रव्य के रूप मे चलते हों तो बुरे सिक्के अच्छे सिक्कों को चलन से निकाल देते हैं। इसलिये चलने मे सुधार करने के लिये यह आवश्यक है कि बुरे सिक्कों को वापस ले लिया जाये। ग्रेशम के इस

निष्कर्ष को ही अर्थशास्त्र मे ग्रेशम का सिद्धात कहा जाता है। सक्षिप्त मे ग्रेशम का नियम यह है कि **"बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है"** (The bad money drives the good money out of circulation) बुरी मुद्रा से तात्पर्य जाली या खोटे सिक्को से नही है बल्कि ऐसे सिक्को से है जिनका वास्तविक मूल्य अन्य सिक्कों की अपेक्षा कम है और अपेक्षाकृत कम मूल्यवान धातु लगी है।

ग्रेशम के नियम का क्षेत्र (Scope of Gresham's Law) :—

ग्रेशम का नियम निम्नलिखित परिस्थितियो मे लागू होता है :—

(१) **एक धातु मान के अन्तर्गत :—**जब देश मे एक ही धातु के बने सिक्को का प्रचलन होता है तो पुराने और घिसे हुये सिक्के नये और पूरी तोल के सिक्को को चलन से हटा देते हैं। पुराना सिक्का बुरी मुद्रा हो जाता है और वह नये सिक्को (अच्छी मुद्रा) को चलने से हटा देगा।

(२) **द्विधातु मान के अन्तर्गत :—**इस प्रकार के मान के अन्तर्गत दो धातुओ, सोने और चांदी के सिक्के साथ साथ चलते रहते हैं, दोनो स्वतन्त्र अपरिमित कानूनी द्रव्य होते हैं और राज्य द्वारा उनका परस्पर मूल्य निश्चय कर दिया जाता है। जैसे १ सोने का सिक्का बराबर १५ चादी के सिक्कों के। यद्यपि टकसाल मे दोनो सिक्को का विनिमय अनुपात मे निश्चित रहता है परन्तु धातुओ का बाजार मूल्य बदलता रहता है। तो उनमे से जिस धातु का भी बाजार मूल्य बढ जाता है, उसी धातु का बना हुआ सिक्का दूसरी धातु के सिक्के से अच्छा समझा जायेगा। अतः धीरे-धीरे चलन से अच्छे सिक्के निकल जायेंगे।

(३) **कागजी मुद्रा के अन्तर्गत :—**यदि किसी देश मे आवश्यकता से अधिक अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा (बुरी मुद्रा) निर्गमित करदी जाये तो वह बहुमूल्य धातुओ के सिक्को को (अच्छी मुद्रा) चलन से हटा देगी। यदि केवल नोट ही चलन मे हैं तो फटे व घिसे हुये नोट नये नोटों को चलन से निकाल देंगे।

अच्छा द्रव्य कहाँ चला जाता है :—

स्वभावतः अच्छी मुद्रा को जनता दबाकर रख लेती है। व्यक्तियो को नई चीज से प्रेम होता है। यदि आपको एक घिसा हुआ रुपया और दूसरा नया रुपया दिया जाये तो आप फौरन ही नये रुपये को उठा लेंगे। अतः हम नये **सिक्कों को जोड़ लेते हैं** और पुरानों को चलन मे रखते हैं। नये सिक्को को पिघलाकर, **आभूषण इत्यादि बनाने में प्रयोग कर लेते हैं।** अच्छी मुद्रा बुरी मुद्रा की अपेक्षा अधिक वजन और अच्छी किस्म की होती है। अतः

इसको विदेशी भुगतान मे प्रयोग किया जाता है क्योंकि विदेशी कम वजन के घटिया सिक्के स्वीकार नहीं करते ।

ग्रेशम के नियम की सीमायें (Limitation of Gresham's Law) –

ग्रेशम का नियम सर्वदा सत्य नहीं है । कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी हैं जहाँ यह नियम लागू नहीं होता । अत इस नियम के लागू होने की निम्न शर्तें हैं —

(१) यदि देश में कुल चलन की मात्रा घटिया और अच्छे द्रव्य दोनों को मिलाकर, उसकी आवश्यकता अधिक नहीं है तो ग्रेशम का नियम लागू नहीं होगा । ऐसी स्थिति म दोनो ही सिक्के चलन में रहगे । यदि मुद्रा आवश्यकता से अधिक है तो यह नियम लागू हो जायेगा ।

(२) यदि सिक्के इतने अधिक घिस गये हों कि कोई भी उन्ह लेने को तैयार न हो तो यह ग्रेशम का नियम लागू नहीं होगा ।

(३) यदि समस्त जनता यह तय करले कि वह खराब द्रव्य प्रयोग ही नहीं करेगी, तो भी ग्रेशम का नियम लागू नहीं होगा ।

(४) सांकेतिक द्रव्य प्रमाणिक द्रव्य की अपेक्षा बुरा द्रव्य है क्योंकि उनका अंकित मूल्य उनके वास्तविक मूल्य से अधिक होता है । परन्तु फिर भी दोना साथ साथ चलते हैं । कारण यह है कि सांकेतिक व प्रमाणिक मुद्रा म स्पर्धा नहीं होती ये अलग अलग प्रकार की चलन की माँग को सतुष्ट करते हैं ।

(५) यदि देश में बैंकिंग सुविधायें पर्याप्त हैं, लोगों म धन को जमीन म गाढ कर या पास रखने की आदत नहीं है तो यह नियम लागू नहीं होगा । जनता अच्छे द्रव्य को बैंकों म जमा कर देगी जो पुन चलने म आ जायेगा ।

अध्याय ५५

साख

प्रश्न १२५—'साख' की परिभाषा दीजिये और इसके लाभ-हानियां बताइये । वर्तमान युग में साख का क्या महत्व है ?

(Define credit and give its merits and demerits What is the importance of credit in the modern times)

उत्तर :—

अर्थशास्त्र में साख शब्द का अर्थ 'उधार' है अर्थात जिस समय रुपये का भुगतान लेना चाहिये उस समय न लेकर भविष्य मे किसी अन्य समय लिया जावे। हम दैनिक जीवन में वस्तु की कीमत या द्राव्यिक ऋण का भविष्य मे भुगतान करने का आश्वासन देकर वस्तु या द्रव्य प्राप्त कर लेते हैं। यही शक्ति अर्थशास्त्र मे साख कही जाती है। **"साख किसी व्यक्ति या समुदाय की यह शक्ति है जिसके अनुसार वह अन्य व्यक्ति या समुदाय से भविष्य मे लौटाने की प्रतिज्ञा के आधार पर कुछ समय के लिये आर्थिक वस्तुयें प्राप्त कर सकता है।"** प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जैवन्स (Jevons) के अनुसार **"साख कुछ विलम्ब के पश्चात भुगतान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"**

साख के तत्व :—उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि साख के निम्न ३ आवश्यक तत्व हैं :—

(१) **विश्वास** :—ऋणदाता साख देने के लिये तभी तैयार होता है जबकि उसे विश्वास हो जाय कि साख लेने वाला निश्चित समय पर पूर्ण धन राशि लौटा देगा। इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति ईमानदार हो और रुपया अदा करने की सामर्थ्य (Capacity) भी रखता हो। जिस व्यक्ति की ईमानदारी पर किसी को विश्वास नही है या उसमे ऐसी शक्ति नही कि वह भविष्य मे रुपया अदा करदे तो ऐसे व्यक्ति को उधार नही मिल सकता।

(२) **धन** :—यदि धन न हो तो साख का कोई प्रश्न नहीं उठता। साख शब्द का प्रयोग तभी किया जा सकता है जबकि कुछ धन अथवा धन में बदली जाने वाली वस्तुओं का भुगतान उस समय न लेकर भविष्य मे लिया जाता है। अतः धन साख का आवश्यक तत्व है।

(३) **समय** :—साख का तीसरा तत्व समय है। उधार बेचे हुए माल या उधार दिये गये धन का भुगतान भविष्य मे एक निश्चित समय बाद ही होता है। यदि भुगतान वर्तमान में ही हो जाय और समय का कोई प्रश्न न उठे तो यह नकद सौदा कहलायेगा न कि उधार सौदा।

साख के लाभ (Advantages of Credit)

(१) साख-पत्र जैसे चैक, बिल, हुंडी इत्यादि मुद्रा का काम करते हैं। आधुनिक विश्व मे इतना सोना या अन्य धातु नहीं है कि मुद्रा सम्बन्धी समस्त माँग पूरी की जा सकें। अतः साख पत्र मुद्रा के पूरक का काम करते हैं।

(२) साख पत्रो के माध्यम से रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना बहुत ही **सुविधाजनक व सस्ता** होता है।

(३) साख से **साख सस्थाओं जैसे बैंक, बीमा कम्पनी आदि को प्रोत्साहन** मिलता है। ये सस्थायें न केवल पूजी का निर्माण करती हैं बल्कि साख सृजन भी करती हैं। इस एकत्रित पूजी को उचित व्यक्तियों अथवा व्यापारियो को उधार दिया जाता है जिससे व्यापार तथा उद्योग की प्रगति होती है।

(४) साख के कारण लोगो मे ब्याज के लालच मे **बचत करने की आदत बढती है**। साख के अभाव मे ये व्यक्ति सब आय अनुत्पादक प्रयोगों मे व्यय कर डालते हैं।

(५) साख की मात्रा को घटा या बढ़ा कर मुद्रा की पूर्ति को कम या अधिक किया जा सकता है। **साख नियत्रण द्वारा मूल्यों को स्थिर रख सकते हैं**। जब मूल्य कम करने होते हैं तो देश म साख द्रव्य कम करके वस्तुओं की कीमतें गिरा देते हैं इसी प्रकार साख की मात्रा बढा कर मूल्यों को बढाया जा सकता है।

(६) साधारण नागरिक व देश की सरकार दोनो ही **आवश्यकता व आपत्ति के समय साख के आधार पर रकम प्राप्त कर सकते हैं।**

साख से हानिया (Disadvantages of Credit) :—

(१) साख से अपव्ययिता व फिजूलखर्ची बढती है। उपभोक्ता व उत्पादनकर्ता दोनो ही उधार लिये गये धन को लापरवाही से व्यय करते हैं। उधार मिलने की सुविधा मितव्ययिता को नष्ट करती है।

(२) साख के कारण सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है जिससे व्यापार व उद्योग दोनों को हानि होती है।

(३) व्यापार की सच्ची आवश्यकता से अधिक मात्रा मे साख के प्रसार हो जाने पर देश मे आर्थिक सकट और मदी आ जाने का भय बना रहता है।

(४) साख सुविधायें मिलने के कारण ही व्यापार इतने बडे हो जाते हैं कि वे एकाधिकारी बन जाते हैं जो उपभोक्ताओ का शोषण करते हैं।

(५) साख के द्वारा बहुत से अकुशल व्यापारी अपनी अकुशलता को काफी दिनों तक छिपा लेते हैं। व्यवसाय में हानि होते रहने पर भी कुछ दिनों के लिये काम चलता रहता है।

उपरोक्त हानियो को थोडी सतर्कता में प्रयोग लाकर व राज्य द्वारा साख नियंत्रण करके आसानी से दूर किया जा सकता है।

साख का महत्व (Importance of Credit) :—

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था मे साख का इतना अधिक महत्व है कि इस युग को 'साख युग' कहा जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में साख का महत्व दृष्टि-गोचर होता है। उपभोक्ता फुटकर विक्रेताओ से, फुटकर विक्रेता थोक विक्रेताओ से, थोक विक्रेता उत्पादनकर्ताओ से उधार सामान खरीदते हैं। उत्पादकों व व्यापारियो को साख सस्थाओ से साख मिलती है। वर्तमान उत्पा-दन के लिये विशाल धन-राशि की आवश्यकता होती है। इसका एक बडा भाग उधार लेकर ही विनियोग किया जाता है। यही बात छोटे पैमाने पर खेती, कुटीर उद्योग धधो आदि पर लागू होती है। जनता ही परस्पर साख नही लेती देती बल्कि सरकार भी अपने कर्तव्यो को पूरा करने के लिये देश की जनता व विदेशो से साख लेती है। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से भारत सरकार ने अरबो रुपया आर्थिक विकास के लिये उधार लिया है। सक्षेप मे, साख के अभाव मे आज की अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो जायगी।

अध्याय ५६

साखपत्र

प्रश्न १२६—प्रमुख साख-पत्र कौन कौन से हैं? एक चैक और विनिमय विपत्र का नमूना बताइये। चैक और विनिमय विपत्र मे क्या अन्तर है?

(What are the main Credit Instruments? Make out specimens of a cheque and a Bill of Exchange and Distinguish between the two)

उत्तर :—

भविष्य मे ऋण चुकाने के लिखित प्रमाण पत्रो को ही साख पत्र (Credit Instruments) कहते हैं।

प्रमुख साख पत्र निम्नलिखित हैं :—

१. विनिमय विपत्र (Bill of Exchange)
२. हुडी (Hundi)
३. प्रतिज्ञा पत्र (Promisory Note)
४. चैक (Cheque)
५. आई० ओ० यू० (I. O. U, I Owe You)
६. बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft)

७. बैंक नोट और करेंसी नोट (Bank and Currency Notes)

हम यहा पर केवल विनिमय विपत्र तथा चैक के विषय मे ही पढ़ेंगे।

विनिमय विपत्र (Bill and Exchange) :—

"यह एक बिना शर्त का लिखित आज्ञा पत्र होता है जिस पर लिखने वाला अपने हस्ताक्षर करता है और एक विशेष व्यक्ति को आज्ञा देता है कि वह किसी तीसरे व्यक्ति को जिसका नाम उस पत्र में अंकित हो अथवा उसकी आज्ञा से किसी और व्यक्ति को या बिल के लेने वाले को उसमे लिखित रकम मागने या किसी निश्चित समय पश्चात दे दे।"

विनिमय बिल देशी तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यापार मे प्रयोग होते हैं। इसमे तीन पक्ष होते हैं :—

(१) बिल का लिखने वाला (Drawer) यह लेनदार होता है।

(२) वह व्यक्ति जिस पर बिल लिखा जाता है (Drawee) यह देनदार होता है।

(३) बिल की रकम पाने वाला व्यक्ति (Payee)

कभी-कभी बिल का लिखने वाला और पाने वाला एक ही पक्ष होता है। जैसे राम ही बिल लिखे और स्वयं ही उसका भुगतान लेवे। **विनिमय बिल मुद्दती व दर्शनी होते हैं।** जब किसी बिल का भुगतान मांगने पर या दिखाने पर होता है तो उसको दर्शनी बिल (Demand Bill) कहते हैं, यदि भुगतान कुछ समय या मुद्दत बाद होता है तो उसको मुद्दती बिल (Time Bill) कहते हैं। मुद्दती बिल लिखने के बाद, देनदार की स्वीकृति चाहता है।

विनिमय पत्र का नमूना (मुद्दती बिल)

रु० ५००	खुरजा
टिकट	२० जून, १९५९

आज से तीन महीने पश्चात मैसर्स हजारी लाल गुलजारी लाल, कानपुर वालो को या हमारी आज्ञानुसार केवल पाच सौ रुपये का भुगतान कीजिये। मूल्य प्राप्त

सेवा में, — हरप्रसाद श्योदत्त राय

हरनारायण गोपीनाथ

खारी बावली, दिल्ली।

चैक (Cheque) —जब कोई व्यक्ति बैंक मे अपना खाता खोलता है तो बैंक उस व्यक्ति को एक चैक बुक भी देती है। बैंक से रुपया इन चैकों के द्वारा ही निकाला जा सकता है। चैक की परिभाषा इस प्रकार है "चैक एक प्रकार का लिखित आज्ञा पत्र है जिसमे वह व्यक्ति जिसका बैंक मे रुपया जमा होता है, अपने हस्ताक्षर करके, बैंक को यह आज्ञा देता है कि वह किसी विशेष व्यक्ति को या धारक को या उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को एक निश्चित धन दे दे।" **चैक का रुपया सदैव मांगने पर ही मिलता है।**

चैक मे भी तीन पक्ष होते हैं —

(१) चैक लिखने वाला (Drawer)

(२) चैक का रुपया पाने वाला (Payee)

(३) बैंक जो चैक का रुपया अदा करता है (Drawee)

जब चैक का रुपया किसी भी व्यक्ति को जो उसको पेश करे मिल जाता है तो ऐसे चैकों को **वाहक चैक (Bearer Cheque)** कहते हैं। यदि चैक का रुपया उसी व्यक्ति को मिले जिसका चैक मे नाम लिखा है तो उसे **आदेशानुसार चैक (Order Cheque)** कहते हैं।

चैक रेखांकित व खुला (Crossed and Open) भी होता है। जिस चैक पर दो तिरछी समानांतर रेखायें (उनके बीच मे कुछ शब्दो के साथ) या अकेले ही) खीच दी जाती हैं वह रेखांकित चैक कहलाता है। खुले चैक पर कोई रेखायें नहीं खिची होती। रेखांकित चैक का रुपया बैंक के काउन्टर पर नही मिलता बल्कि किसी अन्य बैंक की मारफत ही मिल सकता है। रेखांकित करने से चैक अधिक सुरक्षित हो जाता है।

चैक का नमूना

No $\frac{BA}{C}$	Khurja 20 th. June—1959
THE BANK OF BARODA LIMITED (Branch)	
Pay to Hari Shanker Gautama or Order/Bearer —*Rupees one thousand and five hundred only.*	
Rs. 1500/-	Rama Mohan

चैक और बिल का अन्तर

चैक	विनिमय पत्र
१ यह सदैव एक बैंक के ऊपर लिखा जाता है।	१. यह किसी फर्म या व्यक्ति या संस्था के नाम लिखा जाता है।
२ यह सदैव दर्शनी होते हैं, इनका रुपया देखते ही चुकाना होता है।	२ यह दर्शनी व मुद्दती दोनों ही प्रकार के होते हैं।
३ इसमें स्वीकृति की आवश्यकता नहीं।	३ मुद्दती बिल में स्वीकृति अनिवार्य होती है।
४ इसको रेखांकित कर सकते है।	४ बिल रेखांकित नहीं किये जाते।
५ यह केवल देश के भीतरी कामों के लिए प्रयोग होता है।	५ यह देशी व विदेशी दोनों प्रकार के भुगतानों के लिये प्रयोग किया जाता है।
६ चैक की अवधि बीत जाने पर भी लेखक व सही करने वाले रकम के देनदार होते हैं।	६ अवधि बीत जाने पर यदि बिल को भुगतान के लिए पेश न किया जाये तो इसका लेखक व सही करने वाले अपने दायित्व से छूट जाते हैं।
७ भुगतान न होने पर लेखक को सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती।	७ अस्वीकार हो जाने या भुगतान न होने पर लेखक को सूचना देनी पड़ती है।

अध्याय ५७

बैंक

प्रश्न १२७—बैंक की परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक बैंकों के कार्यों का विवेचन कीजिये।

(Define a Bank and Discuss the functions of modern banks)

उत्तर :—

आधुनिक बैंक इतने अधिक कार्य करते हैं कि बैंक की एक उचित और सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। बैंक का मुख्य कार्य साख का लेन देन करना है अत इसी को ध्यान मे रखते हुये बैंक की परिभाषा दी जाती है। "बैंक वह संस्था है जो द्रव्य का व्यापार करती है।" (Bank is an institution which deals in credit) रुपया बचाने वाले व्यक्ति अथवा संस्थायें अपने रुपये को बैंको में जमा कर देते हैं जिसके बदले मे उनको सूद प्राप्त होता है। बैंक इस प्रकार एकत्रित धन राशि को व्यापारियों और उद्योगपतियों को ब्याज पर उधार दे देता है। कम ब्याज पर रुपया लिया जाता है और अधिक ब्याज पर दिया जाता है। यही ब्याज की दर का अन्तर उनका लाभ होता है।

बैंकों के कार्य (Functions of modern Banks)

आधुनिक बैंको के कार्यों को निम्न चार भागो मे बाट सकते हैं :—

(१) रुपया उधार लेना (Borrowing)
(२) रुपया उधार देना (Lending)
(३) आढत के कार्य *(Agency functions)*
(४) अन्य कार्य (Miscellaneous functions)

(१) रुपया उधार लेना —बैंक जमा के रूप मे जनता से रुपया उधार लेते हैं। जिन व्यक्तियो के पास फालतू धन होता है वे उसको बैंकों मे जमा कर देते हैं। बैंक इसके बदले मे उनको ब्याज देता है। बैंकों मे साधारणतया तीन प्रकार के खातो मे रुपया जमा किया जाता है —

(१) मुद्दती खाता (Fixed deposit Account) —इस खाते में रकम एक निश्चित समय के लिये जमा की जाती है और उससे पूर्व नही निकाली जा सकती है। ऐसे खातो पर ब्याज की ऊची दर होती है।

(ii) चालू खाता (Current Account) —इस खाते मे से चाहे जब रुपया निकाला जा सकता है। विशेषकर व्यापारियो को यह अधिक सुविधाजनक होता है क्योंकि उन्हे दिन मे कई बार भुगतान करने पडते हैं। ऐसे खातो पर कोई ब्याज नही दिया जाता।

(iii) बचत खाता (Savings Account) —छोटे-छोटे व्यक्तियो को, जो बहुत थोडी धन राशि बचा पाते हैं यह खाता उपयुक्त रहता है। इसमे से सप्ताह मे दो बार ही रुपया निकाला जा सकता है। इन पर ब्याज अपेक्षाकृत कम मिलता है। यह खाता साधारण व्यक्तियो मे बचत की प्रवृति को प्रोत्साहित करता है।

कुछ बैंको मे गोलक खाते खोले जा सकते हैं। ग्राहकों को एक गोलक बैंक की सील लगाकर घर के लिये दे दी जाती है। सप्ताह में एक बार वह बैंक मे लाकर खोली जाती है और उसकी धन-राशि को ग्राहक के खाते में जमा कर दिया जाता है।

(२) **रुपया उधार देना**.—इस प्रकार एकत्रित धन को व्यापारियों व व्यवसायियो को अधिक ब्याज की दर पर उधार दे दिया जाता है। उधार उसी व्यक्ति को मिलता है जो ईमानदार व कुशल व्यापारी है और कोई धरोहर (Security) दे सकता हो। बैंक प्रायः नकद रुपया उधार नही देता बल्कि उतनी धन राशि को ग्राहक के खाते मे जमा कर देता है। इस ढग से बैंक नकद द्रव्य की मात्रा से कही अधिक रुपया उधार दे डालते हैं। इस कार्य को साख-निर्माण (Credit Creation) कहते हैं।

(३) **ऐजेंसी कार्य**.—बैंक अपने ग्राहको के लिये ऐजेंट का कार्य करता है जैसे :—

(i) चैक, बिल व हुण्डियों का रुपया वसूल करना।

(ii) ग्राहकों के लिये अंशपत्र (Shares) ऋण पत्र (Debentures) खरीदना व बेचना।

(iii) ग्राहकों के अंश पत्रों तथा ऋणपत्रो पर लाभांश व ब्याज वसूल करना।

(iv) ग्राहकों को अन्य व्यापारियो की साख, व्यापारिक कुशलता आदि के बारे मे सूचना प्रदान करना।

(v) ग्राहकों की ओर से चन्दे, बीमे का प्रीमियम व किराया आदि अदा करना।

(vi) ग्राहकों के लिये ट्रस्टी, अटारनी व एक्जीक्यूटर आदि का काम करना इन कार्यों के लिये बैंक ग्राहको से कुछ कमीशन चार्ज करता है।

(४) **अन्य कार्य** :—

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त बैंकों के निम्न कार्य और हैं :—

(१) **नोट निर्गमित करना**.—हमारे देश मे नोट छापने का अधिकार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को है।

(२) विदेशी विनिमय की खरीद बिक्री करना।

(३) साख-पत्र जैसे बैंक ड्राफ्ट, चैक व साख की चिट्ठियाँ (Letter of Credit) आदि देना।

(४) जेवर, बहुमूल्य वस्तुयें व दस्तावेजों आदि को सुरक्षित रखना।

प्रश्न १२८—बैंक किस प्रकार साख का सृजन करते हैं ? बैंको द्वारा साख की सीमाओ का उल्लेख कीजिये।

(How banks create credit ? What are the limitations on the powers of the bank to create credit ?)

उत्तर :—

बैंक द्वारा साख का सृजन —बैंको का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि ये साख का निर्माण या सृजन करते है। बैंक साख का निर्माण किस प्रकार करते हैं यह एक विचारनीय प्रश्न है।

साख के निर्माण के लिए सवप्रथम बैंक साख को जमा खाते म इकट्ठा करते हैं। ओवर ड्राफ्ट अथवा नकद उधार दिये गये धन को बैंक ऋणी के नाम खाते मे जमा कर देता है तथा ऋणी को यह सुविधा प्रदान करता है कि वह एक निश्चित सीमा तक बैंक से कभी भी रुपया निकलवा सकता है। इस प्रकार जमा खातो से एकत्रित धन का कुछ भाग बचा कर शेष धन को बैंक फिर उधार दे देते हैं। इस प्रकार बैंक एक छोटी रकम के आधार पर बहुत बडी मात्रा मे साख निर्माण करने मे सफल होते है। जमाखातो का कुछ प्रतिशत धन बैंक अपने अनुभव के आधार पर बचा कर रखते हैं जिसके आधार पर वे दिन प्रतिदिन की देनदारी को पूरा कर सकें।

उदाहरण :—उपर्लिखित बैंक द्वारा साख निर्माण करने की विधि को हम एक उदाहरण द्वारा भी समझा सकते हैं। माना कोई व्यक्ति बैंक मे १००) रु० जमा करता है। अब बैंक अपने अनुभव के आधार पर १०) रु० बचा कर ६०) रु० को उधार के लिए दे देता है और ६० रुपया भी ऋणी के अपने बैंक मे जमाखाते मे जमा कर लेता है तथा उसको रुपया निकालने की सुविधा दे देता है। इस प्रकार अब बैंक के पास जमा के रूप मे १६०) रु० हो जाते हैं। १००) रु० नकद तथा ६० रुपया उधार जमा) अब फिर बैंक १०% रुपया बचा कर शेष को उधार दे देगा और वह जमा खाते में जमा के रूप मे रख कर। इस प्रकार बैंक १००) रु० के आधार पर लगभग १०००) रु० तक का साख सृजन कर सकता है क्योंकि यह बैंक का अनुभव है कि एक समय मे १०% रुपये से अधिक रुपया बैंक से नही निकाला जायेगा और यदि किसी समय रुपया इस सीमा से अधिक निकाला गया तो बैंक को केन्द्रीय बैंक से रुपया उधार लेना पडेगा या बैंक ही फेल हो जायेगा। लेकिन आधुनिक समय मे केन्द्रीय बैंक का साख सम्बन्धी कार्य अधिक महत्वपूर्ण है और बैंक के फेल होने की सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है।

साख सृजन की सीमायें —उपर्लिखित वर्णन से यह नही समझना चाहिये कि बैंक की साख सृजन की कोई सीमा ही नही है। व्यवहार मे बैंक के साख निर्माण करने की शक्ति कुछ निम्न बातों से परिमित हो जाती है।

(१) जिस बैंक को जमा का जितना अधिक भाग अपने पास रखना पडता है उतनी ही साख करने की सीमा कम हो जाती है।

(२) केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्गमित द्रव्य का भी बैंकों के साख सृजन पर प्रभाव पडता है, जितना अधिक देश मे मुद्रा का चलन होता है उतनी ही अधिक साख सृजन की सीमा बढ जाती है।

(३) किसी देश मे जनता के नकद रुपये रखने की आदत का भी साख सृजन पर प्रभाव पडता है। यदि जनता नकद रुपया अधिक रखती है तो साख सृजन कम होगा और यदि जनता अधिकांश द्रव्य बैंको मे जमा करती है तो साख का सृजन भी अधिक होगा।

अत उपर्लिखित तीन बातों पर किसी देश की साख सृजन की सीमा निर्धारित होती है।

अध्याय ५८

भारतीय बैंकिंग व्यवस्था

प्रश्न १२९—भारत मे कितने प्रकार के बैंक कार्य कर रहे हैं? उनके विभिन्न कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। भारतीय स्वदेशी बैंको की कार्य प्रणाली आधुनिक बैंकों की कार्य प्रणाली से किस प्रकार भिन्न है?

(How many kinds of Banks are working in India ? Discuss briefly their various functions How is the working of modern banks different with that of Indigenous banks ?)

उत्तर —

भारत मे निम्न प्रकार के बैंक कार्य कर रहे हैं —

(१) स्वदेशी बैंक (**Indigenous Banks**)

(२) व्यापारिक बैंक (**Commercial Banks**)

(३) सहकारी बैंक (**Coperative Banks**)

(४) भूमि बन्धक बैंक (**Land mortgage Banks**)

(५) विनिमय बैंक (Exchange Banks)
(६) औद्योगिक बैंक (Industrial Banks)
(७) सेविंग्ज बैंक (Savings Banks)
(८) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया (Reserve Bank of India)

(१) **स्वदेशी बैंक** —भारतीय बैंक व्यवस्था मे इनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। इनका क्षेत्र, सगठन तथा कार्य आधुनिक बैंको से बिल्कुल नही मिलता। इनको महाजन, साहूकार, मारवाडी, सर्राफ इत्यादि नामो से पुकारा जाता है। ये उन स्थानो मे विशेषतया काम करते हैं जहाँ आधुनिक बैंको का अभाव है। वे छोटे छोटे किसानो, कारीगरो व छोटे-छोटे व्यापारियो को रुपया उधार देते हैं। उत्पादक व अनुत्पादक दोनो ही प्रकार के ऋण ये देते हैं। इनकी कार्य प्रणाली बडी सरल होती है। ये ब्याज की ऊची दर चार्ज करते है। बडे बडे स्वदेशी बैंकर हुण्डियो के भुनाने का भी कार्य करते हैं। ये बैंकिंग व्यवसाय के साथ साथ कोई निजी सहायक व्यापार भी करते रहते हैं। अभी तक रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से इनका सम्बन्ध नही हो पाया है।

(२) **व्यापारिक बैंक** —भारत के अधिकाश बैंक व्यापारिक प्रकार के हैं जो व्यापारियो को अल्पकालीन ऋण प्रदान करते हैं। व्यापारियो को माल का उत्पादन नही करना पडता वे तो थोडे समय के लिए माल खरीदने व बेचने के लिये रुपया चाहते है। ये बैंक व्यापारियो को चालू खाते की सुविधा प्रदान करते है और ओवरड्राफ्ट के रूप म रुपया उधार देते हैं। ये ऐजसी व सेफ कस्टडी का काम भी करत है। पजाब नैशनल बैंक, स्टेट बैंक व इलाहाबाद बैंक ऐसे ही बैंको के उदाहरण हैं।

(३) **सहकारी बैंक** —ये बैंक पारस्परिक सहयोग के आधार पर बनाये जाते हैं और गरीब किसानो व कारीगरो को रुपया उधार देते हैं। ये बैंक रेफीसन अथवा शुल्जे सिद्धातों पर बनाये जाते हैं। ये वैयक्तिक साख पर केवल अपने सदस्यो को अल्पकालीन ऋण प्रदान करते है। ये सदैव उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देत हैं।

(४) **भूमि बधक बैंक** —ये बैंक किसानो को उनकी जमीन की धरोहर पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं। ऋण का समय २० से ५० वर्ष तक हो सकता है। ये भूमि खरीदने, भूमि मे सुधार करने, बैल, मशीन इत्यादि खरीदने तथा पुराने ऋण के भुगतान के लिये ही ऋण देते हैं। ये अपनी पूंजी विशेषतया ऋणपत्रो (Debentures) को बेच कर एकत्रित करते हैं।

(५) **विनिमय बैंक** —ये बैंक विदेशी व्यापार की द्राव्यिक समस्याओं को हल करते है। इनके मुख्य कार्य एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा मे बदलना आयात निर्यात के भुगतान के लिये विनिमय बिलों का क्रय-विक्रय करना व साधारण व्यापारिक बैंकों के कार्य करना है। भारतवर्ष के अधिकतर विनिमय बैंक विदेशी हैं और बन्दरगाहों पर पाये जाते हैं।

(६) **औद्योगिक बैंक** :—ये बैंक उद्योग धंधों को बहुत लम्बे समय के लिये रुपया उधार देते हैं। ये जनता से लम्बी अवधि के लिये रुपया ब्याज पर लेते हैं, शेयर्स व ऋण पत्र निर्गमित करते हैं और एकत्रित पूंजी को उद्योग धन्धों के निर्माण, विस्तार व विकास के लिये उधार देते हैं। भारत में ऐसे बैंकों की कमी है। औद्योगिक वित्त निगम (**Industrial Finance Corporation**) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार का एक सफल प्रयास है।

(७) **बचत बैंक** —ऐसे बैंक भारत मे अलग से नहीं हैं। डाकखाने व कुछ व्यापारिक बैंक इस कार्य को करते हैं। यह बैंक छोटी छोटी रकमों को जमा किया करते हैं। इनका ध्येय केवल बचत को प्रोत्साहित करना है। ये बचत पर कुछ ब्याज भी देते है।

(८) **रिजर्व बैंक आफ इन्डिया** :—यह भारत का केन्द्रीय बैंक है और भारतीय बैंकों का पथ प्रदर्शक है। इसकी स्थापना १९३५ में एक विशेष एक्ट द्वारा हुई थी। यह बैंकों का व सरकार का बैंक है, इसको नोट छापने का अधिकार है, यह देश की साख व्यवस्था पर विभिन्न प्रकार से नियन्त्रण करता है।

स्वदेशी बैंक व आधुनिक बैंकों मे अन्तर :—

स्वदेशी बैंक	आधुनिक बैंक
१ इनका संगठन व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक आधार पर होता है।	१. इनका संगठन मिश्रित पूंजी कम्पनियों के सिद्धान्त पर होता है।
२. ये प्राय अपनी पूंजी से काम करते हैं। जनता से रुपया जमा पर लेना कम ही होता है।	२ इनकी पूंजी का अधिकांश भाग जनता से जमा के रूप में प्राप्त होता है।
३ ये रुपया उधार देते हैं।	३. ये रुपया उधार लेते हैं और देते भी हैं।

४ ये साथ मे कोई अन्य निजी व्यापार भी चलाते हैं।	४. ये केवल बैंकिंग व्यवसाय ही करते हैं।
५. ये अधिकतर गावो तथा कस्बो मे पाये जाते है।	५ ये बडे बडे शहरो और व्यापारिक केन्द्रो मे पाये जाते हैं।
६. ये अपना वार्षिक हिसाब-किताब नहीं छापते।	६. वार्षिक हिसाब-किताब छापना और उसका निरीक्षण कराना इनके लिये अनिवार्य है।
७ ये बहुधा देशी ढग पर हिसाब-किताब रखते हैं।	७. ये सदैव अंग्रेजी ढग पर हिसाब-किताब रखते है।
८ इनका कार्य करने का कोई निश्चित समय नही होता है।	८. ये निश्चित समय ही प्रति दिन कार्य करते हैं।
९. ये बहुधा बिना धरोहर के रुपया उधार देते हैं।	९ ये बिना धरोहर के रुपया उधार नही देते।
१०. ये रिजर्व बैंक से सम्बन्धित नही है।	१०. ये रिजर्व बैंक के सदस्य हैं।
११ ये छोटे किसानो व कारीगरो को रुपया उधार देते है।	११. ये बडे-बडे व्यापारियो व उद्योगपतियो को रुपया उधार देते हैं।
१२ इनकी शाखायें नही होती।	१२. इनकी अनेको शाखायें होती हैं।
१३ इनकी व्याज की दर अपेक्षाकृत बहुत ऊची होती है।	१३. इनकी व्याज की दर नीची होती है।
१४ इनकी कार्य-विधि सरल व सस्ती होती है।	१४ इनकी कार्य विधि बडी विषम तथा कार्य व्यय बहुत अधिक होता है।

—

प्रश्न १३०—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के संगठन तथा कार्यों को बताइये।

(Discuss fully the constitution and working of the Reserve Bank of India ?)

उत्तर—

प्रत्येक देश मे उसकी आर्थिक व साख स्थिति को नियन्त्रित रखने के लिये एक केन्द्रीय बैंक आवश्यक है। भारतवर्ष में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

केन्द्रीय बैंक का कार्य करता है। इसकी स्थापना १९३५ मे एक विशेष अधिनियम द्वारा हुई। इससे पूर्व इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया व्यापारिक बैंकों के कार्यों के साथ केन्द्रिय बैंकिंग कार्य भी करता था। अन्य व्यापारिक बैंकों के साथ स्पर्धा करने के कारण यह भारतीय बैंकिंग व्यवस्था का नेतृत्व नही कर सकता था अत १९३५ मे रिजर्व बैंक की स्थापना की गई।

पूजी व प्रबन्ध :—पहिले इसकी पूंजी ५ करोड रुपया थी जो १,०० १०० रुपयो के अंशों मे बटी हुई थी। १ जनवरी १९४९ मे इस बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अब इसके व्यक्तिगत भागदारी (Share holders) नही हैं और इसका स्वामित्व तथा प्रबन्ध सरकार के हाथ मे है। राष्ट्रीयकरण के बाद भी इसकी पूंजी ५ करोड रुपया है। इस बैंक की चार शाखायें हैं जिनके कार्यालय बम्बई, दिल्ली, मद्रास तथा कलकत्ता मे हैं। इस बैंक का केन्द्रीय बोर्ड (Central Board) जो बम्बई में है, के अतिरिक्त चार स्थानीय बोर्ड, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली तथा मद्रास मे हैं।

इसका प्रबन्ध एक केन्द्रीय बोर्ड आफ डायरेक्टर्स (Central Board of Directors) द्वारा किया जाता है जिसमे निम्न अधिकारी होते हैं।

१　एक गवर्नर

२　दो डिप्टी गवर्नर

३.　छ डायरेक्टर्स जिन्हे सरकार नियुक्त करती है

४.　डायरेक्टर्स जिनकी नियुक्ति चारो स्थानीय बोर्डों से भारत सरकार करती है।

५　एक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त सरकारी अधिकारी।

इस प्रकार केन्द्रीय सचालक मण्डल मे १४ सदस्य होते हैं।

रिजर्व बैंक के कार्य—रिजर्व बैंक के कार्यों को दो भागो मे बांटा जा सकता है—

(१)　केन्द्रीय बैंक के कार्य (Central Banking functions)

(२)　साधारण बैंक के कार्य (General Banking functions)

(१)　केन्द्रीय बैंक के कार्य :—रिजर्व बैंक आफ इन्डिया भारत का केन्द्रीय बैंक होने के नाते, केन्द्रीय बैंको के निम्न कार्य करता है:—

(I)　नोट छापना :—रिजर्व बैंक को भारत मे नोट छापने का एकाधिकार प्राप्त है (१ रु० के नोट को छोड़कर) यह कार्य बैंक का 'निर्गम विभाग (Issue Department) करता है। नोट न्यूनतम सुरक्षा कोष पद्धति

पर छापे जा सकते हैं। १०००), १००), १०), ५) व २) के नोट हमारे देश मे इसी के द्वारा चलाये जाते हैं।

(ii) **सरकार का बैंक**.—यह केन्द्रीय, राज्य तथा अन्य सरकारी सस्थाओं का रुपया रखता है तथा उनका जितना रुपया जमा होता है उस सीमा तक उनके लिये भुगतान करता है। वह उसको इधर उधर भेजता है। यह सरकार द्वारा जमा किये गये रुपयो पर ब्याज नही देता। यह सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध भी करता है।

(iii) **बैंकों का बैंक**:—रिजर्व बैंक देश के प्रमाणिक बैको का सरक्षक और अतिम सहारा होता है अत. यह सकट के समय उनकी वित्तीय सहायता करता है। प्रत्येक ऐसे बैंको को अपनी जमा का एक निश्चित प्रतिशत रिजर्व बैंक मे रखना पडता है। यह प्रमाणिक बैंको के विनिमय विपत्रो को भुनाता है। यह बैंको का नियन्त्रण व निरीक्षण भी करता है। कोई भी नई बैंक या किसी भी पुराने बैंक की नई शाखा, बिना रिजर्व बैंक की पूर्व स्वीकृति के नही खुल सकती है।

(iv) **विनिमय दर पर नियंत्रण**:—भारतीय रुपये की विनिमय दर को स्थिर रखना रिजर्व बैंक का कर्तव्य है। भारतीय रुपये की वर्तमान दर १ रु०=१ शि० ६ पें० या २१ सेंट है। बैंक का विनिमय दर नियन्त्रण विभाग (Exchange Control Department) इस पर नियन्त्रण रखता है। इस दर को बनाये रखने के लिये यह सरकार द्वारा निर्धारित दरो पर विदेशी विनिमय का लेन देन करता है।

(v) **साख नियंत्रण**:—देश मे साख की मात्रा को नियन्त्रित रखना रिजर्व बैंक का एक प्रमुख कार्य है। यह कार्य बैंक दर (Bank Rate) को घटा बढा कर, नोटों को कम या अधिक निर्गमित करके, खुले बाजार मे प्रतिभूतियाँ क्रय विक्रय करके व बैंको के खिलाफ सीधी कार्यवाही करके किया जाता है।

(vi) **निकासी गृह की देखभाल** —यह बैंक कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली व कलकत्ता के निकासी गृहो (Clearing House) की देखभाल करता है।

रिजर्व बैंक के साधारण कार्य:—उपरोक्त कार्यों के अलावा रिजर्व बैंक साधारण बैंकों जैसे कार्य भी करता है। जैसे:—

(i) बिना ब्याज के रुपया जमा करना।

(ii) बिल, हुडी आदि का खरीद, बेचना व भुनाना।

(iii) सोने, चांदी व बिलों आदि के आधार पर अधिक से अधिक ९० दिन के लिये रुपया उधार देना।

(iv) सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदना व बेचना।

(v) प्रमाणित बैंकों से कम से कम १ लाख रुपये की रकम के बदले स्टर्लिंग खरीदना व बेचना।

(vi) ड्राफ्ट जारी करना।

(vii) सोने चांदी का क्रय-विक्रय करना।

(viii) कृषि साख विभाग के द्वारा यह ग्रामीण ऋण व्यवस्था के लिये प्रयत्न करता है। सहकारी आन्दोलन की प्रगति के लिये सुझाव व वित्तीय व शैक्षणिक सहायता प्रदान करना भी बैंक का प्रमुख कार्य है।

रिजर्व बैंक निम्न कार्य नहीं कर सकता :—

(१) जमा किये गये रुपये पर ब्याज नहीं दे सकता।

(२) मुद्दती बिलों को न लिख सकता है और न स्वीकार कर सकता है।

(३) किसी कम्पनी अथवा बैंक के अंश (Shares) नहीं खरीद सकता।

(४) अचल तथा अचल सम्पत्ति की जमानत पर रुपया उधार नहीं दे सकता।

(५) किसी उद्योग अथवा व्यापार में भाग नहीं ले सकता।

(६) कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जिसमें हानि हो।

प्रश्न १३१—स्टेट बैंक आफ इण्डिया के संगठन व कार्यों पर प्रकाश डालिये।

(Discuss the constitution and main functions of the state Bank of India.)

उत्तर —

स्टेट बैंक क्यों —

दिसम्बर १९५४ में अखिल-भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (All India Rural Credit Survey Committee) ने यह सुझाव दिया कि देश में बैंक-व्यवस्था के विकास के प्रोत्साहन के लिये "भारत का एक राज्य बैंक' जिसमें राज्य की साझेदारी हो और जो एक सुदृढ़ व्यापारी बैंक के रूप में कार्य करे, स्थापित किया जाये। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि

इम्पीरियल बैंक को भूतपूर्व देशी राज्यो के बैंको मे मिलाकर यह राज्य बैंक बनाया जाये। परन्तु सर्वप्रथम सरकार ने इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया पर ही अधिकार स्थापित करके 'भारत के राज्य बैंक' (State Bank of India) की स्थापना की।

स्टेट बैंक की स्थापना १ जौलाई १६५५ को इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके की गई। इसके लिये स्टेट बैंक आफ इन्डिया एक्ट भी पास किया गया। इम्पीरियल बैंक की समस्त सम्पत्ति, देनदारी, लेनदारी व समस्त दायित्व राज्य बैंक ने ले लिये। इम्पीरियल बैंक के हिस्सेदारो को रिजर्व बैंक द्वारा उचित मुआवजा दिया गया।

पूंजी :—इस बैंक की अधिकृत पूंजी २० करोड रुपये है जो १०० रुपये वाले २० लाख हिस्सो मे विभाजित है। इसकी निर्गमित पूंजी ५ ६२५ करोड है। कुल शेयरो मे से ५५% हिस्से रिजर्व बैंक आफ इन्डिया ने खरीदे हैं और बाकी इम्पीरियल बैंक के हिस्सेदारो व अन्य व्यक्तियो द्वारा खरीदे गये हैं।

प्रबंध—इस बैंक का प्रबध एक केन्द्रीय बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसमे एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, दो प्रबध सचालक और १६ अन्य सचालक है। इनमें से आठ सचालक रिजर्व बैंक के परामर्श से भारत सरकार द्वारा मनोनीत हैं, १ सचालक केन्द्रीय सरकार और १ सचालक रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त है शेष ६ सचालक अन्य हिस्सेदारो के हैं।

कार्य :—स्टेट बैंक आफ इन्डिया के कार्य वही हैं जो इम्पीरियल बैंक के है। इन कार्यों को यह रिजर्व बैंक की देख रेख व निर्देशन मे करता है। यह देश का सबसे बडा व्यापारिक बैंक है और व्यापारिक बैंकों के समस्त कार्यों को करता है जैसे रुपया जमा करना, रुपया उधार देना, कमीशन पर आढत का काम व साख-पत्रो का लिखना, स्वीकार करना, बेचना व भुनाना इत्यादि।

यह बैंक छोटे व कुटीर उद्योग धन्धों की सहायता भी करता है। कुटीर उद्योगो को ऋण प्रदान करने के लिये एक पाइलट योजना पर कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। खेती के लिये ऋण की सुविधा प्रदान करने के लिए यह बैंक सहकारी बैंको को साधारण दर से १/२ प्रतिशत कम दर पर रुपया उधार देता है। केन्द्रीय व राज्य सहकारी बैंको का रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर निशुल्क भेजता है। दीर्घकालीन ऋण की सुविधाओं के विकास के लिए यह भूमि बन्धक बैंको के Debentures को मोल खरीदता है तथा उनको बाजार मे बेचने मे सहायता करता है।

यह बैंक विदेशी विनिमय का भी कार्य करता है। ग्रामवासियों को उधार देने के साथ ही साथ यह उन लोगों की बचत भी इकट्ठी करेगा क्योंकि इस समय गावों में रुपया जमा करने की कोई सुविधा नहीं है। आगामी पाच वर्षों में बैंक को अपनी ४०० नई शाखायें खोलनी हैं जो देश भर मे ग्रामीण साख समितियों की सहायता करेंगी।

यह बैंक निजी व्यापार कर सकता है और अपनी सम्पत्ति के आधार पर ऋण ले सकता है। यह दूसरे बैंको के शेयर भी खरीद सकता है।

प्रतिबन्ध —

स्टेट बैंक आफ इन्डिया निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता :—

(१) यह निश्चित राशि से अधिक मूल्य वाले विनिमय बिलो की कटौती नही कर सकता।

(२) यह ऐसे बिल को नही भुना सकता जिसकी अवधि ६ माह से अधिक हो और जिस पर कम से कम दो व्यक्तियों अथवा फर्मों का दायित्व न हो।

(३) यह १५ माह से अधिक के कृषि-बिलो को नहीं भुना सकता।

(४) अपनी इमारतो के अतिरिक्त यह किसी अचल सम्पत्ति का स्वामी नही हो सकता।

स्टेट बैंक आफ इन्डिया कृषि, व्यापार, उद्योग इत्यादि सभी क्षेत्रो मे साख सुविधाओं का विकास कर रहा है। इस बैंक से ग्रामीण साख की सुविधाओ के विस्तार की बडी आशायें हैं। इसके चार सालो के कार्य से इसकी समुचित प्रगति होती मालूम पडती है।

प्रश्न १३२—व्यापारिक बैंक किसे कहते हैं तथा उनके कार्यों का संक्षिप्त विवरण कीजिये। किसी बैंक का लेन देन का कार्य एक भारतीय साहूकार के लेन देन के ढंग से किस प्रकार भिन्न है ?

(What are the commercial Banks and write short notes on their functions How the banking functions of any bank differ from the banking system of Indigenous Money lenders)

उत्तर :—

जैसा कि नाम से विदित होता है यह बैंक व्यापारियों की ही सेवा करते है। यह व्यापारियो का रुपया जमा करते हैं तथा उनको आवश्यकता पडने पर रुपया उधार देते हैं। भारत के अधिकांश बैंक व्यापारिक प्रकार के हैं

जो व्यापारियो को अल्पकालीन ऋण प्रदान करते है। व्यापारियों को माल का उत्पादन नही करना पडता वे तो थोडे समय क लिये माल खरीदने व बेचने के लिये रुपया चाहते हैं यह बैंक व्यापारियो को चालू खाते की सुविधा प्रदान करते हैं और ओवर ड्राफ्ट के रूप मे रुपया उधार देते हैं। वे ऐजन्सी व सेफ कस्टडी का काम भी करते हैं । पजाब नेशनल बैंक, स्टेट बैंक व इलाहाबाद बैंक ऐसे ही बैंको के उदाहरण है।

बैंक के कार्य

व्यापारिक बैंक क कार्यों को दो भागो मे बाट सकते हैं (१) प्रमुख काय (२) अन्य काय ।

(१) प्रमुख कार्य

प्रमुख काय दो होते हैं (१) रुपया जमा करना (२) रुपया उधार देना।

(१) रुपया जमा करना :— यह बैंक व्यापारियो का रुपया अपने यहा जमा करते हैं तथा इन पर ब्याज भी देते हैं। व्यापारी लोग इस बैंक म निम्न खाते जैसे मुद्दती खाता, चालू खाता, गोलक खाता तथा बचत खाता खोल कर रुपया जमा कर सकते हैं । लेकिन अधिकतर व्यापारी चालू खाता ही खोलते है। इस प्रकार यह बैंक व्यापारियों का आवश्यकता से अधिक रुपया जमा करके तथा समय पर उनका भुगतान करके उनकी सेवा करते हैं।

(२) रुपया उधार देना — यह बैंक निम्न तरीके से व्यापारियो को रुपया उधार देते हैं जिस पर कि वह ब्याज भी वसूल करते है —

(अ) अधिविकर्ष (Overdraft) के रूप मे।
(ब) बिल तथा हुडियो को बट्टे पर भुनाकर।
(स) नकद साख द्वारा।
(द) माल की जमानत पर।
(य) अचल सम्पत्ति की जमानत पर भी कुछ बैंक रुपया उधार दे देते हैं।
(र) व्यक्तिगत जमानत पर advance के रूप मे।
(ल) प्रतिभूतियों को धरोहर के रूप में रख कर।

(२) अन्य कार्य

(अ) गहने आदि सुरक्षित रखना।
(ब) अपने ग्राहकों के लिए प्रतिनिधि, ट्रस्टी तथा वसीयत के कार्यकर्ता के रूप मे कार्य करना।

(स) बीमा किस्त आदि चुकाना ।
(द) साख पत्रों, बिल, बैंक ड्राफ्ट, उधार खाते की चिट्ठी आदि निर्गमित करना ।
(य) अपने ग्राहको के लिये पासपोर्ट तथा देश में यात्रा के लिये टिकट आदि का प्रबध करना ।
(र) बिल, हुडी, चैक आदि वसूल करना ।
(ल) अश पत्रों पर लाभाश और ऋण पत्रों पर ब्याज सग्रह करना ।
(व) एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भेजना ।
(श) अशो व ऋण पत्रों का क्रय विक्रय करना ।
(ष) ग्राहकों के बारे में आर्थिक सम्पत्ति देना ।
(फ) बिल और हुडिया भुनाना ।

आधुनिक बैंक और देशी बैंक मे अन्तर

आधुनिक बैंक	देशी बैंक
१. यह बैंक एक सस्था के रूप में होता है और सयुक्त पूजी वाली कम्पनी के रूप म सगठित किया जाता है ।	१ यह बैंक एक व्यक्ति के रूप में होता है तथा पारिवारिक सिद्धात पर सगठित होता है ।
२. ये बैंक केवल बैंकिग का ही कार्य करता है ।	२ इस बैंक का मुख्य कार्य केवल बैंकिग व्यवसाय ही नही होता बल्कि यह और भी अपना कार्य करते हैं ।
३. यह बैंक जनता से रुपया उधार लेते तथा देते हैं ।	३ इस बैंक का मुख्य कार्य जान पहचान के लोगों को ही रुपया उधार देना होता है ।
४ इनके लिय वार्षिक हिसाब किताब रखना आवश्यक है जिसका कि अकेक्षण करना पडता है ।	४. इनके लिये यह आवश्यक नहीं होता ।
५. ये अपना हिसाब किताब अग्रेजी ढग से रखते हैं ।	५ ये अपन हिसाब किताब रखने के लिये देशी ढग का प्रयोग करते हैं ।

६. ये बिना धरोहर के रुपया उधार नहीं देते।	६. यह बिना धरोहर के रुपया उधार दे देते हैं।
७ यह रुपया उधार पर बहुत कम ब्याज वसूल करते हैं।	७ यह रुपया उधार देने पर बहुत अधिक ब्याज लेते हैं।
८. इनका काम करने का समय निश्चित होता है।	८. इनका यह बैंकिंग व्यवसाय हर समय चलता रहता है।
९. इनकी बड़े २ शहरों में शाखायें होती हैं और व्यवसाय बड़ी मात्रा में चलता है।	९. लेकिन इसका कार्य व्यक्तिगत के रूप में होता है। ना इसकी शाखायें ही होती हैं और न व्यापार ही बड़ी मात्रा में होता है।
१०. इनको व्यवसाय को चालू करने से पहले सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है।	१०. इसके लिये सरकारी आज्ञा लेनी आवश्यक नहीं होती।
११. इनको रिजर्व बैंक का सदस्य होना आवश्यक है। जिसकी कि इनको कुछ फीस जमा करनी पड़ती है।	११. इनके लिये रिजर्व बैंक का सदस्य होना आवश्यक नहीं होता।
१२. रुपया निकालने के लिए इनमें चैक का प्रयोग किया जाता है तथा आवश्यक प्रलेख भी भरने पड़ते हैं।	१२. इसमें ऐसा नहीं होता।
१३ इस बैंक का बड़ा कार्यालय होने की वजह से बहुत से लिपिक कार्य करते हैं।	१३. इसमें सिर्फ एक या दो मुनीम ही कार्य बखूबी व मितव्यता से कर सकते हैं।
१४ इनकी रजिस्ट्री करानी अनिवार्य होती है।	१४. रजिस्ट्री आवश्यक नहीं होती।
१५. यह बैंक रुपया जमा करने वालों को पास बुक भी देते हैं।	१५. यह बैंक पास बुक का प्रयोग नहीं करते हैं।

प्रश्न १३३—साहूकारी प्रणाली पर एक नोट लिखिये।
(Write a note on the Sahukari system in India.)

उत्तर :—

भारतवर्ष में रुपया उधार लेने-देने का कार्य अर्थात बैंकिंग व्यवसाय

बहुत प्राचीन समय से होता आ रहा है और आज भी जबकि आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था का काफी विकास हो चला है, देशी प्रणाली के अनुसार व्यापार करने वाले बैंकर्स आज भी देश के कोने-कोने में भर पड़े हैं। ये विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। गावों और कस्बों में इनको महाजन, साहूकार, सेठ, बनिया, धनी, मारवाड़ी व बोहरा इत्यादि कहते हैं और शहरों में इनको साहूकार व 'सर्राफ' कहा जाता है। साहूकार व्यक्तिगत पारिवारिक फर्म अथवा साझेदारी के आधार पर व्यापार करते हैं। रुपये के लेन देन के व्यापार के साथ साथ ये अपना कोई निजी व्यापार भी करते रहते हैं। ये साहूकार लोग वास्तव में बैंक नहीं होते क्योंकि ये केवल उधार देने का ही कार्य करते हैं और रुपया जमा करने का काम अत्यन्त ही सीमित मात्रा में कभी कभी करते हैं। ये देशी ढंग पर अपना हिसाब किताब रखते हैं।

साहूकारों अथवा देशी बैंकरों के कार्य

(१) रुपया उधार देना :—साहूकार, सर्राफ व महाजन इत्यादि किसानों, कारीगरों, मजदूरों व व्यापारियों इत्यादि को विभिन्न कार्यों के लिये ऋण देते हैं। ऋण उत्पादक और अनुत्पादक दोनों ही कार्यों को दिया जाता है। गावों के साहूकार नकद के अलावा वस्तुओं के रूप में भी उधार देते हैं और इस प्रकार ब्याज के अलावा ये बिक्री पर लाभ भी वसूल कर लेते हैं।

(२) हुंडी भुनाना —शहरों में साहूकार हुंडियाँ भुनाने (Discounting) का काम भी करते हैं और इस प्रकार वे देश के आंतरिक व्यापार में बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। आधुनिक बैंक भी साहूकारों व सर्राफों की जमानत पर ही व्यापारियों की हुंडियों को भुनाते हैं।

(३) निजी व्यापार —साहूकार लोग रुपया उधार देने के कार्य के साथ साथ कुछ निजी व्यापार भी करते हैं जैसे गावों में फुटकर सामान की दुकान खोलना, शहरों में वे सोने, चांदी का व्यापार व सट्टा व माल की खरीद बेच का व्यापार भी कर लेते हैं।

(४) रुपया जमा करना :—रुपया जमा करना इनका कोई मुख्य कार्य नहीं है। गावों में तो साहूकार लोग केवल रुपया उधार देते हैं परन्तु शहरों में साहूकार व सर्राफ इत्यादि बहुत ही सीमित मात्रा में यह कार्य करते हैं।

साहूकारी प्रणाली के दोष —

यद्यपि साहूकार लोग जरूरतमंद व्यक्तियों को रुपया उधार देकर एक

बहुत बड़ी सुविधा प्रदान करते है परन्तु कुछ दोषो के कारण इनकी काफी बदनामी हो गई है। ये दोष निम्नलिखित हैं —

(१) **ऊंची ब्याज की दर** —विशेषतया गावो के साहूकार तो बहुत ऊंची ब्याज की दर पर रुपया उधार देते हैं जो कभी कभी ३००% तक होती है। ब्याज की दर के ऊंचे होने के कारण प्राणी सदैव ऋण के भार से दबा रहता है।

(२) **व्यापार के अनुचित तरीके** :—ये कोरे कागजो पर दस्खत अथवा अंगूठा लगवा लेते हैं और बाद में मनमानी रकम भर लेते हैं ऋणियों से अनेकों अनावश्यक खर्चे जैसे धर्मादा, बही लिखाई, थैली खुलाई, मुनीमी खर्च आदि वसूल करते हैं। ऋणियो से ब्याज के अलावा बहुत प्रकार की बेगार और नजराने इत्यादि वसूल करते है।

इन दोषो के कारण कुछ लोग इनको समाप्त कर देने के मत मे है। ऐसा करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन है। ये साहूकार गावों व शहरो मे ऐसे व्यक्तियो को रुपया उधार देते हैं जिनके पास कोई धरोहर (Security) नही है और जिन्हे बैंक से किसी भी हालत में ऋण नही मिल सकता। जब तक इन लोगों के लिये कोई अन्य ऋण देने वाली ऐजेन्सी स्थापित नही की जाती तब तक साहूकारी प्रथा समाप्त नहीं हो सकती, आवश्यक यह है कि सरकार को कानून बनाकर इनके व्यापार के अनुचित तरीकों व ब्याज को ऊंची दर पर नियन्त्रण रखना चाहिये। इनकी कार्य प्रणाली मे सुधार के लिये निम्नलिखित सुझावो का कार्यान्वित किया जाना चाहिये :—

(१) साहूकारो को रुपया जमा करने के लिये प्रोत्साहित किया जावे।

(२) इनको अपने सघ बनाकर अपन हितों की रक्षार्थ कार्य करना चाहिये।

(३) ब्याज की दर को कम किया जावे।

(४) आधुनिक बैंको से इनका सम्बन्ध स्थापित किया जावे।

(५) रिजर्व बैंक से इनका सम्बन्ध स्थापित किया जावे।

अध्याय ५६

ग्रामीण ऋण

प्रश्न १३४—ग्रामीण ऋण के क्या कारण हैं? तथा ग्रामीण साख के वर्तमान स्रोतों का वर्णन कीजियेगा।

(Explain the causes of Rural Indebtedness and also the present sources of rural credit)

उत्तर :—

भारत की आर्थिक समस्याओं में से ग्रामीण ऋण की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। *भारतीय किसान के विषय में यह कहा जाता है कि* **"किसान कर्जदार ही पैदा होता है, वह कर्ज मे पलता है और कर्ज को बढ़ा कर अपनी सतान के लिए छोड़ जाता है", कृषको के ऋणग्रस्त होने के अनेक कारण हैं जिनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं —**

ग्रामीण ऋण के कारण —

१ पूर्वजों द्वारा ऋण।
२ मुकदमेबाजी।
३ खेतों का छोटा व छिटका होना।
४ कृषि में अनिश्चितता।
५ कृषकों में फिजूलखर्ची।
६ उचित साख व्यवस्था की कमी।
७. कृषकों की शारीरिक दुर्बलता।
८ कृषकों की अशिक्षा।
९ ऋण प्राप्ति की सरलता।
१० सरकार की लगान नीति।

(१) पूर्वजों द्वारा ऋण —भारतीय कृषको का ऋणी होने का एक मुख्य कारण पूर्वजों द्वारा ऋण को छोड कर मरना है जिसका परिणाम यह होता है कि कृषक इस बोझ को अपने सिर से आजन्म नही उतार पाता है। लेकिन अब इस दशा में सरकार ने कुछ नियम बनाकर सुधार किया है जिससे कृषको को अधिक लाभ हुआ है।

(२) मुकदमेबाजी —ग्रामीण जनता को मुकदमे का बहुत शौक होता है और जरा जरा सी बात पर मुकदमे लड़ बैठते है तथा जिसके लिए उन्हें महाजन से ऋण लेना पडता है जिससे उन पर ऋण का भार और भी अधिक बढ जाता है।

(३) खेतों का छोटा और छिटका होना —देश में पैतृक सम्पत्ति के बटने का ढग ऐसा है जिससे खेतों के छोटे छोटे टुकडे हो

जाते हैं तथा जिनमें कृषि कार्य लाभदायक नही हो पाता है और उन्हे बाध्य होकर ऋण लेना पडता है।

(४) **कृषि में अनिश्चितता** :—भारतीय कृषि में प्राकृतिक कारणो का अधिक प्रभाव पडता है। वर्षा की अनिश्चतता, पशुओ का महामारी से मरना आदि कृषको को महाजन से ऋण लेने को बाध्य कर देते हैं तथा महाजन उचित अवसर समझकर कृषको का अत्यधिक शोषण करता है।

(५) **कृषकों मे फिजूलखर्ची** :—कृषक शादी, संस्कार एवं त्योहारो के अवसर पर आवश्यकता से अधिक व्यय कर देता है। यदि कृषक के पास इन पर व्यय के लिए पर्याप्त धन नही है तो ऋण लेकर व्यय करता है जिस कारण से ऋण का भार और भी अधिक बढ जाता है।

(६) **उचित साख व्यवस्था की कमी** :—गावो मे उचित सूद पर साख मिलने की व्यवस्था ना के समान है। इसलिए कृषको को उत्पादक कार्यो के लिए भी महाजन मे ऋण लेना पडता है। महाजन ब्याज की ऊची दर वसूल करते हैं तथा कृषि उत्पादन पर भी अधिकार जमा लेते हैं।

(७) **कृषको की शारीरिक दुर्बलता** :—भारतीय कृषक को पौष्टिक भोजन नही मिल पाता है जिस कारण से वे दुर्बल रहते हैं तथा समय-समय उनको अनेक प्रकार के रोग सताते हैं। ऐसे समय मे वे कार्य करने मे असमर्थ होते हैं परन्तु पारिवारिक व्यय के लिये उन्हे महाजन से ऋण लेना पडता है।

(८) **कृषकों की अशिक्षा** :—भारतीय किसान अशिक्षित होने के कारण महाजनो तथा वकीलो के धोखे मे आ जाता है और अधिक व्यय कर देना पडता है जिससे ऋण की मात्रा और भी बढ जाती है।

(९) **ऋण प्राप्ति की सरलता** :—कृषको को ऋण मिलने की सुगमता ने उन्हें अत्यधिक ऋणी बनाया तथा महाजनो ने अत्यधिक ऋण देने का प्रयास किया क्योंकि वे जानते थे कि न्यायालयो द्वारा वे इसे वसूल कर सकते हैं। इन सबका परिणाम यह हुआ कि भारतीय कृषक अधिक ऋणी हो गया।

(१०) **सरकार की लगान नीति** :—सरकार प्रतिवर्ष कृषको से लगान या मालगुजारी वसूल कराती है लेकिन सरकार इस बात पर ध्यान नहीं देती कि फसल अच्छी हुई है या खराब। इस कारण से खराब फसल की दशा मे कृषकों को लगान महाजनो से ऋण लेकर देना पडता है जिससे उनपर ऋण का भार और भी अधिक बढ जाता है।

ग्रामीण साख के वर्तमान स्रोत —भारतीय कृषकों को समय समय पर ऋण की आवश्यकता होती है जिसको वे विभिन्न साधनों द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। वे मुख्य साधन निम्नलिखित हैं :—

(१) **महाजन** .—महाजन का ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में बहुत महत्व है और वह आज भी ग्रामीण जनता की बहुत सेवा करता है लेकिन ये ब्याज की ऊंची दर वसूल करते हैं तथा कृषकों का अनेक प्रकार से शोषण करते हैं। इसीलिए सरकार इस प्रथा के अन्त के पक्ष में है।

(२) **सहकारी साख समितियां** :—देश में इस प्रकार की समितियों का विस्तार किया जा रहा है तथा इसके उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि सरकार एव जनता इनके कार्यों में पूर्ण सहयोग दे। तभी वे ग्रामीण साख की मांग को सफलतापूर्वक पूरा कर सकेंगे।

(३) **भूमि बन्धक बैंक** —ये बैंक कृषकों को भूमि की आड़ पर स्थायी सुधार के हेतु दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार के बैंक सर्वप्रथम मद्रास प्रान्त में शुरू हुए थे लेकिन अब यह प्रत्येक प्रान्त में पाये जाते हैं। इन्होंने अभी अधिक सफलता प्राप्त नहीं की है।

(४) **वाणिज्य बैंक** —ये बैंक कृषकों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता नहीं करते हैं। फिर भी इन बैंकों द्वारा मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को सहायता मिलती है जोकि बाद में कृषकों की सहायता कर देते हैं।

(५) **सरकार** —कृषक को महाजन से बचाने के लिए सरकार ने उत्पादक कार्यों के लिए ऋण की व्यवस्था की जोकि 'तकावी ऋण' के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इस कार्य से कृषकों की आर्थिक की दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हो पाया।

शीघ्र ही में सरकार ने इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया को स्टेट बैंक आफ इन्डिया में बदल दिया है जिसका प्रमुख कार्य ग्रामीण साख की व्यवस्था करना है। इसलिए यह आशा की जाती है कि समीप भविष्य में इन संस्थाओं के विकास से ग्रामीण साख की समस्या का पूर्णत हल हो जायेगा।

अध्याय ६०

सहकारिता

प्रश्न १३५—सहकारिता के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या कीजिये।

(Explain clearly the fundamental principles of cooperation)

उत्तर —

सहकारिता का शाब्दिक अर्थ है एक साथ मिलकर किसी कार्य को करना। लेकिन अर्थशास्त्र मे इसका अर्थ अधिक व्यापक रूप मे लिया जाता है प्रो० सी० एफ० स्टीकलैंड ने सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार दी है कि **"सहकारिता उस आर्थिक व्यवस्था को कहते हैं जिसमे मनुष्य किसी न किसी व्यापारिक तथा आर्थिक दृष्टि से मिल जुलकर कार्य करता है। यह कुछ व्यक्तियो की एक ऐसी सस्था है जिसमे मनुष्य स्वेच्छापूर्वक मिल जुलकर समता के आधार पर अपनी अपनी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं" (Cooperation indicates the association of individuals to secure common economic end by honest means.)**

सहकारिता के सिद्धात.—सहकारिता के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित है —

(१) ऐच्छिक संस्था—सहकारी समिति की सदस्यता मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर है। यदि व्यक्ति चाहे तो उस सस्था का सदस्य बन सकता है और यदि चाहे तो अलग भी हो सकता है। इस प्रकार सहकारी समिति एक ऐच्छिक सस्था के रूप मे कार्य करती है।

सहकारिता के सिद्धांत —

१. ऐच्छिक सस्था।
२ प्रजातन्त्र पर आधारित।
३ सेवा भाव।
४ आर्थिक उद्देश्य।
५. आत्मनिर्भरता।
६ मितव्ययिता।
७ समीपता।
८. समानता।

(२) प्रजातन्त्र पर आधारितः—प्रत्येक सहकारी समिति मे कार्य प्रजातन्त्र या जनतन्त्र के नियमो के अनुसार होता है। प्रत्येक को प्रत्येक कार्य मे समान अधिकार एव समान अवसर प्राप्त होते हैं।

(३) सेवा-भाव—सेवा भाव सह-

कारिता का मूल आधार है। सहकारिता मे लाभ का उद्देश्य अधिक नही होता है सहकारिता मे 'Each for all and all for each' के कथन का पालन होता है।

(४) आर्थिक उद्देश्य—सहकारी समिति किसी आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सगठित की जाती है जिससे सदस्यो को सामान्य आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं।

(५) आत्म निर्भरता—इस सस्था के अन्तर्गत अपनी सहायता आप करने तथा सदस्या को आत्मावलम्बी बनाने के ऊपर बहुत बल दिया जाता है।

(६) मितव्ययिता—सहकारी सस्था मितव्ययिता के आधार पर कार्य करती है तथा सदस्यो को भी मितव्ययिता सिखाती है।

(७) समीपता—सहकारी समिति के सदस्य ऐसे होते हैं जो एक दूसरे से परिचित होते हैं तथा एक ही स्थान के निवासी होते हैं ऐसा सम्पर्क सहकारी साख समिति की दशा मे होना अति आवश्यक है।

(८) समानता—सहकारी समिति में प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार प्राप्त होते हैं। इसीलिये किसी सदस्य ने चाहे कितने ही हिस्से खरीद रक्खे हों परन्तु उसे केवल एक मतदान करने का अधिकार प्राप्त होता है।

प्रश्न १२६—सहकारी साख समिति से आप क्या अर्थ समझते हैं? इसके लाभों का वर्णन कीजिये।

(What do you understand by co operative credit Society? Discuss its advantages fully)

उत्तर—

'सहकारिता' (Co-operation) दो शब्दों 'सह' (co) और 'कारिता' (operation) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है मिलकर कार्य करना। प्रारम्भिक काल से ही मनुष्य सहयोग से काम करता आया है और आज भी जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग का विशेष महत्व है अर्थशास्त्र मे सहकारिता का एक अलग अर्थ है। **"बराबरी के स्तर पर मिलजुल कर कार्य करने वाले व्यक्तियों का ऐच्छिक सगठन, जो किसी आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये बनाया गया है, सहकारिता कहलाता है।** यह सहकारिता साख, उत्पादन, उपभोग, उद्योग अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। इसी परिभाषा के अनुसार सहकारी साख समिति

उन व्यक्तियों का ऐच्छिक सगठन है जो मिल जुलकर अपने सीमित साधनो को एकत्रित करके अपने ही आपको उचित ब्याज की दर पर ऋण प्रदान करते हैं। इसका उद्देश्य सदस्यो की आवश्यकतानुसार उनके सामूहिक साख और साधनो के आधार पर, ऋण का प्रबध करना होता है। ये समितिया साहूकार का लोप करके सस्ती ब्याज की दर पर रुपया उधार देती हैं —

सहकारी साख समितियो के प्रकार (Kind of co-operative credit Societies) —

भारतवर्ष म सहकारिता आदोलन का विकास साख समितियो से ही प्रारभ हुआ और आज भी समस्त देश मे इनका जाल सा फैला हुआ है। भारत म साख समितियो का विभाजन **ग्रामीण सहकारी साख समितिया (Rural Co-operative Cradit Societies) और शहरी सहकारी साख समितियों** मे किया जाता है। प्रथम प्रकार की समितियाँ ग्रामीण क्षेत्रो म पाई जाती हैं। इनको रेफीसन—मन्डल पर स्थापित किया जाता है। ये गावो के किसानों, कारीगरो व मजदूर सदस्यो को रुपया उधार देती हैं। द्वितीय प्रकार की समितिया शहरी क्षेत्रो मे पाई जाती हैं। इनका निर्माण डेलिश शुल्जे सिद्धातो पर किया गया है। ये शहरों मे शहर के दुकानदारो, कारीगरो, कुटीर—कर्मचारियो इत्यादि को रुपया उधार देती हैं। दोनो ही प्रकार की समितियाँ सदस्यो मे बचत को प्रोत्साहित करने के लिये जमा-आकर्षित करती हैं जिस पर उचित ब्याज भी दिया जाता है।

सरकारी साख समितियो का ढाचा —

प्रत्येक गाव मे एक साख समिति होती है जिसको प्रारम्भिक समिति (Primary Society) कहते हैं। ये सहकारी साख सगठन का आधार है। इनके ऊपर जिला स्तर व सहकारी सघ अथवा यूनियनें होती है। राज्य की समस्त जिला यूनियनो अथवा सघो के ऊपर एक प्रातीय सहकारी बैंक होता है।

ग्रामीण सहकारी साख समितियो की विशेषतायें (Rural Co-operative Credit Societies) —

(१) इन समितियों का क्षेत्र सीमित होता है (२) समिति बनाने के लिये कम से कम १० (अधिक से अधिक १००) सदस्य आवश्यक है (३) समिति का प्रबध प्रजातत्रीय आधार पर होता है। प्रत्येक सदस्य को एक वोट देने का अधिकार होता है। सब सदस्य मिलकर समिति के कार्यसचालन के लिये एक अवैतनिक प्रबध कमेटी नियुक्त करते हैं। (४) सदस्यो

का दायित्व असीमित होता है (५) प्रवेश-शुल्क, शेयरों, जमा तथा बाहरी ऋणों से समिति की कार्यशील पूंजी एकत्रित होती है (६) ब्याज दर भी बहुत कम होती है (७) ऋण के मुख्यत. उत्पादक कार्यों व पुराने ऋणों को चुकाने को दिया जाता है (८) ऋण का भुगतान छोटी २ किस्तों मे होता है जो फसल तैयार होने समय देय होती हैं (९) व्यक्तिगत साख पर ऋण प्रदान किया जाता है (१०) हिस्से वाली समितियो के लाभ का कुछ भाग रक्षित कोष म जमा करके शेष सदस्यो को बांट दिया जाता है परन्तु गैरहिस्से वाली समितियों का समस्त लाभ रक्षित कोष (*Reserved fund*) मे जमा होता है (११) समितिया का निरीक्षण व लेखा-परीक्षण रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों के द्वारा होता है।

शहरी सहकारी साख समितियो की विशेषतायें (Urban Co-operative Credit Societies) —

(१) इन समितियों का कार्य क्षेत्र अपेक्षाकृत काफी बडा होता है (२) समिति का प्रबंध अवैतनिक व्यक्तियों के हाथ मे होता है (३) ऋण किसी भी उद्देश्य के लिय लिया जा सकता है (४) ये धरोहर के पीछे ऋण देती हैं (५) लाभ का बटवारा सदस्यो मे किया जाता है (६) पूंजी का अधिकांश भाग शेयर बेचकर प्राप्त किया करती हैं (७) सदस्यों को जमा पर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दिया जाता है (८) सदस्यों का उत्तरदायित्व सीमित होता है (९) अन्य बातें जैसे कम से कम सदस्यो की सख्या, वोट देने का अधिकार, प्रबंध कमेटी क अधिकार, ऋण का भुगतान, समितियों का निरीक्षण व लेखा परीक्षण इत्यादि ग्रामीण समितियों के अनुसार ही हैं।

सहकारी साख समितियों के लाभ:—

(१) ये समितियां गावो में किसानों, मजदूरा व कारीगरो को व शहरो म व्यापारिया, दुकानदारों, कुटीर-कमचारियों व नौकरी-पेशे वाल *व्यक्तियों को सस्ते ब्याज की दर पर थोडे समय के लिय रुपया उधार देती* हैं। इनके अभाव मे ये व्यक्ति गांव के महाजन व शहर के बनिया से रुपया उधार लेते थे जो इनकी स्थिति का फायदा उठाकर ब्याज की मनमानी बहुत ऊंची दर पर वसूल किया करते थे। साख समिति का उद्देश्य सदस्यों की सेवा प्रदान करना है न कि उनस लाभ उठाना। अत. ये कम ब्याज की दर पर रुपया उधार देती हैं।

(२) जिन क्षेत्रों में सहकारी साख समितियों का विकास हो चुका है, वहा पर महाजन, बनियों व अन्य रुपया उधार देने वाले व्यक्तियों का प्रभुत्व

निश्चय रूप से कम हो गया है। समितियाँ उनसे स्पर्धा करती है। अत महाजनों की ब्याज की दर भी साथ ही साथ गिर गई है।

(३) ये समितिया किसानो को पुराने ऋण चुकाने के लिये भी रुपया उधार देती हैं।

(४) ग्रामीण समितिया तो निजी-साख पर रुपया प्रदान करती हैं। अत. इन समितियो के कारण गरीब परन्तु चरित्रवान, ईमानदार व उद्यमशील व्यक्तियो को भी रुपया उधार मिल जाता है। जबकि महाजन धरोहर के पीछे ही रुपया उधार देता है।

(५) साख-समितिया सदस्यों को साख प्रदान करने के साथ ही साथ उत्तम व सस्ते कृषि बीज, यन्त्र, औजार व खाद भी प्रदान करती है। इससे कृषि विकास को प्रोत्साहन मिला है।

(६) सदस्यों मे मितव्ययिता व बचत की आदत डालती है। सदस्यों को उनकी जमा पर समितिया ब्याज प्रदान करती हैं।

(७) इन समितियो ने सदस्यो की नैतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति मे सुधार किया है।

प्रश्न १३७—संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—

(१) बहुउद्देशीय समितियाँ, (२) उपभोक्ता भंडार।

(Write short notes on —

(1) Multipurpose Societies, (2) Consumers Stores)

उत्तर :—

(१) **बहुउद्देशीय समितियाँ** :—पिछले कुछ वर्षों तक इस बात पर अर्थशास्त्रियो मे काफी वादविवाद था कि सहकारी समिति को केवल किसी एक विशेष कार्य को करना चाहिये अथवा उनको अनेको उद्देश्यो की पूर्ति करनी चाहिये। १९३७ में रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने इस बात को बतलाया कि भारत में सहकारी साख समिति की असफलता का एक प्रमुख कारण इनका केवल साख प्रदान करना है। इनकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि गांवो की समिति को अपने आपको केवल साख प्रदान करने तक ही सीमित नही रखना चाहिये बल्कि कृषकों की समस्त आवश्यकताओ को पूर्ण करना चाहिये। तभी कृषकों को महाजनो के चगुल से छुडाया जा सकता है। अतः अब देश मे बहुउद्देशीय समितियो का निर्माण किया जा रहा है।

इन समितियों के निम्न कार्य हैं :—

(१) कम ब्याज पर ऋण देना।

(२) पुराने ऋण चुकाने के लिये रुपया उधार देना।

(३) अच्छे बीज, कृषि-यन्त्र व खाद बेचना।

(४) दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ को बेचना।

(५) किसानो की उपज को बेचना।

(६) कुटीर उद्योगों का विकास।

(७) पशुओं के चारे का सग्रह करना।

(८) सहकारी कृषि को प्रोत्साहन।

(९) सामाजिक सुधार करना व शिक्षा का प्रसार इत्यादि।

उपभोक्ता भंडार (Consumers Store) :—

ये भंडार उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर विशुद्ध उपभोग की वस्तुयें प्रदान करते हैं। इनको सहकारिता के आधार पर चलाया जाता है। लाभ को सदस्यों में उनकी खरीदी हुई वस्तुओ की कीमत के अनुपात में बांट दिया जाता है। इस प्रकार सदस्यो को अपरोक्ष रूप से सस्ती वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार के भंडारो का जन्म सर्वप्रथम इगलैंड मे हुआ। भारतवर्ष मे इन भंडारो का विकास द्वितीय युद्धकाल मे हुआ जब सरकार ने खाद्यान्न व अन्य आवश्यक वस्तुओ का राशनिंग प्रारम्भ किया। इन वस्तुओं के वितरण के लिये शहरों मे तथा बडे बडे कस्बो मे उपभोक्ता भंडार स्थापित किये गये। युद्धकाल के बाद से ये भंडार भारत में कम होते जा रहे हैं। इनकी असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —

(१) कम प्रतिशत लाभ, (२) स्थानीय व्यापारियो का विरोध व स्पर्धा, (३) बडी सख्या में निश्चित आय वाले व्यक्तियों की कमी, (४) भारतीयों के जीवन स्तर का नीचा होना, (५) उधार मागने की प्रथा, (६) ग्राहकों की अश्रद्धा, (७) अनुभव की कमी, (८) अधिक प्रबंध व्यय।

आजकल बडे-बडे शहरो और कस्बों मे ही उपभोक्ता भंडार पाये जाते हैं। ये दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को बेचते हैं। कुछ भंडारों को नियन्त्रित वस्तुओ का अधिकृत विक्रेता (Licensed seller) नियुक्त किया गया है। मद्रास का ट्रिप्लीकेन स्टोर एक बहुत ही सफल भंडारो मे से है। यू० पी० मे सहकारी विक्री व विकास सघों द्वारा प्रतिवर्ष करोडों रुपये का सामान बेचा जाता है। मद्रास मे ग्रामीण उपभोक्ता सहकारी भंडारों के विकास की ओर भी कदम उठा दिया है।

प्रश्न १३८ '—सहकारी खेती के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करियेगा तथा भारत के लिए उपयुक्त रूप कौन सा रहेगा और क्यों ?

या

सहकारी खेती किसे कहते हैं ? तथा भारत के लिए यह कहां तक उपयुक्त है ?

(Mention the various forms of cooperative farming recom mended for adoption in India Which of them do you prefer and why ?)

Or

(What is cooperative Farming ? Show its suitability to India ?)

उत्तर —

सहकारी खेती का अर्थ —साधारणत सहकारी खेती का अर्थ है कुछ किसानों का मिलकर कार्य करना। इस प्रकार के कार्य मे किसानो का अपनी भूमि म सम्बन्धित अधिकार सुरक्षित रहते हैं तथा प्राप्त लाभ को भूमि के अनुपात में आपस म बाट लते है। **योजना आयोग** ने सहकारी खेती की परिभाषा करते हुए कहा है कि **"सहकारी खेती का अर्थ है भूमि का एकीकरण एव सयुक्त प्रबन्ध"।**

सहकारी खेती के विभिन्न रूप —सहकारी खेती के निम्न चार रूप हो सकते हैं —

(१) सहकारी उन्नत खेती (Cooperative Better Farming) — इस प्रकार की खेती से सम्बन्धित समितियो का कार्य कृषि के उन्नत ढगो का प्रचार करना है। इस दशा मे किसान अपनी भूमि का स्वय स्वामी रहता है तथा स्वय ही खेती भी करता है। लेकिन कुछ कार्यों के लिए सब किसान मिलकर कार्य करते हैं जैसे बीज व खाद की व्यवस्था, मशीनों के प्रयोग की व्यवस्था, उत्पादित अन्न की बिक्री की व्यवस्था आदि। इन कार्यों के अतिरिक्त किसान को अन्य कार्यों मे स्वतन्त्रता रहती है। सदस्यगण इस समिति की सेवाओ के बदले कुछ कमीशन भी देते हैं।

सहकारी खेती के प्रकार —

१ सहकारी उन्नत खेती।
२ सहकारी सयुक्त खेती।
३ सहकारी किसान खेती।
४ सहकारी सामूहिक खेती।

(२) **सहकारी संयुक्त खेती (Cooperative Joint Farming)** — इस प्रकार की खेती में किसानों को भूमि के स्वामी का अधिकार तो प्राप्त होता है लेकिन कृषि कार्य मिलकर किया जाता है। इस कार्य के लिए एक समिति बनाई जाती है। जो कि कृषि काय की व्यवस्था करती है। प्रत्येक किसान को उसके श्रम के बदले प्रतिदिन का प्रतिफल मिलता है। तथा समिति क लाभ का कुछ अश जो कि उसके भूमि के मूल्य के अनुपात मे होता है वह भी मिलता है। इस प्रकार की समिति का कार्य फसल का पैदा करना, बिक्री करना, भूमि सुधार करना आदि है। सदस्य यदि चाहे तो वे समिति से अलग भी हो सकते हैं।

३) **सहकारी किसान खेती (Cooperative Tenant Farming)** — इस प्रकार की खेती व्यवस्था के अन्तर्गत किसान कृषि कार्य प्रथक २ होकर करते हैं, लेकिन कृषि भूमि के स्वामित्व का अधिकार समिति को ही होता है। क्योंकि समिति ही सरकार से या किसी बड़े जमींदार से भूमि बिना लगान या पट्टे के आधार पर अधिक समय के लिए ले लेती है। और उस भूमि को अनेक भागों मे करके सदस्यों को जोतने के लिए दे देती है। भूमि पर कृषि कार्य की योजना समिति द्वारा ही बनाई जाती है तथा कृषि सम्बन्धी अन्य सुविधाओं का प्रबन्ध भी समिति करती है।

(४) **सहकारी सामूहिक खेती (Cooperative Collective Farming)** —इस प्रणाली के अतर्गत कृषि कार्य एव स्वामित्व दोनो ही सामूहिक होते हैं, इस प्रकार की समिति भी भूमि की व्यवस्था बिना लगान या पट्टे के आधार पर करती है तथा सारी भूमि पर सब सदस्य मिलकर काय करते हैं जिसके बदले उन्हें प्रतिदिन का प्रतिफल दिया जाता है। तथा वर्ष के अन्त में प्राप्त लाभ को सदस्यों को उनके श्रम के अनुपात म बाँट दिया जाता है। इस प्रकार की खेती में मशीनों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

भारत के लिए उपयुक्त रूप —सरैया कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सहकारी, सामूहिक तथा सहकारी किसान खेती का सगठन एव सचालन तभी हो सकता है जबकि समिति के पास भूमि की व्यवस्था हो। भूमि की व्यवस्था सुधार क हेतु प्राप्त भूमि, रिटायर्ड सैनिकों या भूमिहीन मजदूरों के बसाने के उद्देश्य से की जा सकती है। इस कमेटी ने यह भी सुझाव दिया कि सरकार को यन्त्रों की सुविधा पर भी पर्याप्त व्यय करना चाहिए। सरकार को सहकारी उन्नत खेती समितियों की भी बड़े पैमाने पर व्यवस्था

करनी चाहिये तभी भारत मे सहकारी खेती के आधार की स्थापना हो सकती है ।

सहकारी सयुक्त खेती समिति के सम्बन्ध मे कमेठी का मत है कि इस प्रकार की समिति हर स्थान पर सफल नही हो सकती है । इसके विकास के लिए सरकार को ग्रान्ट, टेक्नीकल सहायता, निपुण कर्मचारियो की व्यवस्था आदि पर ध्यान देना होगा तथा साथ ही ऋण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये ।

कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि देश मे सहकारी खेती को प्रोत्साहन दिया जाय । लेकिन सहकारी खेती का प्रयोग देश मे सफल हो सकेगा भी या नही इसके विषय मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है ।

सहकारी खेती के विरोध मे राजाजी लिखते हैं कि "साम्यवादी देशों को छोडकर जहा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अभाव है और लोगो से जबर्दस्ती कार्य कराया जाता है, कही भी सहकारी खेती का प्रयोग नही किया गया । सहकारी खेती बिना बल–प्रयोग के सभव नही होगी । लोग खुशी से मजदूर बनने के लिए राजी नहीं होंगे और किसान तो और भी कम । हमारे देश मे सहकारी खेती भयकर रूप से विफल होगी ।"

लेकिन भारत की केन्द्रीय एव प्रातीय सरकारें इस बात पर जोर दे रही हैं कि भारत मे सहकारी ढग से खेती की जाये । नेहरू जी ने नई दिल्ली मे सार्वजनिक सभा मे कहा कि, "सहकारी खेती का कार्य लोगो की स्वेच्छा से होगा । लोगो को सहकारी खेती के फायदे समझाये जायेंगे और वे समझ बूझ कर ही इस प्रयोग मे शामिल होंगे । नागपुर प्रस्ताव में तो यह भी कल्पना की गई है कि सहकारी समिति मे शामिल होने वाला किसान अपनी भूमि का मालिक बना रहेगा । उसे अपनी भूमि और काम के हिसाब से जमीन की उपज का हिस्सा मिलेगा ।"

नागपुर प्रस्ताव के अनुसार प्रथम तीन वर्षों मे सरकार को "सेवा सहकार समितियों' की व्यवस्था देश भर मे करनी चाहिये । जिसके विस्तार एव सफलता पर सहकारी खेती आधारित होगी । इनके सचालन के लिए कई लाख लोगो की ट्रेनिंग की व्यवस्था भी करनी होगी । श्री मिश्र ने भी सहकारी खेती को गावो की समस्याओ के हल करने का मुख्य साधन बताया है ।

प्रश्न १३६. भारत में सहकारिता मे कौन २ सी कमियां हैं ? तथा सुधार के लिए कुछ सुझाव दीजियेगा।

(What are the Drawbacks of Cooperation in India ? And give some suggestions for Improvement.)

उत्तर :—

भारत मे सहकारिता का उचित विकास नही हुआ है। इसमे बहुत सी कमिया हैं जिसकी ओर समय २ पर अनेक कमेटियो ने सकेत किया है। जिनमें से मुख्य कमियाँ निम्न हैं —

(१) सहकारिता के सिद्धान्त का पालन न किया जाना .— भारतीय जनता ने सहकारिता के सिद्धांतो को नही समझा है। इसी कारण वे सहकारी समिति को भी महाजन के समान समझते हैं कुछ व्यक्ति सहकारी आन्दोलन को सरकारी आन्दोलन समझकर सहयोग प्रदान नहीं करते हैं जिस कारण से सहकारी आन्दोलन का भारत में उचित विकास नहीं हो पाया है।

सहकारिता की कमियाँ—

१. सिद्धान्तो का अपालन।
२ गैर साख समितियों पर कम ध्यान।
३ पूंजी की कमी।
४. अधिक ब्याज की दर।
५. दिखावे पर जोर।
६. शिक्षा व मितव्ययिता की कमी।
७. हिसाब का निरीक्षण।
८. संचालन मे कमी।
९. सरकारी नियन्त्रण।

(२) गैर साख समितियों पर कम ध्यान —प्रारम्भ से अब तक सहकारी साख समितियो के विकास पर ही बल दिया गया है। क्रय-विक्रय, समितियो, बीज व खाद भडार समितियो, उपभोक्ता समितियाँ, चकबन्दी तथा ग्रामसुधार की समितियो के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इसी कारण से सहकारिता का भारत मे सर्वोमुखी विकास सम्भव नहीं हो पाया है।

(३) पूंजी की कमी·—सहकारी समितियाँ द्वारा ऋण पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता है क्योकि इन समितियों के पास पूँजी की कमी रहती है, और जो भी ऋण मिलता है वह देरी से तथा एक साथ मिलता है जिस कारण से बाद मे रुपये की आवश्यकता पडने पर कृषकों को महाजन से रुपया उधार लेना पड़ता है।

(४) **अधिक ब्याज की दर :**—साख समितियो की ब्याज की दर उचित ब्याज की दर से अधिक होती है क्योंकि प्रातीय बैंक, केन्द्रीय बैंक को तथा केन्द्रीय बैंक प्रारम्भिक साख समितियो को रुपया उधार देते है, बाद मे प्रारम्भिक साख समिति कृषको को रुपया उधार देती है। जिससे ब्याज की दर अधिक हो जाती है इसी कारण से कृषक इन समितियो का सदस्य बनना पसद नही करते हैं।

(५) **दिखावे पर जोर** —साधारणत ऐसा पाया जाता है कि सहकारी समितियो का ठीक सिद्धातों पर निर्माण नही किया जाता है। केवल दिखाने के लिए ही समितियों की सख्या में वृद्धि की जाती है तथा अनेक प्रकार के काय सौंपे जाते हैं जिससे वे आगे चलकर सफल नही हो पाती हैं।

(६) **शिक्षा एव मितव्ययिता की कमी** —सदस्यो का अशिक्षित होना सहकारिता के कम विकास का मुख्य कारण रहा है। अशिक्षा के कारण ही समितियों के कार्य मे मितव्ययिता का गुण नहीं पाया जाता है। जब तक भारतीय कृषक शिक्षित नही होगे, भारत मे सहकारी आन्दोलन उन्नति नहीं कर सकता है।

(७) **हिसाब का निरीक्षण** —सहकारी सस्थाओ के कार्य एव लेन-देन की उचित जाँच का होना अति आवश्यक है। व्यवहार मे यह जाच इन्ही समितियो से सम्बन्धित सस्था द्वारा होती है जिससे इनकी कमियो का पता नही लग पाता है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि इन समितियो की जाँच डिस्ट्रिक्ट यूनियन द्वारा होनी चाहिये।

(८) **सचालन मे कमी** —कुछ कमीशनों का मत है कि समितियो का सचालन उचित प्रकार से नही किया जाता है। ऋण कुछ व्यक्तियों को ही मिल पाता है। ऋण के प्रयोग के ऊपर कोई विशेष ध्यान नही दिया जाता है कि क्या वह उत्पादक कार्य मे प्रयोग होगा या अनुत्पादक कार्यों में। समितियो का कार्यक्षेत्र कुछ ही व्यक्तियो तक सीमित रह जाता है।

(९) **सरकारी नियन्त्रण** —भारत मे सहकारी आन्दोलन सरकारी आधार पर हुआ है। इसी कारण जनता साख समितियो को सरकारी बैंक के रूप मे समझती है और इसी कारण से जनता का सहकारी आन्दोलन मे पूर्ण सहयोग प्राप्त नही हो सका है। सहकारी समितियो पर जितना सरकारी नियन्त्रण अधिक होगा उतनी ही ये समितिया अपने आधारभूत सिद्धातों से दूर हटती चली जाती हैं और सहकारिता का विकास नही होने पाता है।

सुधार के लिए सुझाव :—भारत मे सहकारी आन्दोलन मे जो कमियाँ हैं उनके सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्न हैं :—

(१) गैर-साख समितियो का पर्याप्त विकास होना चाहिये।

(२) सहकारी साख समितियो को बहुउद्देशीय समितियो के आधार पर चलाना चाहिये।

(३) ऋण केवल उत्पादक कार्यों के लिए दिया जाय तथा ऋण की मात्रा ऋण के भुगतान करने की योग्यता द्वारा निश्चित होनी चाहिये।

(४) प्रान्तीय तथा केन्द्रीय बैंक की आर्थिक दशा मे सुधार होना चाहिये।

भारतीय पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत सहकारिता के विकास पर अधिक बल दिया गया है तथा इसे प्रत्येक क्षेत्र मे लाने का प्रयत्न किया गया है। कृषि तथा धनोत्पत्ति के सभी साधनो का सहकारिता के आधार पर विकास किया जायेगा।

वितरण
(Distribution)

अध्याय ६१

वितरण

प्रश्न १४०—अर्थशास्त्र में वितरण का क्या अर्थ है ? वितरण की समस्या को संक्षेप में समझाइये ।

(What is meant by 'Distribution' in Economics ? Explain in brief the problem of distribution.)

उत्तर :—

साधारण बोलचाल की भाषा मे 'वितरण' से तात्पर्य किसी वस्तु को कुछ व्यक्तियों मे बाटने से है परन्तु अर्थशास्त्र में इस शब्द का एक विशिष्ट अर्थ है। प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की वस्तु स्वय उत्पन्न किया करता था। धीरे धीरे सभ्यता की प्रगति व मानवीय आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण, आर्थिक ढाचा बदलता गया। आज उत्पादन बड़े पैमाने पर श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण के सिद्धातो पर किया जाता है। उत्पत्ति पांच साधनों के सहयोग से की जाती है। कुछ लोग भूमि देते हैं, कुछ पूंजी उधार देते हैं, कुछ अपना मानसिक व शारीरिक श्रम लगाते हैं, कुछ व्यक्ति उत्पादन कार्य की व्यवस्था करते हैं और कुछ इसकी जोखिम को उठाते हैं। **इन सामूहिक प्रयत्नों द्वारा उत्पन्न संयुक्त उत्पत्ति (Joint Product) को उत्पादनों के साधनों मे बांटा जाता है।** इसी क्रिया को अर्थशास्त्र में वितरण के नाम से पुकारते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री विक्सटीड के अनुसार **"अर्थशास्त्र मे वितरण के अन्तर्गत हम उन सिद्धांतों का अध्ययन करते हैं जिनके अनुसार किसी विषम औद्योगिक सगठन की सयुक्त उत्पत्ति उन व्यक्तियों मे बांटी जाती है जो उसे प्राप्त करने मे सहायक होते हैं।** सक्षिप्त म सयुक्त उत्पत्ति के विभिन्न साधनो मे बांटने की क्रिया का नाम ही वितरण है।

वितरण की समस्यायें (Problems of Distribution) :—

वितरण की समस्या इतनी जटिल और विषम हो गई हैं कि आये दिन आर्थिक जगत में सघर्ष पैदा हो जाते हैं। पूजीवाद, समाजवाद व साम्यवाद आदि इसी वितरण की समस्या की देन हैं। वितरण के सम्बन्ध मे निम्न प्रश्न विचारणीय हैं।

(१) कितनी सम्पत्ति बांटी जाय।
(२) सम्पत्ति का वितरण किनको किया जाय।
(३) वितरण का क्रम क्या हो।
(४) वितरण किस सिद्धांत पर किया जाय।

(१) कितनी सम्पत्ति का वितरण किया जाय :—साधारणतया हम कहेंगे कि जितनी सम्पत्ति संयुक्त प्रयत्नो के फलस्वरूप उत्पन्न हो उसी का वितरण होना चाहिये। परन्तु यह बात नही है। कुल उत्पत्ति (Gross Product) में से उत्पत्ति का व्यय निकालकर शेष उत्पत्ति (Net Product) को विभिन्न साधनो मे बाँटा जाता है। ये व्यय निम्न हैं :—

(i) चल पूंजी का प्रतिस्थापन :—उत्पत्ति कार्य के लिये कुछ चल पूँजी की आवश्यकता होती है जैसे कच्चा माल, कोयला, बीज, खाद इत्यादि। इन सबके मूल्य को कुल उत्पत्ति मे से निकाल कर, शेष सम्पत्ति को बाँटते हैं जिससे कि भविष्य के प्रयोग के लिये चल पूँजी पुन. खरीदी जा सके।

(ii) अचल पूंजी का ह्रास :—अचल पूजी जैसे मशीनें, इमारतें इत्यादि व्यापार मे बहुत दिनो तक प्रयोग मे आती हैं परन्तु धीरे-धीरे घिसकर कुछ समय पश्चात बेकार हो जाती हैं। इसलिये प्रतिवर्ष कुल उत्पत्ति में से अनुपातिक मूल्य ह्रास की धन राशि निकालकर अलग रखली जाती है जिससे कि अचल पूजी के पूर्ण बेकार होने के समय तक इतनी धन राशि एकत्रित हो जाय कि उसको पुन नई पूँजी से प्रतिस्थापित किया जा सके।

(iii) सरकारी कर :—कुल उत्पत्ति मे से राज्य को दिये जाने वाले कर की रकम और घटा दी जाती है।

उपरोक्त तीन प्रकार के व्ययो को निकालकर शेष सम्पत्ति को ही वितरित किया जाता है। इस प्रकार देश की समस्त उत्पादन इकाइयों की उत्पत्ति का योग ज्ञात किया जा सकता है। इसको राष्ट्रीय लाभांश (National dividend) कहते हैं।

(२) सम्पत्ति का वितरण कैसे किया जाय—वितरण मे भाग पाने के वही अधिकारी हैं जो उस सम्पत्ति के पैदा करने में सहायक होते हैं। उत्पत्ति के भूमि, श्रम, पूँजी, व्यवस्था व साहस पांच साधन हैं। इनके स्वामी क्रमश. भूमिपति, श्रमिक, पूजीपति प्रबंधक व साहसी होते हैं। इन्ही मे राष्ट्रीय आय का वितरण किया जाता है। कुल उत्पत्ति का भूमिपति को मिलने वाला भाग लगान (Rent), श्रमिक को मिलने वाला भाग मजदूरी

(Wages), पूंजीपति को मिलने वाला भाग ब्याज (Interest), प्रबधक को मिलने वाला भाग वेतन (Salary) तथा साहसी को मिलने वाला भाग लाभ (Profit) कहलाता है।

(३) वितरण का क्रम (Order) क्या है :—सम्पत्ति के वितरण का कोई पूर्व निश्चित क्रम नही है। यह कहना कठिन है कि पहले किसको मिलता है और उसके बाद किसको। परन्तु यह निश्चित है कि सबसे बाद मे साहसी को उसकी जोखिम उठाने का प्रतिफल मिलता है। उत्पादन एक सतत चलने वाला कार्य है। साधनो के स्वामियो को उनके इकरारनामो के अनुसार निर्धारित समय पर पारिश्रमिक मिलता रहता है यदि शेष बचता है तो वह साहसी को मिल जाता है अन्यथा उसे हानि होती है।

(४) वितरण किस सिद्धांत पर किया जाय :—प्रथम प्रत्येक उत्पत्ति का साधन अपनी सेवाओ को दूसरो से अधिक महत्वपूर्ण मानता है, दूसरे, प्रत्येक साधन की कुल उत्पत्ति मे कितना योग (Contribution) है यह मालूम नही हो सकता। इन दो कारणो की वजह से वितरण का एक उचित सिद्धात नही बन पाया है। साधारणतया, उत्पत्ति के प्रत्येक साधन (साहसी को छोडकर, उसको तो शेष सम्पत्ति मिलती है) का पारिश्रमिक उसकी माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। साधन की माग साहसी द्वारा होती है उसका एक अधिकतम मूल्य होता है जिससे अधिक वह कभी देने को तैयार नहीं होता। यह अधिकतम मूल्य साधन-विशेष की सीमात उत्पादकता से निर्धारित होता है। साधनो की पूर्ति उनके स्वामियो द्वारा होती है। उनकी एक निम्नतर सीमा होती है जिसमे कम मूल्य पर वे अपने साधनो की सेवाओ को बेचने को तैयार नही होगे। यह मूल्य साधन-विशेष की लागत द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार मॉग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो के द्वारा मूल्य (साधन का पुरस्कार) न्यूनतम व अधिकतम सीमाओं के बीच कही तय हो जाता है।

अध्याय ६२

उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता

प्रश्न १४१—गतिशीलता का क्या अर्थ है ? भारतीय श्रम की गतिशीलता में क्या बाधाएं हैं ?

(Explain the meanings of Mobility of labour. What are the hindrances in the way of the mobility of Indian Labour ?)

उत्तर :—

गतिशीलता का अर्थ :—साधारण बोलचाल मे गतिशीलता का अर्थ है 'चलने की शक्ति' या 'एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचने की शक्ति'। लेकिन अर्थशास्त्र मे एक उत्पादन के साधन की गतिशीलता का अर्थ है उस साधन का किसी एक व्यवसाय, पेशे, वर्ग या स्थान को जाने की शक्ति। उत्पत्ति के पाच साधन हैं—भूमि, श्रम पूंजी, व्यवस्था तथा साहस। सभी मे गतिशीलता का गुण पाया जाता है। पर किसी मे यह अधिक है और किसी मे कम।

श्रम की गतिशीलता का अर्थ :—

श्रमिकों की एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय को अथवा एक वर्ग से दूसरे वर्ग को चले जाने की क्षमता व तत्परता (Capacity and willingness) को श्रम की गतिशीलता कहते हैं। मजदूर अधिक मजदूरी अथवा अच्छी काम की दशायें प्राप्त करने के लिये एक व्यवसाय अथवा स्थान से दूसरे व्यवसाय अथवा स्थान को आते जाते रहते है।

श्रम की गतिशीलता के प्रकार —

श्रम की गतिशीलता तीन प्रकार की होती है :—

(१) भौगोलिक (Geographical mobility), (२) व्यवसायिक (Occupational mobility), (३) वर्गीय (Grade Mobility)

(१) भौगोलिक अथवा स्थान गतिशीलता :—मजदूर के एक गांव या शहर को छोड कर अधिक वेतन प्राप्त करने के लिये किसी अन्य गांव अथवा शहर मे काम पर चले जाने को भौगोलिक अथवा स्थान गतिशीलता कहते हैं। यदि कोई खुरजा का मजदूर बुलन्दशहर पन्नी जी शुगर मिल मे काम करने चला जाय तो उसकी गतिशीलता स्थान गतिशीलता कहलायेगी। यदि मजदूर स्थान परिवर्तन सदैव के लिये कर लेता है तो यह स्थायी गतिशीलता और केवल थोडे से समय के लिये करता है तो यह अस्थायी गतिशीलता कहलाती है।

(२) पेशेवर गतिशीलता —यदि कोई व्यवसाय मजदूर को रुचिकर नही है तो वह उसको छोडकर दूसरे मे चला जाता है। इसी प्रकार यदि उसको किसी दूसरे व्यवसाय मे अधिक मजदूरी मिलने की आशा है तो वह अपना व्यवसाय परिवर्तन कर लेता है। ऐसी गतिशीलता को व्यवसायिक गतिशीलता कहते हैं। जैसे खुरजा तेल मिल का कोई मजदूर, किसी दाल मिल में काम करने लगे या कोई प्रोफेसर किसी बैंक में उच्चाधिकारी बन जाये इत्यादि।

(३) वर्गीय गतिशीलता :—प्रत्येक व्यवसाय में वेतन आदि के आधार

पर भिन्न-भिन्न वर्ग पाये जाते है। श्रमिक के एक वर्ग से दूसरे वर्ग मे जाने को वर्गीय गतिशीलता कहते है। यह दो प्रकार की होती है :—

(i) सम वर्गीय या क्षैतिज गतिशीलता (Horizontal mobility) :—एक फर्म की नौकरी छोडकर किसी दूसरी फर्म मे उसी वर्ग मे काम कर लेने को क्षैतिज गतिशीलता कहते है। जैसे खुर्जा की दाल मिल का कोई फोरमैन अपने मालिक से लडकर खुर्जा की किसी दूसरी दाल मिल मे फोरमैन बन जाय या खुर्जा कालिज का कोई क्लर्क मेरठ कालिज मे क्लर्क बन जाय आदि।

(ii) विभिन्न वर्गीय या शीर्ष गतिशीलता (Vertiele mobility) :—उसी या दूसरी फर्म मे निम्न वर्ग से उच्च वर्ग मे या उच्च वर्ग से निम्न वर्ग मे चले जाने को विभिन्न वर्गीय कहते हैं जैसे एक कालिज का क्लर्क वहा का हैडक्लर्क हो जाये, एक लेक्चरार एक प्रोफेसर हो जाये (नीचे से ऊपर को) या कोई फोरमैन एक साधारण मजदूर बना दिया जाये, एक थानेदार को हैड-कांसटेबिल बना दिया जाय (ऊपर से नीचे को)।

भारतीय श्रम की गतिशीलता में बाधाएं :—

भारतीय श्रमिक की गतिशीलता बहुत ही कम है। भारतीय श्रमिक अपने गाँव या शहर से बाहर जाकर काम करना बिल्कुल पसंद नही करते। टैक्नीकल ट्रेनिंग व शिक्षा की कमी के कारण उनमे न व्यवसायिक गति-शीलता है और न वर्गीय गतिशीलता। हम नीचे भारतीय श्रम की गति-शीलता मे बाधक कारणों का विवरण देते हैं।

(१) घर का मोह :—भारतीय मजदूर अपना गाव, घर अथवा अपना पैतृक व्यवसाय छोड कर कही दूर नही जाना चाहते। वे घर के रोगी (Home-sick) कहे जाते है। वे अपरिचितो के बीच नये वातावरण मे अधिक धन कमाने की अपेक्षा घर पर पारिवारिक व्यक्तियो के साथ काम करके थोडा कमाना श्रेष्ठ समझते हैं।

(२) महत्वाकांक्षी की कमी —भारतीय अधिकाश भाग्यवादी हैं और सतोषी हैं। वे जीवन मे थोडी आवश्यकतायें रखते हैं। थोडी आय से ही उनकी आवश्यकतायें सतुष्ट हो जाती हैं। वे अधिक धन कमाने के लिये घर से बाहर जाना नही चाहते। इस कारण उनकी गतिशीलता कम हो जाती है।

(३) यातायात के साधनों की कमी :—हमारे देश मे यातायात के साधन विस्तृत, सस्ते और आसान नही हैं। इस कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को आने जाने मे बडी कठिनाई होती है। अतः श्रमिको की गतिशीलता भी कम है। परन्तु यह बाधा अब धीरे २ दूर होती जा रही है।

(४) वातावरण की भिन्नता :—भारत के विभिन्न भागो मे अलग-अलग भाषा, धर्म, रीतिरिवाज, रहन-सहन व जलवायु पाई जाती है। एक प्रांत का मजदूर दूसरे प्रांत की भाषा तक नही समझ पाता है। वहां के खाने को भी वह ठीक नही समझता। अत मजदूरो की गतिशीलता कम रहती है। यू० पी० का श्रमिक आसाम में जलवायु के खराब होने के कारण नही जाता है।

(५) अज्ञानता :—श्रमिको को यह पता नहीं रहता है कि कहां उनकी माग है और कहां नहीं है। ऐसी सूचना प्रदान करने वाले साधनो का भारत मे बडा ही सीमित विकास है। अत मजदूर गतिशील नहीं हो पाते। देश मे अब रोजगार दफ्तर खुल जाने के कारण यह बाधा धीरे-धीरे दूर होती जा रही है।

(६) अशिक्षा —अधिकांश भारतीय अशिक्षित हैं। वे नौकरियो से सम्बन्धित सूचनाओ व विज्ञापनो को नही पढ सकते। इसके अतिरिक्त उन व्यवसायो मे जहां केवल शिक्षित श्रमिको की आवश्यकता होती है, भारतीय श्रमिक काम नही कर सकते। अत उनकी गतिशीलता कम है।

(७) निर्धनता :—अधिकांश भारतीय गरीब हैं। वे बच्चों की पढाई पर इतना पैसा व्यय नही कर पाते कि वे किसी विशेष व्यवसाय के लिये योग्य बन जांय अत उनकी व्यवसायिक व वर्गीय गतिशीलता कम है। इसके अतिरिक्त एक स्थान से दूसरे स्थान को नौकरी करने जाने के लिये पैसा व्यय करना पडता है। परन्तु धनाभाव के कारण वे ऐसा नहीं करते। अत उनकी भौगोलिक गतिशीलता भी कम हो गई है।

(८) सामाजिक रीतिरिवाजों का प्रभाव —भारतीय श्रम की गतिशीलता मे जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली व पर्दा प्रथा बडी बाधक सामाजिक रीतियाँ हैं। जाति प्रथा के कारण एक जाति का व्यक्ति केवल अपनी जाति के व्यवसाय को ही कर सकता है अन्य को नहीं। संयुक्त परिवार प्रणाली के कारण श्रमिको मे अपने पारिवारिक सदस्यो का मोह उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वह अन्य स्थानो पर काम करने को नही जाना चाहता है। पर्दा प्रथा के कारण स्त्री श्रम की गतिशीलता नही बढ पाती है। स्त्रियां उन्ही स्थानों पर कार्य करना पसंद करती हैं जहां उनके पति होते हैं। अत उनकी भौगोलिक गतिशीलता कम रहती है।

बडे हर्ष का विषय है कि श्रम की गतिशीलता की उपरोक्त बाधायें धीरे धीरे कम होती जा रही हैं। देश मे शिक्षा का प्रचार हो रहा है, काम-दिलाऊ दफ्तर खोले जा रहे हैं। सामाजिक रीति रिवाजों का प्रभाव कम

होता जा रहा है, यातायात के साधनों को विकसित किया जा रहा है। अतः अब भारत के मजदूरो की गतिशीलता बहुत बढ गई है ?

— —

प्रश्न १४२—श्रम की गतिशीलता का क्या अर्थ है ? यह कितने प्रकार की होती है ? गतिशीलता का श्रमिक की मजदूरी पर क्या प्रभाव पडता है ?

(What is meant by Mobility of Labour ? What are its different kinds ? What is the effect of Labour Mobility on the wages of the workers ?)

उत्तर :—

प्रश्न के प्रथम और द्वितीय भाग के लिये प्रश्न १४१ का उत्तर पढिये।

श्रम की गतिशीलता का मजदूरी पर प्रभाव —

गतिशीलता के कारण मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जाता है। यदि श्रमिको में गतिशीलता है तो वे उन स्थानो से जहाँ उनको कम मजदूरी प्राप्त होती है उन स्थानों को जा सकते हैं जहा उनको ऊची मजदूरी मिले। अधिक आय प्राप्त होने पर मजदर अपने रहन सहन के स्तर को ऊचा उठा सकते हैं।

मिल मालिक और उत्पादक गतिशील श्रमिको को परेशान नही कर सकते क्योंकि वे जानते हैं कि श्रमिक उसकी नौकरी छोड कर अन्यत्र कही चले जायेंगे।

श्रम की गतिशीलता का सबसे बडा लाभ सब स्थानो व व्यवसायों म मजदूरी की दर समान करना है। जिन स्थानो पर मजदूरी ज्यादा मिलती है वहाँ पर उन स्थानों से जहा कम मजदूरी मिलती है, श्रमिक आ जाते हैं। मजदूरो की पूर्ति बढने से वहा की मजदूरी की दर गिर जायेगी और पहले वाले स्थान में श्रमिक की पूर्ति कम हो जाने के कारण, मजदूरी की दर बढ जायेगी। इसी प्रकार प्रत्येक व्यवसाय मे मजदूरी समान हो जाती है। मान लीजिये खुरजा तेल मिल मे प्रति श्रमिक को २ रु० रोज मिलता है और दाल मिल मे १ रु० ८ आना प्रतिदिन मिलता है। अतः धीरे धीरे दाल मिल को छोडकर मजदूर तेल मिल मे जाने लगेंगे। तेल मिल में श्रमिकों की पूर्ति बढ जाने के कारण वहा प्रति व्यक्ति मजदूरी गिर जायेगी। इसके विपरीत दाल मिल में पूर्ति कम हो जाने के कारण मजदूरी बढ जायेगी। मजदूरों का यह जाना तब तक चलता रहेगा जब तक कि दोनों मिलो म १ रु० १२ आना प्रतिदिन मजदूरी न हो जावेगी।

प्रश्न १४३—पूजी की गतिशीलता का क्या अर्थ है तथा पूजी की गतिशीलता पर प्रभाव डालने वाली बातो का वर्णन करियेगा ?

(Define Mobility of Capital and explain the various factors affecting its mobility)

उत्तर :—

पूजी की गतिशीलता —

पूजी मे भी गतिशीलता होती है। **अधिक ब्याज का लालच पूजी की गतिशीलता का मुख्य कारण है और** इसी कारण से अन्य साधनों की तुलना मे पूजी मे गतिशीलता अधिक है। तभी विदेशो की पूंजी हमारे देश मे आ रही है। **पूजी की गतिशीलता मे यातायात व्यय भी अन्य साधनों की तुलना मे कम होता है** इसी कारण से कुछ ही खर्चे मे हजारो रुपये एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकते हैं। यह भी पूंजी की गतिशीलता के अधिक होने का प्रमुख कारण है।

पूंजी की गतिशीलता को प्रभावित करने वाली बाते —पूजी की गतिशीलता को प्रभावित करने वाली मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

(१) चल और अचल पूजी —पूजी दो प्रकार की होती है — (१) चल पूजी तथा (२) अचल पूंजी। चल पूजी की गतिशीलता अचल पूंजी की गतिशीलता से अधिक होती है। चल पूंजी के अन्तगत नकद रुपया *शेयर्स तथा सिक्यूरिटीज* आदि आते हैं जिन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से प्रयोग में लाया जा सकता है। दूसरी ओर अचल पूंजी के अन्तर्गत मकान, दुकान, मशीन आदि आते हैं जिन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से नहीं बदला जा सकता है, क्योकि इन्हें उचित मूल्य मे बेचने मे समय लगता है।

पूजी की गतिशीलता को प्रभावित करने वाली बाते :—

१ चल और अचल पूजी।
२ जोखिम एव लाभ की आशा।
३ शान्ति एव सुरक्षा।
४ पूजी के विनियोग के साधन।
५ बैंकिंग सस्थायें।
६ पूंजी के सवादवाहन के साधन।

(२) जोखिम एव लाभ की आशा —पूंजी की गतिशीलता उस व्यवसाय मे अधिक होती है जिसमे जोखिम कम होता है तथा पूंजी सुरक्षित

रहती है। पूंजीपति अनिश्चित व्यापार या व्यवसाय मे विनियोग करने से डरते हैं। साथ ही जिस व्यवसाय या उद्योग मे ब्याज की दर अधिक होगी वहीं पूंजी का विनियोग बढने लगेगा।

(३) **देश मे शांति एवं सुरक्षा**—यदि देश मे शाति का वातावरण है तो पूजी की गतिशीलता भी अधिक होगी। क्योंकि ऐसे वातावरण मे पूंजीपतियो को एक स्थान से दूसरे स्थान को या एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे पूंजी विनियोग करने मे कोई भी डर नही होगा। इसके विपरीत यदि देश मे अशाति है तो पूंजी की गतिशीलता भी कम होगी क्योकि पूजीपति पूजी के विनियोग करने मे डरेंगे।

(४) **देश मे पूंजी के विनियोग के साधन**—जिस देश मे आर्थिक औद्योगिक एव सामाजिक उन्नति हो जाती है वहा पूंजी की गतिशीलता भी अधिक होती है और यदि किसी देश मे उद्योगो की उन्नति कम हुई है तो वहाँ पूंजी की गतिशीलता भी कम होगी। एक देश मे पूजी के विनियोग के जितने अधिक साधन होंगे उतनी ही उस देश मे पूंजी की गतिशीलता भी अधिक होगी।

(५) **बैंकिंग संस्थाये**—देश मे व्यापारिक उन्नति के साथ बैंकिंग उन्नति भी सम्भव हो जाती है क्योंकि बैंको के द्वारा रुपया आसानी से एव कम खर्च पर एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है। ड्राफ्ट, हुण्डी, बिल आफ एक्सचेंज आदि के प्रयोग से पूजी की गतिशीलता मे वृद्धि होती है।

(६) **पूंजी के भेजने एवं सम्वादवाहन के साधन**:—यदि देश मे पूंजी के भेजने तथा सम्वादवाहन के साधन सुगम एव उन्नत दशा मे है तो उस देश मे पूजी की गतिशीलता भी अधिक होगी। टेलीफोन, रेडियो, टेलीग्राम आदि के प्रयोग से पूंजी की गतिशीलता मे अधिक वृद्धि होती है।

अध्याय ६३

लगान

प्रश्न १४४—रिकार्डो का लगान सिद्धांत बताइये। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से इसकी आलोचना कीजिये।

(Explain the Recardian Theory of Rent Criticise it from the point of view of modern Economists)

उत्तर—

अंग्रेज अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने लगान के सम्बन्ध मे एक सिद्धात प्रतिपादित किया जो अर्थशास्त्र मे उसी के नाम के पीछे 'रिकार्डो का लगान सिद्धांत' के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त द्वारा रिकार्डो ने यह स्पष्ट किया है कि लगान (आर्थिक लगान) किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होता है और पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओ म लगान का निर्धारण किस प्रकार होता है।

रिकार्डो के अनुसार '**लगान भूमि की उपज का वह भाग है जोकि भूमि की मौलिक तथा अक्षय शक्तियों के उपयोग के बदले मे भूस्वामी को दिया जाता है।" ("Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil")** रिकार्डो के लगान सिद्धात के समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि (१) भूमि की उर्वरा शक्ति भिन्न २ होती है। कुछ भूमि के टुकडे अन्य टुकडों की अपेक्षा अधिक उर्वर होते हैं। ऐसे टुकडो पर समान व्यय करने पर घटिया भूमियो की अपेक्षा अधिक उत्पत्ति होती है। यह 'आधिक्य' (Excess) ही अर्थशास्त्र मे बढिया भूमि का लगान कहलाता है। (२) किस भूमि पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है। भूमि पर प्रयोग की गई श्रम और पूंजी की प्रत्येक अगली इकाई की उत्पत्ति पहली इकाई की अपेक्षा कम होती है। (३) किसी भूमि का लगान न केवल उसकी उर्वरा शक्ति पर निर्भर करता है बल्कि भूमि की स्थिति (Situation) पर भी निर्भर करता है। समान उर्वरा शक्ति वाली भूमियो के मध्य उस भूमि के टुकडे का लगान अधिक होगा जिसकी स्थिति बहुत ही अनुकूल होती है।

लगान कैसे उत्पन्न होता है (How does rent arise)—अपने लगान सिद्धात की व्याख्या के लिये रिकार्डो एक ऐसे नये देश की कल्पना करता है जहां व्यक्ति आकर बसने शुरू हुये हैं। भूमि मांग की अपेक्षा बहुत अधिक है। सब भूमि एक प्रकार की नही है। मानलीजिये उर्वरा शक्ति के दृष्टिकोण से वहा की भूमि क्रमश अ, ब, स व द चार प्रकार की है। 'अ भूमि सर्वोत्तम भूमि है और 'द' भूमि सबसे कम उर्वरा भूमि है। सर्व प्रथम 'अ' श्रेणी की भूमि पर खेती की जायगी। मनुष्यो म भूमि के लिये स्पर्धा नही होगी और न कोई लगान ही दिया जायगा। किन्तु जैसे २ आबादी बढती जाती है और अन्न की मांग बढ़ती है, अधिकाधिक भूमि पर

खेती की जाने लगती है। यदि 'अ' भूमि पर आवश्यक अन्न उत्पन्न नही किया जा सकता तो इससे घटिया 'ब' श्रेणी की भूमिया जोत मे लाई जाने लगेंगी। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति की यही इच्छा होती है कि वह सर्वोत्तम भूमि पर खेती करे फलस्वरूप 'अ' श्रेणी की भूमियो के लिये स्पर्धा होने लगेगी क्योकि समान श्रम व पूजी के प्रयोग से 'अ' भूमि पर घटिया भूमि की अपेक्षा अधिक उपज पैदा होती है। दूसरे शब्दो मे 'ब' श्रेणी के खेतो का उत्पादन-व्यय 'अ' श्रेणी के खेतों के उत्पादन-व्यय से अधिक होगा। इस प्रकार 'अ' श्रेणी के खेतो को 'ब' श्रेणी की अपेक्षा एक विशेष लाभ (**Differential advantage**) मिलेगा जिसे रिकार्डो आर्थिक लगान कह कर पुकारता है। अब 'अ' श्रेणी की भूमियो पर लगान उत्पन्न हो जायगा। इस प्रकार अन्न की माग की वृद्धि के साथ-साथ और घटिया भूमियो पर खेती की जाने लगती है और बढ़िया भूमियो पर लगान उत्पन्न होता जाता है।

उपरोक्त उदाहरण मे 'ब' भूमि की उपज का दाम बाजार मे उतना ही होना चाहिये जितना कि उसका उत्पादन-व्यय है। यदि उत्पादन व्यय अधिक है और बाजार मे उपज का दाम इतना नही है कि कुल उपज को बेचकर लागत वसूल की जा सके तो 'ब' भूमि पर खेती नही की जायगी। इस उदाहरण मे 'ब' भूमि सीमात भूमि है। इस पर कोई लगान नही होता अत: इसे बे लगान भूमि (**No-rent land**) भी कहते है। यदि उपज के दाम बढ़ जायें तो 'स' भूमि पर खेती की जाने लगेगी और 'स' भूमि सीमांत भूमि हो जायगी। इस प्रकार 'ब' भूमि अर्धसीमांत भूमि हो जायगी और इस प्रकार लगान उदय हो जायगा। इस प्रकार **आर्थिक लगान किसी विशेष भूमि और सीमांत भूमि की उपज का अन्तर है।** सीमात भूमि की उपज व इस उपज का उत्पादन व्यय अन्य भूमियो के लगान का निर्णायक होता है।

उदाहरण —मान लीजिये कि चारो श्रेणियो की भूमि पर निम्न प्रकार गेहू प्राप्त होता है।

यदि 'द' श्रेणी की भूमियो पर भी खेती की जाती है तो 'अ' 'ब' व 'स'

श्रेणियो की भूमियो पर क्रमश ६०, ४० व २० मन गेहू लगान होगा। यदि 'स' श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है तो केवल 'अ' व 'ब' श्रेणी की भूमियो पर क्रमश ४० व २० मन गेहूँ लगान होगा। यदि प्रत्येक दशा मे गेहू की लागत ४०० रु० है तो बाजार मे गेहूँ का दाम १० रु० प्रतिमन होना चाहिये क्योंकि तभी 'द' भूमि पर खेती की जायेगी और अ ब स से भूमियों पर क्रमश (६० × १०) = ६०० रु०, (४० × १०) = ४०० रु० व (२० × १०) = २००) रु० लगान होगा।

चित्र द्वारा स्पष्टीकरण
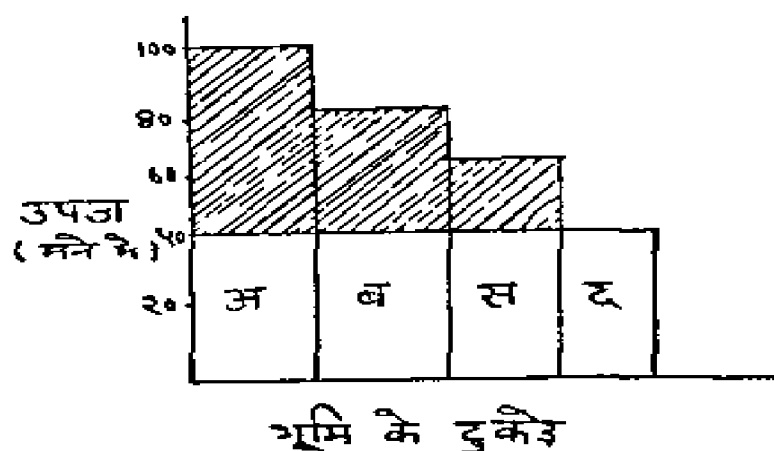
'द' भूमि सीमांत भूमि है इस पर कोई लगान नही है। 'अ' 'ब' व 'स' भूमियो पर लगान छाया वाले भागो द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

गहरी खेती मे लगान—उपरोक्त उदाहरण से यह नही समझ लेना चाहिये कि लगान केवल विस्तृत खेती मे उदय होता है। यह गहरी खेती मे भी उदय होता है। जब जन सख्या की वृद्धि के फलस्वरूप अन्न की माग बढती है तो बजाय भूमि के क्षेत्रफल मे वृद्धि करने के खेतो पर श्रम व पूजी की अधिकाधिक इकाईयो का प्रयोग करके भी अन्न की उत्पत्ति को बढाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रणाली को गहरी खेती कहते हैं। जब भूमि पर अधिकाधिक मात्रा मे श्रम व पूंजी लगाकर गहरी खेती की जाती है तो क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार, प्रति इकाई उत्पत्ति घटती जाती है। एक अवस्था ऐसी आती है जब श्रम व पूजी की अतिम मात्रा (Dose) की लागत और इससे प्राप्त उत्पत्ति की कीमत बराबर हो जाती है। इसको सीमात इकाई अथवा लगान रहित इकाई (No Rent Dose) कहते हैं। इस प्रकार सीमांत इकाई से पूर्व लगाई गई सभी इकाईयो से लागत निकालने के बाद भी बचत रहती है। यह बचत ही उनसे प्राप्त होने वाला आर्थिक लगान है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचना :—आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने रिकार्डो के लगान सिद्धात की निम्न आलोचनायें की हैं :—

(i) रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित कृषि-क्रम असत्य है —यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ भूमियो पर ही खेती की गई। नये स्थानों पर सर्वप्रथम उन भूमियो को जोता जाता है जोकि आबादी के निकट होती हैं। उदाहरणार्थ जब अंग्रेज अमरीका मे जाकर बसे तो उन्होने सबसे उपजाऊ भूमि पर खेती प्रारम्भ नहीं की बल्कि समुद्रतट के मैदानों मे खेती की जोकि उनके निकट थे। अतः रिकार्डो का कृषि क्रम मिथ्या है।

(ii) भूमि की उर्वरा शक्ति नाशवान है :—रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की अक्षय शक्तियो का प्रतिफल है। वस्तुत ऐसा नहीं है कि भूमि की उर्वरा शक्ति अक्षय नही है। भूमि पर उपज उत्पन्न करने से उसकी उर्वरा शक्ति धीरे २ नष्ट होती जाती है जिसको बनाये रखने के खादों का प्रयोग किया जाता है।

(iii) भूमि की शक्तियाँ मौलिक ही नहीं अर्जित भी होती हैं —लगान भूमि की मौलिक शक्तियो के उपभोग का प्रतिफल है। परन्तु उर्वरा शक्ति जोकि भूमि का एक मौलिक गुण है अर्जित भी किया जा सकता है जैसे खाद इत्यादि देकर।

(iv) बिना लगान भूमि नहीं पाई जाती है .—कुछ अर्थशास्त्रियो का कहना है कि जब जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है और भूमि सीमित रह जाती है तो घटिया से घटिया भूमि से भी लगान लिया जाने लगता है। परन्तु दूसरे मत के अर्थशास्त्री कहते हैं कि यदि सीमान्त भूमि किसी एक देश में नहीं तो दूसरे देश मे अवश्य पाई जायगी।

(v) 'भूमि' की व्याख्या बहुत ही संकुचित अर्थ में की गई है :—रिकार्डो के अनुसार 'भूमि' (Land) से तात्पर्य केवल कृषि योग्य भूमि से है। वह इस सिद्धांत की सबसे बडी आलोचना है। लगान प्रत्येक प्रकार की प्राकृतिक देन पर उदय होता है।

(vi) लगान मूल्य को प्रभावित करता है .—रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि लगान को प्रभावित करता है। परतु आजकल भूमि की बढती हुई माग के कारण, सीमांत भूमियो पर भी लगान ले लिया जाता है जिसको कृषक उपज की लागत मे शामिल करके, उपभोक्ताओ से वसूल कर लेता है।

(vii) यह सिद्धांत पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है :—और चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता असम्भव होती है इसलिये यह सिद्धात भी काल्पनिक

अव्यवहारिक है। वास्तव मे कृपको व जमींदारो मे स्वतंत्र व पूर्ण प्रतियोगिता नही पाई जाती है।

(viii) आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान भूमि की उर्वरता का परिणाम नही बल्कि भूमि की सीमितता का परिणाम है। रिकार्डो का सिद्धांत केवल यह बताता है कि बढिया भूमि का लगान ज्यादा होता है और घटिया का कम। वह यह नही बताता कि लगान क्यो उदय होता है। लगान भूमि की स्वल्पता के कारण उदय होता है।

प्रश्न १४५—रिकार्डो का लगान का सिद्धांत क्या है? यह सिद्धांत भारतीय परिस्थितियों मे कहाँ तक लागू होता है?

(What is the Recardian Theory of Rent? To what extent does it apply to Indian conditions?)

उत्तर —

रिकार्डो के लगान सिद्धात की पूर्ण व्याख्या के लिये प्रश्न १४४ का उत्तर पढिये।

भारतवर्ष और रिकार्डो का लगान सिद्धांत .—

रिकार्डो का लगान का सिद्धात भारतवर्ष मे लागू नही होता। लगान के लिये यह अनिवार्य है कि किसान और भूस्वामियो मे अबाधित प्रतियोगिता होनी चाहिये। परन्तु भारतवर्ष मे ऐसी प्रतियोगिता नही पाई जाती। यहा पर लगान क्रमश रीति रिवाज, प्रतियोगिता और नियमानुसार निश्चित हुये हैं। पहले जब जमीन की माग कम थी और जनसख्या का भार कम था, लगान रीति रिवाजो के अनुसार तय होता था। किसान को अपनी फसल का एक निश्चित भाग जमीदार को लगान के रूप मे देना पडता था। ब्रिटिश शासन काल मे सरकार ने कानून बनाकर भूमि के लगान को निश्चित कर दिया। आजकल लगान प्रतियोगिता से निर्धारित होता है। खेती पर भार पहले ही अधिक है, घरेलू उद्योग धधो की अवनति और जनसख्या मे वृद्धि होने के कारण लोग खेती की ओर झुकते हैं। किसान से चाहे जितना लगान क्यो न लिया जाय वह जमीन छोडने के लिये तैयार नही होंगे। साथ ही कोई दूसरा ऐसा व्यवसाय नही जिसको वे अपना सकें। भूमि के लिये किसानो की प्रतियोगिता के कारण, भूस्वामी ऊचे २ लगान पर जमीन को देता है। इसको अत्यधिक लगान प्रथा (Rack renting) कहते हैं। सक्षिप्त मे हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में किसान और भूस्वामियो मे स्वतन्त्र

प्रतियोगिता नही पाई जाती। भूमि की कमी के कारण, सीमात भूमियो तक से लगान वसूल कर लिया जाता है जिसको लागत मे जोडकर कृषक उपभोक्ताओं से वसूल कर लेता है। अतः भारत मे रिकार्डो का लगान-सिद्धांत लागू नही होता।

प्रश्न १४६—आर्थिक लगान व प्रसविदा लगान में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

या

आर्थिक लगान व ठेका लगान पर एक सक्षिप्त नोट लिखिये ?
(Differentiate between Economic and Contract Rent)

Or

(Write a short note on Economic and Contract Rent.)

उत्तर —

आर्थिक लगान (Economic Rent):—

हम प्रश्न १४३ मे देख चुके हैं कि सब भूमिया समान उर्वराशक्ति वाली नही होती। सीमांत भूमि पर कोई लगान नही होता क्योंकि उसका उत्पादन व्यय उतना ही होता है जितना कि उसकी उपज का बाजार मे मूल्य। इससे पूर्व की अर्ध सीमात भूमियाँ सब अधिक उत्पन्न करती हैं क्योंकि वे उर्वराशक्ति मे सीमांत भूमि से श्रेष्ठ हैं। अत अर्धसीमात भूमियों को सीमात भूमि पर कुछ विशेष लाभ होता है। अतः आर्थिक लगान वह अतिरिक्त उपज (**Surplues product**) या विशेष बचत (**Differential gain**) है जो अधिसीमात भूमियो पर खेती करने से उनकी अपेक्षाकृत अधिक उर्वरता तथा अधिक अनुकूल परिस्थितियो के कारण होती है।

ठेके का लगान :—भूमिपति और कृपक के मध्य आपसी इकरार द्वारा जो लगान तय होता है उसे ठेका लगान, इकरारी लगान या प्रसविदा लगान (**Contract Rent**) कहते हैं। यह लगान भूमि की माग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। यद्यपि यह आर्थिक लगान से भिन्न है, इसका आर्थिक लगान से गहरा सम्बन्ध है। ठेके का लगान आर्थिक लगान के आस पास कभी ऊंचा और कभी नीचा होता रहता है। यदि भूमि की माँग ज्यादा है तो ठेका लगान आर्थिक लगान से अधिक हो सकता है। यदि भूमि की माँग है तो यह आर्थिक लगान से नीचा भी हो सकता है।

आसामियो और जमीदारो मे जितनी अधिक स्वतन्त्र प्रतियोगिता होगी, उतना ही ठेका लगान आर्थिक लगान के निकट होगा। जब ठेके का लगान आर्थिक लगान से बहुत अधिक होता है तो उसे अत्यधिक लगान (Rack Renting) कहते हैं।

आर्थिक लगान	ठेका लगान
१. यह भूमि की उर्वराशक्ति की भिन्नता के कारण उदय होता है।	१. यह भूमि की माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।
२. यह समय २ पर बदलता रहता है।	२. यह एक निश्चित समय के लिये अपरिवर्तित रहता है।
३. यह प्रतियोगिता से प्रभावित होता है।	३. यह रीति-रिवाज व किसान और जमीदारो के आपसी समझौते से प्रभावित होता है।
४. यह उचित लगान है जो आर्थिक शक्तियो के उचित काम करने से निर्धारित होता है।	४. यदि यह आर्थिक लगान से अधिक या कम हो जाय, तो यह अनुचित होता है।
५. यह एक सैद्धांतिक कल्पना है और अप्रत्यक्ष आदर्श है।	५. यह एक व्यवहारिक तथ्य है और प्रत्यक्ष यथार्थ है।

प्रश्न १४७—"अनाज का मूल्य इसीलिये अधिक नहीं होता क्योंकि लगान अधिक है, बल्कि इसलिये अधिक है क्योंकि अनाज का मूल्य अधिक है।" रिकार्डो के इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

या

लगान और मूल्य के पारस्परिक सम्बन्ध को समझाइये।

(' Corn is high not because rent is high but the rent is high because corn is high"—*Explain* this statement of Ricardo.)

Or

(Explain the relationship between Rent and Price.)

उत्तर :—

रिकार्डो के लगान सिद्धात के अनुसार लगान अधिसीमात व सीमात भूमि

की उपज का अन्तर है। सीमांत भूमि वह भूमि होती है जिसका उत्पादन व्यय वही होता है जो कि बाजार में इस खेत पर उत्पन्न की गई फसल को बेचकर प्राप्त होगा। इससे पूर्व के खेतो पर हमको उत्पादन व्यय से अधिक रकम प्राप्त होती है इस अधिक रकम को ही लगान कहते हैं।

रिकार्डो ने अपने मूल्य सिद्धान्त (Theory of Value) मे इस बात को बतलाया है कि **मूल्य उत्पादन व्यय द्वारा निर्धारित होता है** (Value is determind by the cost of Production) अत सीमांत भूमि की लागत ही बाजार मे मूल्य को प्रभावित करेगी। यदि सीमात भूमि पर ४०० रु० की लागत में ४० मन गेहूँ उत्पन्न होता है तो बाजार मे गेहू के दाम १० रु० प्रति मन अवश्य होने चाहिये। सीमान्त भूमि बेलगान भूमि (No rent land) होती है। अत लगान मूल्य को प्रभावित नही करता। क्योंकि यह उत्पादन व्यय मे शामिल नही होता।

इसके विपरीत मूल्य लगान को प्रभावित करते हैं। लागत मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। हम अभी देख चुके हैं कि बाजार में गेहू का वही दाम होना चाहिये जोकि सीमात भूमि पर इसकी लागत है परन्तु यदि गेहूँ के मदा हो जाने के कारण कृषक को अपनी उपज का उतना धन नहीं मिलता जितना उस पर व्यय होता है तो वह उस पर खेती करना छोड देगा और कोई अधि-सीमांत भूमि सीमात भूमि हो जायेगी। प्रश्न १४३ के उदाहरण के अनुसार यदि गेहू के दाम ६ रु० १० आ० ८ पा० प्रति मन हो जायें तो केवल 'स' श्रेणी की भूमि से आगे खेती नही की जायगी क्योंकि इसकी उपज की बाजार मे कीमत (६० × ६⅔) इसके उत्पादन व्यय (४०० रु०) के बराबर है। मूल्यो के गिरने के फलस्वरूप दो प्रभाव हुए —

(i) 'स' भूमि पर लगान समाप्त हो गया।

(ii) 'अ' व 'ब' भूमियो पर लगान पहले की अपेक्षा कम हो गया। अब इन पर क्रमश (४० × ६⅔) = २६७ रु० व (२० × ६⅔) = १३३ रु० लगान होगा जबकि मूल्य कम होने मे पहले इन पर (६० × १०) = ६०० रुपये व (४० × १०) = ४०० रु० लगान था।

इसी प्रकार मान लीजिये कि बाजार में गेहू का दाम बढ जाता है तो अब पांचवी श्रेणी की भूमियो पर खेती करना लाभदायक हो जायगा और जो भूमि अब तक सीमांत भूमि थी अधिसीमात हो जायगी और लगान देने लगेगी और अधिसीमांत भूमिया पहले की अपेक्षा अधिक लगान देने लगेंगी।

अत स्पष्ट है कि लगान मूल्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि स्वय मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। दूसरे शब्दो मे अनाज के दाम लगान द्वारा निर्धारित नही होते बल्कि अनाज के दाम लगान को निर्धारित करते हैं। यदि अनाज के दाम बढ जायें तो लगान भी बढ जाता है और यदि घट जायें तो लगान भी घट जाता है।

उपरोक्त मत के कुछ अपवाद भी हैं। कुछ ऐसी परिस्थितियां भी हैं जबकि लगान वस्तुओ के मूल्य में शामिल हो जाता है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष म किसानो के पास खेती को छोडकर कोई अन्य व्यवसाय करने को नही है। अत उनमे भूमि के लिये कडी स्पर्धा होती है और जमींदार सीमात भूमिया पर भी लगान वसूल कर लेते हैं। इस लगान को वे वस्तुओं की उत्पादन लागत म सम्मिलित करके ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त यदि भूमि पर किसी सघ या कुछ भूस्वामियों का अधिकार हो तो वे किसानों को बहुत अधिक लगान देने को बाध्य कर सकते हैं। जब सीमात भूमि भी इस प्रकार लगान देने लगती है तो वस्तु के मूल्य भी प्रभावित हो जाते हैं।
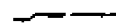
प्रश्न १४८—क्या आर्थिक लगान उत्पन्न होगा यदि—
(अ) खेती पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नहीं हो।
(आ) यदि भू स्वामी स्वय भूमि पर खेती करे।
(इ) यदि अच्छी भूमि के टुकडे सीमित हो तथा
(ई) यदि भूमि का लगान माफ कर दिया जाये।

उत्तर —

रिकार्डो क आर्थिक लगान की व्याख्या से स्पष्ट है कि—

(१) लगान भूमि की उत्पत्ति का एक भाग है

(२) लगान भूमिपतियो को दिया जाता है तथा

(३) लगान भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियो के प्रयोग के बदल म दिया जाता है।

उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर अब हम प्रत्येक के विषय में विचार करेंगे।

(अ) यदि खेती पर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नहीं हो — यदि खेती म क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू नही होता है तब लगान भी उत्पन्न नही होगा। क्योंकि उपज का मूल्य लागत द्वारा निर्धारित होगा

है इस कारण से उत्पत्ति के बढने के साथ मूल्य में भी उसी अनुपात मे कमी हो जायेगी जिससे लगान का प्रश्न ही नही उठता।

(आ) यदि भू-स्वामी स्वयं भूमि पर खेती करे :— यदि भू-स्वामी स्वय भूमि पर खेती करता तो भी आर्थिक लगान पैदा होता है। परन्तु इस दशा मे यह मान लिया जाता है कि सीमात भूमि के अतिरिक्त अन्य भूमियो मे प्राप्त बचत भूस्वामी अपने आप ही को दे देता है। इस प्रकार यहा 'आर्थिक लगान' का विचार अप्रत्यक्ष रूप से सामने आता है।

(इ) यदि अच्छी भूमि के टुकड़े सीमित हों :— यदि अच्छी भूमि के टुकडे सीमित हो तो भी आर्थिक लगान' उत्पन्न होगा क्योंकि इस दशा मे उपज की मांग बढने पर तमाम भूमि पर श्रम और पूजी की अधिक से अधिक इकाइयो का प्रयोग होने लगेगा और ह्रास नियम के लागू होने के कारण अधिसीमात श्रम और पूंजी की इकाइयो तथा सीमात श्रम और पूंजी की इकाई के उत्पादन के अन्तर के समान लगान उत्पन्न होगा।

(ई) यदि भूमि का लगान माफ कर दिया जावे — यदि भूमि का लगान माफ कर दिया जाये तो भी लगान उत्पन्न होगा। लेकिन इस दशा मे यह मान लिया जायेगा कि लगान भूस्वामी को न देकर किसान स्वय अपने पास रख लेता है।

अध्याय ६४

भूमि अधिकार प्रणाली व जमींदारी उन्मूलन

प्रश्न १४६—भूमि अधिकार प्रणाली (Land Tenure system) से आप क्या समझते हैं? भारत मे भूमि अधिकार की कौन-कौन सी प्रमुख प्रणालियां हैं?

(What is meant by 'Land Tenure system'? What are the main types of land tenure systems prevalent in India?)

उत्तर :—

भूमि अधिकारी प्रणाली से तात्पर्य उन दशाओं तथा शर्तों से है जिनके अनुसार खेती करने वाले काश्तकार जोतने-बोने के लिये भूमि प्राप्त करते है। इससे हमको बोध होता है कि भूमि मे किसका स्वामित्व है, कृषक भूमि को

किन किन शर्तों पर प्राप्त करता है, भूमि की उत्पत्ति का बटवारा किन किन सिद्धातो के आधार पर होता है और राज्य का भूमि से सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यक्तियो से क्या और कैसा सम्बन्ध है।

एक आदर्श भू अधिकार प्रणाली के तीन गुण होते हैं —

(i) **स्वत्व की सुरक्षा (Fixity of Tenure)** :—जिस भूमि को किसान जोत बो रहा है उस पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिये, उसको पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि उस भूमि से उसको कोई बाहर नही निकालेगा अगर ऐसा विश्वास नहीं होगा तो किसान कभी भी भूमि को अच्छी प्रकार से जोते बोयेगा नही। फलत कृषि उपज कम होती है।

(ii) **उचित लगान (Fair Rent)** —यह भी आवश्यक है कि काश्तकार से उचित लगान लिया जाय। यदि काश्तकार से लगान अधिक लिया जायेगा तो उसके पास कम धन शेष रहेगा फलस्वरूप न तो वह अपने और अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकेगा और न खेती का विकास ही कर सकेगा।

(iii) **हस्तातरण की स्वतन्त्रता (Freedom of Transfer)** — यदि काश्तकार को यह स्वतन्त्रता होगी तो वह आवश्यकता के समय अपनी भूमि को बधक रख कर ऋण प्राप्त कर सकेगा। इस ऋण के द्वारा वह भूमि पर हर प्रकार की उन्नति कर सकता है। यदि कृषक को यह अधिकार नहीं होगा तो उसकी साख (Credit) कम हो जायगी।

भारत मे भू अधिकार प्रणालिया (Land Tenure systems in India) :—

भारत म निम्न तीन प्रकार की भू अधिकार प्रणालिया पाई जाती हैं।

(१) **रैयतवारी प्रथा (Ryotwari system)** — इस प्रथा के अन्तर्गत कृषक का सरकार से सीधा सम्बन्ध होता है, वह स्वय अपनी मालगुजारी सरकारी खजाने मे जमा करता है इनके और सरकार के बीच मे कोई मध्यस्थ नही होता। मालगुजारी भूमि के प्रत्येक टुकडे पर पूरी नाप तोल के पश्चात निश्चित की जाती है।

(२) **महालवारी प्रथा (Mahalwari system)** —इसके अन्तर्गत मालगुजारी निश्चित करने के लिये बदोबस्त की इकाई एक महाल होती है। मालगुजारी का उत्तरदायित्व अलग अलग व्यक्तियो पर नही बल्कि ग्राम समाज के सभी व्यक्तियो पर सामूहिक रूप से होता है, परन्तु प्रत्येक गाव का

लम्बरदार समस्त कृषको से मालगुजारी वसूल करके, सरकारी खजाने मे जमा कर देता है। लम्बरदार की नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती है। यह प्रथा जमीदारी प्रथा के समान ही है अन्तर केवल इतना है कि जमीदारी प्रदेशो मे केवल एक आदमी सरकारी मालगुजारी देने का जिम्मेवार होता है परन्तु महालवारी प्रथा मे कई व्यक्तियो के ऊपर यह जिम्मेवारी होती है।

(३) **जमींदारी प्रथा** :—इस प्रथा के अन्तर्गत मालगुजारी पूरी जायदाद पर निश्चित की जाती है। किसान और सरकार के बीच मे एक मध्यस्थ होता है जिसको जमीदारी कहते हैं। यह जमीदार जमीन का मालिक होता है। वह स्वयं खेती नही करता वरन् अपनी भूमि को किसानो को उठा देता है। ये किसान जमीदार को लगान देते हैं। लगान वसूल करके जमीदार सरकारी खजाने मे उसका कुछ भाग मालगुजारी के रूप मे जमा करता है। लगान न मिलने पर, जमीदार काश्तकार को भूमि से बेदखल कर सकता है। मालगुजारी अस्थायी रूप से या स्थायी रूप से तय की जाती है।

प्रश्न १५०—उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन के पश्चात भू अधिकार प्रणाली का क्या रूप हुआ? या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन व भूमि सुधार अधिनियम की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?

(What is the form of Land tenure system after the abolition of the Zamindari system in Uttar Pradesh? OR. Give the salient features of the U. P Zamindari Abolition and land Reforms Act.)

उत्तर—

उत्तर प्रदेशीय जमीदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार अधिनियम (**U. P. Zamindari Abolition and Land Reforms Act), 1950** के अनुसार १ जौलाई १९५२ से उत्तर प्रदेश मे प्राचीन महालवारी तथा जमीदारी प्रथा एक असाधारण गजट समाप्त घोषित करदी गई। इस एक्ट के दो भाग हैं। प्रथम मे जमीदारी प्रथा को समाप्त करने व उनको क्षतिपूर्ति व पुनर्वास प्रदान करने आदि का वर्णन है। द्वितीय भाग मे भू-अधिकार की नई पद्धतियो का वर्णन है।

इस अधिनियम के अनुसार उत्तर प्रदेश के कृषको को चार भागो मे बाटा गया है :—

(१) भूमिधर (Bhoomidar)
(२) सीरदार (Sirdar)
(३) आसामी (Assami)
(४) आदिवासी (Adivasi)

प्रथम दो प्रकार के काश्तकार बड़े २ काश्तकार और बाद के दो काश्तकार छोटे २ काश्तकार हैं।

(१) **भूमिधर**—वे किसान हैं जिनको भूमि पर स्थायी, पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले हस्तांतरणीय अधिकार प्राप्त हैं। वे अपनी जमीन को बच सकते हैं। उस पर मकान बना सकते हैं, बाग लगा सकते हैं आदि। वे भूमि को किसी भी प्रयोग मे ला सकते हैं। जमींदारो के पास जो सीर, खुदकाश्त और बाग थे, वे उनके भूमिधर बन गये। जिन किसानो न अपने लगान का दस गुना सरकारी खजाने म जमा कर दिया, उनको भी भूमिधर के अधिकार मिल गये। इसके अतिरिक्त कानून मे इस बात की भी व्यवस्था है कि कोइ भी सीरदार अपने लगान का दस गुना (१० गुना) सरकारी खजाने मे जमा कर देता है तो उसे भूमिधर के अधिकार दे दिये जायँगे परन्तु आदिवासी को भूमिधर के अधिकार तभी प्राप्त होंग जबकि वह पाँच वष के भीतर लगान का पन्द्रह गुना अदा कर देंगे।

(२) **सीरदार**—इनको अपनी भूमि पर स्थायी पीढी दर पीढी चलने वाले अधिकार प्राप्त हैं परन्तु वे अपनी जमीन का हस्तातरण नही कर सकते। ये किसान अपनी इच्छानुसार भूमि का प्रयोग नही कर सकते। ये भूमि को केवल खेती, बागवानी व पशुपालन के लिय ही प्रयोग कर सकते हैं।

(३) **आसामी**—जो व्यक्ति पहले बाग का शिकमी काश्तकार या पशुचर, सिघाडा या अन्य ऐसी ही भूमि का काश्तकार था वह आसामी के नाम से पुकारा जाने लगा। आसामी को अपनी भूमि पर स्थायी दर पीढी दर पीढी चलने वाले अधिकार प्राप्त होते हैं। वे किसान जिनको भूमिधर या सीरदार किसानो ने अपनी भूमि लगान पर उठादी है, अथवा जो किसी रहन भूमि पर खेती करते हो, आसामी कहे जाते हैं।

(४) **आदिवासी**—जो किसान इस एक्ट के लागू होने से पहले शिकमी काश्तकार थे, वे अब आदिवासी कहलाते हैं। इनको अधिकार है कि ये पाच वर्ष के भीतर लगान का १५ गुना जमा करके भूमिधर के अधिकार प्राप्त करलें वरना उनकी भूमि वापिस ले ली जावेगी।

यू० पी० जमींदारी उन्मूलन व भूमि सुधार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य

यह है कि भूमि उसी के अधिकार मे रहे जो उसे जोतना चाहता है। कोई भी व्यक्ति अपनी भूमि को किसी दूसरे व्यक्ति को अधिक लगान पर नही उठा सकता परन्तु भूमिधर अथवा सीरदार निम्न परिस्थितियो मे अपनी भूमि को लगान पर उठा सकता है :—

(१) अविवाहित लडकी या विधवा औरत है
(२) नाबालिग है
(३) पागल है
(४) अधा या अपाहिज है
(५) २५ वर्ष की आयु से कम है और किसी मान्यता प्राप्त स्कूल मे शिक्षा प्राप्त कर रहा है
(६) फौज मे नौकर है
(७) जेल मे बदी है।

उपरोक्त परिस्थितियो के अतिरिक्त यदि कोई भूमिधर अथवा सीरदार अपनी भूमि किसी दूसरे को देता है तो उसके समस्त अधिकार समाप्त हो जाते हैं।

यद्यपि भूमिधर को अपनी भूमि हस्तातरित करने का अधिकार है परन्तु वह अपनी भूमि को ऐसे आदमी को बेचे, दान अथवा वसीयत न कर सकेगा जिसके पास पहिले ही ३० एकड भूमि है अथवा वह जमीन पाकर ३० एकड से अधिक हो जावेगी। यह व्यवस्था इस उद्देश्य से की गई है जिससे किसी किसान के पास ३० एकड से अधिक भूमि न हो जावे। इसी प्रकार ६¼ एकड से कम भूमि न होने देने के लिये अधिनियम की यह व्यवस्था है कि यदि भूमि के बटवारे के कारण भूमि का क्षेत्रफल ६¼ एकड से कम होता है तो अदालत उसका बटवारा नही करेगी बल्कि उस भूमि को बेच कर, प्राप्त धन का बटवारा किया जायेगा।

खेत तथा बाग की भूमि को छोडकर, अन्य भूमि, बाग तथा खेतो के पेड छोडकर, अन्य पेड, कुए, मछली पकडने के स्थान, हाट-बाजार आदि के स्थानो पर ग्राम सभा का अधिकार रहेगा। भूमिधर और सीरदार की मालगुजारी तो सरकार निश्चित करती है परन्तु आसामी को वही लगान देना पडता जो उसके और भूमि स्वामी के बीच अथवा ग्राम-सभा के बीच तय होता है और यदि वह निश्चित दिन से तीन महीने के अन्दर लगान नही चुकाता तो उसे बेदखल किया जा सकता है।

सहकारी कृषि :—

अधिनियम के द्वारा सहकारी कृषि के प्रचार की व्यवस्था भी की गई है

सहकारी फार्म दो प्रकार से कायम किये जावेंगे (१) जब १० या १० से अधिक व्यक्ति जिनकी सम्मिलित भूमि ३० एकड या इससे अधिक हो, मिलकर कृषि करने की इच्छा प्रकट करें तो राज्य उनको अनेको सुविधायें प्रदान करेगा। (२) जब छोटे २ कम से कम २/३ किसान जो कम से कम कुल भूमि के २/३ के मालिक हैं, कलक्टर के यहा मिलकर कृषि करने का आवेदन पत्र दे तो बचे हुये १/३ किसानो को इसके लिये राजी होना पडेगा और सहकारी फार्म बना दिया जावेगा।

यू० पी० जमींदारी उन्मूलन व भूमि सुधार अधिनियम की यही प्रमुख विशेषतायें हैं।

अध्याय ६५

मजदूरी

प्रश्न १५१—मजदूरी की परिभाषा कीजियेगा। नकद और असल मजदूरी मे अन्तर स्पष्ट कीजिये। असली मजदूरी पर किन २ तथ्यों का प्रभाव पडता है ?

(Define wages Distinguish between money and Real Wages. Enumerate the factors that affect the real wages of a worker ?)

उत्तर—

मजदूरी की परिभाषा :—साधारण बोलचाल मे मजदूरी का अर्थ श्रमिक के श्रम के बदले जो प्रतिफल दिया जाता है उसे मजदूरी कहते हैं। इसी मत का समर्थन करते हुए प्रो० जीड ने कहा है कि **"मजदूर को अपने श्रम के बदले में जो कुछ भी पुरस्कार मिलता है, वह मजदूरी कहलाती है।"** उदाहरण के लिए जब स्वामी किसी श्रमिक को अपने यहाँ उत्पादन कार्य के लिए रखता है और बदले मे उसे कुछ पुरस्कार देता है उसी को हम अर्थ-शास्त्र में उस श्रमिक की मजदूरी कहते हैं। प्रो० बेनहम ने मजदूरी की परिभाषा इस प्रकार से दी है कि **"मजदूरी वह मुद्रा के रूप मे भुगतान है जिसको समझौते के अनुसार एक स्वामी अपने सेवक को उसकी सेवाओ के बदले में देता है।"**

जब श्रमिक को अपने श्रम का प्रतिफल रोजाना प्राप्त हो जाता है तब इसे मजदूरी कहते हैं और यदि यही प्रतिफल मासिक या वार्षिक समय के आधार पर मिलता है तो उसे 'वेतन' कहते हैं।

नकद मजदूरी (Money Wages) :—

वह द्रव्य जो किसी मज़दूर को उसके परिश्रम के बदले में दिया जाता है, नकद या द्राव्यिक मजदूरी (Money or Nominal Wages) कहलाता है। यदि रामप्रसाद को पन्नी जी शुगर मिल, बुलन्दशहर मे काम करने के १००) रु० प्रति मास मिलते है तो उसकी नकद मजदूरी १००) रु० कहलायेगी। आजकल मजदूरो को उनके श्रम का प्रतिफल द्रव्य म ही दिया जाता है। वैसे सामान अथवा वस्तुओ के रूप मे मजदूरी देना भी कुछ सीमा तक प्रचलित है। भारतीय गांवो मे काम करने वालो को बदले मे किसान अन्न दे दिया करते हैं।

असल अथवा वास्तविक मजदूरी (Real Wages) :—

श्रमिक को द्रव्य का कोई विशेष महत्व नही होता उसके लिये असली महत्व आवश्यकता, आराम और विलासिता के उन पदार्थों का होता है जो कि वह नकद मजदूरी के द्वारा खरीद सकता है। इसके अतिरिक्त मजदूर व्यवसाय विशेष की सुविधाओं तथा रियायतो को भी महत्व देता है जो उसको मजदूरी के अलावा प्राप्त होती हैं। **नकद मजदूरी के द्वारा खरीदी जा सकने वाली आवश्यकता, आराम तथा विलासिता की वस्तुओं तथा मजदूर को मिलने वाली अन्य रियायतें, सुविधायें और लाभ व उन्नति के अवसरों का सामूहिक योग, असली या वास्तविक मजदूरी कहलाता है।** कपडा मिल मे काम करने वाले मजदूर को नकद मजदूरी के अतिरिक्त सस्ते दर पर कपडा मिलता है, रहने को मकान, मुफ्त पानी व बिजली की सुविधाये भी दी जाती है। अत ये सब सुविधायें व लाभ और नकद मजदूरी के बदले मे खरीदी जा सकने वाली आवश्यकता आराम तथा विलासिता की वस्तुयें उसकी असल मजदूरी कही जायेंगी।

मजदूर नकद मजदूरी की इतनी परवाह नही करता जितनी कि वह असल मजदूरी की क्योंकि उसका रहन-सहन का स्तर उसकी निपुणता उसकी असल मजदूरी पर निर्भर करते हैं।

असल मजदूरी को प्रभावित करने वाले तत्व :—

वास्तविक अथवा असल मजदूरी निम्न तथ्यों से प्रभावित होती है :—

(१) द्रव्य की क्रय-शक्ति (Purchasing Powers of Money) —

> **असल मजदूरी को प्रभावित करने वाले तत्व —**
>
> १ द्रव्य की क्रय शक्ति।
> २ सहायक आय।
> ३. अन्य सुविधाएं।
> ४ आश्रितो को काम।
> ५ कार्य का स्वभाव।
> ६. काम करने का समय।
> ७ व्यापारिक व्यय।
> ८ उन्नति की आशा।
> ९ कार्य सीखने का समय।
> १० कार्य का स्थायी या अस्थायी होना।
> ११ सामाजिक प्रतिष्ठा।

जिस स्थान पर मुद्रा की क्रय शक्ति अधिक होती है वहां द्रव्य के बदले अधिक वस्तुयें व सेवायें खरीदी जा सकती हैं अत उस स्थान की अपेक्षा जहा द्रव्य की क्रय-शक्ति कम है, अधिक क्रय शक्ति वाले स्थान पर, असल मजदूरी ज्यादा होगी। यही कारण है कि एक मजदूर को जो १००) रु० महीने की नौकरी खुरजा मे करता है एक दूसरे मजदूर की अपेक्षा जो १००) रु० महीने की नौकरी बम्बई मे करता है, असल मजदूरी ज्यादा है क्योंकि बम्बई मे खुरजा की अपेक्षा चीजें बड़ी महगी हैं। द्रव्य की क्रय शक्ति बम्बई की अपेक्षा खुरजा मे ज्यादा है।

(२) सहायक आय (Supplementary Earnings) —जिन व्यवसायो मे मजदूर को कार्य करने के अतिरिक्त और अन्य किसी तरीके से अपनी आमदनी बढाने की सुविधा है, उन व्यवसायो मे मजदूर की असल मजदूरी अधिक होगी जैसे बैंक का क्लर्क बीमा आदि का काम कर सकता है, एक अध्यापक पुस्तकें लिख सकता है ट्यूशन कर सकता है आदि।

(३) अन्य सुविधायें (Other Advantages) नकद मजदूरी के अतिरिक्त मजदूर को व्यवसाय की ओर से बहुत सी रियायतें व सुविधायें भी प्राप्त होती हैं। जैसे रेलवे अपने कर्मचारियो को नि शुल्क मकान, आने जाने के लिये फ्री पास आदि देती है, कारखानेदार अपने मजदूरो के लिये सस्ती वस्तुयें, मुफ्त रोशनी व पानी की सुविधाय, बच्चो के लिये नि शुल्क शिक्षा व मजदूरो के लिये अस्पताल का प्रबन्ध कर देते हैं। जिन व्यवसायो में य अन्य लाभ अधिक होते हैं वहा असल मजदूरी अधिक होती है।

(४) आश्रितों को काम (*Work for the Dependents*) :—जिन स्थानो पर मजदूरों की स्त्रियां तथा बच्चे व अन्य पारिवारिक सदस्य काम पर लग सकते हैं, वहां असल मजदूरी अधिक होती है। ऐसे स्थानो पर श्रमिक

स्वयं भी कम नक्द मजदूरी पर कार्य करने को तैयार हो जायगा। यही कारण है कि खानों मे काम करने वाले श्रमिकों की अपेक्षा, कानपुर की मिलों मे काम करने वाले मजदूरो की असल मजदूरी ज्यादा होती है क्योंकि खानो के मजदूर अपनी स्त्रियो तथा बच्चो को काम नही दिला सकते।

(५) **कार्य का स्वभाव (Nature of the Work)** —कुछ कार्य जो बडे जोखिम पूर्ण होते हैं जैसे वायुयान चलाना, सैनिक का कार्य आदि, कुछ काम बडे थकाने वाले व बडे कठिन होते हैं, जैसे लोहार का काम और कुछ कार्य ऐसे होते हैं जहा श्रमिक का जीवन काल छोटा होता जाता है जैसे तेजाब बनाने का कार्य। इसके विपरीत कुछ कार्य बडे सरल, जोखिम रहित और रुचिकर होते हैं जैसे डाक्टर, वकील, प्रोफेसर आदि का कार्य। प्रथम प्रकार के व्यवसायो मे असल मजदूरी कम होती है और वहाँ मनुष्य तभी काम करना पसन्द करते है जब वहाँ उनको नक्द मजदूरी अधिक मिले।

(६) **काम करने का समय (Period of Work)** —जिन व्यवसायों म अधिक समय काम करना पडता है वहा उन व्यवसायो की अपेक्षा जहा कम समय काम करना पडता है, वास्तविक मजदूरी कम होती है। एक यूनीवर्सिटी का प्रोफेसर प्रतिदिन दो तीन घटे पढाता है और वर्ष मे कई माह की छुट्टियाँ प्राप्त करता है, उसकी वास्तविक मजदूरी उस बैंक मैनेजर से अधिक है जो समान आय पाता है किन्तु प्रतिदिन ८ घटे काम करता है और कुछ थोडी सी ही छुट्टियाँ प्राप्त करता है।

(७) **व्यापारिक व्यय (Trade Expenses)** —कुछ व्यवसायो म योग्यतापूर्वक काम करते रहने के लिये, मनुष्य को कुछ व्यय करना पडता है जैसे कालिज के प्रोफेसर को किताबो व पत्रिकाओ के खरीदने पर व्यय करना पडता है, एक वकील को किताबों व पत्र-पत्रिकाओ के अतिरिक्त एक मुन्शी भी रखना पडता है। इन व्यवसायो मे असल मजदूरी कम होती है। जिन व्यवसायो मे ऐसा व्यय नहीं करना पडता है वहा असल मजदूरी अधिक होती है।

(८) **उन्नति की आशा (Hope of Progress)** :—जिस व्यवसाय में पद वृद्धि की सभावना होती है उसकी असल मजदूरी अधिक होती है। अत मजदूर उन व्यवसायो मे अधिक काम करना पसन्द करेगा जहा उन्नति की आशा है चाहे उसमे प्रारम्भिक नक्द मजदूरी भले ही कम क्यों न हो।

(९) **काम सीखने का समय व व्यय (Period and Expenditure of training)** :—कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमे थोडे ही समय व

लागत से काम सीखा जा सकता है जैसे टाइप करना, मोटर चलाना। किन्तु कुछ पेशो को सीखने के लिये काफी समय व धन व्यय करना पडता है जैसे डाक्टरी, इन्जीनियरी व प्रोफेसरी का काम। द्वितीय प्रकार के व्यवसायो मे जिनमे काम सीखने के लिये काफी समय व धन चाहिये, उनमे बहुत ऊची नकद मजदूरी पर भी असल मजदूरी कम होती है।

(१०) काम का स्थायी या अस्थायी होना (Permanent or Temporary Work) —जिन व्यवसायो मे मजदूर को स्थायी कार्य मिल जाता है, उनमे असल मजदूरी अधिक होती है। अस्थायी कार्य के लिये मजदूर ऊची द्राव्यिक आय मागते हैं क्योंकि इनकी असल मजदूरी कम होती है। यही कारण है कि १००) रु० मासिक अस्थाई काम की अपेक्षा मजदूर लोग ७०) रु० मासिक स्थाई काम अधिक पसन्द करते हैं। यही कारण है कि विवाह के अवसर पर बाजे वाले थोडी ही देर के काम के लिये सैकडो रुपये ले लेते हैं।

(११) सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) —जिस काम को करने मे सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान व आदर अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होता है, उसमे असल मजदूरी भी अधिक मानी जाती है। ऐसे कार्यों के लिये मजदूर थोडी मजदूरी भी स्वीकार कर लेता है।

प्रश्न १५२—मजदूरी किसे कहते हैं? मजदूरी किस प्रकार निर्धारित की जाती है?

(Define Wages? How are Wages determined?)

उत्तर —

मजदूरी का अर्थ—

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो उत्पत्ति के साधन के रूप में श्रम को प्राप्त होता है, मजदूरी कहलाता है। या दूसरे शब्दों मे **जो पुरस्कार उत्पादन कार्य मे लगे हुये मजदूर को अपने श्रम व सेवाओ के लिये दिया जाता है मजदूरी कहलाता है।** मजदूरी एक प्रकार का मूल्य है जो उत्पादनकर्ता द्वारा मजदूर के श्रम को खरीदने के लिये दिया जाता है।

व्यवहारिक जगत मे मजदूरी को विभिन्न नामो जैसे मजदूरी (Wages) तनख्वाह (Pay) वेतन (Salaray) कमीशन (Commission) फीस (Fees) आदि से पुकारा जाता है। सिद्धांत: इनमे कोई अन्तर नही है। ये सब मजदूरी

के ही विभिन्न स्वरूप हैं क्योंकि ये सब ही श्रम के पुरस्कार है। उपरोक्त नामो का अन्तर मजदूरी को देने के समय मानसिक व शारीरिक श्रम के पारितोषिक के आधार पर किया गया है।

मजदूरी का निर्धारण (Determination of Wages) —

समय २ पर मजदूरी के निर्धारण हेतु अर्थशास्त्रियो ने अनेको सिद्धांतो का प्रतिपादन किया है। आधुनिक दृष्टिकोण मे वे सभी एकांगी व अपूर्ण सिद्ध हो चुके हैं। मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धात 'माँग व पूर्ति सिद्धा त' है। आधुनिक अर्थशास्त्री श्रम को एक वस्तु मानते ह। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य माँग और पूर्ति के नियम के अनुसार तय होता है, उसी प्रकार श्रम का प्रतिफल अर्थात मजदूरी भी इसी नियम के अनुसार तय होती है। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य इसकी उन दो सीमाओ के बीच म तय होता है जो इसकी सीमात उपयोगिता (Marginal Utility) और सीमात लागत (Marginal Cost) से निर्धारित होती है उसी प्रकार श्रम की मजदूरी उन दो सीमाओ के बीच मे तय होती है जो श्रम की सीमात उत्पादकता (Marginal Productivity) और श्रम के जीवन स्तर (Standard of living) से निर्धारित होती है। सीमांत उत्पादकता मजदूरी की उच्चतम सीमा है और जीवन स्तर की लागत इसकी निम्नतम सीमा है।

श्रम की माँग :—मजदूरो की माग उत्पादनकर्ताओ द्वारा की जाती है क्योकि वस्तु उत्पादन के लिये श्रम आवश्यक है। वह श्रमिको को केवल उतनी ही मजदूरी दे सकता है जितनी कि उसकी उत्पादकता है अर्थात उसका उत्पादन मे योग है। इससे अधिक मजदूरी कभी भी नही दी जा सकती क्योकि ऐसा करने मे उसको हानि होगी। सब श्रमिको की उत्पत्ति समान नही होती और जैसे २ श्रमिकों की अधिकाधिक इकाईयो का उपयोग बढता जाता है, अतिम श्रमिक की उत्पत्ति कम होती जाती है। मिल मालिक श्रमिको की सख्या को तब तक बढाता जाता है जब तक कि सीमांत श्रमिक की उत्पादकता प्रचलित मजदूरी के बराबर न हो जाय। इसके बाद कोई श्रमिक काम पर नहीं रखा जाता। अगर वह फिर भी एक और मजदूर को रखता है तो उसकी उत्पत्ति पूर्व की अपेक्षा कम होगी और उसको हानि होगी। क्योकि सब श्रमिक समान होते हैं इसलिये प्रत्येक श्रमिक को सीमात या अन्तिम श्रमिक की उत्पादकता के बराबर ही मजदूरी मिलेगी। अत **श्रमिक की सीमांत उत्पादकता द्वारा श्रम की मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित होती है।**

श्रम की पूर्ति —श्रमिक की पूर्ति श्रमिकों द्वारा की जाती है। श्रमिको को भी अपने श्रम को बनाये रखने के लिये कुछ व्यय करना पड़ता है। श्रमिक के ऊपर उसको और उसके परिवार के भरण पोषण का भार होता है। अत वह कम से कम इतनी मजदूरी अवश्य लेना चाहेगा जिससे कि अपने परिवार का व अपना भरण पोषण कर सके। दूसरे शब्दो मे वह कम से कम इतनी मजदूरी चाहेगा जिससे उसका जीवन स्तर बना रह सके। मजदूरों म जिस मजदूर का भरण पोषण का व्यय सबसे अधिक होता है वह सीमांत श्रमिक कहलाता है। **सीमांत श्रमिक के पोषण व्यय से मजदूरी की न्यूनतम सीमा निर्धारित होती है।** इससे कम मजदूरी कोई भी श्रमिक स्वीकार नहीं करेगा।

श्रमिक की मजदूरी उपरोक्त अधिकतम व न्यूनतम सीमाओं के बीच दोनो पक्षों की सापेक्षिक शक्तियो के सतुलन से निर्धारित होगी। यह दोनो पक्षो की पारस्परिक मोल भाव करने की शक्ति पर निर्भर करता है कि क्या मजदूरी न्यूनतम सीमा के निकट होगी या अधिकतम सीमा के निकट? यदि उत्पादको की सौदा करने की शक्ति सबल है तो व कम मजदूरी देने म सफल हो जायेंगे और मजदूरी कहीं न्यूनतम सीमा के निकट होगी। और यदि मजदूरो म सौदा करने की शक्ति अधिक है तो मजदूरी की प्रवृति उच्चतम सीमा के निकट होने की होगी। परन्तु हम देख चुके हैं कि श्रमिको की मोल-भाव करने की शक्ति उत्पादनकर्ताओ की अपेक्षा बहुत ही कम होती है अत अधिकाश मजदूरी न्यूनतम सीमा के निकट ही कही तय हो जाती है।

प्रश्न १५३—"अधिक मजदूरी कम मजदूरी होती है और कम मजदूरी अधिक मजदूरी होती है' इन विरोधी बातो का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

(' High wages are low wages and low wages are high wages" Explain clearly the meaning of these two opposite views)

उत्तर —

यह कथन कि अधिक मजदूरी कम मजदूरी होती है और कम मजदूरी अधिक मजदूरी होती है' बडा ही आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव मे यह पूर्ण रूपेण सही है। इस कथन के अर्थ को समझने से पूर्व यह जान लेना चाहिये कि **श्रमिक की मजदूरी, उसके रहन सहन के स्तर**

व उसकी कार्य क्षमता मे बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जब किसी व्यवसाय मे मजदूरो को अधिक मजदूरी दी जाती है तो वे अपनी आवश्यकताओ की अधिक अच्छी तरह पूर्ति करने लगते हैं। उन्हे खाने—पीने, पहिनने, रहने तथा स्वास्थ्य व शिक्षा के अच्छे साधन प्राप्त होने लगते हैं। श्रमिको का जीवन-स्तर बढ जाता है और उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का विकास होता है। मजदूर अधिक प्रसन्न व सतुष्ट रहते हैं। कार्य-क्षमता में वृद्धि हो जाने के कारण मजदूरो की उत्पादन शक्ति बढ जाती है। जिन व्यवसायो मे अधिक मजदूरी दी जाती है वहाँ उत्पत्ति मे मजदूरी की अपेक्षा अधिक वृद्धि हो जाती है। अत महगी मजदूरी अन्त मे सस्ती मजदूरी सिद्ध होती है।

इसके विपरीत जिन व्यवसायो मे श्रमिकों को कम मजदूरी दी जाती है उनमे श्रमिक असतुष्ट रहते हैं। वे अपनी आवश्यकताओ को ठीक प्रकार सतुष्ट नही कर पाते, उनका खान-पान, पहिनाव और शिक्षा दीक्षा सभी पहले की अपेक्षा गिर जाते है। उनकी शारीरिक व मानसिक कार्य-शक्ति का ह्रास हो जाता है। फलत उनकी कार्यक्षमता गिर जाने के कारण, मजदूरो का उत्पादन गिर जाता है। यह देखा गया है कि जिन व्यवसायो मे मजदूरी मे जितनी कमी की जाती है उनमे उत्पत्ति मजदूरी की अपेक्षा अधिक कम हो जाती है। अतः सस्ती मजदूरी महगी पडती है।

उपरोक्त से यह सिद्ध है कि यदि किसी मजदूर को कम मजदूरी दी जाय तो उसका उत्पादन गिर जाता है और अन्त मे वह महगा मजदूर साबित होता है और यदि मजदूरी बढा दी जाय तो वह अधिक उत्पादन करके सस्ता मजदूर साबित होता है। इसी कथन के आधार पर आधुनिक युग म प्रगतिशील व्यवस्थापक अपने मजदूरो को काफी वेतन देते है। यह बात सही है कि उत्पादन मे वृद्धि शीघ्र (Immediate) ही नही होती क्योकि जीवन स्तर के बढने और कार्य-शक्ति मे विकास के समय लगता है किन्तु अन्तत मजदूरी मे वृद्धि होता है और ह्रास का प्रभाव उत्पादन मे कम ही होता है। इसीलिये कहा जाता है कि 'अधिक मजदूरी कम मजदूरी होती है और कम मजदूरी अधिक मजदूरी होती है।

प्रश्न १५४—विविध व्यवसायों मे मजदूरी की भिन्नता के क्या कारण हैं। स्पष्ट रूप से समझाइये।

(Explain clearly the causes of the Variation of wages in different occupations.)

उत्तर—

व्यवहार मे हम देखते हैं कि विभिन्न व्यवसायो म विभिन्न मजदूरी दी जाती हैं, इस प्रकार की मजदूरी मे विभिन्नता के मुख्य कारण निम्न-लिखित है —

(१) कार्य का स्थायी होना—जिस व्यवसाय मे कार्य वर्ष भर चलता रहता है वहा उन व्यवसायो की तुलना मे जहाँ कार्य रुक २ कर चलता है मजदूरी कम होती है क्यो कि अस्थायी व्यवसाय मे लगे व्यक्ति बेकार समय मे अपना पालनपोषण इस अधिक मजदूरी से कर सकते हैं। यही कारण है कि कपडे के कारखाने के श्रमिक को चीनी के कारखानो के श्रमिक से कम मजदूरी मिलती है।

मजदूरी की विभिन्नता के कारण —

१ कार्य का स्थायी होना।
२ कार्य सीखने का व्यय।
३ कुशलता, योग्यता एव गतिशीलता।
४. व्यवसाय मे सफलता की आशा।
५. कार्य का स्वभाव।
६. कार्य का उत्तरदायित्व।
७. अन्य लाभ की प्राप्ति।

(२) कार्य सीखने का व्यय—जिस कार्य मे साधारण या शिल्प शिक्षा प्राप्त श्रमिको की आवश्यकता होती है वहाँ मजदूरी उन श्रमिको की तुलना मे जो शिक्षित नही हैं अधिक होती है, यदि ऐसा न हो तो कोई भी व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न ही नही करेगा। इसलिये कुशल श्रमिक की मजदूरी अकुशल श्रमिक से अधिक होती है।

(३) कुशलता, योग्यता एवं गतिशीलता:—श्रमिकों की कुशलता मे भिन्नता के कारण भी मजदूरी मे भिन्नता हो सकती है। क्योकि न एक कुशल श्रमिक कम कुशल श्रमिक से अधिक कमा सकता है, साथ ही श्रमिक की गतिशीलता का भी उसकी मजदूरी पर प्रभाव पडता है यदि एक श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को अधिक मजदूरी पर जाने को तैयार है तो उसकी मजदूरी दूसरे श्रमिक की तुलना मे जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिये तैयार नही है अधिक होगी।

(४) व्यवसाय मे सफलता की आशा —कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमे श्रमिको को भविष्य मे सफलता की बहुत आशा होती है परन्तु ऐसे व्यवसायो मे प्रारम्भ में कम और बाद में अधिक मजदूरी मिलती है। इसके विपरीत कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमे जोखिम की आवश्यकता होती है। ऐसे व्यवसायों मे प्रारम्भ मे अधिक मजदूरी मिल जाती है।

(५) **कार्य का स्वभाव:**—कार्य विभिन्न स्वभाव के हुआ करते है। कुछ कार्यों मे अधिक परिश्रम करना पडता है तो कुछ मे कम, कुछ कार्यों मे अवकाश अधिक मिलता है तो कुछ मे कम कुछ कार्यों मे जान का खतरा रहता है तो कुछ कार्यों मे जान की सुरक्षा तथा कुछ कार्यों के करने से सामाजिक सम्मान बढता है आदि। इस प्रकार जिन कार्यो मे जोखिम कम होता है, कार्य रुचिकर होता है, अवकाश अधिक मिलता है उनमें वेतन कम होता है इसी कारण से अध्यापक का वेतन कम है।

(६) **कार्य का उत्तरदायित्व:**—कार्य के उत्तरदायित्व मे भिन्नता के कारण भी श्रमिको के वेतन मे अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिये एक कारखाने मैनेजर का उत्तरदायित्व एक श्रमिक तथा एक इन्जीनियर मे अधिक है इसी कारण से मैनेजर को श्रमिक तथा इन्जीनियर से तथा इन्जीनियर को श्रमिक से अधिक वेतन मिलता है।

(७) **अन्य लाभ की प्राप्ति**—कुछ व्यवसायो मे श्रमिको को निश्चित मजदूरी के अतिरिक्त अन्य लाभ प्राप्त हो जाते है। इस कारण से वे कम मजदूरी होने पर भी उस व्यवसाय मे कार्य करना पसद करते है, जैसे कपडे के कारखाने मे कम मूल्य पर कपडा मिलना, रेलवे मे आने जाने के लिये पास मिलना आदि। इसलिये जिन व्यवसायो मे अन्य लाभ नहीं होते है वहा उन व्यवसायो की तुलना मे जहा अन्य लाभ होते है मजदूरी अधिक होती है इस कारण से भी मजदूरी मे भिन्नता हो जाती है।

अध्याय ६७

ब्याज

प्रश्न १५५—ब्याज की परिभाषा दीजिये तथा कुल और वास्तविक ब्याज का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

(Define Interest and distinguish clearly between gross and net Interest.)

उत्तर:—

ब्याज की परिभाषा.—

अर्थशास्त्र मे ब्याज उस आय को कहते हैं जो एक पूजीपति को उसकी पूंजी के उपभोग के उपलक्ष मे ऋणी द्वारा दी जाती है।

यद्यपि उपभोग और उत्पादन दोनों ही प्रकार के कार्यों के लिये द्रव्य के उपभोग का पुरस्कार ब्याज कहा जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में द्रव्य के लेन-देन पर मुख्यत उत्पादन की दृष्टि से विचार किया जाता है। पूजी उत्पादक है वह प्रयोगकर्ता को अधिक धनोत्पादन मे सहायता प्रदान करती है इस लिय ऋणी पूंजी उधार देने वाले को ब्याज देता है। उधार देने वाला व्यक्ति पूंजी के प्रयोग के लिये कुछ पारितोषक चाहता है क्योंकि पूजी बचाने म उसे कष्ट होना है और उसे कुछ बलिदान करना पडता है इसी पारितोषिक को अर्थशास्त्र म ब्याज कहते है।

कुल और वास्तविक ब्याज का अन्तर —

वास्तव म जो पूंजीपति ऋणी से वसूल करता है, वह केवल पूंजी के उपभोग का प्रतिफल ही नही होता वल्कि उसमे अन्य कई कार्यों का प्रतिफल सम्मिलित होता है। पूंजीपति रुपया उधार देने मे कुछ असुविधा उठाता है लिखत पढत व ऋण-वसूली पर भी कुछ व्यय करता है और ऋण के अदा होने अथवा न होने की जोखिम भी उठाता है। ऋणदाता इन सबके लिये भी प्रतिफल चाहता है। अत साधारणतया ब्याज की दर में पूजी के प्रयोग के प्रतिफल के अतिरिक्त इन सब बातो का प्रतिफल भी सम्मिलित रहता है। इसको कुल ब्याज (Gross Profit) कहते हैं।

वास्तविक ब्याज —

इसके विपरीत केवल पूजी के प्रयोग के बदले मे दिये जाने वाला प्रतिफल वास्तविक, असल अथवा विशुद्ध ब्याज (Net Interest) कहलाता है। यह कुल ब्याज का एक अग होता है प्रोफेसर चैपमैन के अनुसार "पूजी उधार देने के बदले मे मिला वह पुरस्कार, जो जखिमहीन, प्रबन्ध रहित और असुविधाओं से विहीन विनियोग से प्राप्त होता है, 'विशुद्ध ब्याज कहलाता है।" (Net interest is payment for loan of capital, when no risk, no inconveninence (apart from that involed in saving) and no work is entailed on the lender. Chepman)

कुल ब्याज —

प्रोफेसर चैपमैन द्वारा दी गई विशुद्ध ब्याज की परिभाषा से कुल ब्याज की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—"ऋणदाता को पूंजी के प्रयोग जोखिम, प्रबन्ध एवम् असुविधाओ का जो प्रतिफल ऋणी से ब्याज के रूप मे प्राप्त होता है कुल ब्याज कहलाता है।" इस प्रकार कुल ब्याज के निम्न अग हैं —

(१) विशुद्ध ब्याज,
(२) जोखिम का प्रतिफल,
(३) पूंजी देने मे असुविधा का प्रतिफल,
(४) ऋण के प्रबंध का पुरस्कार।

(१) **विशुद्ध ब्याज** —यह केवल पूंजी के उपयोग का प्रतिफल होता है। (पढ़िये 'ब्याज की परिभाषा' वाला भाग)।

(२) **जोखिम का प्रतिफल** —रुपया उधार देने के व्यवसाय के साथ जोखिम अनिवार्य रूप से जुडी होती है। ऋणदाता को सदैव इस बात की जोखिम रहती है कि उधार दिया गया धन वापिस आयगा अथवा नही। ऋणदाता इस जोखिम के लिये भी कुछ प्रतिफल चाहता है जिसको विशुद्ध ब्याज मे सम्मिलित कर दिया जाता है। प्रोफेसर मार्शल के अनुसार ये जोखिम दो प्रकार की होती हैं—(१) व्यक्तिगत जोखिम और (२) व्यवसायिक जोखिम।

व्यक्तिगत जोखिम —जो व्यक्ति ईमानदार और सच्चे होते है उनको रुपया उधार देने म कम जोखिम होती है, वे सदैव उधार लिये गये धन को समय पर अदा कर देते है। किन्तु बेईमान, चरित्रहीन व झूंठे व्यक्तियो को उधार देने मे बडी जोखिम होती है। ऐसे व्यक्तियो से इसीलिये अधिक ब्याज लिया जाता है।

व्यवसायिक जोखिम —व्यक्तिगत जोखिम के अतिरिक्त व्यवसायिक जोखिम भी विचारणीय है। कुछ व्यवसाय बडे सुरक्षित होते हैं, इनम पूंजी लगाने मे कोई जोखिम नही होती परन्तु कुछ व्यवसाय जैसे सट्टे का व्यवसाय आदि को रुपया उधार देने मे बडी जोखिम रहती है। सट्टे मे एक ही रात म लाखो इधर उधर हो जाते है। अत जोखिम वाले व्यवसायो से ब्याज अधिक लिया जाता है।

(३) **असुविधा का प्रतिफल** —ऋण देने के कार्य मे अनेको असुविधायें है। जब ऋणी समय पर रुपया अदा नही करते, तो उसको वसूल करना बडा असुविधाजनक होता है, समय समय पर उनसे तकाजा (demand) करना पडता है और उनके पीछे घूमना पडता है, कभी-कभी ऋणी उस समय रुपया लौटाते है जब उसकी कोई माग नही होती, ऐसी अवस्था मे रुपया व्यर्थ और अनुत्पादक पडा रहता है। इसलिये पूंजीपति ब्याज की दर निश्चित करते समय इन असुविधाओ का ध्यान रखता है और इनके लिए कुछ प्रतिफल वसूल करता है।

(४) **प्रबन्ध का प्रतिफल** —पूंजीपति के ऋणों का हिसाब किताब रखना पड़ता है। इसके लिये बहीखाते, स्टेशनरी व मुनीम रखने पड़ते हैं। ऋण वसूल करने और ऋणियों से मुकदमा इत्यादि लड़ाने के लिये गुमाश्ते और कारिन्दे नियुक्त किये जाते हैं। इनके वेतन पर ऋणदाता को कुछ धन व्यय करना पड़ता है। यह व्यय ऋणदाता ब्याज की दर बढ़ाकर ऋणियों से ही वसूल कर लेता है। भारत सरकार को रुपया उधार देने मे प्रबंध व्यय बहुत कम होता है अत ब्याज की दर भी कम होती है।

—o—

प्रश्न १५६—ब्याज की परिभाषा दीजिये। ब्याज की दर कैसे निश्चित की जाती है? पूर्णतया समझाइये।

(Define Interest How is the rate of interest determind? Explain fully.)

उत्तर —

ब्याज की परिभाषा के लिये प्रश्न १५५ के उत्तर को पढ़िये।

ब्याज की दर का निर्धारण (Determination of the Rate of Interest) :—

समय समय पर अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की दर को निश्चित करने के लिये अनेकों सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है परन्तु आधुनिक युग मे ब्याज **निर्धारण का 'मांग व पूर्ति' सिद्धांत सबसे उपयुक्त माना जाता है।** ब्याज पूंजी के उपयोग का मूल्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूंजी के उपयोग का मूल्य (ब्याज की दर) पूंजी के उपयोग की मांग व पूंजी के उपयोग की पूर्ति की शक्तियों के द्वारा ठीक उसी प्रकार निर्धारित होता है जिस प्रकार बाजार में किसी अन्य वस्तु का मूल्य।

पूंजी की मांग —पूंजी की मांग उद्योगपति, व्यापारी, किसान व अन्य उत्पादकों द्वारा की जाती है। ये व्यक्ति उत्पादन कार्य में पूंजी प्रयुक्त करके उसकी मात्रा मे वृद्धि करते हैं। अत वे पूंजी के प्रयोग के बदले मे पूंजीपति को कुछ प्रतिफल देने को तैयार हो जाते हैं। यह प्रतिफल पूंजी की उत्पादकता पर निर्भर करता है। पूंजी की सब इकाइयों की उत्पादकता समान नहीं होती है। एक सीमा के बाद व्यवसाय मे ज्यों २ पूंजी की इकाईयों का उपयोग बढ़ाया जाता है त्यों त्यों पूंजी की उत्तरोत्तर इकाईयों की उत्पादकता गिरती जाती है और एक सीमा ऐसी आती है जहां पूंजी की सीमांत इकाई की उत्पादकता ब्याज की दर के बराबर हो जाती है। अब पूंजी की

श्रोर इकाईयो का उपयोग नही होगा। **पूंजी की सीमांत उत्पादकता ब्याज की अधिकतम सीमा है।** इससे अधिक ब्याज उत्पादनकर्ता कदापि नही देंग।

पूजी की पूर्ति —पूंजी की पूर्ति पूजीपतियो द्वारा की जाती है। उनको पूंजी के सचय मे आत्म त्याग तथा सयम से काम लेना पडता है। इसलिये जब तक उन्हे इसके लिये उचित पुरस्कार नही मिलेगा तब तक पूंजीपति पूजी उधार नही देंगे। उनको ब्याज के रूप मे इतना धन अवश्य मिल जाना चाहिये जितनी कि उनके सयम तथा बलिदान की लागत है। परन्तु प्रत्येक पूजीपति को समान त्याग नही करना पडता। धनवानो को पूजी बचाने मे कम त्याग करना पडता है वे तो कम ब्याज पर भी बचत करते रहेगे। परन्तु सीमात बचत करने वाले को कम से कम उसके त्याग श्रोर सयम के बराबर प्रतिफल मिल जाना चाहिये। **सीमात पूंजीपति के त्याग तथा सयम द्वारा ब्याज की न्यूनतम सीमा निर्धारित होती है।** कोई भी पूजीपति इससे कम ब्याज स्वीकार नही करेगा। यदि ब्याज की दर, इस सीमा से भी कम है तो लोग पूंजी का सचय बद कर देंगे।

ब्याज की दर इन्ही दोनो उच्चतम श्रोर न्यूनतम सीमाश्रो के बीच मांग श्रोर पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो द्वारा कहीं भी उस बिन्दु पर निश्चित हो जावेगी जहा ये दोनो शक्तिया बराबर हो जावेंगी।

मान लीजिये कि किसी समय ब्याज की भिन्न दरो पर पूजी की माग व पूर्ति निम्न प्रकार है —
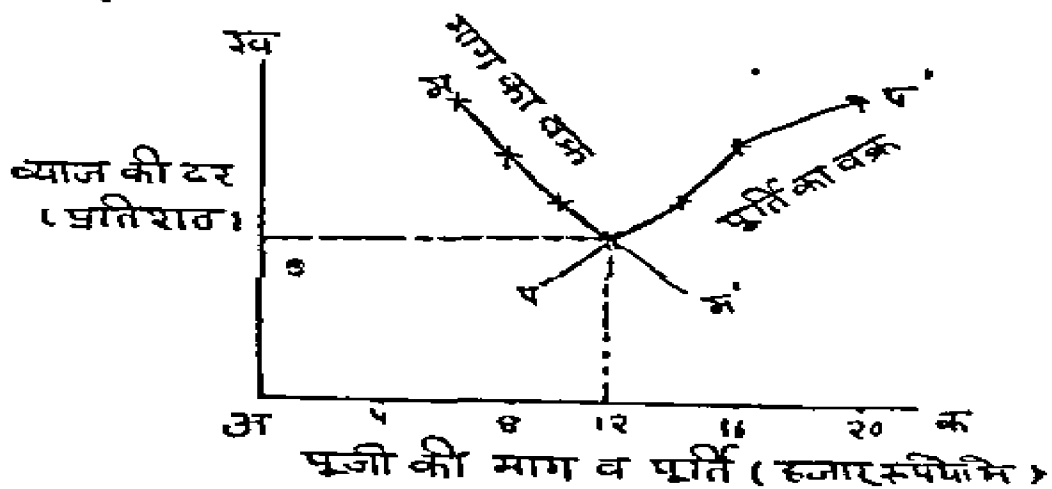
ब्याज की दर	पूंजी की मांग	पूंजी की पूर्ति
३%	१४,००० रु०	१०,००० रु०
४%	१२,००० रु०	१२,००० रु०
५%	१०,००० रु०	१४,००० रु०
६%	८,००० रु०	१६,००० रु०
७%	६,००० रु०	२०,००० रु०

उपरोक्त तालिका के अनुसार ब्याज की दर ४% होगी क्योंकि इस ब्याज की दर पर ही पूंजी की माग व उसकी पूर्ति के बराबर है।

प्रश्न १५७—ब्याज की दर मे विभिन्नता के क्या कारण हैं? भारतीय गावों मे अधिक ऊची दर पर रुपया क्यों मिलता है?

(What are the causes of the variations in the rate of interest? Why is the money lent on a very high rate of interest in Indian Villages?)

उत्तर :—

ब्याज की दर मे विभिन्नता के कारण —

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे विशुद्ध ब्याज की दर लगभग सभी व्यवसायो व स्थानो पर एक सी होती है परन्तु व्यवहारिक ब्याज की दर (कुल ब्याज) एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की अलग-अलग होती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं —

(१) **जोखिम** —जिस व्यवसाय मे जितनी अधिक जोखिम होती है। उसमे उतनी ही अधिक ब्याज की दर होती है, विपरीत अवस्था मे ब्याज की दर कम होती है।

ब्याज की विभिन्नता के कारण —

१ जोखिम।
२ दूरी का अन्तर।
३ ऋण की अवधि।
४ ऋण प्रबन्ध कार्य।
५. जमानत।
६. ऋण का प्रकार।
७ ऋण का समय।
८ बैंकिंग व्यवस्था।

(२) **दूरी का अन्तर** — पूंजीपति के निवास स्थान से पूजी का विनियोग जितनी अधिक दूर होगा, ब्याज की दर उतनी ही अधिक होगी क्योंकि ऋणदाता को यह डर लगा रहता है कि यदि उसका रुपया न मिला तो उसको कानूनी कार्यवाही करने इत्यादि मे काफी व्यय और

असुविधा उठानी पडेगी। विदेशी ऋणो पर इसीलिये ब्याज अधिक होता है।

(३) ऋण की अवधि :—जितने अधिक समय के लिये रुपया उधार लिया जाता है। ब्याज की दर उतनी ही अधिक होती है क्योंकि ऋणदाता को रुपया वापिस प्राप्त करने म अधिक प्रतीक्षा करनी पडती है। यही कारण है कि दीर्घकालीन ऋणों पर अल्पकालीन ऋणो की अपेक्षा अधिक ब्याज लिया जाता है।

(४) ऋण प्रबध कार्य :—ऋण के प्रबध कार्य मे अन्तर होन मे ब्याज की दर मे अन्तर होता है। किसानो को थोडा-थोडा ऋण देने और वसूल करने मे प्रबध कार्य अधिक रहता है इसलिये उनसे ब्याज अधिक लिया जाता है।

(५) जमानत या धरोहर :—यदि ऋणी किसी ईमानदार व्यक्ति की जमानत दे सकता है अथवा स्वय कोई मूल्यवान वस्तु जैसे आभूषण, मकान-जायदाद व माल इत्यादि रहन रख सकता है तो ब्याज की दर नीची होती है क्योंकि ऋणदाता की जोखिम कुछ कम हो जाती है।

(६) ऋण का प्रकार :—यदि ऋण उत्पादक कार्यों के लिये लिया जाता है तो ब्याज की दर कम होती है किन्तु अनुत्पादक कार्यों जैसे विवाह, भोजन इत्यादि के लिये, लिये गये ऋण पर ब्याज की दर अधिक होती है।

(७) ऋण का समय :—तेजी के समय पूँजी की माँग अधिक रहती है अतः ब्याज की दर भी अधिक होती है परन्तु मंदीकाल मे जब पूँजी की माग अपेक्षाकृत कम होती है ब्याज की दर भी कम हो जाती है।

(८) बैंकिंग व्यवस्था :—जिन देशों अथवा स्थानो मे बैंक, बीमा कम्पनी इत्यादि नही होते अथवा सुव्यवस्थित ढग से कार्य नही कर रहे होते वहां रुपया उधार लेने वालों को देशी साहूकारों और महाजनों से ऋण लेना पडता है जो इन लोगो की मजबूरी का लाभ उठाकर ऊची ब्याज की दर वसूल करते हैं।

भारतीय ग्रामों में ऊंची ब्याज की दर :—

यदि हमारे देश मे प्रचलित ब्याज की दरों की अन्य प्रगतिशील देशो से तुलना की जाय तो विदित होगा कि भारत मे ब्याज की दरें अपेक्षाकृत ऊची हैं। यही नही भारतीय गांवो में शहरो की अपेक्षा ब्याज की दरें ऊंची है। भारतीय साहूकार, महाजन व गाव के बनिये किसानो से १२% से

३७½% तक व्याज वसूल करते हैं। व्याज की इन ऊंची दरो के निम्न कारण है —

(१) भारतीय किसान निर्धन हैं उनकी इतनी भी आय नही होती कि वे ठीक प्रकार अपना गुजारा कर सकें। अतः **वे उपभोग के लिये रुपया उधार लेते हैं।** अनुत्पादक ऋणो पर स्वाभावत अधिक व्याज लिया जाता है।

(२) गांवो म **बैंको की कमी है।** अतः ग्रामीणो को अपनी साख की आवश्यकता के लिये गाव के बनियो, महाजनो व जमीदारो के पास जाना पडता है जो इनकी मजबूरी का फायदा उठाकर अधिक ऊंची व्याज की दर वसूल करते है। सहकारी साख समितियां केवल थोडा सा ही ऋण थोडे समय के लिये प्रदान करती हैं।

(३) साधारणतया किसान के पास ऋण के पीछे जमानत के लिये कोई मूल्यवान आभूषण व अन्य वस्तुयें नहीं होती। भूमि भी थोडे ही किसानो के पास है अत अधिकांश ऋण **व्यक्तिगत ईमानदारी की जमानत पर** दिया जाता है इसीलिये व्याज की दर भी अधिक होती है।

(४) शहरो की अपेक्षा जहाँ ऋण उद्योग धधो व व्यापार के लिये दिय जाते हैं, गावो का महाजन किसानो को कृषि कार्य के लिये रुपया उधार देता है। **कृषि व्यवसाय हमारे यहाँ बड़ा ही अनिश्चित और जोखिम पूर्ण व्यवसाय है।** अत किसानो से व्याज की अधिक दर ली जाती है।

(५) गाव के किसानो को थोडी-थोडी मात्रा मे अनेकों ऋण दिये जाते है। छोटी-छोटी रकमो के वसूल करने में **काफी प्रबंध-असुविधा व व्यय होता है।** किसान बहुधा ऋणों को अदा नही करते हैं अत महाजनो को मुकदमा लेकर कचहरी मे जाना पडता है। ऋण वसूली के अधिक व्यय के कारण व्याज की दर भी अधिक होती है।

(६) भारतीय गांवो मे **पूंजी की अपेक्षा पूर्ति बहुत कम है।** ग्रामीण क्षेत्रों मे जनता अधिकतर गरीब है जो अधिक धन सचय नही कर पाती। परन्तु पूंजी की माग उत्पादक व अनुत्पादक दोनो ही कार्यों के लिये की जाती है। इसी कारण भारत में व्याज की दर ऊंची है।

अध्याय ६८

लाभ

प्रश्न १५८—'लाभ' से आप क्या समझते हैं ? कुल और वास्तविक लाभ मे अन्तर बताइये ।

(What do you understand by 'Profits' ? Distinguish between gross and net profits ?)

उत्तर :—

लाभ की परिभाषा :—

प्रत्येक उत्पादन कार्य मे चाहे वह छोटे पैमाने पर किया जाय अथवा बडे पैमाने पर, कुछ न कुछ जोखिम अवश्य ही होती है । आज के युग मे धनोत्पत्ति माग से पूर्व **(In anticipation of demand)** की जाती है अत व्यवसायो में उत्पादनकर्ताओ की अपेक्षाकृत अधिक जोखिम उठानी पडती है । हो सकता है कि व्यापार मे लाभ हो परन्तु यदि व्यापार मे हानि होती है तो उसका उत्तरदायित्व कौन अपने कधो पर ले ? उत्पत्ति में जोखिम उठाने या साहस करने का कार्य साहसी **(Entreprenure)** द्वारा किया जाता है । इस प्रकार **लाभ वह पुरस्कार जो साहसी को जोखिम अथवा अनिश्चितता झेलने के उपलक्ष मे मिलता है । (Profits are the reward for risk taking and uncertainty bearing)** दूसरे शब्दो मे, **राष्ट्रीय आय का वह भाग जो साहसी को केवल जोखिम व अनिश्चितता उठाने के बदले मे दिया जाता है, 'लाभ' कहलाता है ।**

लाभ एक अवशेष है जो उत्पादनकर्ता को उत्पत्ति मे से अन्य साधनो का पुरस्कार दे देने के पश्चात बचता है । इस प्रकार लाभ धनात्मक **(Positive)** अथवा ऋणात्मक **(Negative)** दोनो हो सकते हैं । **कुल उत्पादन मे से कुल उत्पत्ति व्यय निकाल कर जो शेष रहता है लाभ कहलाता है । (Profits are a surplus over and above the expenses of Production)**

लाभ=(कुल उत्पत्ति)—(कुल उत्पत्ति व्यय)

यदि कुल उत्पत्ति व्यय उत्पत्ति की मात्रा से कम है तो लाभ धनात्मक होगा और यदि कुल उत्पत्ति व्यय उत्पत्ति से अधिक है तो लाभ ऋणात्मक होगा । ऋणात्मक लाभ को साधारण भाषा मे 'हानि' **(Loss)** कहते हैं ।

कुल व वास्तविक लाभ (Gross and Net Profits) —

हम इस प्रश्न म पहले बतला चुके हैं कि लाभ एक अवशेष है। वस्तु उत्पन्न करने म कुछ व्यय होता है। उत्पादक उस वस्तु को इस लागत-व्यय मे अधिक पर बेचना चाहता है। यदि वह ऐसा करने मे सफल हो जाता है तो उसको उत्पत्ति व्यय के ऊपर कुछ अतिरेक (Surplus) प्राप्त होगा। अर्थशास्त्र मे इसे ही कुल लाभ कहते हैं। **इस प्रकार बिक्री मूल्य तथा लागत मूल्य का अन्तर व्यापारी का कुल लाभ होता है। दूसरे शब्दों मे, 'किसी उत्पत्ति के कार्य मे उत्पत्ति के सब खर्चे निकालकर तथा उत्पत्ति के तमाम साधनो का उनका प्रतिफल देने के पश्चात जो कुछ धन बचता है उसे कुल लाभ (Gross Profits) कहते हैं।"** व्यवहारिक जीवन म 'लाभ' से तात्पर्य 'कुल लाभ' से ही होता है। वास्तविक अथवा विशुद्ध लाभ (Net or Pure Profits) सकल लाभ का ही एक अग है।

कुल लाभ के निम्न अग हैं —

(१) केवल जोखिम उठाने का प्रतिफल अथवा वास्तविक लाभ,
(२) साहसी के निजी साधनो का प्रतिफल,
(३) सरक्षण व्यय (Maintenace expenses)
(४) एकाधिकार लाभ (Monopoly gains)
(५) अनायास लाभ (Chance gains)

(१) **वास्तविक लाभ** —यह केवल जोखिम उठाने का पुरस्कार होता है।

(२) **साहसी के निजी साधनों का पुरस्कार** —साहसी जोखिम उठाने के अतिरिक्त व्यापार म अपनी निजी भूमि, पूजी तथा श्रम आदि को भी लगा देता है। यदि वह इन साधनों को कही अन्यत्र किसी व्यवसाय में विनियोग कर देता तो उसको इनसे कुछ आय प्राप्त होती है। अत वास्तविक लाभ का अनुमान लगाते समय यह आवश्यक है कि कुल लाभ मे से निजी भूमि का लगान, निजी श्रम की मजदूरी, निजी पूंजी का ब्याज व सगठन का वेतन निकाल दिया जाय। निजी साधनों की सेवाओं का प्रतिफल तो वह बगैर साहसी हुए भी प्राप्त कर सकता था।

(३) **सरक्षण व्यय** —प्रत्येक व्यापारी को अपनी चल व अचल सम्पत्ति की रक्षा के लिये कुछ व्यय करना पडता है। ये व्यय सरक्षण व्यय कहलाते हैं। वास्तविक लाभ मालूम करने के लिये प्रतिवर्ष कुल लाभ में से

कुछ धन इन व्ययो के लिये निकाल दिया जाता है। ये व्यय दो प्रकार के होते हैं :—(१) घिसाई और (२) बीमा।

घिसाई :—उत्पत्ति के लिये हम जिन यन्त्रों और औजारो का प्रयोग करते हैं वे धीरे २ घिसते रहते हैं, यह घिसावट एक प्रकार का व्यय है जो वास्तविक लाभ मालूम करने के लिए सकल लाभ मे से निकाल दिया जाता है। यह व्यय प्रतिवर्ष एक घिसावट खाते (Depreciation Account) मे जमा कर दिया जाता है।

बीमा व्यय :—घिसाई के अतिरिक्त आकस्मिक दुर्घटनाओं को रोकने के लिये सम्पत्ति का बीमा करा लिया जाता है। बीमे का प्रीमियम भी सकल लाभ का एक अंग है, इसे कुल लाभ मे से घटाने पर ही हमे वास्तविक लाभ मालूम होता है।

(४) एकाधिकार लाभ :—कभी २ व्यापारी को किसी वस्तु के उत्पन्न करने अथवा बेचने का एकाधिकार प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति मे व्यापारी अपनी स्थिति से फायदा उठाकर असाधारण लाभ प्राप्त कर लेता है। ये असाधारण लाभ उसकी कार्यक्षमता का परिणाम नही होते बल्कि अपूर्ण प्रतियोगिता का फल होते हैं। अतः वास्तविक लाभ मालूम करने के लिये इन्हे सकल लाभ मे से घटा दिया जाता है।

(५) अनायास लाभ :—कभी २ किसी साहसी को अनायास ही बहुत अधिक लाभ हो जाता है जैसे युद्ध छिड़ जाने पर वस्तुओं की कीमत बढ जाती है और व्यापारियों को अकस्मात ही असाधारण लाभ हो जाते हैं। इस प्रकार के लाभ व्यापारी की योग्यता का परिणाम नही बल्कि परिस्थितियो के अकस्मात ही व्यापारी के अनुकूल हो जाने का प्रभाव है। अतः सकल लाभ मे से इनको निकाल देने पर ही वास्तविक लाभ मालूम किया जा सकता है।

वास्तविक लाभ :—सकल लाभ मे से साहसी के निजी साधनो का प्रतिफल, संरक्षण व्यय, एकाधिकार व आकस्मिक लाभ आदि को अलग कर देने पर जो शेष रहता है, वह वास्तविक, अथवा विशुद्ध लाभ कहलाता है। यह केवल जोखिम उठाने का प्रतिफल है। प्रो० वाकर (Walker) के अनुसार **"विशुद्ध लाभ केवल जोखिम उठाने का प्रतिफल है"** (Pure profits are only the remuneration for risk taking"—Walker) व्यापार मे हानि-भय सदैव बना रहता है जिसको साहसी सहन करता है। इस काम के लिये जो प्रतिफल साहसी को प्राप्त होता है वह वास्तविक लाभ कहलाता है।

प्रश्न १५६ :—लाभ किस प्रकार निर्धारित होता है ? लगान व लाभ में क्या अन्तर है ? इन दोनों की समानता पर भी प्रकाश डालिये।

(How are profits determined ? Distinguish between Rent and Profit and bring out clearly the points of similarity between the two)

उत्तर :—

वैसे तो लाभ के निर्धारण के हेतु अर्थशास्त्रियों ने समय २ पर विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है परन्तु उन सबों में कुछ न कुछ दोष हैं। इन सब सिद्धांतों में प्रोफेसर वाकर का सिद्धांत अधिक प्रचलित है। वाकर महोदय के अनुसार **"लाभ योग्यता का लगान है"** (**Profits are the Rent of Ability**)। इसलिये लाभ उसी प्रकार निर्धारित होता है जिस प्रकार आर्थिक लगान। जिस प्रकार विभिन्न उर्वराशक्ति वाले भूमि क्षेत्र होते हैं उसी प्रकार विभिन्न योग्यता वाले साहसी होते हैं। सीमांत साहसी को केवल सामान्य लाभ होते हैं—सामान्य लाभ लाभ की वह मात्रा है जिसके अभाव में व्यापारी व्यापार को छोड़ देंगे और जिसके मिलते रहने पर, व्यापार में बने रहेंगे। जो साहसी सीमांत साहसियों से अधिक योग्य होते हैं उनको अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार सीमांत भूमि से पूर्व की भूमियां पर अधिक उत्पत्ति होती है। अतः **किसी विशेष साहसी का लाभ उसके व सीमांत साहसी के लाभ का अन्तर है**। अधिसीमांत साहसियों की विशेष बचत (**Differential gain**) द्वारा लाभ निश्चित होता है।

लाभ व लगान में अन्तर :—

(१) लाभ का निर्धारण लगान की भांति मांग व पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा नहीं होता।

(२) लाभ नकारात्मक (**Negative**) भी हो सकता है परन्तु लगान सदैव धनात्मक (**Positive**) होता है। यह सम्भव है कि साहसी को हानि हो जाये परन्तु कोई भूमिपति भूमि का लगान अपनी जेब से नहीं दे सकता।

(३) लाभ एक अवशेष है परन्तु लगान कुल उत्पत्ति में से भूमिपति को पहले ही दे दिया जाता है।

(४) समाज की प्रगति से लाभ की दर गिरती परन्तु लगान की दर ऊंची होती है।

(५) सीमांत साहसी को सामान्य लाभ मिलते हैं और उत्पादन व्यय में शामिल होता है। परन्तु सीमांत भूमि पर कोई आर्थिक लगान नहीं होता और न यह उत्पादन व्यय में जोड़ा जाता है।

लाभ व लगान में समानता —

(१) वास्तविक लाभ का निर्धारण सापेक्षिक बचत से होता है। इसी प्रकार आर्थिक लगान का निर्धारण सापेक्षिक उत्पत्ति से होता है।

(२) लाभ साहसियों की योग्यता में भिन्नता का परिणाम है उसी प्रकार लगान विभिन्न भूमियों की उपजाऊ शक्ति की भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है।

(३) लाभ एक विशेष बचत है जो सीमांत साहसी पर श्रेष्ठ साहसियों को प्राप्त होती है और वास्तविक लाभ कहलाती है। इसी प्रकार लगान भी एक बचत है जो सीमांत भूमि पर श्रेष्ठ भूमियों को प्राप्त होती है। यह आर्थिक लगान कहलाती है।

लाभ और लगान की इस समानता को देखते हुए प्रोफेसर वाकर लाभ को योग्यता का लगान (Rent of Ability) कहते हैं।

अध्याय ६६

विदेशी व्यापार की विशेषता

प्रश्न १६०—भारतीय विदेशी व्यापार की प्रधान विशेषतायें क्या हैं? पिछले कुछ वर्षों में भारत का निर्यात इतना कम क्यों हो गया है ?

(What are the chief characteristics of India's foreign trade ? Why have India's export declined in the reacent years ?)

उत्तर.—

भारतीयों के विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीनकाल से चले आ रहे हैं। हमारा विदेशी व्यापार बढ़ा बढ़ा चढ़ा था। ब्रिटिश शासन-काल में भारत कच्चे माल का प्रमुख निर्यातकर्ता तथा पक्के माल का आयात-कर्ता बन गया। द्वितीय विश्व युद्ध ने हमारे विदेशी व्यापार में बड़ी वृद्धि

की । मुख्यत. हमारे निर्यात व आयातो की अपेक्षा बहुत अधिक हो गये । देश के विभाजन ने कपास और जूट उगाने वाले क्षेत्र हमसे पृथक कर दिये। अत स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से हमारे आयातो मे अनाज, कपास, जूट आदि का भी भाग बढ गया है । हमारी राष्ट्रीय सरकार अब पक्के मालो के निर्यात को प्रोत्साहन दे रही है । देश मे बडे पैमाने पर औद्योगीकरण चलने के कारण, आयातो मे भी मशीनों आदि पक्के माल का भाग बढता जा रहा है ।

प्रमुख निर्यात —भारत के प्रमुख निर्यात चाय, जूट का पक्का माल, सूती कपडा, मैंगनीज, अबरक, कच्चा लोहा, तम्बाकू, तिलहन, चमडे व खालें, कपास, मसाले, गोंद व लाख, ऊनी कपडे व ऊन इत्यादि हैं ।

प्रमुख आयात:—भारत मे आयात की प्रमुख वस्तुयें, खाद्यान्न मशीनरी, कपास, जूट, पेट्रोल, अखबारी कागज, दवाइयाँ, रसायन आदि, बिजली का सामान, मोटर गाडिया (सब प्रकार की), कपडा, धातुयें, नकली रेशम का सूत, रग इत्यादि है । इसके अतिरिक्त खेल का सामान, सौंदर्य प्रसाधन की सामिग्री व शस्त्र आदि भी आयात किये जाते हैं ।

भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषतायें —

भारतीय विदेशी व्यापार की निम्नलिखित विशेषतायें हैं —

(१) हमारे आयात और निर्यात दोनो मे ही पहला स्थान पक्के माल का है । युद्ध से पूर्व तक हम कच्चे माल के प्रमुख निर्यातक थे जिनमे कपास, जूट, तिलहन व कच्चा लोहा, मैंगनीज व अबरक इत्यादि थे । परन्तु अब स्थिति बदल गई है । कपास व जूट हम स्वय पाकिस्तान से खरीदते हैं । हमारे निर्यातो मे तेल, चीनी, कपडा, पटसन का सामान आदि बढ गये हैं । दिन प्रतिदिन पक्के माल का महत्व हमारे निर्यातो मे बढता जा रहा है । देश के औद्योगीकरण के लिये विशाल कीमती मशीनो का प्रतिवर्ष बडी मात्रा मे आयात किया जा रहा है ।

(२) कच्चे माल का महत्व आयात मे बढता जा रहा है और निर्यात मे घटता जा रहा है । पाकिस्तान बन जाने के फलस्वरूप अधिक अन्न, कपास, व जूट उत्पन्न करने वाले क्षेत्र हमसे अलग हो गये । अत हमको प्रतिवर्ष इनका आयात करना पडता है । पहले भारत कच्चा सामान भेजा करता था परन्तु देश के औद्योगिक विकास व राज्य की उदारतापूर्ण नीति के कारण, हमारे यहाँ से पक्के मालों का निर्यात बढ रहा है ।

(३) व्यापार सतुलन हमारे विपक्ष मे है । हम प्रतिवर्ष लगभग

१०० करोड रुपये का अन्न आयात करते हैं। दूसरे देश मे मूल्य-स्तर बढ जाने के कारण विदेशो में हमारी वस्तुओ की खपत नहीं हो पाती है। अत: हमारे निर्यात घट गये हैं। इसके विपरीत देश के विभाजन व औद्योगीकरण के कारण देश के आयात बढ गये हैं। अत: 'व्यापार अन्तर' (Balance of Trade) हमारे विपक्ष मे रहता है।

(४) **हमारा लगभग समस्त विदेशी व्यापार सामुद्रिक मार्गों से होता है।** हमारी थल सीमा के देश निर्धन और पिछडे हुये है उनसे हमारा व्यापार ही सीमित है। परन्तु पाकिस्तान—बन जाने के पश्चात से हमारे थलीय व्यापार मे कुछ वृद्धि हो गई है।

(५) हमारा समुद्र द्वारा होने वाला **व्यापार कुछ प्रमुख बन्दरगाहों तक ही सीमित है।** जोकि बम्बई, विशाखापट्टम, कलकत्ता व कोचीन है। हमारे विदेशी व्यापार का ३/४ भाग इन्ही के द्वारा किया जाता है।

(६) **हमारा विदेशी व्यापार अधिकतर विदेशियों के हाथ में है।** आयातकर्ता व निर्यातकर्ता विदेशी ही हैं। जहाजो व बीमा कम्पनियाँ व विनिमय बैंक अधिकतर विदेशी है। हमारी राष्ट्रीय सरकार के सहयोग से अब इस क्षेत्र मे भारतीयों का भाग बढने लगा है।

(७) भारत का **व्यापार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के देशों तक ही सीमित नहीं रहा है।** कुछ वर्षों पूर्व तक इनमें इगलैंड के साथ हमारा सबसे अधिक व्यापार था परन्तु अब अमेरिका, रूस, जापान व अन्य यूरोपीय देशो से हमारा विदेशी व्यापार बढता जा रहा है।

(८) **हमारे आयात की वस्तुओं में उत्पादक वस्तुओ की मात्रा बढती जा रही है।** स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने उपभोग की वस्तुओ के आयात पर प्रतिबन्ध व कडा नियंत्रण लगा दिया है परन्तु मशीनें, मोटरें, बिजली का सामान आदि बडी मात्रा मे आयात किया जा रहा है। ये देश के औद्योगीकरण व उत्पादन वृद्धि के लिये बडे आवश्यक हैं।

(९) **हमारा प्रति व्यक्ति विदेशी व्यापार बहुत कम है।** इगलैंड, अमेरिका, जापान आदि प्रगतिशील औद्योगिक देशो की तुलना मे हमारा प्रति व्यक्ति विदेशी व्यापार बहुत कम है।

भारत के निर्यात कम होने के कारण:—

पिछले कुछ वर्षों मे हमारे निर्यात हमारे आयातों की अपेक्षा कम हो गये है। यह स्थिति बडी असतोषजनक है। इस स्थिति के कई कारण हैं:—

(१) पिछले कुछ वर्षों से देश मे मूल्य स्तर बढ जाने के फलस्वरूप कीमतो मे काफी वृद्धि हो गई है अत देश से वस्तुओ का निर्यात कम हो गया है। (२) भारत म जूट व कपास की कमी के कारण पहले की अपेक्षा जूट का तैयार माल व कपडा कम निर्यात होता है। (३) विदेशी व्यापार से पाकिस्तान हमारा विरोधी बन कर आ गया है। (४) स्वाधीनता के पश्चात हमारे देश को अपनी आन्तरिक समस्याओ को सुलझाने म व्यस्त रहना पडा अत विदेशी व्यापार की ओर अधिक ध्यान न दिया जा सका।

इस स्थिति को सुधारने के लिये राज्य व निजी व्यापारिक समस्यायें प्रयत्नशील हैं। भारत सरकार ने स्टट ट्रेडिंग कारपोरेशन की स्थापना की है जो विदेशी व्यापार का प्रोत्साहन व वृद्धि के लिये प्रयत्न कर रही है।

अध्याय ७०

भूदान यज्ञ

प्रश्न १६१—"भूदान यज्ञ" पर एक निबन्ध लिखिये। क्या यह उचित कार्यक्रम है।

(Write an essay on Bhoodan Movement" Is it a proper attempt)

उत्तर.—

'भूदान यज्ञ' —यह यज्ञ विनोबा भावे ने सन् १९५१ मे शुरू किया था। विनोबा भावे देश की आर्थिक दशा से परिचित थे। उन्होने अनुमान लगाया कि लगभग ५ करोड व्यक्ति देश मे ऐसे हैं जिनके पास कृषि काय के लिए भूमि नही है। और उन्हे पूरे साल काय भी नहीं मिलता है। जिससे इनकी आर्थिक दशा भी असन्तोषजनक है। इस समस्या को हल करने के लिये ही उन्होंने 'भूदान यज्ञ' का सहारा लिया है "भूदान आदोलन का विचार उनके दिमाग में हैदराबाद मे आया था जबकि वह घूमने जा रहे थे। तथा इस 'आदोलन की व्यवहारिक सफलता पर उनको जब विश्वास हुआ जब वह नालगोंडा जिले के एक गाँव म ठहरे हुए थे। वह शाम के समय प्रतिदिन अपने विचार गाँववासियों को सुनाते थे तथा उनकी समस्याओं के हल के उपाय भी बताते थे। एक दिन कुछ व्यक्तियों ने विनोबा जी

से यह प्रार्थना की कि वह सरकार से यह प्रयत्न करे कि इनको कृषि कार्य के लिए भूमि मिल जाये। विनोबा जी ने इनकी प्रार्थना को सरकार तक पहुँचाने का वायदा किया। लेकिन तभी इनके दिमाग मे विचार आया कि यदि यह भूमि की माग उन व्यक्तियो से पूरी हो जाये जिनके पास अपनी आवश्यकता से अधिक भूमि है तो कैसा अच्छा होगा। इस बात को उन्होने सभा मे रक्खा और थोडे समय के बाद १०० एकड भूमि उन्हे दान मे मिल गई। विनोबा जी ने यह भूमि उन व्यक्तियो को दे दी जिन्होने इसकी माग की थी। उनकी माग केवल ८० एकड भूमि की ही थी। इस प्रकार "भूदान" मे उनका विश्वास बढ गया। और उसी समय से इसके प्रचार के लिए देश के कोने २ मे दौरा लगा रहे हैं। जिससे देश के भूमिहीन कृषकों को भूमि मिल सके, देश मे उत्पादन बढ सके। आय की वृद्धि हो सके, रहन सहन का स्तर ऊचा हो सके तथा देश की आर्थिक दशा सुधर सके। वास्तव मे विनोबा जी का यह 'भूदान यज्ञ' का विचार देश को आर्थिक प्रगति की ओर अग्रसर करता है।

एक उचित कार्यक्रम :—अब यह निर्णय करना है कि विनोबा भावे का यह कदम उचित है या नही। इसके लिए हमे इस आन्दोलन मे होने वाले लाभो तथा हानियो पर एक दृष्टि डालनी होगी तभी हम इस आन्दोलन के वास्तविक महत्व को समझ सकते हैं।

लाभ—इस आन्दोलन से अनेक लाभ हैं। जिनमे मुख्य निम्नलिखित हैं।

(१) भूमिहीन कृषकों की आर्थिक दशा में सुधार :—भूदान आन्दोलन से उन कृषको को जिनके पास भूमि नही है भूमि मिल जाती है। जिससे वे उस भूमि मे उत्पादन करके अपनी आर्थिक दशा को सुधार सकते हैं।

(२) उत्पादन मे वृद्धि :—भूदान आन्दोलन से कृषि कार्य के लिए भूमि मे वृद्धि होगी। जिससे देश मे अन्न का उत्पादन बढेगा। तथा विदेशी अन्न के आयात मे कमी हो सकेगी।

(३) अहिंसात्मक रूप से भूमि का बटवारा :—क्योकि इस आन्दोलन के अनुसार अमीर स्वय अपनी इच्छा से भूमि का दान करता है तो इस प्रकार भूमि का स्वय ही अहिंसात्मक रूप से बटवारा हो जाता है और इस प्रकार अमीर और गरीब मे भ्रातृ प्रेम पैदा होता है।

(४) सरकारी धन-भार में वृद्धि नहीं :—इस प्रकार के भूमि के

वितरण में सरकार के धन भार में कोई वृद्धि नहीं होती है। क्योंकि अन्य किसी दूसरे प्रकार से सरकार को जमीन का मुआवजा देना होता है।

(५) **सहकारिता को प्रोत्साहन** :—इस आन्दोलन से सहकारिता की भी वृद्धि होगी।

हानियाँ :—कुछ आलोचकों का कहना है कि भूदान से हानियाँ भी हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) **खेतों के छोटे २ टुकडे हो जाना** :—आलोचकों का कहना है कि भूदान से खेतों का क्षेत्रफल छोटे २ टुकडों में बट जायेगा जिससे उत्पत्ति पर बुरा प्रभाव पडेगा और उत्पत्ति लागत भी बढ जायेगी।

(२) **चरागाहों और जंगलों में कमी होगी** :—यदि भूदान की सभी भूमि पर कृषि कार्य होने लगेगा तो चारे तथा वनों की कमी हो जायेगी। जिससे वनों के लाभ हमें नहीं मिल सकेंगे तथा पशुओं की चारे की समस्या जटिल हो जायेगी।

(३) **भूदान की भूमि अयोग्य है** :—आलोचकों का कहना है कि दान से मिलने वाली भूमि अधिकांश, बंजर, या कृषि के अयोग्य है। या वनों से घिरी हुई है। इस दशा में उस भूमि पर व्यय अधिक होता है जो ये गरीब किसान सहन नहीं कर सकते। परन्तु इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा उचित सुविधा प्राप्त हो जाने पर यह समस्या हल की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूदान आन्दोलन से हानि होते हुए भी लाभ अधिक है। और भूमिहीन कृषकों की आर्थिक दशा सुधारने में यह एक सराहनीय कदम है।

अध्याय ७१

दाशमिक प्रणाली तथा मैट्रिक प्रणाली

प्रश्न १६२—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—

(अ) भारत में सिक्कों की दाशमिक प्रणाली।

(ब) बाट व मापों की मैट्रिक प्रणाली।

(Write short notes on :—

(a) Decimal system of coinage in India.

(b) Metric system of weights and measures)

उत्तर —

(अ) भारत मे सिक्कों की दाशमिक प्रणाली —

१ अप्रैल १९५७ से भारतवर्ष मे सिक्को की दाशमिक प्रणाली प्रचलित है। इसके अनुसार रुपये के मूल्य मे कोई अन्तर नही हुआ है। यह अब भी देश का प्रमाणिक सिक्का है। अब रुपये को ६४ के स्थान पर १०० छोटे-२ सिक्को की इकाइयो मे बाट दिया गया है प्रत्येक छोटी इकाई 'नया पैसा' कहलाती है। इस प्रकार अब एक रुपये मे १०० नये पैसे होते हैं। सिक्को के प्रचलन की पुरानी प्रणाली में एक रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, इकन्नी, आधाना और पैसा कुल मिलाकर ७ सिक्के थे। प्रचलित दाशमिक प्रणाली मे भी ७ सिक्के हैं जिनका नाम व मूल्य निम्न प्रकार है :—

एक रुपया	=	१००	नये	पैसे
रुपये का आधा भाग	=	५०	,,	,,
रुपये का चौथा भाग	=	२५	,,	,,
रुपये का दसवा भाग	=	१०	,,	,,
रुपये का बीसवाँ भाग	=	५	,,	,,
रुपये का पचासवाँ भाग	=	२	,,	,,
रुपये का सौवा भाग	=	१	नया	पैसा

जनता को नई प्रणाली के समझने और अपनाने मे असुविधा न हो, इसलिये सरकार ने यह आदेश किया कि तीन साल तक अर्थात १ अप्रेल १९५७ से ३१ मार्च १९६० तक नये और पुराने सिक्के साथ २ चलेंगे। अत आजकल दोनो ही प्रकार के सिक्के चलन मे हैं और निर्धारित अनुपात मे परस्पर परिवर्तनीय हैं राज्य धीरे २ पुराने सिक्के चलन मे हटाता जा रहा है।

यह प्रणाली विश्व के १४० मुद्रा निर्गमित करने वाले देशो मे से १०५ द्वारा अपनाई जाती है। इसके अनेका लाभ हैं। इस प्रणाली के अनुसार हिसाब-किताब लगाना बडा ही आसान और सुविधाजनक है। यह प्रणाली बडी वैज्ञानिक है। स्कूल के विद्यार्थियो को इस प्रणाली के कारण अकगणित सीखना बडा आसान हो गया है। इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और व्यवसाय मे है। ज्यादातर देशों मे यह प्रणाली प्रचलित है अत हमको भी इस प्रणाली को अपनाना आवश्यक था अन्यथा हमको उनके मल्यो को समझने, हिसाब किताब को देखने इत्यादि म बडी असुविधा होती थी।

यद्यपि इस प्रणाली के प्रयोग से प्रारम्भ मे लोगो को बडी असुविधा हुई परन्तु अब धीरे २ वे इसके अभ्यस्त होते जा रहे हैं। १ अप्रेल १९६० से देश मे केवल दाशमिक सिक्को का प्रचलन रह जायेगा।

(ब) बाटो व मापो की मैट्रिक प्रणाली —

भारतवर्ष मे बाटो व मापो की कोई समान प्रणाली नही पाई जाती है। कोई १४३ विभिन्न बाट व माप प्रणालिया देश मे प्रचलित हैं। यही नहीं एक ही नाप के बाटो व मापो मे अलग २ विभिन्नता पाई जाती है। देश मे २८० तोले से लेकर ८३२० तोले वजन तक के १०० प्रकार के 'मन' प्रचलित हैं। इसी प्रकार 'सेर' भी ८ तोले से लेकर १६० तोले तक का होता है। कच्चा व पक्का मन तो आपने भी सुना होगा। इस प्रकार की स्थिति किसानो, व्यवसायियो इत्यादि को बडी हानिप्रद सिद्ध होती है। इसी कारण भारत की विगणन-प्रणाली मे अनेको दोष आ गये हैं। खरीदने के बाट और बेचने के बाट और—यह अनेको भारतीय मडियो मे पाया जाता है।

उपरोक्त दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार ने समस्त देश में एक ही समान 'बाटो व माप की प्रणाली' को अपनाने का निश्चय किया। इस प्रणाली का नाम तोल व माप की मैट्रिक प्रणाली' है क्योंकि माप की प्रारम्भिक इकाई 'मीटर' है। देश में सिक्को की दाशमलिक प्रणाली को अपनाने के बाद तोल व माप के लिए भी एक दाशमलिक प्रणाली का अपनाना आवश्यक था। नई प्रणाली अक्टूबर १९५८ से देश के कुछ विभिन्न क्षेत्रो व राज्य व्यवसायो मे लागू करदी गई है। समस्त परिवर्तन १९६६ तक अर्थात ८ साल की अवधि म पूर्ण हो जायेगा। तीन साल तक नई और पुरानी प्रणालियाँ उन क्षेत्रो और व्यवसायो में साथ २ कार्य करेंगी जहा पर नई प्रणाली को लागू घोषित किया गया है।

यह प्रणाली बडी ही सरल और वैज्ञानिक है। हिसाब किताब लगाने मे समय और असुविधा की बचत होती है। इस प्रणाली के इन्हीं गुणों के कारण समस्त विश्व के ४/५ देशों ने इसको अपना रखा है। भारत का अतर्राष्ट्रीय व्यापार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है अत उन्ही के सदृश प्रणाली अपनाने से बडी आसानी हो जाती है।

अध्याय ७२

भारतीय योजनायें

प्रश्न १६३—भारत की दूसरी पचवर्षीय योजना पर एक सक्षिप्त लेख लिखिये।

(Write a short essay on the Second Five Year Plan of India)

उत्तर —

पहली पचवर्षीय योजना १९५६ ई० मे समाप्त हुई। इस योजना ने एक ऐसा ठोस आधा व सर्वांगीण अर्थ व्यवस्था प्रगति की इमारत खडी की जिससे आगे की प्रगति हो सके। इस पचवर्षीय योजना से भारत की बहुत कुछ उन्नति हुई है। इस योजना से औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ उत्पादन मे वृद्धि हुई है। मूल्य स्तर सन्तुलन पर है अत विदेशी विनिमय मे भी सतुलन होता जा रहा है। सभी महत्वपूर्ण लक्ष्यो को पूर्ण किया जा रहा है शिक्षा की उन्नति बडे-बडे उद्योगो की उन्नति, ग्रामोउद्योग और छोटे छोटे धधो की भी उन्नति होती जा रही है। पचवर्षीय योजनायें भारत को बहुत ही उन्नतिशील बना देंगी ऐसी आशा है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य —

(१) आय तथा सम्पत्ति की विषमताओ को दूर करना तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण। भारत मे धन का असमान वितरण बहुत अधिक है फलत एक ओर बहुत ही धनिक वर्ग है जो बहुत कम है और दूसरी ओर बहुत गरीब लोग हैं जो कि उत्पादन मे कुशलता से वृद्धि नही कर सकते हैं। अत द्वितीय योजना इस विषमता को दूर करने की कोशिश कर रही है।

(२) रोजगार सम्बन्धी सुविधा के क्षेत्र का विस्तार भारत मे बेरोजगारी जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ बढती जा रही है। अत इस योजना मे बहुत से उद्योगो आदि की उन्नति करके लोगो को रोजगार की सुविधायें दी जाने की व्यवस्था है।

(३) प्रमुख उद्योगो की उन्नति और औद्योगीकरण का विकास करना।

(४) राष्ट्रीय आय मे दिन प्रतिदिन वृद्धि करना और जनता के रहन सहन के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न भी इस योजना मे शामिल है।

द्वितीय योजना समाजवादी समाज की स्थापना का ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था आर्थिक उन्नति का मूल मन्त्र है क्योंकि समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे रहन सहन का स्तर ऊचा करना, अवसरों मे वृद्धि करना तथा व्यक्ति के महत्व को स्वीकार किया गया है अर्थात वह भी अपने को समाज की उन्नति करने मे सहायक समझने लगेगा।

इस योजना म कुल ७,२०० करोड रुपये खर्च होगा जिसमे से ४,८०० करोड रुपये सरकार तथा २,४०० रु० करोड निजी उद्योगपति खर्च करेंगे। **सरकार उपरोक्त धन का इस प्रकार व्यय करेगी।**

(१)	खेती और सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा पर	५६८ करोड रु०	११.८%
(२)	सिंचाई और बिजली पर	९१३ ,, ,,	१८.७ ,,
(३)	उद्योग तथा खाने पर	८९० ,, ,,	१८.६ ,,
(४)	यातायात व सवाद वाहन पर	१३८५ ,, ,,	२८.२ ,,
(५)	सामाजिक सेवाओ, मकानो तथा पुनर्वास पर	५४६ ,, ,,	११.७ ,,
(६)	विविध	११६ ,, ,,	२.४ ,,
		४,८००	१००.०

इस धन को प्राप्त करने के लिये यह योजना निम्नलिखित ढग से प्राप्त करेगी।

(१)	चालूबचत	३५० करोड रु०
(२)	अतिरिक्त कर	४५० करोड रु०
(३)	रेलें	१५० करोड रु०
(४)	प्रोविडेन्टफन्ड	२५० करोड रु०
(५)	जनता से ऋण तथा अल्प बचत	१,२०० करोड रु०
		२,४००

घाटा।—यह निम्नलिखित साधनों से पूरा किया जायेगा।

(१)	विदेशी सहायता	८००
(२)	हीनार्थ प्रबध	१,२००
(३)	आन्तरिक व वाह्य	४००
		२,४००

इस योजना के अनुसार यदि मदिरा निषेध आदि कार्य किये जायेंगे तो उस आय की पूर्ति के लिये अतिरिक्त कर लगाये जायेंगे।

द्वितीय योजना की विशेषता :—जहाँ पहली योजना मे खेती के उद्योग को बढाने तथा उन्नत करने का प्रयत्न किया गया वहाँ दूसरी योजना मे उद्योगो की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया गया है। उद्योगो मे भी ८९१ करोड रु० मे से ६९१ करोड रु० बडे पैमाने के उद्योगो मे व खानो पर खर्च किये जायेंगे। प्रथम योजना मे उद्योगो मे खानो वालो पर १/३ खर्च किया गया था परन्तु इस योजना मे इसको बढा कर आधा कर दिया है।

यद्यपि खाद्य तथा अन्य आवश्यक कच्चे मालो की कमी दूर हो चुकी है, पर देश की बढ़ती हुई आबादी की संख्या को ध्यान मे रखते हुये इस योजना मे खेती की पैदावार बढाने पर उचित ध्यान दिया गया है। खेती सम्बन्धी सभी कार्यों और साधनो को उन्नतिशील बनाया जायेगा।

राष्ट्रीय आय :—इस योजना के फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय आय जो १९५५-५६ मे १०,८०० करोड रुपये थी वह बढ कर १९६०-६१ मे १३,४८० करोड रु० आय हो जायेगी। इस प्रकार २५ प्रतिशत वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय २८१ रुपये से बढ कर ३३० रुपये हो जायेगी।

रोजगार मे वृद्धि—इसके फलस्वरूप ८० लाख लोगो को रोजगार मिल सकेगा।

द्वितीय योजना के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के टेक्नीकल मिशन के विचार—

मिशन इस योजना की मोटी रूप रेखा से सहमत है परन्तु उसने इस योजना को बहुत कुछ उत्कृष्ट आकांक्षा वाली बताया है। उसने सरकार से कहा है कि हीनार्थ प्रबंध करने मे बडी सावधानी से काम लेना चाहिये तथा मूल्यो को बढाने से रोकने के लिये अधिक गल्ले का स्टाक करना चाहिये।

मिशन ने बताया है कि देश की यातायात की हालत बडी खराब है और उसने शिफारिस की है कि इस समस्या को रेल, सडक, तटीय जहाजरानी तथा आन्तरिक जलमार्ग उन्नत करके सुलझाना चाहिये।

मिशन ने कहा कि सूती मिल उद्योग तथा हाथ करघा के बीच मे जो समझौता किया गया है, वह नही चल सकेगा इसीलिये निर्यात करने में बाधा पड सकती है।

मिशन ने कहा है कि विदेशी विनिमय कमाने के लिये अधिक सूती कपडा द्रव्य, फसलें आदि विदेशो को निर्यात करनी चाहिये। उसका यह भी कहना है कि निजी पूजी को योजना मे सहयोग देने का अवसर देना चाहिये। उसका यह भी सुझाव है कि विदेशी पूजी व योग्यता को प्राप्त करने के लिये खूब प्रयत्न करना चाहिय। मिशन का यह भी सुझाव है कि योजनाओं पर किये गये खर्च के आकडो की गडबड को दूर करना चाहिये।

मिशन का सुझाव है कि सरकार को रेला के भाडे की दर बिजली की दर तथा बदरगाहो पर क खर्च की दर बढा कर आय प्राप्त करनी चाहिय।

मिशन का कहना है कि योजना म जितनी उन्नति कुटीर उद्योग की उन्नति करने का प्रबध है वह पूरा नही हो सकेगा।

मिशन का कहना है कि उपयोग की वस्तुयें पैदा करने के लिये फैक्टरी और गैर फैक्टरी उत्पत्ति का जो बटवारा किया गया है वह ठीक नही है क्योंकि गैर फैक्टरी उत्पत्ति पर अधिक भरोसा नही किया जा सकता।

मिशन ने आगे क हा क योजना म निर्यात बढाने के लिये विशेष प्रयत्न नही किये गये हैं। सरकार उद्योगों की प्रतियोगी शक्ति को बढाने के लिये कोई विशेष ध्यान नही दे रही है।

अत द्वितीय पचवर्षीय योजना उपरोक्त कार्य करेगी।

प्रश्न १६४—"तृतीय पचवर्षीय योजना" के ऊपर एक निबन्ध लिखिये।

(Write an essay on "Third Five Year Plan")

उत्तर —

भारत मे तृतीय पंचवर्षीय योजना १ अप्रैल १९६१ से शुरू होगी। अभी ६ जुलाई १९६० को योजना आयोग ने इस आगामी तृतीय पचवर्षीय योजना की रूप रेखा तैयार की है जो निम्न प्रकार से है :—

योजना के मुख्य उद्देश्य —तृतीय पचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य, निम्न हैं :—

(१) सर्वप्रथम योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि राष्ट्रीय आय में ५% से प्रतिवर्ष वृद्धि हो।

(२) दूसरे खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता लाना तथा खेती के उत्पादन मे वृद्धि करना भी इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

(३) इस्पात, ईंधन बिजली से सम्बन्धित उद्योगो का विकास करना तथा मशीन निर्माण के कारखाने स्थापित करना जिससे औद्योगिक विकास की आवश्यकतायें पूरी की जा सके।

(४) देश मे जनशक्ति का उचित योग करना तथा बेरोजगारी दूर करने के लिए प्रयत्न करना।

(५) देश मे धन एव आय की असमानताओ के दूर करने का प्रयत्न करना।

तृतीय योजना का आकार.—योजना आयोग के अनुमान के अनुसार तृतीय पचवर्षीय योजना मे ७,२५० करोड रुपये होगा। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रो मे मिलाकर कुल १०,२०० करोड रु० (६२० करोड रु० सार्वजनिक क्षेत्र मे तथा ४००० करोड रु० निजी क्षेत्र मे) विनियोग व्यय होगा। सार्वजनिक क्षेत्र मे ६२०० करोड रुपये व्यय के अतिरिक्त १०५० करोड रुपये का व्यय चालू व्यय द्वारा होगा। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग ७२५० करोड रुपये का व्यय सार्वजनिक क्षेत्र मे तृतीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत होगा। इस व्यय का विवरण हम निम्न तालिका द्वारा दिखा सकते है —

	विषय	(प्रस्तावित व्यय (करोड रुपये म)
१.	कृषि तथा छोटी सिंचाई योजनाओ पर	६२५
२.	सामुदायिक विकास एव सहकारिता	४००
३.	बडी और मध्य की सिंचाई योजनाओ पर	६५०
४.	बिजली पर	६२५
५	कुटीर एव लघु उद्योग	२५०
६.	उद्योग और खनिज पर	१५००
७.	परिवहन और सचार पर	१४५०
८.	समाज सेवायें	१२५०
९.	अनुसन्धान	२००
		सर्वयोग ७२५० करोड रु०

कृषि तथा सिंचाई :—तृतीय योजना की रूपरेखा मे कृषि विकास को ...थम स्थान दिया गया है। इसके विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल लगभग ...,६७५ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। इस व्यय के अन्तर्गत कृषि, सामु...दायिक विकास और सहकारिता एव सभी प्रकार की सिंचाई योजनायें शामिल

हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि निजी क्षेत्र मे लगभग ८०० करोड रुपये इन कार्यों पर व्यय किये जायेंगे। योजना काल में कृषि उत्पादन मे ३०% से ३३% तक वृद्धि करने का लक्ष्य है। तथा ऐसा अनुमान है कि सिचाई योजनाओ से लगभग २ करोड एकड और भूमि पर सिचाई की जाने लगेगी। जिससे योजना के अन्त तक ६ करोड एकड भूमि सिचाई योजनाओ के अन्तर्गत सींची जायेगी और इस योजना काल मे लगभग ४ एकड भूमि के ऊपर 'बरानी खेती' भी की जायेगी। मिट्टी साधारण का कार्य १ करोड ३० लाख एकड और भूमि पर बढाया जायेगा। और ८ करोड एकड भूमि पर पौध रक्षा की व्यवस्था की जायेगी।

उद्योग और खनिज—उद्योग और खनिज के विकास पर योजना काल मे १५०० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। तथा निजि क्षेत्र मे भी लगभग १,००० करोड रुपये व्यय किये जाने की आशा है। योजना मे इस्पात, मशीन निर्माण और उत्पादक वस्तुओ के निर्माण पर विशेष महत्व दिया जायेगा। साथ साथ उपभोग पदार्थ के निर्माण पर महत्व दिया जायेगा। और ऐसी आशा की जाती है कि तीसरी योजना की समाप्ति तक कपडा, चीनी, सीमेट और कागज बनाने की लगभग सभी मशीनो का निर्माण अपने देश मे हो सकेगा।

कुटीर एवं लघु उद्योग.—तृतीय योजना मे कुटीर एव लघु उद्योग के विकास पर भी विशेष महत्व दिया गया है और इस पर लगभग २५० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। यह धन उनकी शिक्षा, ऋण की व्यवस्था एव कच्चे माल की पूर्ति आदि पर व्यय किया जायेगा। हाथ करघे से बना कपडा एव खादी के विकास पर विशेष महत्व दिया जायेगा। तथा उद्योग पुरियो **(Industrial Exrates)** की सख्या मे भी वृद्धि की जायेगा।

बिजली:—तीसरी योजना काल मे बिजली के ऊपर लगभग ६२५ करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। और ऐसी आशा की जाती है कि लगभग इस योजना काल मे १५ हजार नये गावो एव कस्बो मे बिजली पहुँचाई जा सकेगी। जिससे कुल नये गावो एव कस्बो की सख्या जहा बिजली होगी २४ हजार हो जायेगी।

परिवाहन एवं सचार—परिवाहन और सचार के विकास पर योजना काल मे लगभग १४५० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। इस योजना काल मे लगभग १२,०० मील लम्बी नई लाइन बिछाई जायेंगी। तथा २०० हजार मील लम्बी पक्की सडको का निर्माण किया जायेगा। मोटर याता-

यात का विकास अधिकांश नीति क्षेत्र मे किया जायेगा। और २ लाख टन के जहाज और खरीदे जायेंगे। इस प्रकार सभी क्षेत्रों मे विकास कार्य जारी रहेगा।

सामाजिक सेवाये—सामाजिक सेवाओं के विकास पर तृतीय योजना काल मे लगभग १२५० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे। **शिक्षा के क्षेत्र मे** प्राइमरी शिक्षा ६ वर्ष से ११ वर्ष तक के बच्चो को मुफ्त दी जायेगी। जिससे योजना के अन्त तक कुल छात्रो की सख्या ६ करोड हो जायेगी। साथ २ वैज्ञानिक शिक्षा का विस्तार किया जायेगा। **स्वास्थ्य के क्षेत्र मे** भी डाक्टरो, अस्पतालो, दवाखानो, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो तथा परिवार नियोजन केन्द्रो की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि की जायेगी। सामाजिक सेवाओ के अन्तर्गत कम आय वाले तथा औद्योगिक श्रमिको के लिये **मकानो की भी व्यवस्था की** जायेगी। रहने की बस्तियो का भी सुधार किया जायेगा।

तृतीय योजना काल मे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार की दशा—राष्ट्रीय आय की ओर सकेत करते हुए योजना आयोग का विचार है कि तीसरी योजना काल मे राष्ट्रीय आय ५% से अधिक प्रतिवर्ष बढेगी। तथा रोजगार की दशा मे कोई सुधार नही होगा और तीसरी योजना के समय मे १० लाख व्यक्ति और बेरोजगार हो जायेंगे। इस प्रकार योजना के समाप्त होने के समय तक बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या ८० लाख हो जायेगी जिसमे ७० लाख व्यक्ति ऐसे होगे जो पहले से ही बेरोजगार होगे।

योजना के लिये धन की व्यवस्था—तृतीय योजना काल मे जो सार्वजनिक क्षेत्र मे ७२५० करोड रुपये व्यय किये जायेंगे उसकी आय के साधन निम्न तालिका मे स्पष्ट हो जाते हैं—

	आय साधन	करोड रुपये
१	वर्तमान करो से	३५०
२	रेलो से आय	१५०
३	सार्वजनिक उद्यमो से आय	४००
४	सार्वजनिक ऋण	८५०
५	अल्प बचत	५५०
६	भविष्य निधि से आय	५५०
७.	अतिरिक्त कर तथा सरकारी उद्यमो से लाभ	१६५०
८	विदेशी सहायता	२२००
९	घाटे की वित्त व्यवस्था	५५०
	कुल योग	७२५० करोड रु०।

उपर्लिखित तालिका से स्पष्ट है कि तीसरी योजना काल में घाटे की वित्त व्यवस्था से केवल ५५० करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। ऐसा इस लिए किया गया है कि जिससे वस्तु के मूल्यों में अधिक वृद्धि न होने पाये। उपर्लिखित तालिका से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि धन व्यवस्था के मुख्य दो साधन-अतिरिक्त कर तथा विदेशी सहायता पर अधिक बल दिया गया है। अधिकांश अतिरिक्त कर परोक्ष करों के द्वारा ही वसूल किया जायेगा।

॥ समाप्त ॥

Composed at:—Panchsheel Khurja.

"परीक्षा उपयोगी महत्त्वपूर्ण प्रश्न"

निम्न प्रश्न विद्यार्थियो को परीक्षा के वास्ते अवश्य याद कर लेने चाहिये ताकि परीक्षा मे उत्तम अक प्राप्त किये जा सकें ।

विषय प्रवेश

प्रश्न संख्या—१, ६, १०, ११, १२, १३, १८ ।

उपभोग

प्रश्न संख्या—२१, २३, २४, २७, २६, ३०, ४०, ४२ ।

उत्पत्ति

प्रश्न संख्या—४६, ४८, ४६, ५४, ६२, ६३, ६६, ६७, ६६, ७०, ७३, ७४, ७८, ८०, ८५, ६०, ६२ ।

राजस्व

प्रश्न संख्या—६६, १००, १०३ ।

विनमय

प्रश्न संख्या—१०४, १०६, १०७, १११, ११४, ११५, ११७, १२०, १२१, १२४, १२५, १२७, १३०, १३१, १३३, १३५, १३८ ।

वितरण

प्रश्न संख्या—१४२, १४३, १४४, १५०, १५२, १५७, १६१, १६२, १६४ ।